रहिमन धागा प्रेम का

प्रवचन-क्रम

1. आंसू: चैतन्य के फूल...2
2. ध्यान ही मार्ग है..24
3. रसो वै सः..45
4. श्रद्धा की अनिवार्य सीढ़ी: संदेह...66
5. प्रार्थना और प्रतीक्षा...87
6. प्रेम का मार्ग अनूठा..108
7. मैं मधुशाला हूं...127
8. स्वानुभव ही मुक्ति का द्वार है...149
9. अज्ञात का वरण करो..172 10..कस्तूरी कुंडल बसै
.... 196
11...समाधि के फूल
.... 217
12..प्रार्थना की गूंज
.... 237

रहिमन धागा प्रेम का
पहला प्रवचन

आंसू: चैतन्य के फूल

पहला प्रश्नः आपकी पहली मुलाकात आंसुओं से हुई थी। इतने साल बीत गए हैं, आंसू अभी मिटते नहीं, मिटने की संभावना लगती नहीं। चाहती हूं इसी तरह मिट जाऊं!

सोहन! आंसू दुख के भी होते हैं, आनंद के भी। दुख के आंसू तो मिट जाते हैं; आनंद के आंसू अमृत हैं, उनके मिटने का कोई उपाय नहीं, कोई आवश्यकता भी नहीं। आनंद में आंसू झरें, इससे ज्यादा शुभ और कोई लक्षण नहीं है। आनंद में हंसना इतना गहरा नहीं जाता, जितना आनंद में रोना गहरा जाता है। मुस्कुराहट परिधि पर उठी हुई तरंगें हैं; और आंसू तो आते हैं अंतर्गर्भ से, अंतर्तम से। आंसू जब हंसते हैं तो केंद्र और परिधि का मिलन होता है। आंसू जब हंसते हैं तो मोती हो जाते हैं।
ये आंसू तो आनंद के हैं, प्रेम के हैं, प्रार्थना के हैं, पूजा के हैं, ध्यान के हैं, अहोभाव के हैं।
तू कहती हैः "आपकी पहली मुलाकात आंसुओं से हुई थी।"
बहुतों की पहली मुलाकात मुझसे आंसुओं से ही हुई है। और जिनकी पहली मुलाकात आंसुओं से नहीं हुई है, उनकी मुलाकात अभी हुई ही नहीं; जब भी होगी, आंसुओं से होगी।
आंसू, तुम्हारे भीतर कुछ पिघला, इसकी सूचना है; कुछ गला; अहंकार जो जमा
है बर्फ की तरह, वह पिघला, तरल हुआ, बहा। आंखें कुछ भीतर की खबर लाती हैं। जो शब्द नहीं कह पाते, आंसू कह पाते हैं। शब्द जहां असमर्थ हैं, आंसू वहां भी समर्थ हैं।
आंसुओं का काव्य है, महाकाव्य है--मौन, निःशब्द, पर अपूर्व अभिव्यंजना
से भरा हुआ। आंसू तो फूल हैं--चैतन्य के।
जो मुझसे पहली बार बिना आंसुओं के मिलते हैं, उनका केवल परिचय होता है, मिलन नहीं। फिर किसी दिन मिलन भी होगा। और जब भी मिलन होगा तो आंसुओं से ही होगा। और तो कुछ जोड़ने वाला सेतु जगत में है ही नहीं। आंसू ही जोड़ते हैं। बड़ी नाजुक चीज है आंसू। मगर प्रेम भी नाजुक है। फूल भी नाजुक है। आंसुओं से बनता है एक इंद्रधनुष--दो आत्माओं को जोड़ने वाला। कोई ईंट-पत्थर के सेतु बनाने की आवश्यकता भी नहीं है; अदृश्य को जोड़ने के लिए इंद्रधनुष पर्याप्त है। और आंसुओं पर जब ध्यान की रोशनी पड़ती है तो हर आंसू इंद्रधनुष हो जाता है।
मुझे पता है सोहन, तू रोती ही रही है। मगर मैंने तुझे कभी कहा भी नहीं
कि रुक, रो मत। क्योंकि यह रोना और ही रोना है! यह रोना पीड़ा का नहीं, विषाद का नहीं, संताप का नहीं, चिंता का नहीं। यह रोना समस्या नहीं है, समाधान है। यह रोना व्यथा नहीं है, तेरे अंतर-आनंद की कथा है।
इसलिए मैंने तुझे कभी कहा नहीं कि रो मत। तेरे आंसुओं से मैं सदा प्रफुल्लित हुआ हूं। यहां बहुत हैं जो रोते हैं, पर तेरे आंसू बेजोड़ हैं। तुझ जैसा कोई भी नहीं रोता। तेरे आंसू बहुत नैसर्गिक हैं; स्वतः स्फूर्त हैं; स्वांतः सुखाय हैं।
तू कहती हैः "इतने साल बीत गए, आंसू अभी मिटते नहीं।"
मिटेंगे भी नहीं। यह बात समय के बाहर हो रही है। समय के भीतर जो पैदा होता है, वह मिट जाता है। समय में जो जन्मता है, उसका अंत भी आ जाता है। समय में आदि है, अंत है। लेकिन समय में कुछ कभी-कभी घटता है, जो समयातीत है, कालातीत है। वही धर्म है। उसे परमात्मा कहो, मोक्ष कहो, समाधि कहो, निर्वाण कहो--जो मौज हो वह नाम दो। रसो वै सः! उसका नाम, ठीक-ठीक नाम रस है! और तू उस रस में डूबी है, ओत-प्रोत है। तेरा-मेरा संबंध सोचने-विचारने का संबंध नहीं है।
जो मुझसे सोच-विचार से जुड़े हैं, जुड़े ही नहीं। सोच-विचार जोड़ता नहीं, तोड़ता है। धोखा है जोड़ने का। वस्तुतः तोड़ता है।

यहां तीन तरह के लोग हैं। एक तो वे हैं जो मात्र कुतूहल से आ गए हैं; सिर्फ एक खुजलाहट उन्हें यहां ले आई है--एक बौद्धिक खुजलाहट--कि क्या हो रहा है? क्या है, जिसकी इतनी चर्चा है? इतना विरोध है? क्या है? आखिर अपनी आंखों से देखें! वे तमाशबीन हैं। वे आए न आए बराबर हैं। आकर भी वे नहीं आए हैं। शरीर से ही आए हैं। उनके चित्त हजार प्रश्नों से भरे हुए हैं। और प्रश्नों से ही भरे होते तो भी कुछ हर्ज न था, उत्तरों से भी भरे हुए हैं। प्रश्न इतनी बुरी कोई बात नहीं। लेकिन जिनके चित्त उत्तरों से भरे हैं, उनके साथ तो संवाद करना ही असंभव है। वे तो पहले से ही जानते हैं। गीता उन्हें कंठस्थ है, उपनिषद उनकी जबान पर रखा है। वेद की ऋचाएं वे ऐसे दोहरा दे सकते हैं, जैसे कोई यंत्र दोहराए, कि ग्रामोफोन का रिकार्ड हो। हाथ में रखा है उनके सारा ज्ञान। प्राण खाली के खाली हैं। आत्मा में एक फूल खिला नहीं, एक ऋचा ऊगी नहीं, एक मंत्र जगा नहीं। सब उधार है, बासा है। मगर उस बासे और उधार को अपना मान कर जी रहे हैं। उस थोथे कूड़े-कर्कट को ज्ञान समझ रहे हैं। सूचनाओं को प्रज्ञा मान रखा है। शास्त्रों के बोझ को ढो रहे हैं और सोचते हैं कि शास्त्रों की नावें बन जाएंगी और उस पार पहुंच जाएंगे। शास्त्रों की नावें कागज की नावें हैं। जो भी शास्त्र की नाव से चला, डूबा, बुरी तरह डूबा। उस घाट तक पहुंचना तो दूर, उस पार पहुंचना तो दूर, इसी घाट पर डूब जाता है। उतारी नाव पानी में कि डूबी। नाव जैसी दिखाई पड़ती है, नाव नहीं है। कागज की नावों से कोई सागर का संतरण होता है? और फिर भवसागर का? इस विराट जीवन के सागर का? तुम केवल उधार शब्दों के आधार पर पार करने की आकांक्षा रखते हो?
जो कुतूहल से आ गए हैं, उनकी खोपड़ी में तो न मालूम कितना उपद्रव चल रहा है। वे यहां मुझे सुनते मालूम पड़ते हैं, बस सुनते मालूम पड़ते हैं, सुनते इत्यादि नहीं। अपनी सुनें कि मेरी सुनें? अपना ही उनके पास बहुत कुछ है। उनके भीतर पूरे समय निर्णय चल रहा है, निष्कर्ष चल रहे हैं, कि जो मैं कह रहा हूं यह ठीक है या गलत? जैसे उन्हें ठीक पता ही है! तौल चल रही है। तराजू लिए बैठे हैं। जैसे उनके पास वस्तुतः कोई तराजू है, जिस पर वे तौल सकेंगे। जब तक समता न आई हो, जब तक संबोधि न जन्मी हो, तब तक तराजू होता ही नहीं। तब तक तुम दोहराते हो सिर्फ औरों को। और जो औरों को दोहराता है, उससे ज्यादा दयनीय और कोई भी नहीं।
तो एक तो वे लोग हैं; वे आते रहेंगे, जाते रहेंगे। दूसरे वे लोग हैं, जो जिज्ञासा से आए हैं; जिनके भीतर मात्र कुतूहल नहीं है; जिनके भीतर वस्तुतः जिज्ञासा है, जो सच में जानना चाहते हैं। उनके भीतर प्रश्न हैं, उत्तर नहीं। उत्तर होते तो जिज्ञासा का सवाल ही न था। वे पंडित नहीं हैं। उन्हें इतना बोध है कि शास्त्र को जान लेने से सत्य नहीं जाना जाता है। उन्होंने ज्ञान को कभी भी अपना बोध नहीं समझा है; उस धोखे में नहीं पड़े हैं। लिखा होगा शास्त्र में, और लिखा होगा तो ठीक ही लिखा होगा; लेकिन जब तक मेरा अनुभव न हो, जब तक मैं उसके लिए गवाही न दे सकूं, तब तक क्या सार? जब तक मैं भी न कह सकूं कि यह मेरी भी अनुभूति है, तब तक बुद्ध कहें, महावीर कहें, कृष्ण कहें, क्राइस्ट कहें, मोहम्मद कहें--कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे; कोई उन पर शंका करने की भी आवश्यकता नहीं है; लेकिन श्रद्धा करने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। न शंका, न श्रद्धा--तब जिज्ञासा का जन्म होता है। जिसका चित्त शंका और श्रद्धा, दोनों से मुक्त है; जिसके चित्त पर एक प्रश्नवाचक चिह्न है; जो खोजने निकला है; जो अन्वेषक है; जो कहता है कि मैं प्रयोग करूंगा, जानूंगा, जिस दिन जानूंगा उस दिन कहूंगा, जब जानूंगा तब मानूंगा--ऐसा व्यक्ति प्रामाणिक होता है; पंडित तो नहीं होता, प्रामाणिक होता है। पंडित कभी प्रामाणिक नहीं होते। यद्यपि पंडित शास्त्रों से प्रमाण जुटाते हैं, मगर उनके प्राणों में प्रमाण नहीं होते।
रामकृष्ण से किसी ने पूछाः ईश्वर का आपके पास क्या प्रमाण है?
रामकृष्ण खड़े हो गए। उन्होंने कहाः मैं प्रमाण हूं! मेरे पास कोई प्रमाण नहीं। अगर मेरे पास कोई प्रमाण हो तो फिर मैं केवल एक पंडित हूं। बहुत हैं जिनके पास प्रमाण हैं, फिर तुम वहां जाओ। मैं प्रमाण हूं! मेरी आंखों में झांको! मेरे हाथ को अपने हाथ में लो!

विवेकानंद ने रामकृष्ण से पूछा था, जिज्ञासु की तरह गए थे--कि क्या ईश्वर है? क्या आप सिद्ध कर सकते हैं कि ईश्वर है?
रामकृष्ण ने कहाः सिद्ध कर सकता हूं? मेरे सिद्ध-असिद्ध करने से क्या होगा? मैं सिद्ध करूं तो भी है, मैं असिद्ध करूं तो भी है। सारी दुनिया भी असिद्ध कर दे तो भी है। मैं जानता हूं! सिद्ध-असिद्ध करने की बात नहीं। तू यह बात ही मत पूछ। तू यह पूछ कि तुझे जानना है?
विवेकानंद बहुत लोगों के पास गए थे। किसी ने भी यह न कहा था, कि तुझे जानना है? कोई थे जो मानते थे, तो विवेकानंद को कहा थाः मानो। मानोगे तो जानोगे। पहले भरोसा करो, विश्वास करो, फिर जान पाओगे।
लेकिन सोचो तो सही, यह कैसा मूढ़ गणित है! अगर पहले भरोसा ही कर लिया तो फिर जानने की जगह कहां रही? अगर भरोसे के बाद भी खोज की तो तुमने भरोसा किया ही नहीं। और अगर भरोसे के बाद खोज नहीं की तो जानोगे कैसे? भरोसे का तो अर्थ ही यह हैः कहा किसी और ने, हमने मान लिया। किसी ने कहा कि शहद मीठा है, और हमने मान लिया; कभी चखा नहीं, कभी प्रयोग नहीं किया, कभी स्वाद नहीं लिया, कभी कंठ के नीचे उसे उतरने नहीं दिया। और अगर मिठास का अनुभव न हुआ हो तो दुनिया कहती रहे कि शहद मीठा है, इससे क्या होगा? तुम कभी भी न जान पाओगे कि मिठास क्या है।
मिठास शब्दों में नहीं होती, शास्त्रों में नहीं होती, शहद को रखना पड़ेगा अपनी जीभ पर। और अपनी जीभ चाहिए। बुद्ध की जीभ पर कितना ही शहद हो, किसी काम का नहीं है।
रामकृष्ण ने कहा कि तू यह पूछ, कि तुझे जानना है? और इसके पहले कि विवेकानंद कुछ कहते, क्योंकि यह उन्होंने कभी सोचा ही नहीं था कि मुझे जानना है या नहीं? यही पूछते फिरते थे, ईश्वर है या नहीं? और विवाद करते फिरते थे। इसके पहले कि वे कुछ कहें, एक क्षण किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए होंगे, कि रामकृष्ण ने अपनी लात उनके सीने से लगा दी। गिर पड़े। घड़ी भर के लिए किसी और लोक में खो गए। जब आंख खोली तो झुक कर प्रणाम किया और कहाः आप भी खूब हैं! मैं तो सिर्फ पूछने आया था। यह आपने क्या कर दिया! मुझे किस लोक में ले गए! मुझे कहां से कहां उठा दिया! मुझे क्या दिखा दिया! जो मैंने देखा है, अब उस पर मैं कैसे भरोसा करूं?
तो रामकृष्ण ने कहाः और-और देख।
ऐसे रामकृष्ण के जाल में विवेकानंद फंसे। जिज्ञासु हो तो जहां ज्योति
जल रही है, उस ज्योति पर परवाना होकर मिट ही जाएगा। और परवाने ही जान पाते हैं शमा की असलियत, हकीकत। दूर से देखने वाले तमाशबीन बस दूर से ही देखते रहते हैं; वे शमा के इतने कभी पास ही नहीं आते कि आंच भी लग जाए। वे आंच से डरते हैं। वे आंच से घबड़ाते हैं--कहीं कुछ जल न जाए, कहीं कुछ छूट न जाए! जिज्ञासु जान पाता है। और तीसरे वे लोग हैं, जो मुमुक्षु हैं। मुमुक्षु का अर्थ हैः जिन्होंने जन्मों-जन्मों में जिज्ञासा की है; अब जिज्ञासा करने को भी नहीं बची। अब तो बस किसी मयकदे में, किसी मधुशाला में चुपचाप बैठ कर पीना है। अब कोई जिज्ञासा भी नहीं है, कोई प्रश्न भी नहीं है। जो कुतूहल से आता है, उसके पास उत्तर ही उत्तर भरे होते हैं। जो जिज्ञासा से आता है, उसके पास प्रश्न ही प्रश्न होते हैं। जो मुमुक्षा से आता है, उसके पास न प्रश्न होते हैं, न उत्तर होते हैं; वह मौन होता है। सोहन, तू मेरे पास तीसरी अवस्था में आई है--मौन! आज कोई सोलह वर्ष से सोहन मुझसे जुड़ी है। एक बार भी उसने कोई तात्विक जिज्ञासा नहीं की, कि पूछा हो ईश्वर के संबंध में, कि मोक्ष के संबंध में, कि आत्मा के संबंध में, कि स्वर्ग कि नरक के संबंध में, कि कर्म का सिद्धांत, कि पुनर्जन्म का सिद्धांत। इस तरह की बकवास उसने कभी की ही नहीं। उसके घर मैं वर्षों तक मेहमान होता रहा, बहुत समय उसे मिला मेरे पास बैठने का। मेरी सेवा की, मेरे पैर दबाए, कि मेरे लिए भोजन बनाया, कि मुझे कंबल ओढ़ा कर सुला दिया, मगर कभी कुछ पूछा नहीं। जिज्ञासा उसके भीतर नहीं है। कुतूहल का तो सवाल ही नहीं है। मुमुक्षा है।
पिछले जन्मों में ही, सोहन, झड़ गई तेरी धूल--जिज्ञासा की, कुतूहल की।
तेरे भीतर तो मौन... ।

उसने कभी यह भी नहीं पूछा कि ध्यान कैसे करूं? पूछे भी तो क्यों पूछे! ध्यान में जी रही है। हां, जब भी मेरे पास रही तो उसकी आंखों से मोतियों जैसे बड़े-बड़े आंसू जरूर टपके, बहुत टपके! बही, पिघली। यह अच्छा लक्षण है।
रहीम ने इसे प्रेम का धागा कहा है। रहिमन धागा प्रेम का!
मुमुक्षा में प्रेम का आविर्भाव होता है--या प्रार्थना कहो।
रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय।
टूटे से फिर न जुड़े, जुड़े गांठ पड़ जाए।।
रहीम कोई बुद्धपुरुष नहीं हैं; महाकवि हैं। इसलिए भूल-चूक होनी स्वाभाविक है। कवि को झलक मिलती है बस सत्य की। ऋषि वह है जो सत्य को उपलब्ध हो जाए। कवि ऐसे है जैसे हजारों मील दूर से खुले आकाश में एक दिन सुबह सूरज के उगने पर गौरीशंकर के शिखर को चमकता हुआ देखा हो--दूर से! हजारों मील दूर से! सूर्य की प्रखर किरणों में गौरीशंकर का उत्तुंग शिखर, उसकी चमकती हुई बर्फ जैसे सोना हो गई हो! मगर दूर से देखा हो। उसको कवि कहते हैं। उसे झलकें मिलती हैं। कभी-कभी किसी क्षण में जैसे द्वार खुल जाता है--अनायास, आकस्मिक, उसके वश के बाहर है। ऋषि उसे कहते हैं, जिसने यात्रा की, जो गौरीशंकर पर निवास करता है; जो गौरीशंकर के साथ एक हो गया; जिसमें भेद ही न रहा अब; जो परमात्मा के साथ एक है।
तो कभी-कभी महाकवियों से सुंदर वचन निकल जाते हैं। उनमें बड़े प्यारे गुलाब खिल जाते हैं। मगर उन गुलाबों में कहीं न कहीं कांटे भी होंगे। ऋषियों के गुलाबों में कांटे नहीं होते। वे बिना कांटों के गुलाब हैं। अब यह वचन बड़ा प्यारा है!
रहिमन धागा प्रेम का...
प्रेम बड़ा महीन धागा है। दिखाई भी नहीं पड़ता, इतना बारीक है। और ऐसे बांध लेता है, कि जंजीरों को चाहो तो तोड़ दो, मगर प्रेम के धागे को नहीं तोड़ सकते। तलवारें नहीं काट सकतीं, अग्नि नहीं जला सकती।
रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय।
लेकिन बस फिर कवि की भूल आ गई--मत तोड़ो चटकाय। जैसे कि तोड़ा जा सकता है! प्रेम का धागा कौन कब तोड़ पाया? और जो टूट गया हो वह प्रेम था ही नहीं, वह कुछ और ही रहा होगा; भूल से प्रेम समझा होगा; प्रेम का लेबल लगा होगा। प्रेम कभी टूटा ही नहीं। पूरे मनुष्य-चैतन्य के इतिहास में, प्रेम कभी टूटा नहीं। फिर वह मजनू का लैला से हो, कि शीरीं का फरिहाद से, कि मीरा का कृष्ण से, कि राधा का, कि चैतन्य का, कि राबिया का, कि थैरेसा का, कि जीसस का। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, दो व्यक्तियों के बीच प्रेम घटे या एक व्यक्ति और परम सत्ता के बीच प्रेम घटे, वह प्रेम तो वही है। बूंद में भी तो सागर होता है। एक बूंद के राज को समझ लिया तो सारे सागर के राज को समझ लिया। प्रेम कभी टूटा नहीं।
तुम तोड़ सकोगे मीरा और कृष्ण के प्रेम को? मीरा को तोड़ सकते हो, प्रेम
को नहीं तोड़ सकते। तुम तोड़ सकोगे चैतन्य के प्रेम को? चैतन्य को तोड़ सकते हो, प्रेम को नहीं तोड़ सकते।
यहां कवि से भूल हो गई। वह झलक जो दिखी थी हिमालय की, खो गई होगी बदलियों में, आ गई होंगी आकाश में बदलियां--विचार के बादल आ गए होंगे।
रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय।
टूटे से फिर न जुड़े, जुड़े गांठ पड़ जाए।।
कहीं टूटता है? टूटता ही नहीं तो जोड़ने का सवाल ही नहीं उठता।
जिनसे मेरा प्रेम हुआ है, टूटा नहीं। जोड़ने की बात फिर उठी नहीं। और जिनसे टूट गया हो, वे भ्रांति में ही थे कि उनका प्रेम था। उन्होंने किसी और बात को प्रेम समझ लिया था, लोभ को प्रेम समझ लिया होगा।
यह जान कर तुम हैरान होओगे कि अंग्रेजी का शब्द लव, लोभ का ही रूपांतरण है। संस्कृत के लोभ से अंग्रेजी का लव शब्द बना है। कैसा रूपांतरण--लोभ से लव! लेकिन तथाकथित प्रेम लोभ का ही एक रूप है। तुम किसी से कहते होः मुझे तुमसे बहुत प्रेम है! मगर जरा गौर से झांकना अपने प्रेम में, कुछ पाने की आकांक्षा है। शरीर को पाने की हो, धन को पाने की हो, पद को पाने की हो--कुछ पाने की आकांक्षा है। कहीं न कहीं कोई वासना छिपी है। और जहां वासना है वहां प्रार्थना नहीं। और जहां लोभ है वहां प्रेम नहीं।

मगर साधारणतः हमारा प्रेम लोभ ही होता है।
सोहन ने न तो मुझसे कुछ चाहा है, न कुछ मांगा है। वे ही मुझसे जुड़े हैं, जिन्होंने न कुछ चाहा है, न कुछ मांगा है। उन्हें बहुत मिला है, वह दूसरी बात। वह हिसाब के बाहर। वह खाते-बही में नहीं लिखी जाती। उसका कहीं कोई हिसाब नहीं रखा जाता। अनंत गुना मिलता है, अगर न चाहो, अगर न मांगो। मांगो कि तुम छोटे हो जाते हो। मांगो कि मंगने हो जाते हो, भिक्षा का पात्र रह जाते हो। और भिक्षा का पात्र कोई भर भी दे, तो भी क्या! भिक्षा का पात्र ही है, फिर खाली हो जाएगा। कल सुबह फिर भीख मांगने खड़े हो जाओगे।
हृदय का पात्र भरना चाहिए। मगर हृदय के पात्र के भरने की संभावना तभी है, जब कोई वासना न हो, कोई कामना न हो।
यहां मेरे पास ऐसे लोग हैं, जिन्होंने कुछ नहीं मांगा, कुछ नहीं चाहा
और सब दांव पर लगा दिया है। वे ही प्रेमी हैं। उन्होंने ही जाना है प्रेम को। बेशर्त दांव पर लगा दिया है। जीएंगे तो मेरे साथ, मरेंगे तो मेरे साथ। सस्ता भी नहीं है मेरे साथ होना, महंगा सौदा है।
इसलिए रहीम यह तो बात गलत कहते हैं कि टूटे से फिर न जुड़े। टूटता ही नहीं। अब तक का अनुभव कहता है कि कभी नहीं टूटता। और जो टूट जाता है वह प्रेम नहीं था। फिर उसे जोड़ोगे भी तो जुड़े गांठ पड़ जाए। गांठ तो पड़ ही जाएगी फिर। धागा टूट जाए, फिर उसे जोड़ो तो गांठ पड़ जाए। मगर यह धागा ऐसा नहीं है जो टूट जाए।
इसलिए ऋषि और कवि के भेद को समझ लेना। मैं कभी-कभी कवियों के शब्द उपयोग करता हूं। क्योंकि एक बात ख्याल में रखनी जरूरी हैः ऋषियों के पास अनुभव होते हैं, मगर अक्सर शब्द नहीं होते। और कवियों के पास अक्सर शब्द होते हैं, मगर अनुभव नहीं होता। इस जीवन में बड़े विरोधाभास हैं। जो कह सकते हैं, उनके पास कहने को कुछ नहीं होता। जिनके पास कहने को कुछ होता है, उनके पास कहने के लिए शब्द नहीं होते। कभी-कभी विरले ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो ऋषि और कवि साथ-साथ होते हैं। जब कभी ऐसा कोई व्यक्ति होता है, उसी को हम सदगुरु कहते हैं--जिसने जाना भी और जो जना भी सकता है।
इसलिए मैं कवियों के शब्दों का उपयोग कर लेता हूं; अर्थ अपने देता हूं उनको। कवियों के साथ मुझे थोड़ी ज्यादती करनी पड़ती है; थोड़ा तोड़-मरोड़ करना पड़ता है; उनकी भूल-चूकों को हटाना पड़ता है; उन्हें अपना रंग देना पड़ता है। यह पद रहीम का मुझे प्यारा है--सिर्फ इसलिए प्यारा है कि इसमें बात एक काम की कही गई है, जो पहली आधी पंक्ति में हैः रहिमन धागा प्रेम का! प्रेम एक अदृश्य धागा है--बहुत महीन, नाजुक, बारीक! यूं कि हवा के झोंके में टूट जाए। मगर नहीं टूटता तलवारों से। मृत्यु भी सिर्फ एक चीज को नहीं मिटा पाती, वह प्रेम है। इसलिए प्रेमी भर मृत्यु से भयभीत नहीं होता, और सब भयभीत होते हैं। प्रेमी भर मृत्यु की चिंता नहीं करता, क्योंकि उसका प्रेम कहता है कि उसने शाश्वत को जान लिया, पहचान लिया। और प्रेम की ही पराकाष्ठा प्रार्थना बन जाती है।
सोहन, तुझे प्रेम के पंख लगे हैं। तेरा प्रेम रोज-रोज प्रार्थना में रूपांतरित हो रहा है। तू ठीक ही कहती है कि चाहती हूं इसी तरह मिट जाऊं। मिट ही गई है। अब चाहने की कोई बात नहीं है। बचा भी कुछ नहीं है। अहंकार तो गया। अब भीतर तो एक सन्नाटा है, एक शून्य है। इस शून्य में किसी भी दिन पूर्ण का अवतरण हो सकता है। तू धन्यभागी है! ऐसा ही भाग्य भगवान सबको दे!

दूसरा प्रश्नः जीवन व्यर्थ लगता है। मैं क्या करूं?

नरेश! जीवन तो खाली किताब है, कोरा पन्ना है। कोरा पन्ना न सार्थक होता, न व्यर्थ होता; सिर्फ खाली होता है। उस पर क्या लिखोगे, सब इस पर निर्भर करता है। गालियां लिख सकते हो, गीत लिख सकते हो। अधिक लोग गालियां लिखते हैं, फिर रोते-पछताते हैं। थोड़े से लोग गीत लिखते हैं, आनंदमग्न हो जाते हैं, नाचते हैं, उत्सव मनाते हैं। जो गालियां लिखता है, उसको मैं गृहस्थ कहता हूं; जो गीत लिखता है, उसको मैं संन्यस्त कहता हूं। मेरी और कोई संन्यास की दूसरी परिभाषा नहीं है। भगोड़ों को संन्यासी नहीं कहता। सब छोड़-छाड़ कर चल पड़े, उनको मैं संन्यासी नहीं कहता। उनको तो मैं पलायनवादी

कहता हूं। वे तो भीरु लोग हैं, डरपोक, कायर। संन्यासी तो मैं उनको कहता हूं, जो जीवन की किताब को गीतों से भर लेते हैं।
सब तुम्हारे हाथ में है। हाथ तुम्हारे पास, कलम तुम्हारे पास, स्याही- दवात तुम्हारे पास, जीवन की किताब तुम्हारे पास, परमात्मा ने सब तुम्हें दे दिया है--लिखो!
तुम कहते होः "जीवन व्यर्थ लगता है।"
लगेगा ही। अगर गलत-सलत लिखोगे तो व्यर्थ न लगेगा तो क्या होगा? बिना सोचे-समझे लिखोगे तो व्यर्थ न होगा तो क्या होगा?
मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में वह अकेला पढ़ा-लिखा आदमी है। तो लोग उसी
से चिट्ठियां लिखवाने आते हैं। एक दिन एक आदमी उससे चिट्ठी लिखवाने आया। मुल्ला ने कहा कि नहीं भाई, आज न लिख सकूंगा, मेरे पैर में बड़ा दर्द है।
उस आदमी ने कहाः पैर में दर्द! तो पैर में दर्द का चिट्ठी लिखने से क्या संबंध है? अरे चिट्ठी हाथ से लिखोगे कि पैर से लिखोगे? बैठे हो भलीभांति, हुक्का पी रहे हो। जब हुक्का पी सकते हो हाथ में पकड़ कर तो कलम नहीं पकड़ सकते? जरूरी है चिट्ठी। मेरी पत्नी मायके गई है, उसे चिट्ठी भेजनी आवश्यक है। कुछ खबरें देनी हैं।
मुल्ला ने कहाः भाई, तुम मुझे माफ करो, बात ज्यादा न छेड़ो। मेरे पैर में बहुत दर्द है।
वह आदमी भी जिद्दी था। उसने कहा कि जब तक तुम मुझे समझाओगे नहीं, कि पैर का इससे क्या लेना-देना है, कागज मैं ले आया, कलम मैं ले आया, लिखनी भर तुम्हें है--लो पकड़े लेता हूं अपने हाथ में, तुम लिख दो, दो लकीरें लिखनी हैं। और पता लिख दो।
नसरुद्दीन ने कहाः अब तुमने बात ही छेड़ दी है और मानते नहीं तो तुम्हें बताता हूं। लिख तो दूंगा मैं, लेकिन फिर पढ़ने उस गांव कौन जाएगा? मेरा लिखा मेरे सिवाय कोई नहीं पढ़ सकता। सच तो यह है कि मुझे खुद ही पढ़ने में बहुत दिक्कत होती है।
उस आदमी ने कहाः क्या कह रहे हो? पढ़ने में दिक्कत होती है!
तो नसरुद्दीन ने कहा कि अब क्या छिपाना तुझसे! मैं कोई पढ़ा-लिखा हूं! अरे तुम जो बोलते हो, उसको याद भी रखना पड़ता है। फिर दूसरे गांव में जाकर वही याददाश्त से दोहराना पड़ता है। मैं कोई पढ़ा-लिखा हूं! मगर गांव में कोई पढ़ा-लिखा नहीं है, तो इसी से अपनी रोजी कमा लेता हूं, चार पैसे इसी से आ जाते हैं।
एक बार ऐसा हुआ, एक आदमी ने चिट्ठी लिखवाई। लंबी चिट्ठी लिखवाई, लिखवाता ही गया। नसरुद्दीन ने कहाः भाई, संक्षिप्त कर। तू तो लिखवाए ही जा रहा है। और नसरुद्दीन लिखता ही गया। और उस आदमी ने जब पूरी चिट्ठी लिखवा दी तो उसने कहाः भैया, एक दफा पढ़ कर सुना दो, कि कुछ भूल-चूक न हो गई हो। नसरुद्दीन ने सिर ठोंक लिया। और उसने कहाः देख, पहली तो बात यह कि यह गैर-कानूनी है। चिट्ठी मेरे नाम नहीं है। जिसके नाम है वही पढ़े, मैं क्यों पढूं!
गांव का ग्रामीण था, उसने कहाः यह बात तो ठीक है, कि चिट्ठी जिसके नाम
है वही पढ़े।
नसरुद्दीन की पत्नी यह सुन रही थी। वह जब आदमी चला गया, उसने नसरुद्दीन से पूछा कि मैं कुछ समझी नहीं। बेचारे की पढ़ देते, कुछ छूट-छाट गया हो।
उसने कहा कि अब तू और बात मत छेड़, और नमक मत छिड़क मेरे घावों पर। पढ़े कौन? जो मैंने लिखा है, अंट-शंट है; बस खींचता जाता हूं लकीरों पर लकीरें। कुछ भी गूदता जाता हूं। कौन सी भाषा है, मुझे भी पता नहीं। और यह आदमी होशियार मालूम पड़ता है। अगर गलत-सलत पढूंगा तो फौरन टोकेगा। और इसने एक-एक बात लिखवा दी है कि पहली, दूसरी, तीसरी। मैं खुद ही भूल गया कि कौन-कौन सी बातें इसने लिखवाई हैं। कौन एक नंबर, कौन दो नंबर, कौन तीन नंबर! इतनी लंबी अब इसकी कथा कौन याद रखे! इसलिए यह तरकीब निकालनी पड़ी कि यह चिट्ठी मेरे नाम नहीं है भैया, दूसरे के नाम है; जिसके नाम है वही पढ़ सकता है। यह गैर-कानूनी है।

तुम्हारी किताब जिंदगी की या तो खाली रह जाती है, तो अर्थ कहां से दिखे? खाली जमीन छोड़ रखोगे तो तुम सोचते हो फूल खिलेंगे? घास-पात शायद ऊग आए अपने से भी। यह घास-पात की खूबी है कि वह अपने से ऊग आता है। गुलाब अपने से नहीं ऊग आते, जूही और चमेली और चंपा अपने से नहीं ऊग आते; उगाने पड़ते हैं। श्रम करना होता है, सृजन करना होता है, साधना करनी होती है। हां, घास-पात अपने से ऊग आता है।
मुल्ला नसरुद्दीन के पड़ोस में एक आदमी आकर रहा। उसने उसका लान देखा, बहुत हरा! ऐसे भी दूसरे के लान हमेशा ज्यादा हरे मालूम होते हैं। अपनी दीवाल के पास खड़े होकर उसने नसरुद्दीन से कहा कि मैं नया-नया हूं, मुझे बगीचे का कोई अनुभव भी नहीं। मैंने भी बीज बोए हैं घास के लाकर, सुंदर बीज, महंगे से महंगे बीज। ऊगना भी शुरू हो गए हैं। लेकिन कुछ व्यर्थ का घास-पात भी ऊग रहा है। तो कैसे पक्का पता चले कि कौन घास-पात है और कौन है असली दूब जो मैंने बोई है?
नसरुद्दीन ने कहाः बिल्कुल सीधा उपाय है। दोनों को उखाड़ कर फेंक दो। बाद में जो ऊग आए, समझना घास-पात; जो फिर न ऊगे, समझना दूब।
अगर तुम जीवन की किताब में कुछ न उगाओगे तो भी कुछ ऊगेगा, घास-पात ऊगेगा। और तुम आशा रखोगे कि गुलाब के फूल खिलें! न सुगंध उठेगी, न फूल खिलेंगे, न भंवरे आएंगे, न तितलियां उड़ेंगी, न पक्षी गीत गाएंगे। फिर तुम कहोगे, जीवन व्यर्थ है। जैसे कि जन्म के साथ ही तुम्हें जीवन मिल गया! जन्म के साथ केवल अवसर मिला है। जन्म के साथ जमीन मिली है। अब यह जमीन तैयार करो, गोड़ो, पत्थर अलग करो, घास-पात की जड़ें खोदो, बीज लाओ। ध्यान के बीज बोओ! प्रेम के बीज बोओ! आनंद के बीज बोओ! तो जीवन में अर्थवत्ता होगी, काव्य होगा, महिमा होगी। नहीं तो जीवन तो व्यर्थ लगेगा ही।
नरेश, इसमें कसूर किसका? नहीं कुछ लिखोगे जीवन की किताब में, तो भी चूहे वगैरह आकर काट-पीट कर जाएंगे, कुतर जाएंगे। जंग खा जाएगी जिंदगी, अगर उसका तुम उपयोग न करोगे। तलवार की धार मर जाएगी। तुम्हारी प्रतिभा जंग खाई हो जाएगी। और यही हो रहा है, करोड़ों लोगों के जीवन में यही अनुभव हो रहा है कि कोई अर्थ नहीं है। मगर कारण? कारण यह नहीं है कि जीवन कोई व्यर्थ घटना है। जीवन एक अपूर्व अवसर है!

तुम्हारी दी हुई एक जिंदगी--
आखिर जी गया!
सुबह-शाम
कड़वे-तीखे
उबलते गरल सरीखे
जो भी मिले जाम,
उठाया, उठा कर पी गया!
एक जिंदगी जी गया।

अंगार चुगे,
फूल कलेजे का जला
दिदोरे बहुत-बहुत उगे,
भला ही हुआ
जीवन का यह दीया मुआ
जलाए बिना जलता ही कहां? सुगंध भरा यह धूप गलता ही कहां? इसलिए, कुछ को नहीं नकारा,
जो भी मिला, सादर स्वीकारा,
बड़ी महंगी, यह तुम्हारी ही दया
एक जिंदगी जी गया।
मैं जब भी कहीं बाहर निकलता था
एक अनपहचाना कोई मेरे साथ-साथ चलता था सदा, छाया सा
सांझ ढले सी छाया सिमट गई

वह खो गया रंगीन मेघों की माया सा।
आज जाना, वह और कोई नहीं
मेरा ही मैं था--हाय, वह भी गया।
एक जिंदगी जी गया।

जन्म दिया और मौत गले मढ़ी
इस लंबे और बीहड़ सफर में
कितनी ही बार वह अड़ कर सामने हुई खड़ी। मैं ओंठों मुस्कुराया, बांहें बढ़ा दीं, पंजरा उभरी छाती सामने अड़ा दी,
यह जिंदगी और है भी क्या,
मरण की निष्करुण बंदगी के सिवा?
सो, अरूप मेरे हे बंधु आगत!
स्वागत है, हजार बार स्वागत!!
तुमने मरण दिया, मैं जीवन देता हूं, लो और कुछ? बोलो, बोलो!
मरण देख शरमा कर सहमा
समर्पण यह अकल्पित एकबारगी नया।
एक जिंदगी जी गया।

सपने सब झूठ हुए, आशाएं टूटीं,
फिर भी इन ओंठों से हंसी नहीं छूटी। आज जब सांसों का ऋण
चुकता करने चला हूं गिन-गिन
जी में आता है, जरा रो तो लूं तुम्हारी लिखी अनगढ़ लिपि को
आंखों के गंगाजल से धो तो लूं।
कम से कम यह संतोष लेकर तो जाऊं
कि तुमने कफन को जो चीर दिया,
वह भी चौचीर दिया--
मैं उसे सी गया।
आखिर एक जिंदगी जी गया।
लोग किसी तरह जी रहे हैं, ढो रहे हैं बोझ की तरह, भार की तरह। जहां नृत्य हो सकता था, वहां केवल बोझ है। जहां फूल ही फूल खिल सकते थे, वहां कांटे ही कांटे हैं, बबूल ही बबूल हैं। जहां धूप उठती, दीप जलते, नैवेद्य चढ़ता, वहां कुछ भी नहीं है--एक मरघट का सन्नाटा है; एक सूनापन, एक रिक्तता। लेकिन कसूर किसका है?
ईश्वर अवसर देता है। जन्म जीवन नहीं है; जन्म केवल जीवन को पाने या खोने का अवसर है। मौत सिर्फ अवसर को छीन लेती है। जिन्होंने इस अवसर का उपयोग कर लिया; जिन्होंने जीवन को जान लिया, पहचान लिया; जिन्होंने जीवन के फूल कमा लिए; जिन्होंने जीवन की गंध पा ली--मौत उनसे कुछ भी नहीं छीन पाती।
इसलिए तो बुद्ध शांत, मौन मृत्यु का आलिंगन करते हैं। इसलिए तो सुकरात हंसता-मुस्कुराता विदा होता है। न कोई रोना है, न कोई पीटना है, न कोई पछतावा है, न कोई प्रायश्चित्त है। न यह भाव है मन में कि और थोड़े दिन मिल जाते। जितने मिले उतने के लिए अनुग्रह है।
तुम कहते होः "जीवन व्यर्थ लगता है। मैं क्या करूं?"
सार्थक करो! व्यर्थ है नहीं। अगर बुद्ध के जीवन में सार्थकता हो सकती है, अगर कृष्ण के जीवन में हो सकती है, अगर महावीर के जीवन में हो सकती है, तो तुम्हारे जीवन में क्यों नहीं? तुम भी उतनी ही क्षमता लेकर पैदा हुए हो। परमात्मा सबको समान अवसर देता है। परमात्मा साम्यवादी है। फिर हर आदमी को स्वतंत्रता है कि जो चाहे करे।
एक सम्राट के तीन बेटे थे। सम्राट बूढ़ा हो गया, तय करना चाहता था, किसको राज्य दे। तीनों प्रतिभाशाली थे, शूरवीर थे, तय करना मुश्किल था,

कौन है श्रेष्ठ। एक फकीर से पूछा। फकीर ने कहाः एक काम करो। इन तीनों को ये फूलों के बीज ले जाओ और दे दो। और तुम कहना कि मैं तीर्थयात्रा को जा रहा हूं और साल भर बाद लौटूंगा। पुरानी कथा है। तीर्थयात्रा को जाना कोई आसान बात नहीं थी कि आज गए और कल वापस आ गए। लंबी यात्रा थी। एक वर्ष बाद लौटूंगा। इन बीजों को सम्हाल कर रखना। और कह दो उनसे कि इन बीजों को कैसे सम्हालते हो, इस पर ही निर्भर करेगा कि कौन मेरे राज्य का मालिक होगा। सावधान कर दो उन्हें कि यह परीक्षा का क्षण है।
सम्राट उनको बीज देकर चला गया। पहले बेटे ने सोचा कि इन बीजों को सम्हालना खतरे से खाली नहीं है। चूहे खा जाएं, चोर ले जाएं, सड़ जाएं, कुछ से कुछ हो जाए। ज्यादा उचित यही होगा कि इनको मैं बाजार में बेच दूं, पैसे सम्हालना ज्यादा आसान होगा। फिर पिता जब लौट कर आएंगे, बाजार से फिर बीज खरीद कर उनको दे देंगे। बीज-बीज में क्या फर्क? बाप को पता भी नहीं चल सकेगा कि ये वही बीज नहीं हैं। ठीक भी बात है, बीज ही बीज में क्या फर्क होगा? यही... इसी फूल के बीज खरीद कर पिता को दे देंगे। तो झंझट से भी बचे सम्हालने की। होशियार था, व्यवसायी बुद्धि का आदमी रहा होगा। बात उसने पते की खोज ली। बीज बेच दिए। बीज कीमती थे। कुछ अनूठे फूलों के बीज थे। विरल फूलों के बीज थे। अच्छे दाम मिल गए। उसने सोचा कि ठीक है, जब पिता वापस आएगा, खरीद लेंगे।
दूसरे बेटे ने सोचा कि आज मैं बेच तो दूं, जैसे बड़े भाई ने बेचे हैं, मगर पिता आए और बाजार में बीज मिलें न मिलें! कौन जाने, समय की बात, कभी कोई चीज बाजार में होती है, कभी नहीं होती। पिता द्वार पर आकर किस दिन खड़े हो जाएंगे, कौन जाने! उस दिन बाजार में बीज मिले न मिले! और ये विरल बीज हैं। और दुकानदार ने कहा कि ठहरो, कि पंद्रह दिन लगेंगे, कि महीना भर लगेगा, कि अभी मौसम नहीं है, तो मैं मुश्किल में पड़ जाऊंगा। मैं मुफ्त हार जाऊंगा। बेचना खतरे से खानी नहीं है। उसने एक तिजोड़ी खरीदी और तिजोड़ी में बीज बंद किए, चाबी लगा कर चाबी को सम्हाल कर रख लिया, कि पिता आएंगे, जल्दी से तिजोड़ी खोल कर बीज सामने कर दूंगा।
तीसरे बेटे ने भी कुछ किया। उसने बीज बो दिए। उसने कहाः बीजों को सम्हाल कर रखने का और कोई ढंग सम्यक नहीं हो सकता। अगर इनको मैं तिजोड़ी में रखूंगा, ये सड़ जाएंगे। बाजार में बेचना धोखा देना है बाप को। बाप ने कहा है--यही बीज। और बाप ने सम्हालने को कहा है, बाजार में बेच कर और फिर खरीदने को नहीं कहा है। और फिर बीज को सम्हालने का एक ही अर्थ हो सकता है, क्योंकि बीज तो संभावना है। बीज का अर्थ होता हैः संभावना। संभावनाओं को वास्तविक करो। तो उसने बीज बो दिए अपने महल के पीछे।
जब पिता आए, पहला बेटा भाग कर बाजार गया। वही हुआ जो होना था। दुकानदार ने कहाः भाई, अभी तो बीज नहीं हैं; तुम जो लाए थे, वे तो बिक गए। अब जब आएंगे बीज, नई फसल आए, तब मैं तुम्हें बीज दे सकता हूं। वह उदास, सिर झुकाए आकर खड़ा हो गया। सारी बात कही। बाप ने कहाः तुमने होशियारी तो दिखाई, मगर चूक गए।
दूसरे बेटे से पूछा। वह हंस रहा था। उसने कहाः मैं पहले से ही होशियार था, कि इस झंझट में मैं नहीं पडूंगा। उसने जल्दी से तिजोड़ी खोली। तिजोड़ी से बड़ी दुर्गंध उठी। बीज सड़ गए थे। जिनसे फूल खिल सकते थे, जिनसे गंध उठ सकती थी अपूर्व, वे बिल्कुल सड़ गए थे। राख थी वहां।
बाप ने कहाः ये बीज हैं? यह तो राख है। बीजों को तिजोड़ी में सम्हाला जाता है? पागल कहीं के! बीज कोई नोट हैं? नोट तो सड़े ही होते हैं, इसलिए उनको कहीं भी सम्हालो। नोटों की कोई संभावना होती है? वे तो मुर्दा हैं। तुमने नोट से मरी हुई चीज देखी दुनिया में? ये नोट होते, तब तो ठीक था तिजोड़ी में सम्हालना। मगर बीज तिजोड़ी में सम्हाले जाते हैं? ये आदमी की टकसाल में नहीं ढलते, ये परमात्मा पैदा करता है। इनको तिजोड़ी में नहीं रखा जाता। तूने तो इनको मार डाला। तूने तो नष्ट कर दी सारी संभावना। खैर तूने पहले से फिर भी ठीक किया, कम से कम राख तो बची, लाश तो बची।
तीसरे से पूछा कि तूने क्या किया?

उसने कहाः आएं मेरे साथ। वह पीछे ले गया। वहां हजारों फूल खिले थे।
बीज भी लग गए थे फूलों में। जितने बीज बाप दे गया था, उससे करोड़ गुने हो गए थे। और कैसे फूल खिले थे! कैसी गंध उठती थी! उसने कहाः ये रहे आपके बीज। स्वभावतः तीसरे बेटे को राज्य की मालकियत मिली।
तुम क्या कर रहे हो जीवन के बीजों के साथ--इनको बो रहे हो कि तिजोड़ी में सम्हाल रखा है? इनको बो रहे हो कि बाजार में बेच रहे हो? लोग अपनी आत्माएं बेच रहे हैं और फिर कहते हैं कि जीवन व्यर्थ है! और सड़ी चीजों के लिए आत्माएं बेच देते हैं! कोई को पद पर्याप्त है, आत्मा बेचने को राजी है। तुमको अगर कोई कहे कि राष्ट्रपति होना है, आत्मा देते हो? तुम कहोगेः भैया, जितनी हो ले जाओ। राष्ट्रपति अभी बनाओ। अरे राष्ट्रपति हो गए तो आत्मा का करना ही क्या है?
मैंने सुना है, एक राजनेता के मस्तिष्क का आपरेशन हुआ। आपरेशन भारी था। खोपड़ी खोल कर मस्तिष्क को बाहर निकाल कर सर्जन सफाई कर रहा था। राजनेता का मस्तिष्क था। होगा भी गंदा बहुत, सफाई में समय भी लग रहा होगा। खूब धुलाई कर रहा था। तो उसने खोपड़ी सी दी थी और काम में लगा हुआ था। तभी एक आदमी भागा हुआ अंदर आया और उसने दरवाजा झटके में खोला। अटका था दरवाजा। अंदर भागा आया और राजनेता से बोलाः आप यहां क्या कर रहे हो? अरे आप प्रधानमंत्री चुन लिए गए हो, यहां क्या लेटे हो? वह राजनेता एकदम उठा और चला। सर्जन ने कहाः भाई, कहां जा रहे हो? अपना मस्तिष्क तो लेते जाओ। उसने कहाः अब मस्तिष्क का क्या करना है? अब मैं प्रधानमंत्री हो गया! अब तुम्हीं सम्हाल कर रखो, कभी जरूरत होगी देखेंगे।
प्रधानमंत्रियों को कोई मस्तिष्क की जरूरत तो होती नहीं। अगर मस्तिष्क हो तो प्रधानमंत्री होना मुश्किल हो जाए, बहुत मुश्किल हो जाए। आत्मा बेचने को आदमी तैयार है, दो-दो पैसे में बेचने को तैयार है! पैसा मिल जाए, कि पद मिल जाए, प्रतिष्ठा मिल जाए, सब बेचने को तैयार है। और फिर तुम कहते हो, जीवन में अर्थ नहीं।
नरेश, अर्थ पैदा करोगे तो होगा। जीवन में अर्थ पैदा करने का विज्ञान
ही धर्म है। अगर अर्थ होता ही जीवन में तो धर्म की कोई जरूरत न थी। धर्म का पूरा का पूरा आयोजन इतना ही है कि तुम अनगढ़ पत्थर हो, तुम्हें गढ़े; तुम में से मूर्ति को प्रकट करे। तुम्हें नृत्य नहीं आता, तो तुम्हें नृत्य दे। तुम्हारा कंठ बेसुरा है, तो तुम्हें सुर दे। तुम्हारी बांसुरी पोली नहीं है, अहंकार से भरी है, तो उसे अहंकार से मुक्त करे, ताकि तुम्हारी बांसुरी पोली हो सके, उसमें से स्वर बह सकें।
अगर जीवन में अर्थ नहीं है तो इसका केवल एक ही अर्थ होता है कि जीवन में धर्म नहीं है। अर्थ की फिक्र छोड़ो, धर्म की चिंता करो। अर्थ आएगा। अर्थ आता है धर्म की छाया की तरह। और जहां धर्म नहीं है वहां अनर्थ है। और जहां धर्म नहीं है वहां आज नहीं कल यह प्रश्न प्रगाढ़ होकर खड़ा होने ही वाला है कि मैं जीवन का क्या करूं? बेकार क्यों ढोऊं? क्यों कोल्हू के बैल की तरह चक्कर काटता रहूं? वही चक्कर! वही सुबह उठना, वही दफ्तर जाना, वही घर, वही पत्नी, वही कलह, वही बच्चे, वही उपद्रव! फिर दूसरे दिन सुबह हो जाती है, फिर वही चक्कर, चक्कर घूमता रहता है, मैं चाक में बंधा हुआ घूमता रहता हूं। क्यों जीऊं? क्या सार है?
पश्चिम के बहुत बड़े विचारक कामू ने लिखा है कि मेरे देखे, मेरे लेखे, मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी समस्या एक ही है कि आदमी जीए ही क्यों? आत्महत्या सबसे बड़ी तात्विक समस्या है। और कामू ठीक कह रहा है। अगर तुमने जीवन में अर्थ को पैदा नहीं किया तो आत्महत्या ही सबसे बड़ी समस्या है, कि मैं अपने को मिटा क्यों न लूं?
पश्चिम के और विचारक भी इसी दिशा में सोचते हैं। दोस्तोवस्की का एक नायक, उसकी प्रसिद्ध कृति ब्रदर्स कर्माजोव में परमात्मा से कहता है कि तू कहां है? मैं तुझसे मिलना चाहता हूं। इसलिए नहीं कि मुझे तेरी कोई पूजा करनी है, कि मुझे तुझसे कुछ प्रार्थना करनी है। मैं तुझसे यह पूछना चाहता हूं कि मेरे बिना पूछे तूने मुझे जीवन क्यों दिया? यह कैसी कठोरता है? यह कैसी क्रूरता है? मुझसे पूछा तो होता कि मैं होना भी चाहता हूं या नहीं! मैं तुझसे मिलना चाहता हूं, ताकि रूबरू यह बात हो सके कि यह कैसा अन्याय

है! और मैं तेरी टिकट वापस करना चाहता हूं कि मुझे कृपा कर बाहर जाने दे! मुझे जीवन में नहीं रहना। मुझे जीवित नहीं रहना।
जो भी सोचेगा, उसे ऐसा लगेगा ही, स्वभावतः। सोचते ही रहोगे तो जीवन व्यर्थ रहेगा।
धर्म की कला का पहला सूत्र हैः ध्यान, सोच-विचार से मुक्त होना। निर्विचार में ठहरना। मौन में ठहरना। निःशब्द में जागना। साक्षीभाव में विराजमान होना। और तब एकदम अर्थ के दीयों पर दीये जल जाते हैं, दीपावली हो जाती है। अभी तो तुम्हारी जिंदगी एक दीवाला है, फिर तुम्हारी जिंदगी दीवाली हो जाती है।
धर्म को मूल्य दो। ध्यान में गति करो।
तुम पूछते होः "मैं क्या करूं?"
ध्यान करो। ध्यान में डूबो। आएगा अर्थ। मेरे जीवन में आया, तुम्हारे जीवन में क्यों न आएगा! मैं अपने अनुभव से कहता हूं। मैं जो कह रहा हूं, वह किसी और के आधार से नहीं कह रहा हूं। मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि मेरी बात मान लो। मैं तुमसे इतना ही कह रहा हूं कि मेरा निमंत्रण मान लो। प्रयोग करो।
तुम्हारे भीतर भी इतनी ही संभावना है, जितनी किसी कृष्ण के भीतर, लाओत्सु के भीतर, जरथुस्त्र के भीतर। तुम्हारे भीतर भी इतना ही बड़ा कमल खिलेगा--सहस्रदल कमल! तुम्हारे भीतर भी बड़ी अपूर्व ज्योति भरी है।
पर भीतर जाओ तब पहचानो न! बाहर ही बाहर भटकते रहोगे, नहीं पा सकोगे। संपदा है भीतर और तुम भटक रहे बाहर। तुम्हारा राज्य है भीतर और तुम खोज रहे बाहर। इसलिए अर्थहीनता अनुभव होती है। थोड़ा भीतर, जरा सा भीतर झांको, और क्रांति घट जाती है! और जीवन में एक ही क्रांति है--अंतर-क्रांति। बाकी सब क्रांतियां झूठी हैं, मिथ्या हैं, धोखे हैं, आत्मवंचनाएं हैं।

तीसरा प्रश्नः आप हमेशा "लिव्वा लिटिल हॉट, सिप्पा गोल्ड स्पॉट" कहते हैं। आप इसके स्थान पर कभी ऐसा क्यों नहीं कहते--"लिव ए लिटिल हॉट, सिप ए कोल्ड बियर"? आखिर बियर में बहुत प्रोटीन रहता है!

शीला! तू भी खाक बार-टेंडर थी अमरीका में! प्रोटीन तो जरूर रहता है, और मैं कोई बियर का दुश्मन भी नहीं हूं। लेकिन "लिव्वा लिटिल हॉट, सिप्पा गोल्ड स्पॉट" में थोड़ी तुकबंदी है, प्रोटीन हो या न हो। तुकबंदी भी है और इटैलियन भाषा भी। अब "लिव ए लिटिल हॉट, सिप ए कोल्ड बियर", इसमें तुकबंदी भी नहीं है और इटैलियन भी नहीं है। और दोनों बातें जरूरी हैं। अगर तू मुझे मजबूर ही करेगी तो मैं कहूंगाः "कमा लिटिला नियर, सिप्पा कोल्डा बियर।"

चौथा प्रश्नः कल एक सरदार जी आश्रम देखने आए। उन्होंने कहाः "ओशो जी
दे दर्शन सानूं अभी करा दो।" हमने उत्तर दिया कि आपके दर्शन सुबह प्रवचन में ही होंगे। तो वे मानें ही न। वे बोलेः "दर्शन तो सानूं अभी ही करा दो। असी ऐनी दूर अमृतसर तो आए हां। साडी गड्डी अभी छूटण वाली है।" वे मानें ही न। फिर मैंने अचानक घड़ी देखी, तो देखा बारह बजे हैं। क्या बारह बजे का कोई विशेष रहस्य है?

संत महाराज! रहस्य तो है ही।
संत भी पंजाबी हैं। न हुए पूरे सरदार, तो भी निन्यानबे प्रतिशत तो सरदार हैं ही। पंजाबी और सरदार में कोई ज्यादा फर्क नहीं, एक प्रतिशत का फर्क होता है। बस जरा दाढ़ी-मूंछ बढ़ा ली, बाल बढ़ा लिए, पांच ककार... । कोई खास ककार भी नहीं--कंघा, केश, कड़ा... इस तरह के पांच "क" पूरे हो गए कि कोई भी पंजाबी सरदार है।
सरदार कोई नई जाति थोड़े ही है, कोई नई कौम थोड़े ही है। पंजाबी ही हैं,
जो पांच ककारों में फंस गए हैं। पांच क का घेरा कर लिया खड़ा।
और बारह बजे का तो संत महाराज, महत्व है ही। बारह बजे का मतलब होता हैः अद्वैत। जहां दो "एक" हो जाते हैं। और जहां द्वैत गया, वहां बुद्धि गई। फिर कहां बुद्धि की जरूरत! जब द्वैत ही न रहा तो बुद्धि की जरूरत भी न रही।

बुद्धि की जरूरत तो यह दुई की दुनिया में है। जहां द्वैत नहीं, वहां बुद्धि का क्या प्रयोजन?
बारह बजे बड़ा प्रतीकात्मक मामला है। ऐसे ही तुम्हारे भीतर जब बारह बजेंगे, जब दोनों कांटे मिल कर एक हो जाएंगे--रात और दिन एक, जीवन और मृत्यु एक, सुख और दुख एक! अरे इसी को तो कृष्ण ने अर्जुन को समझाया कि हे अर्जुन, समता को उपलब्ध हो! द्वैत को न देखे! सफलता-असफलता में समभाव रख, समदृष्टि हो। यही तो स्थितप्रज्ञ के लक्षण हैं। वह तो उस समय में घड़ियां नहीं थीं, नहीं तो वे सीधा-सीधा कह देते कि बारह बजा। इतना लंबा समझाना... । संक्षिप्त में बात कह दी होती, कि बेटा, बारह बजा! सरदार हो जा! और सरदार हो जाता तो कृष्ण जो समझा रहे थे, वह काम पूरा हो जाता। वह खुद ही मार-काट शुरू कर देता। वह कोई कृष्ण की सुनने को रुकता कि इतनी गीता का... वह कहताः अब ठहरो, गीता वगैरह पीछे हो जाएगी। वह तो कहता कि साडी गड्डी अभी छूटण वाली है। अब तुम गीता वगैरह पीछे कर लेना। कृपाण फड़काता। कृपाण भी पांच ककारों में एक है।
अब पांचवां ककार मुझे भूल रहा है। वह जरा खतरनाक ककार भी है। समझो तो समझ लेना। थोड़ी कही, बहुत समझना। पांचवां ककार का मतलब होता है... सोचो! खोजोगे तो पा लोगे! जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ!
बारह बजे से नाराज होने की कोई जरूरत नहीं है; हालांकि सरदार नाराज हो जाते हैं, एकदम नाराज हो जाते हैं। यह तो बड़ी ऊंची तात्विक बात है बारह बजना। मगर पंजाब में बारह बजे का प्रतीक और ही तरह से लिया जाता है। कोई मर जाता है तो कहते हैं, उसके घर बारह बज गए। इसलिए पंजाबी नाराज हो जाता है, सरदार नाराज हो जाता है। यह मातम का प्रतीक है। बारह बज गए, मतलब रोना-धोना शुरू हो गया, कोई स्वर्गवासी हो गया।
ऐसे तो इसमें रोने-धोने की कोई जरूरत नहीं; कोई स्वर्गवासी हो गया, तुम क्यों रो-धो रहे हो? हो जाने दो, स्वर्गवासी ही हो रहा है बेचारा, कोई नरकवासी तो हो नहीं रहा है।
मगर हम कहते तो हैं एक तरफ कि फलां स्वर्गवासी हो गया, फिर रोते भी हैं। क्योंकि हम जानते तो हैं भलीभांति कि गए तो होंगे नरक; कहते हैं स्वर्गवासी हो गए, क्योंकि अब मरे के लिए क्या बुरा कहना! अब जो चला ही गया, अब उसके लिए क्या बुरा कहना!
मुझे लोग पत्र लिखते हैं, प्रश्न पूछते हैं, कि आप अब श्री मोरारजी देसाई के संबंध में कुछ क्यों नहीं कह रहे हैं?
क्या कहूं, स्वर्गीय हो गए! अब कोई मरों को मारता है! अब तो बेचारे करते क्या हैं--बंबई में वेदांत सत्संग मंडल में गीता पर प्रवचन देते हैं। गीता-ज्ञान-मर्मज्ञ हो गए। मर कर आदमी क्या-क्या नहीं हो जाता! गीता- ज्ञान-मर्मज्ञ!
और वेदांत मंडल में एक दफा मैं भी गया था, फिर दुबारा नहीं गया। क्योंकि तब मैंने वहां देखा कि वेदांत मंडल का अर्थ क्या है? वे चमनलाल बैठे हुए हैं, वे जानते हैं कि वेदांत मंडल का क्या मतलब है। क्योंकि उनके बहनोई हरिकिशन दास अग्रवाल ही उसको चलाते थे, वे भी स्वर्गीय हो गए। वहां जाकर मुझे पता चला कि वेदांत का मतलब होता है, जहां बिना दांत के लोग इकट्ठे हों। फिर मैं दुबारा नहीं गया। सब बुड्ढे-ठुड्ढे इकट्ठे! जिनको होना नहीं चाहिए था, मगर एलोपैथी के चमत्कार से हैं, ऐसे दस-पच्चीस बुड्ढे- ठुड्ढे इकट्ठे होते हैं। उसका नाम वेदांत सत्संग मंडल। तब मैं समझा कि मैं भी पागल, अभी तक वेदांत का मतलब ही न समझा।
वहीं अब मोरारजी देसाई प्रवचन देते हैं। और या फिर और कहीं नहीं मिलती जगह तो आचार्य तुलसी एक आंदोलन चलाते हैं, अणुव्रत आंदोलन, तो अणुव्रत की सभा में व्याख्यान देते हैं। वहां दस-पच्चीस मारवाड़ी इकट्ठे होकर उनका अणुव्रत पर प्रवचन सुनते हैं।
गए बेचारे! मरों के संबंध में कुछ भी आलोचना करनी उचित नहीं। जो गए सो गए। बारह बज गए!
संत महाराज, ज्यादा देर नहीं है, तुम्हारे भीतर भी घड़ी के कांटे करीब
आ रहे हैं। जिस दिन घड़ी के कांटे तुम्हारे भीतर करीब आ जाएंगे, फिर ख्याल रखना, घड़ी को वहीं बंद कर देना। ऐसा न हो कि फिर कांटे बिछुड़ जाएं।

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय।
टूटे से फिर न जुड़े, जुड़े गांठ पड़ जाय।।
एक दफा दोनों कांटे करीब आ जाएं, फिर हटने मत देना। फिर तो पेंडुलम से पकड़ कर लटक जाना। फिर तो घड़ी को आगे बढ़ने ही मत देना। वही समाधि की अवस्था हैः चित्त थिर हो गया, समय बंद हो गया। जीसस से किसी ने पूछा कि तुम्हारे प्रभु के राज्य में सबसे महत्वपूर्ण बात क्या होगी? तो उन्होंने कहाः देयर शैल बी टाइम नो लांगर। वहां समय नहीं होगा।
गजब कर दिया। बिल्कुल सरदारी बात कह दी। मतलब--कांटे बिल्कुल रुक जाएंगे। मिलन हो गया, फिर विरह नहीं। फिर कैसा विरह? भक्त-भगवान एक हो गए। सो तुम ठीक पूछते हो कि क्या बारह बजे का कोई विशेष रहस्य है? अरे रहस्य क्यों नहीं है, यहां तो हर बात में रहस्य है! और लोग एक से एक बातें पूछते हैं।

पांचवां प्रश्नः क्या कारण है कि सभी संत बाल और दाढ़ी बढ़ाए रहते हैं? अगर वे लोग बाल और दाढ़ी न बढ़ाएं तो क्या संत नहीं कहाएंगे?

अमरनाथ सिंह ने पूछा है। अब मुझे पता नहीं कि संत कहाएंगे कि नहीं कहाएंगे। और संतों को क्या पड़ी कि संत कहाते कि नहीं कहाते। मगर लोगों का बड़ा नुकसान हो जाएगा। बाल-बच्चों को क्या कह कर डराओगे? बाल-बच्चों को डराने का एक ही उपाय है कि बाबाजी आ रहे हैं! सोचो तुम, क्या बाल-बच्चों को कह कर डराओगे, अगर संत बाल और दाढ़ी न बढ़ाएं? पैंट-कोट और टाई लगा कर घूमें, तो बच्चों को कैसे डराओगे? बच्चों को डराने के लिए कुछ भी नहीं बचेगा। अब ये संत कम से कम इतने काम तो आते ही हैं, कि देख अगर गड़बड़ की तो बाबाजी को दे देंगे।
बाबाजी का मतलब समझते हो? बा बाजू! जो इधर से उस तरफ चले गए। उधर ही रहने लगे--बाबाजी।
दाढ़ी और बाल बढ़ाना कुछ अर्थ तो रखता है। मैंने तो कभी कटाए नहीं; हालांकि मैं कोई संत नहीं हूं और संत होना भी नहीं चाहता।
मैं जब विश्वविद्यालय में था तो मेरे वाइस-चांसलर को मैं मिलने गया।
वे बहुत आधुनिक आदमी थे। सारे विश्व का भ्रमण किया था। कैंब्रिज और ऑक्सफोर्ड में भी पढ़ाया था। कैंब्रिज से ही डी.लिट. थे। तो बिल्कुल ही अत्याधुनिक थे। उन्होंने मेरी दाढ़ी-मूंछ देखी। और मैं तो यूनिवर्सिटी में भी लुंगी पहनता था और एक बड़ा झब्बा, और खड़ाऊं कि आधा मील से लोगों को पता चल जाए कि मैं आ रहा हूं! सो लोग सावधान हो जाएं कि बाबाजी आ रहे हैं! जिनको डरना हो डर जाएं, जिनको भागना हो भाग जाएं, जिनको जो भी इंतजाम करना हो कर लें।
मैं गया था उनसे मिलने कि मुझे स्कॉलरशिप चाहिए। उन्होंने कहा कि स्कॉलरशिप तो पीछे हम बात करेंगे, पहले मैं यह पूछना चाहता हूं कि तुमने बाल और दाढ़ी क्यों बढ़ाए?
मेरे विभाग के जो अध्यक्ष थे, मेरे जो प्रोफेसर थे, मुझे बहुत प्रेम करते थे, जो मेरे साथ गए थे मेरी सिफारिश के लिए कि मुझे निश्चित ही स्कॉलरशिप मिलनी चाहिए--वे मुझे समझा कर ले गए थे कि देखो, किसी विवाद में नहीं पड़ना। रास्ते भर मुझे समझाते रहे कि देखो, मैं तुमसे फिर कहता हूं! दरवाजे के बाहर भी उन्होंने मुझसे कहा कि देखो, मैं तुमसे फिर कहता हूं, वाद-विवाद नहीं करना। अपने को स्कॉलरशिप लेने से मतलब है। और स्कॉलरशिप तुम्हें मिल जाएगी, मैंने उनसे बात की है, वे राजी हैं, कोई अड़चन नहीं है। लेकिन तुमने अगर कोई वाद-विवाद खड़ा कर लिया तो मुश्किल खड़ी हो जाएगी। तुम जैसे मुझसे वाद-विवाद करते हो, उनसे मत करना।
मैं सुनता रहा। मैंने कहा कि जब उनसे नहीं करना है तो तुमसे भी नहीं
कर रहा हूं। मैं बिल्कुल चुप हूं। मगर मैं यह भी कहे देता हूं कि अगर उन्होंने कोई बहुत बुनियादी बात छेड़ दी, तो फिर भाड़ में जाए स्कॉलरशिप, मिले कि न मिले। और उन्होंने यही बात छेड़ दी। उन्होंने देख कर ही मुझे कहा कि और सब तो ठीक है, दाढ़ी-मूंछ क्यों बढ़ाई हैं?

मेरे प्रोफेसर, जो मेरे पास ही बैठे थे, पैर से मेरे पैर में पैर मारने लगे कि चुप।
मैंने उनसे कहा कि देखिए, इसके पहले कि मैं आपसे बात करूं, मेरे प्रोफेसर को कहिए कि मेरी टांग में टांग न मारें।
मेरे प्रोफेसर तो बहुत घबड़ा गए, उनको तो पसीना छूट गया। मैंने कहा कि तुम्हें क्यों पसीना छूट रहा है? स्कॉलरशिप मेरी जा रही है, जाने दो!
और वाइस-चांसलर तो बहुत हैरान हुआ कि यह मामला क्या है!
उन्होंने कहा कि क्यों टांग में टांग मार रहे हैं?
मैंने कहाः ये मुझे समझाते आ रहे हैं रास्ते भर से कि अगर विवाद किया
तो स्कॉलरशिप चली जाएगी। मैंने भी इनसे कह रखा है कि अगर उन्होंने कोई बुनियादी बात छेड़ी तो विवाद होकर रहेगा। आपने बुनियादी बात छेड़ दी! अब ये मेरी टांग में टांग मार रहे हैं। अब मैं स्कॉलरशिप की फिक्र करूं कि अपनी आत्मरक्षा करूं, आप बोलिए?
उन्होंने कहा कि तुम फिक्र छोड़ो, विवाद कर सकते हो। स्कॉलरशिप कहीं नहीं जाएगी।
मैंने कहाः स्कॉलरशिप का मामला पहले निपटा दीजिए, ताकि ये... नहीं तो
ये मेरी टांग में टांग मारेंगे।
बात इतनी साफ थी कि उन्होंने पहले मेरी स्कॉलरशिप के फार्म पर दस्तखत किया कि यह खत्म, अब बोलो।
मैंने कहाः अब मैं तुमसे यह पूछता हूं कि आपने बाल और दाढ़ी कटाए हैं
या मैंने बढ़ाए हैं? ये तो अपने आप बढ़े हैं। आपने कटाए क्यों?
उन्होंने कहाः यह बात ठीक है कि कटाए तो मैंने ही हैं।
मैंने कहा कि तुम मुझसे पूछ रहे हो उलटे। उलटा चोर कोतवाल को डांटे! मैंने बढ़ाए नहीं, अब मैं क्या करूं बढ़ गए! कटाए नहीं, यह बात जरूर है, क्योंकि मैं आज तक तय ही नहीं कर पाया कि कटाऊं कैसे, भगवान बढ़ा रहा है और मैं कटाऊं! अब तुम कल हमसे यह ही कहने लगोगे कि अंगुलियां क्यों नहीं कटाईं? कि टांग क्यों नहीं कटाई? तो अब यह तो बड़ा मुश्किल हो जाएगा, हम क्या-क्या कटाएं! तुमने क्यों कटाए हैं?
उन्होंने कहा कि मुझे थोड़ा सोचने का समय दो।
कितना समय चाहिए? मैंने कहाः स्कॉलरशिप का मामला तो खत्म हो चुका है,
अब यह बात चलेगी, इसको मैं छोड़ने वाला नहीं हूं। मैं रोज आ जाया करूंगा। आप सोचें रोज, मैं ठीक ग्यारह बजे आपके दफ्तर पर दस्तक दिया करूंगा। दस्तक देने की वैसे भी जरूरत नहीं है, मेरी खड़ाऊं करीब आधा मील से बजती है।
मैं रोज वहां जाने लगा। वे मुझे देखते ही से कहते कि भाई, अभी नहीं सोच पाया। चौथे दिन मुझसे बोले कि तुम मुझे सोने दोगे कि नहीं? रात भर मैं करवटें बदलता हूं, सोचता हूं कि क्या जवाब देना। कटाए तो मैंने ही हैं, यह बात तो सच है। कसूर मेरा ही है, जो कुछ भी भूल-चूक है, मेरी है। पूछा भी मैंने ही है।
मैंने उनसे पूछा कि थोड़ा सोचो तो, अगर कोई स्त्री दाढ़ी-मूंछ बढ़ा ले तो उसको तुम क्या कहोगे?
कहाः उसको हम पागल कहेंगे।
तो मैंने कहाः और कोई पुरुष दाढ़ी-मूंछ कटा ले, उसको तुम क्या कहोगे? स्त्री बेचारी पागल, क्योंकि दाढ़ी-मूंछ बढ़ा ली!
मैंने उनसे पूछा कि अगर स्त्री दाढ़ी-मूंछ बढ़ा ले, उससे कोई विवाह करेगा?
उन्होंने कहा कि भाई, मुश्किल है उससे कोई विवाह करे।
मैंने कहाः आप विवाह करोगे?
बोलेः मैं तो कतई नहीं करूंगा। दाढ़ी-मूंछ वाली स्त्री से कौन विवाह करे!
तो मैंने कहा कि और जिस स्त्री ने आपसे विवाह किया है, उसे चुल्लू भर पानी में डूब कर मर जाना चाहिए। उसने दाढ़ी-मूंछ-रहित पुरुष से विवाह कर लिया! यह क्या अन्याय? यह कैसा मापदंड है? दोहरे मापदंड चल रहे हैं! पांचवें दिन उन्होंने मुझसे कहाः मैं हाथ जोड़ता हूं। प्रश्न तो मुझे
और भी पूछने थे, मतलब खड़ाऊं के संबंध में, और यह चोगा, और यह लुंगी, मगर मैं

कुछ नहीं पूछता भैया। मुझे पूछना ही नहीं प्रश्न। मैं हार गया! मैं अपना प्रश्न वापस लेता हूं। और अब मैं समझा कि तुम्हारा प्रोफेसर क्यों तुम्हारे पैर में टांग मार रहा था। अरे वह मेरी टांग में टांग मारता तो ठीक था। उसे मुझे सावधान करना था, तुम्हें क्या सावधान करना!
फिर दो साल मेरे उनसे संबंध रहे, उन्होंने कभी कोई प्रश्न नहीं उठाए--
इस तरह का कोई प्रश्न नहीं। चाहे वे देख भी लें कि मैं कुछ ठीक नहीं कर रहा हूं जो कि यूनिवर्सिटी के स्नातक को नहीं करना चाहिए, मगर अगर मैं ऊंट पर भी सवार होकर पहुंच जाता तो भी वे मुझसे नहीं पूछ सकते थे कि तुम ऊंट पर सवार क्यों हो? क्योंकि पता नहीं इसमें से क्या मामला निकले, फिर पीछे झंझट खड़ी हो!
तुम पूछ रहे हो अमरनाथ सिंह, कि संत बाल और दाढ़ी क्यों बढ़ाए रहते हैं?
संत बेचारे सहज स्वाभाविक लोग, जो परमात्मा करता है, करने देते हैं, बाधा नहीं डालते, कि बैठे हैं उस्तरा लिए और बाधा डाल रहे हैं। परमात्मा जो करता है, उसे सहज स्वीकार करते हैं। और यह पुरुष का लक्षण है। यह पुरुष के शरीर का हिस्सा है। यह बिल्कुल नैसर्गिक है। यह तो बिल्कुल पागलपन है कि दाढ़ी-मूंछ सफा करके बैठे हुए हो। यह शोभा नहीं देता। इससे तुम्हारे पुरुषत्व में थोड़ी सी कमी पड़ जाती है।
तुम्हारे चेहरों में और स्त्रियों के चेहरों में जितना फासला हो उतना अच्छा, जितना भेद हो उतना अच्छा, उतना आकर्षण होता है। लेकिन पीछे कारण हैं कि लोगों ने क्यों दाढ़ी-मूंछ कटानी शुरू की। पुरुष को स्त्री का चेहरा सुंदर लगता है, सो उसने सोचा कि इसी तरह का चेहरा मैं बना लूं तो सुंदर लगेगा। यह गलत बात है। स्त्रियों से भी तो पूछो कि तुम्हें कौन का चेहरा सुंदर लगता है! स्त्रियों को स्त्रियों के चेहरे सुंदर लगते हैं? स्त्रियों को तो हैरानी होती है यह सोच कर कि पुरुष मरे जाते हैं स्त्रियों पर, किसलिए? पुरुषों का चेहरा सुंदर लगता है।
और तुमने देखा, दाढ़ी-मूंछ के साथ पुरुष के चेहरे पर एक गरिमा आ जाती है, भराव आ जाता है, एक व्यक्तित्व आ जाता है! दाढ़ी-मूंछ से रहित पुरुष के चेहरे से कुछ खो जाता है, कुछ खालीपन हो जाता है, कुछ रिक्त हो जाता है। अच्छी दुनिया होगी और लोग सहज स्वाभाविक जीएंगे, तो यह बिल्कुल स्वाभाविक होगा कि लोग दाढ़ी-मूंछ बढ़ाएं। इसमें कुछ आध्यात्मिक रहस्य खोजने की कोशिश न करो। मगर लोग हर चीज में कुछ न कुछ आध्यात्मिक रहस्य खोजने में लगे रहते हैं।

छठवां प्रश्नः सती सक्कूबाई, सती अनसूया, सती सावित्री जैसी महान पतिव्रता साध्वियों की महिमा का शास्त्रों में बहुत उल्लेख है। आपकी दृष्टि में पतिव्रता का क्या अर्थ है?

सुशीला! पतिव्रता का अर्थ होता है--जो पति से बहुत तरह के व्रत करवाए।
कि आज सोमवार है, आज एकादशी है, यह पर्युषण आ गया--करो व्रत! पतिव्रता का मतलब साफ है कि पति के पीछे पड़ी रहे कि सुबह ब्रह्ममुहूर्त में उठो, कि जाओ अब घूमने, कि सिगरेट न पीओ, कि चाय न पीओ, कि ताश न खेलो, कि सिनेमा न देखो, कि यह न करो, कि वह न करो--जो पति के पीछे ही पड़ी रहे; जो पति का सुधार करने में लगी रहे; जो पति को व्रती बना कर रहे--उसका नाम पतिव्रता। सीधा-सादा शब्द है! इसमें क्या अध्यात्म खोजने में लगी है सुशीला तू?
एक स्कूल में अध्यापक ने पूछाः तुम्हारे पिता को दो सौ रुपये वेतन मिले, अगर उनमें से सौ रुपये वे तुम्हारी माता को दे दें, तो बताओ उनके पास क्या बचेगा?
छात्रः कुछ नहीं।
अध्यापकः क्यों?
छात्रः बाकी सौ रुपये मां अपने आप ही ले लेंगी। देने की कोई जरूरत ही नहीं।
एक नेताजी अपनी पत्नी के व्याख्यान से परेशान हुए जा रहे थे; वह सिर खाए जा रही थी, बोले ही चली जा रही थी। जब उससे कहा कि अब चुप भी हो, तो वह और भड़क गई, जैसे आग में कोई घी डाल दे! उसने कहाः आप तो दिन भर भाषण झाड़ते हैं

और लोग कुछ नहीं कहते। और मैं जरा सा बोलती हूं कि आप झट कह देते हैं, चुप रहो!
नेताजी ने कहाः जब मैं भाषण देता हूं, तब मेरी चीख-पुकार हजारों कानों में बंट जाती है, इसलिए लोग सह लेते हैं। मगर तुम्हारा भाषण तो मुझ अकेले को ही सुनना पड़ता है।
हर पति भाषण सुन रहा है।
मुल्ला नसरुद्दीन को रात तीन बजे पुलिसवाले ने पकड़ा कि कहां जा रहे हो?
उसने कहाः प्रवचन सुनने।
उसने कहाः होश में हो? तीन बजे रात कहां प्रवचन हो रहा है? हां, कोरेगांव पार्क में होता है, मगर आठ बजे सुबह। तीन बजे रात?
उसने कहाः तुम समझे नहीं, मैं अपने घर जा रहा हूं। और तीन बजे रात क्या, जब भी जाऊंगा, चार बजे जाऊं कि पांच बजे जाऊं, मेरी पत्नी बैठी रहेगी। जब तक वह प्रवचन न दे, न खुद सोएगी, न मुझे सोने देगी। बस तैयार होकर जा रहा हूं। श्रोता की तरह बैठ कर सुनना है अब जो सुनाए। हालांकि वही बातें जो कई बार सुना चुकी है, फिर सुनाएगी।
पुरुष ने स्त्रियों को गुलाम बना दिया है, उनसे सारी स्वतंत्रता छीन
ली है। और इसका बदला स्त्रियां भलीभांति दे रही हैं। उनके पास एक ही उपाय बचा, कि वे पुरुष को धर्म के बहाने सताएं। और उनके पास कोई उपाय नहीं है। और सब मामलों में पुरुष मालिक बन कर बैठा हुआ है; बस एक ही बात उनके हाथ में बची है--धर्म, व्रत, नियम, नीति, आचरण। इस सबके संबंध में ही उनके पास सुविधा है।
उनको तो है भी नहीं आचरण खोने की सुविधा, कि जुआ खेलने जाएं, कि शराब पीने जाएं, कि सिगरेट पीएं। पुरुष ने ये सारी सुविधाएं अपने लिए रख छोड़ी हैं। स्त्री को बंद कर दिया घर में। मगर इसका फल भी भोग रहा है, सदियों से भोग रहा है, कि जितना मजा ले रहा होगा सिगरेट पीने में और शराब पीने में और जुआ खेलने में, स्त्रियां भी उसे खूब मजा चखा रही हैं। घर पहुंचा कि उन्होंने चखाया मजा। सच तो यह है कि अगर स्त्रियां मजा चखाना बंद कर दें तो दुनिया में महात्माओं की एकदम कमी पड़ जाए। ये स्त्रियां ही इतना सताती हैं कि आदमी एक दिन सोचता है कि अब तो महात्मा ही हो जाना बेहतर है। जब महात्मा ही होना है तो फिर काहे के लिए क्लर्की करनी!
एक कैथलिक लड़की एक प्रोटेस्टेंट युवक के प्रेम में पड़ गई थी। उसके बाप ने कहा कि और सब तो ठीक है, लड़के में मुझे कोई एतराज नहीं है, परिवार अच्छा है, कुलीन है, सुशिक्षित है, मगर कैथलिक नहीं है। तो पहले उसे कैथलिक धर्म में दीक्षित होने के लिए राजी कर। तो धीरे-धीरे धर्म की, अपने धर्म की शिक्षा दे। जब वह कैथलिक हो जाएगा, तब मैं विवाह के लिए स्वीकृति दूंगा। लड़की हर महीने पिता को रिपोर्ट देने लगी कि सफलता मिल रही है। अब वह कैथलिक चर्च में भी जाने लगा है, कैथलिक पादरी को भी सुनने लगा है। अब वह यह भी करने लगा, अब वह भी करने लगा। अब कैथलिक शास्त्रों को भी पढ़ने लगा, कैथलिक नियम-व्रत इत्यादि को भी मानने लगा। हर महीने रिपोर्ट थी सफलता की। और लड़की बड़ी प्रसन्न थी कि अब देर नहीं है... कि एक दिन लड़की आई, आंसू टपक रहे हैं, .जार-.जार रो रही है। पिता ने कहाः क्या हुआ? उसने कहा कि मैंने जरूरत से ज्यादा सुधार कर दिया। अब वह कहता है कि मुझे कैथलिक पादरी होना है। विवाह करना ही नहीं। और मैंने उससे पूछाः क्यों? तो उसने कहा कि जब विवाह के पहले ही तूने मेरा इतना सुधार कर दिया, तो विवाह के बाद तू क्या करेगी, इससे बेहतर है कि मैं पादरी ही हो जाऊं।
ये तुम्हें जो इतने महात्मा दिखाई पड़ते हैं, ये भागे हुए पति हैं। पत्नियों ने इन्हें ऐसा सुधारा, उन्होंने पतिव्रता-धर्म ऐसा निभाया, ऐसे व्रत इनसे करवाए, ऐसे शीर्षासन करवाए, ऐसी इनकी मिट्टी पलीद की, कि इन्होंने सोचा इससे तो महात्मा ही हो जाना बेहतर है, कम से कम पूजा तो मिलेगी। पत्नियों ने इनकी ऐसी पूजा की--दूसरे अर्थ में पूजा, असली अर्थ में पूजा की--कि इन्होंने सोचा इससे तो महात्मा हो जाना बेहतर है।
अगर स्त्रियां पतियों में सुधार करना बंद कर दें तो मैं तुमसे कहता हूंः दुनिया में पादरी, पुरोहित, महात्मा, साधु, इनकी संख्या एकदम गिर

जाए। स्त्रियां दोहरे तरह से धर्म को सम्हाल रही हैं। पहले तो वे लोगों को इतना सताती हैं धार्मिक होने के लिए, कि उनको धार्मिक होना पड़ता है। आत्मरक्षा के निमित्त ही होना पड़ता है। और जब वे धार्मिक हो जाते हैं तो स्त्रियां उनकी सेवा करती हैं, चरण धोती हैं, चरण धो-धो कर पानी पीती हैं। सब तरह से महात्मा का जो-जो स्वागत-सत्कार होना चाहिए, स्त्रियां करती हैं। पुरुष नहीं करते। पुरुष तो जानते हैं कि अरे, यह भगोड़ा है! हम भी सताए जा रहे हैं, मगर हम टिके हैं; और ये भैया भाग गए! हमें सब पता है कि ये क्यों भागे। मगर हम टिके हैं।
मगर स्त्रियां पहले भगाती हैं, फिर इनकी पूजा करती हैं। इस तरह स्त्रियां दोहरे तरह से धर्म को चलाती हैं। यह तथाकथित थोथा धर्म स्त्रियां चलाती हैं। और मंदिर-मस्जिद के सिवाय उनको जाने के लिए कहीं उपाय भी नहीं है। क्लबघर में जा नहीं सकतीं। होटलों में बैठें तो जरा उनकी लज्जा के विपरीत है। फुटबॉल का मैच देखने जाएं तो जरा जंचता नहीं, कुलीनता के लिए योग्य नहीं है। क्या करें? उनके लिए बचने की एक ही जगह हैः मंदिर! सत्यनारायण की कथा! और वहां कथा सत्यनारायण की बिल्कुल नहीं होती, वहां कथा कुछ और ही चलती है।
सत्यनारायण की कथा हो रही थी, दो सहेलियां आपस में बातें कर रही थीं। उनमें से एक बोलीः यह पड़ोसन हर समय अपने पति की बुराई दूसरों से करती रहती है, कितनी बुरी बात है! पति की बुराई कभी नहीं करनी चाहिए। अब मुझे ही देख लो, मेरे पति कितने निखट्टू हैं, परंतु मैं कितनी शांतिपूर्वक निभा रही हूं। कभी किसी से बुराई करती हूं?
मैं एक दफा कृष्ण-जयंती पर बोलने चला गया, बस भूल से चला गया। बहुत आग्रह किया आयोजकों ने तो मैंने कहा कि ठीक है, आ जाता हूं। सिर्फ उनको टालने के लिए कह दिया कि आ जाता हूं। मगर वे भी पीछे पड़े थे, वे आ ही गए। इसके पहले कि मैं भाग खड़ा होता, वे घंटे भर पहले से ही आकर बैठ गए अड्डा जमा कर, तो मुझे जाना पड़ा। और वहां जो मैंने देखा हाल, बिल्कुल कृष्ण-जयंती ही मनाई जा रही थी! मेरे पहले जो बोल रहे थे, वे एक बड़े नेता थे, स्पीकर थे मध्यप्रदेश के। स्त्रियों की ही भीड़ थी। कुछ थोड़े पुरुष थे। उस तरह के पुरुष जो धक्कमधुक्की करने आ गए होंगे, क्योंकि ऐसी जगह स्त्रियां इकट्ठी होती हैं, दो धक्का-मुक्का! पुरुष जाते ही धार्मिक स्थलों में इसलिए हैं कि धक्का-मुक्की थोड़ी करने का मौका मिलता है, सुविधा मिलती है। कुछ थोड़े से लफंगे इकट्ठे थे, बाकी स्त्रियों की भीड़ थी। और स्त्रियां क्या गजब का काम कर रही थीं! वक्ता बोल रहा है, वे उसकी तरफ पीठ किए गपशप कर रही हैं-- पीठ किए! झुंड बनाए हुए! जगह-जगह अलग-अलग झुंड बने हुए हैं!
मैंने संयोजकों से कहा कि मैं हाथ जोड़ता हूं, मुझे जाने दो। यह मेरे
वश के बाहर है मामला। ये राजनेता हैं, ये बोल रहे हैं, इनको कोई फिक्र नहीं। इनको यह भी फिक्र नहीं है कि ये क्या बोल रहे हैं। इनको यह भी फिक्र नहीं है कि कोई सुन रहा है कि नहीं सुन रहा है। इनको इससे फिक्र है कि कल अखबार में फोटो छप जाएगी, बात खत्म हो गई। मगर मैं नहीं बोल सकता हूं। यह मेरे लिए असंभव है। यहां कोई सुनने वाला ही नहीं है।
मंदिरों में स्त्रियां चर्चाएं कर रही हैं--गहनों की, साड़ियों की; अपने पतियों की निंदा कर रही हैं; अपने बच्चों की प्रशंसा कर रही हैं। सबके बेटे कितने तीसमारखां हैं, उस सबका विवरण दे रही हैं।
और सुशीला, तू पूछती है कि पतिव्रता का क्या अर्थ है? और सती सक्कूबाई, सती अनसूया, सती सावित्री जैसी महान पतिव्रता साध्वियों की महिमा का शास्त्रों में बहुत उल्लेख है।
ये पुरुषों ने लिखे हैं शास्त्र। और इन्होंने इस बात का तो बहुत उल्लेख किया कि स्त्रियों को साध्वी होना चाहिए, सती होना चाहिए; पुरुषों की कोई चर्चा नहीं की इन्होंने, कि इनको भी सता होना चाहिए! स्त्रियों को समझाया कि मर जाओ अगर पति मर जाए--यही प्रेम की कसौटी है। मगर किसी पति को नहीं कहा कि तू भी मर जाना अपनी पत्नी के पीछे। एकाध तो सता होता! बस ढांढन सती की झांकी सजाई जा रही है। कोई ढांढू की भी तो सजाई जाती! एकाध भोंदू तो गिर जाता चिता में, भूल-चूक से भी! मगर नहीं, पांच हजार साल के इतिहास में एक भोंदू ने यह काम नहीं किया। गरीब स्त्रियां, इन शास्त्रज्ञों के हाथ

में फंस गई हैं। ये पुरुषों के लिखे हुए शास्त्र हैं, ये प्रशंसा क्यों नहीं करेंगे! ये प्रशंसा कर रहे हैं उन स्त्रियों की जो पुरुषों पर मरने को तैयार हैं। और पुरुषों ने इंतजाम किया कि जिंदा हम रहें तो तुम जिंदा रहो; हम मर जाएं तो पुरुषों को शक है कि हमारे मरने के बाद कहीं तुम किसी से विवाह न कर लो। तुम हमारी संपत्ति हो! तुम्हें हमारे साथ ही समाप्त हो जाना चाहिए। संपत्ति को क्या अधिकार है मालिक के मर जाने के बाद जिंदा रहने का?
पति का अर्थ ही मालिक होता है। स्त्री को कहते हैं दासी। और पति? वह मालिक है, स्वामी। राष्ट्रपति शब्द अच्छा नहीं है, बदलना चाहिए। अब समझ लो कि कोई स्त्री राष्ट्रपति हो जाए, उसको क्या राष्ट्रपत्नी कहोगे? बहुत उपद्रव मच जाएगा। यह शब्द ठीक नहीं है। सभापति! तो किसी स्त्री को बिठाओगे तो क्या सभापत्नी कहोगे? नहीं, पत्नी शब्द का उपयोग नहीं कर सकते, क्योंकि पत्नी में वह मालकियत का भाव ही नहीं है। अगर सभापत्नी कहोगे तो वह तो वेश्या हो गई। और सभापति कहो तो चलेगा, क्योंकि पहले ही से पुरुष यह काम करता रहा और स्त्रियों को समझाता रहा कि हम पुरुष हैं, हमें सब तरह की स्वतंत्रता है। तुम्हारा गौरव तो इसी में है--समर्पण। तुम तो डूब मरो। तुम तो जीवन भर भी अपना जलाओ और अगर हम मर जाएं तो हमारे साथ मर जाओ।
पुरुष को हक है कि एक नहीं, कई स्त्रियां रखे। मुसलमान चार स्त्रियां
रख सकते हैं। मोहम्मद ने खुद नौ विवाह किए। मगर यह मोहम्मद तो कुछ भी नहीं, कृष्ण ने सोलह हजार स्त्रियां! बेचारे मोहम्मद का कहां हिसाब, कहां किस हिसाब में आते हैं! तुलना कर ही नहीं सकते। सोलह हजार स्त्रियां!
पुरुष जो करे, ठीक! पुरुष की दुनिया है यह। अब तक रही है, आगे नहीं रहनी चाहिए। स्त्री और पुरुष का समान अधिकार है। और दोनों को सब तरह से समानता मिलनी चाहिए। न तो पतिव्रता होने की कोई जरूरत है, न पत्नीव्रता होने की कोई जरूरत है। काफी अनाचार हो चुका इन शब्दों की आड़ में।
प्रेम करो! प्रेम से जीओ! और प्रेम से जो सहज-स्फूर्त हो, वह शुभ है। लेकिन ऊपर से आचरण आरोपित नहीं होना चाहिए। सुशीला, पुरुषों के शास्त्रों से थोड़ा सावधान रहना। स्त्रियों ने कोई शास्त्र नहीं लिखे, लिखने ही नहीं दिए। पढ़ने नहीं दिए तो लिखने तो क्या देंगे! मनाही कर दी स्त्रियों को कि वेद पढ़ने की मनाही है। कुरान पढ़ने की मनाही है। जब पढ़ने ही नहीं देंगे तो लिखने का तो सवाल ही नहीं उठता।
अब ये सब जाल तोड़ो, यह पागलपन छोड़ो। प्रेम जरूर करो, लेकिन प्रेम समानता में मानता है और प्रेम स्वतंत्रता में मानता है। प्रेम गुलामी नहीं है। न तो खुद गुलाम होता है प्रेम, न दूसरे को गुलाम बनाता है। प्रेम खुद भी मुक्त होता है, दूसरे को भी मुक्त करता है। प्रेम तो मुक्तिदायी है। प्रेम तो मोक्ष है।
आज इतना ही।

रहिमन धागा प्रेम का
दूसरा प्रवचन

ध्यान ही मार्ग है

पहला प्रश्नः यह संसार माया है। यहां सब झूठ है। मुझे इसमें डूबने से बचाएं।

राधिका प्रसाद! माया में कोई डूब कैसे सकता है? झूठ में डूबने का कोई उपाय है? जो नहीं है, उसमें डूब सकोगे? चाहोगे तो भी नहीं डूब सकोगे। ऐसी नदी में डूबो, जो है ही नहीं; ऐसे जाल में फंसो, जो है ही नहीं--यह कैसे संभव हो सकता है?
इस माया शब्द ने तुम्हें बहुत भरमाया है। माया ने नहीं, माया शब्द ने बहुत भरमाया है। यह तुम्हारी जबान पर बैठ गया है। तुम्हारा सारा धर्म इसी शब्द पर आधारित हो गया है--माया से बचना है। सोचते भी नहीं कि अगर संसार झूठ है तो क्या बचना! और अगर संसार झूठ है तो तुम कैसे सच हो सकते हो? और सब झूठ है, सिर्फ तुम सच हो? औरों के लिए तुम भी संसार हो। उनके लिए तुम भी झूठ हो। और यदि संसार झूठ है तो संसार को बनाने वाला कैसे सच हो सकता है? वह तो महा झूठ होगा। झूठ का जन्म झूठ से ही हो सकता है।
इसलिए मैं नहीं कहता कि संसार झूठ है। मैं तो कहता हूंः संसार बहुत सच है। संसार तो परमात्मा की काया है। माया नहीं। उसकी देह है। उसकी अभिव्यक्ति है। इस आकांक्षा में कि संसार से बचूं, तुम भगोड़े हो जाते हो। और भाग कर जाओगे कहां? जहां जाओगे वहीं संसार है। तुम ही संसार हो। तो कम से कम तुम तो होओगे ही जहां भी जाओगे। कुछ तो होगा ही। घर-द्वार न होगा, आश्रम होगा, कुटी होगी, गुफा होगी। परिवार न होगा तो साधु-साध्वी होंगे। मित्र-प्रियजन न होंगे तो शिष्य-शिष्याएं होंगे। भागोगे कहां?
इसलिए कहता हूंः जागो!
यह संसार सत्य है। अगर कुछ असत्य है तो वह है तुम्हारा मन। मन माया है, संसार नहीं। मन कल्पनाओं के जाल बुनता है। संसार का पर्दा तो सच है, मन उस पर बड़े चित्र उभारता है--काल्पनिक, झूठे; जैसे रस्सी में कोई सांप देख ले! सांप झूठ होगा, लेकिन रस्सी झूठ नहीं है। ये मायावादी सदियों से यह उदाहरण देते रहे हैं कि संसार ऐसा है जैसे रस्सी में कोई सांप देख ले। लेकिन उनसे कोई पूछे कि चलो सांप झूठ हुआ, मगर रस्सी का क्या? रस्सी तो है न! और सांप का क्या कसूर है? सांप तो है ही नहीं। तुम्हें दिखाई पड़ा है, तुम्हारी नजर की भूल है। दृष्टि की भूल को रस्सी पर थोप रहे हो? अपनी भ्रांति को संसार पर फैला रहे हो?
इसलिए मेरा जोर पलायन पर नहीं है, जागरण पर है। जागो! रस्सी से भागो मत। दीया जलाओ! अगर रोशनी की कमी है तो रोशनी जगाओ, ताकि रस्सी रस्सी है, ऐसा दिखाई पड़ सके। जिस दिन तुमने देख लिया--रस्सी रस्सी है--क्या तुम सोचते हो कि सांप मर गया? कि सांप कहीं चला गया? सांप तो था ही नहीं। क्या तुम सोचते हो, तुम्हें जब सांप दिखाई पड़ रहा था तो रस्सी खो गई थी, सांप हो गया था? क्या तुम सोचते हो, तुम्हारे दिखाई पड़ने से सांप तुम्हें काट लेता? अब कोई कहे कि मुझे मालूम है कि रस्सी सांप है, मगर मुझे बचाओ इस सांप से! तो क्या मतलब होगा? मतलब यही होगा कि उसे तो सांप ही दिखाई पड़ रहा है; यह तो वह उधार तोतों की तरह दोहरा रहा है कि सांप असत्य है। नहीं तो फिर बचाने की बात ही नहीं उठती।
जो लोग मानते हैं कि संसार माया है, उनके लिए तो संन्यास की बात उठ ही नहीं सकती! त्याग किसका? जो नहीं है उसका? त्याग के लिए तो होना चाहिए। फिर तो भोग भी नहीं है और त्याग भी नहीं है। फिर तो तुम जहां हो, जैसे हो, ठीक हो। कुछ करने को बचता नहीं।
इसलिए मैं अपने संन्यासी को नहीं कहता कि त्यागना। न कहता हूं भोगना,
न कहता हूं त्यागना। कहता हूंः जाग कर जीना। संसार सत्य है। संसार परमात्मा की अनेक-अनेक रूपों में अभिव्यक्ति है। वृक्षों में वही हरा है।
फूलों में वही लाल है। सूरज की किरणों में वही स्वर्ण की तरह बरस रहा है।

तुम्हारे भीतर वही चैतन्य की तरह विराजमान है। तुम्हारी देह में भी वही ठोस हुआ है। तुम्हारा बहिरंग भी वही है, तुम्हारा अंतरंग भी वही है। तुम्हारा केंद्र भी वही है, तुम्हारी परिधि भी वही है।
लेकिन हां, केंद्र और परिधि के बीच तुम्हें क्षमता है कल्पनाओं को खड़ा कर लेने की। तुम रस्सी में सांप देखने में समर्थ हो। तुम इससे उलटा भी कर सकते होः तुम सांप में रस्सी भी देख सकते हो। हालांकि वैसा उदाहरण कोई शास्त्र नहीं लेता। वैसा भी हो जाता है, सांप में भी रस्सी देख सकते हो। आखिर बाबा तुलसीदास ने देखी ही थी! चढ़ गए थे लटके हुए सांप को रस्सी समझ कर। पत्नी से मिलने गए। आंखें भरी होंगी पत्नी से मिलने की कामना से, वासना से। होश न रहा होगा, बेहोश रहे होंगे। कुछ का कुछ दिखाई पड़ गया होगा।
चढ़ गए सांप को पकड़ कर। रस्सी मान ली।
तुम्हारे मन की यह क्षमता है। इस मन को ही मिटा देना है, पोंछ देना है। पशु हैं, उनके पास मन नहीं है, वे मनुष्य से नीचे हैं। मनुष्य के पास मन है।
मनुष्य शब्द ही मन से बनता है। मनुष्य की इतनी ही खूबी है कि उसके पास मन है। और जिस दिन मन मिट जाता है, उस दिन तुम परमात्मा हो। मन के नीचे पशुओं का जगत है; मन के ऊपर बुद्धों का; और इन दोनों के बीच में मनुष्य है-- त्रिशंकु की भांति।
यह मत पूछो राधिका प्रसाद, कि मुझे इसमें डूबने से बचाएं! मैं तो देखता नहीं कि तुम कैसे डूब सकोगे। सदियां हो गईं, जन्म-जन्म बीत गए, कितने जन्म नहीं बीत गए, तुम्हें डुबा कहां पाया यह भवसागर जिसकी तुम बातें कर रहे हो! तुम अछूते के अछूते हो। कौन डूबा है? कोई भी डूबा नहीं है। डूबने की भ्रांति भला तुम्हें हो जाए। और भ्रांति के लिए तुम तर्क भी खोज ले सकते हो। जिसको भ्रांति ही पकड़नी है, वह कोई भी तर्क खोज ले सकता है। मुल्ला नसरुद्दीन को भ्रांति हो गई थी कि वह मर गया है। जहर खा लिया था। अब भारत में कोई शुद्ध जहर मिलता है! जहर भी खा लिया, मरा भी नहीं। इस जगत में माया हो या न हो, मगर भारत में तो बड़ी माया है! यहां तो माया ही माया है। दूध में पानी मिलाते थे लोग, अब कलियुग आ गया, अब पानी में दूध मिलाते हैं। जहर में पता नहीं क्या मिलाते हैं! जहर भी शुद्ध मिल सकता नहीं। जहर खाकर सो रहा। सुबह उठा तो अपनी पत्नी से बोला कि नाश्ता मेरे लिए मत बनाना, मैं तो मर चुका हूं।
पत्नी ने कहाः होश में हो? जाग गए कि सपना देख रहे हो?
अरे--उसने कहा--तू होश में है? अगर नहीं मरा तो पांच रुपये बेकार गए। पांच रुपये का जहर खा गया हूं, मर चुका हूं।
पहले तो समझा कि मजाक कर रहा है, लेकिन जब वह माना ही नहीं, भोजन न करे, नहाए नहीं--वह कहे कि नहाना क्या! जब मर ही गए तो कौन नहाना, किसका नहाना, कैसा नहाना! भोजन न किया, नहाया नहीं, बिस्तर पर ही पड़ा। उठे नहीं। घर के लोग घबड़ा गए; कहा कि कुछ गड़बड़ हो गई है, दिमाग में खराबी आ गई है। मनोवैज्ञानिक के पास ले गए। मनोवैज्ञानिक ने भी बहुत समझाया कि भई तुम जिंदा हो, भले-चंगे हो। उठो कुर्सी से, चलो।
उठ कर चला। तो कहाः देखते नहीं, चल रहे हो!
उसने कहा कि भूत-प्रेत भी चलते हैं। देखते नहीं, मेरे पैर बिल्कुल उलटे हो गए हैं। जैसे भूत-प्रेतों के होते हैं।
मनोवैज्ञानिक ने कहा, यह आदमी ऐसे मानने वाला नहीं है। दलील पर दलील करे। अब जिंदा आदमी हो और अगर मरने की उसे भ्रांति हो जाए, तो दलीलें तो देगा ही। उसने कहाः एक काम कर। यह तू मानता है कि मुर्दा आदमी में से खून नहीं निकल सकता?
उसने कहाः मानता हूं कि मुर्दे में से खून नहीं निकल सकता, कभी नहीं निकल सकता।
मनोवैज्ञानिक ने उठाया चक्कू और उसके हाथ में थोड़ा सा चीरा मारा, खून
की धार फूट पड़ी। मनोवैज्ञानिक ने कहाः अब क्या कहते हो? बड़े मियां, अब क्या कहते हो?
मुल्ला नसरुद्दीन खिलखिला कर हंसा, उसने कहा कि इससे यही सिद्ध होता
है कि मुर्दे से भी खून निकल सकता है। वह धारणा गलत थी। बदल दो वह सिद्धांत। वह जो लोग अब तक मानते रहे, बिना प्रयोग किए मानते रहे, किसी

मूरख ने कभी चक्कू से काट कर देखा नहीं! मुर्दे से भी खून निकल सकता है, इससे यह सिद्ध हो गया।
तुम जो चाहो मान लो। सारी बात मान्यता की है। और इसलिए बदलाहट मान्यता की करनी होती है। स्थान नहीं बदलना होता, मनःस्थिति बदलनी होती है। और लोग स्थान बदल रहे हैं। कोई चला हिमालय, कोई चला काशी, कोई चला काबा। स्थान बदल रहे हैं, परिस्थिति बदल रहे हैं। घर छोड़ दिया, बाजार छोड़ दिया। कहां जाओगे? जहां जाओगे, मन तुम्हारे साथ होगा--वही मन जो बाजार में था। इसलिए तुम जहां रहोगे, वहीं फिर बाजार बन जाएगा। तुम जहां बैठोगे, वहीं फिर वही सिलसिला शुरू हो जाएगा, वही उपद्रव। बच न सकोगे।
ये तुम्हारे ऋषि-मुनियों को सताने जो उर्वशियां और मेनकाएं उतरती हैं, ये किसी आकाश से नहीं उतरतीं। ये ऋषि-मुनि छोड़ आए अपनी घर की मेनका को। लेकिन मन तो नहीं छोड़ सकते। मन नहीं छूटा तो मेनका कैसे छूटेगी? अब ये बैठे हैं झाड़ के नीचे हिमालय में और मेनका इनके चारों तरफ नाचती है। मेनका को पड़ी है कुछ कि इनके चारों तरफ नाचे? कुछ उसे और भी काम होगा, कि इन धूनी रमाए हुए, राख लपेटे हुए, भयानक दिखाई पड़ने वाले, जटा-जूट बढ़ाए हुए इन ऋषि- मुनियों को सताए! और यह कोई सताना हुआ? यह कोई दंड हुआ कि पुरस्कार? मगर नहीं, मेनका सताती है, बड़े हाव-भाव करती है ऋषि-मुनियों के पास आकर। यह मेनका नहीं है, यह मन है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि तुम जिस चीज की भी आकांक्षा करते हो, अगर तीन सप्ताह के लिए उस चीज से तुम्हें दूर रखा जाए तो तुम उसकी कल्पना करने लगोगे--सिर्फ तीन सप्ताह के भीतर। और कल्पना इतनी प्रगाढ़ हो जाएगी धीरे- धीरे कि तुम्हें वह चीज दिखाई पड़ने लगेगी। होगी नहीं, दिखाई पड़ने लगेगी। भूखे आदमी को आकाश में चांद नहीं दिखता, चपाती तैरती हुई दिखाई पड़ती है। भूखे आदमी को चांद कहां! हां, प्रेमी को प्रेयसी का मुखड़ा दिखाई पड़ता है। मजनू से पूछो, वह कहेगाः लैला दिखाई पड़ती है। शीरीं से पूछो, वह कहेगीः फरिहाद दिखाई पड़ता है। किसी कंजूस से पूछो, वह कहेगा कि चांदी की तश्तरी दिखाई पड़ती है। लोगों को अलग-अलग चीजें दिखाई पड़ेंगी, चांद बेचारे का कोई कसूर नहीं। चांद का इसमें कुछ हाथ नहीं। तुम जो चाहो देखना, वही दिखाई पड़ेगा।
तुम्हें अपने मन के प्रतिबिंब दिखाई पड़ते हैं।
संसार नहीं छोड़ना है, राधिका प्रसाद। कुछ नहीं छोड़ना है। मन से जागना है। मन नींद है और ध्यान जागरण है।

नजर तुम्हारी जाली है,
सिक्का तो टकसाली है!
इस सिक्के को गढ़ा प्रकृति ने है धरती की माटी से।
इस सिक्के को गढ़ा पुरुष ने अपनी ही परिपाटी से।
इस सिक्के पर अंक पड़े हैं स्वयं नियति के हाथों से,
यह सिक्का तो चलता आया जन्म-मरण की घाटी से!
इसे बजाओ, यह गाता है
गीत खुशी के, मातम के
इस सिक्के में दोष देखना
केवल खाम-ख्याली है!
सिक्का तो टकसाली है!

माल तुम्हारा खोटा है,
यह गाहक तो बहुत खरा!
यह गाहक मीठे बोलों पर मिसरी सा घुल जाता है! थोड़ी सी ममता पाने को निज सर्वस्व लुटाता है! जो छल-कपट देखते हो तुम, वह तो सभी तुम्हारे हैं-- इस गाहक का सच्चाई से जन्म-जन्म का नाता है! अपने अंदर की करुणा को
ला करके तो परखो तुम!
इस गाहक का हाथ खुला है

इस गाहक का हृदय भरा!
यह गाहक तो बहुत खरा!

तुम आए हो नये-नये,
यह तो हाट पुरानी है!
सोना-चांदी, हीरा-मोती, कितने इसमें छले गए। जीवन भर बटोरने वाले, खाली हाथों चले गए! सुख-दुख की यह हाट अनोखी, इसमें बिकता यश-अपयश पीने वाले सदा पुराने, देने वाले नित्य नये! तुम तो अपने में ही उलझे,
आंख खोल के देखो तो!
जो निज को जितना दे सकता
वह उतना ही ज्ञानी है!
यह तो हाट पुरानी है!

तुम कितने चालाक बनो,
दुनिया भोली-भाली है!
पल में रोना, पल में हंसना, यह दुनिया तो सहज-सरल। उत्सुकता अस्तित्व यहां पर, जीवन तो है कौतूहल!
सत्य स्वप्न है, स्वप्न सत्य है--इन दोनों में अंतर क्या? इने-गिने विश्वासों पर ही इस दुनिया की चहल-पहल।
जो मिलता है लेना होगा
राजी से, नाराजी से!
अरे व्यर्थ की तीन-पांच यह
और व्यर्थ की गाली है!
दुनिया भोली-भाली है।

नजर तुम्हारी जाली है,
सिक्का तो टकसाली है।

नजर की भूल है, दृष्टि का दोष है। दृष्टि का रूपांतरण चाहिए। और जैसे
ही दृष्टि बदलती है, वैसे ही संसार बदल जाता है। संसार तो वैसा ही है, मगर तुम्हारी दृष्टि बदल जाती है, तो तुम्हें वैसा दिखाई पड़ने लगता है जैसा है। अभी वैसा दिखाई पड़ता है, जैसा तुम चाहते हो। अभी तुम्हारी कल्पना आच्छादित हो जाती है। और तुम बड़ी जल्दी भूल में पड़ जाते हो।
लोग सिनेमागृह में बैठे तुम देखते हो? जानते हैं भलीभांति कि पर्दा खाली है। आए थे तो देखा था कि सफेद पर्दा है। कुछ भी नहीं है, कोरा है। फिर फिल्म चली, धूप-छाया का खेल हुआ। रंगीन तस्वीरें उतरीं। और देखो लोग कैसे मोहित हो जाते हैं! लोग रो लेते हैं, हंस लेते हैं, घबड़ा लेते हैं, परेशान हो जाते हैं, पीड़ित हो जाते हैं--और जानते हैं भलीभांति, मगर भूल गए, विस्मरण हो गया। एक दो-तीन घंटे के लिए सब भूल-भाल गए। फिर जैसे ही प्रकाश होगा, तब उन्हें याद आएगी कि अरे, कुछ भी नहीं है। मगर फिर-फिर जाकर बैठेंगे और फिर-फिर भूलेंगे। लोगों के रूमाल गीले हो जाते हैं। अगर कोई दुखांत कथा है, कथानक है, तो आंखें उनकी आंसू टपकाती हैं। अगर कोई सुखांत दृश्य आता है तो हंसी के फव्वारे छूट जाते हैं। चाहे रोते आए हों, चाहे घर में मातम मना रहे हों, लेकिन भूल गए सब।
आदमी अपने को भुलाने में बड़ा कुशल है।
राधिका प्रसाद, माया का कोई कसूर नहीं है। तुम कहते होः "यह संसार सब झूठ है।"
यह संसार जरा भी झूठ नहीं। झूठ अगर कुछ है, तो तुमने इस संसार के ऊपर
जो सपनों की, कल्पनाओं की छाप डाल रखी है। तुम इस संसार को ऐसा चाहते हो जो तुम्हारे अनुकूल हो। वैसा यह नहीं हो पाता। इससे तुम कष्ट पाते हो। या कभी-कभी संयोग से हो जाता है। संयोगवशात! तो तुम सुख पाते हो। तुम्हारा सुख क्या? तुम्हारा दुख क्या? तुम्हारा दुख यह है कि तुम जैसा चाहते हो,

संसार वैसा नहीं हो पाता। संसार बड़ी चीज है, तुम छोटे, तुम्हारी औकात छोटी, तुम्हारे हाथ छोटे। संसार विराट है। तुम चाहते हो कि तुम्हारे रंग में रंग जाए। यह नहीं हो पाता। यह नहीं हो सकता।
लेकिन कभी-कभी संयोगवशात बिल्ली के भाग्य से छींका टूट जाता है। संयोगवशात ही, कोई तुम्हारे लिए नहीं टूटता। कोई छींका यह देख कर नहीं टूटता कि बिल्ली गुजर रही है, टूट जाऊं। छींके को टूटना ही था, बिल्ली गुजरती कि न गुजरती। यह संयोग की बात थी कि बिल्ली गुजरती थी और छींका टूटा। बिल्ली सोचेगी कि मेरी प्रार्थनाएं सुन ली गईं, कि मेरी प्रार्थनाएं देखो पूरी हो गईं। बिल्ली कहेगी कि है भगवान, निश्चित है! मैंने जो पूजा की, जो सत्यनारायण की कथा पढ़ी, जो जपुजी का पाठ किया--देखो पूरा हो गया! छींका टूटा। अरे कोशिश करते रहो, पुकारते रहो, पुकारते रहो-- पुकार सुनी जाएगी! देर है, अंधेर नहीं! आज देख लो, प्रमाण मिल गया!
कभी संयोग से जगत तुम्हारे अनुकूल पड़ जाता है, तब तुम्हें सुख मिलता है। और अधिकतर तो अनुकूल नहीं पड़ता। सौ में निन्यानबे मौकों पर तो अनुकूल नहीं पड़ता। छींके रोज नहीं टूटते। जब-जब बिल्ली गुजरे, तब-तब नहीं टूटते। कभी-कभार यह होता है। तो सुख कभी-कभार, क्षणभंगुर। और दुख बहुत। इसी दुख से पीड़ित होकर तुम कहते हो कि संसार से मुझे बचा लो, डूबने से मुझे बचा लो। लेकिन मैं कैसे बचाऊंगा? तुम्हें सम्हलना होगा। गिरो तुम और बचाऊं मैं? और गिर रहे हो तुम ऐसी चीजों में, जो तुम्हारी कल्पना के जाल हैं! सच्ची भी हों तो कोई बचा ले। तुम्हारी कल्पनाओं के जाल से तुम्हीं अपने को बचा सकते हो, और कोई भी नहीं बचा सकता। क्योंकि जाल ही कल्पना के हैं, तुम्हीं उनके निर्माता हो, तुम्हीं चाहो तो उनको वापस खींच लो। मकड़ी के जाल, जैसे मकड़ी अपने भीतर से बुनती है, ऐसे ही तुम भी अपनी कल्पना के जाल अपने भीतर से बुनते हो। बस तुम्हारे लिए ही हैं वे।
संसार कभी तुम्हारे अनुकूल पड़ जाए तो तुम गदगद हो जाते हो। और अनुकूल अधिकतर नहीं पड़ेगा। इस सत्य को समझो। और इतने लोग हैं इस जगत में, सब के अनुकूल पड़े भी तो कैसे पड़े? सबकी आकांक्षाएं अलग हैं। कोई प्रार्थना करता हैः आज पानी गिरा दो भगवान, क्योंकि मैंने बीज बोए हैं। और कोई प्रार्थना करता हैः आज पानी न गिराना, धूप चाहिए; मैंने कपड़े रंगे हैं और सुखा रहा हूं। अब परमात्मा क्या करे? फिफ्टी-फिफ्टी करे? कुछ पानी बरसा दे, कुछ पानी न बरसाए? दोनों नाराज हो जाएं।
अस्तित्व निरपेक्ष रहता है। अस्तित्व तुम्हारी बातें नहीं सुनता-- सुन नहीं सकता।
एक बिल्ली एक वृक्ष की शाखा पर बैठी हुई बड़ी मग्न हो रही थी, बड़ी मस्त
हो रही थी, डोल रही थी, बड़ी भक्ति-भाव में थी। एक कुत्ता नीचे से गुजर रहा था, उसने बिल्ली को देखा! लार तो उसकी टपक गई बिल्ली को देख कर, मगर बिल्ली ऊपर बैठी थी झाड़ की शाखा पर, वहां तक कुत्ता पहुंच सकता नहीं था। और ऐसी मग्न हो रही थी, जैसे बैकुंठ की यात्रा पर हो! आंखें बंद, आह्लाद के आंसू टपके जा रहे और डोल रही!
कुत्ता थोड़ी देर खड़ा रहा कि शायद ज्यादा डोले और गिर पड़े। मगर इतनी डोली भी नहीं कि गिर पड़े। कस कर पकड़े हुई थी शाखा को। आखिर कुत्ते ने कहाः बात क्या है? ऐसा क्या मजा आ रहा है?
बिल्ली ने आंख खोली। उसने कहा कि सब खराब कर दिया। अरे मैं एक सपना देख रही थी कि आकाश से चूहों की वर्षा हो रही है! मूसलाधार वर्षा हो रही है! चूहे ही चूहे गिर रहे हैं!
कुत्ते ने कहाः अरे मूरख, शास्त्र का ज्ञान है? शास्त्रों में साफ लिखा है कि कभी-कभी चमत्कार होते हैं, और जब चमत्कार होते हैं तो आकाश से हड्डियों की वर्षा होती है, चूहों की नहीं। चूहों का शास्त्रों में उल्लेख ही नहीं है। मूरख कहीं की! शास्त्रज्ञान है नहीं, कौड़ी भर संस्कृत जानती नहीं। चली है सपना देखने!
कुत्तों के शास्त्र में स्वभावतः चूहों की वर्षा नहीं हो सकती। बिल्लियों के शास्त्र में चूहों की ही वर्षा होगी। हड्डियों की वर्षा बिल्लियां क्या करेंगी! और आदमियों के शास्त्र में न चूहे बरसेंगे, न हड्डियां बरसेंगी। आदमियों के शास्त्र में तो हीरे-जवाहरात बरसेंगे,

सोना-चांदी बरसेगा। इतनी कल्पनाएं हैं सारे जगत में। जितनी चेतनाएं हैं, उतने मन हैं, उतने माया के विस्तार हैं। जगत तो कोरा पर्दा है। यह पर्दा तुम्हें नहीं डुबा सकता। हां, तुम अपनी कल्पना में जितना चाहो डुबकी खाना, खाओ, मजे से खाओ। फिर भी डूबोगे करोगे नहीं, यह ख्याल रखना। कोई कभी डूबा ही नहीं।
मैं इस झंझट में भी नहीं पडूंगा। तुमको डूबता भी देखूं तो भी किनारे
पर बैठा रहूंगा। तो भी दौड़ कर तुमको बचाने वाला नहीं। क्योंकि मैं जानता हूं कि नदी है ही नहीं, तुम सिर्फ खाम-ख्याली में हो। सो तुम्हारी मौज है। तुम लाख चिल्लाओ कि बचाओ-बचाओ! कोई बुद्धू दौड़े, मैं दौड़ने वाला नहीं। बचाने की बात ही फिजूल है। बचाना किससे है?
तुम्हें होश की जरूरत है। नदी वगैरह नहीं है जो तुम्हें डुबा रही है। लोग कहते हैंः भवसागर में डूबे जा रहे हैं। लोग अपने सब दोष बाहर थोप देते हैं। और सब दोष भीतर हैं। कहां का भवसागर? कहां की माया? मगर इससे राहत मिलती है कि हम क्या करें, यह माया का जाल ऐसा है! हम करें भी तो क्या करें? अवश हैं, परवश हैं। यह परमात्मा ने माया ऐसी बनाई--महाठगिनी!
माया पर दोष दे रहे हैं! कहां माया है? कभी मिले हो माया से? कोई मिला
है कभी माया से? लेकिन तुम्हारे महात्मा भी माया को गाली दे रहे हैं। सबको गाली देने के लिए कोई बहाना चाहिए। सबको गाली टांगने के लिए कोई खूंटी चाहिए। फिक्र इस बात की करो कि क्या है तुम्हारा उलझाव। तुम इस जगत से कुछ भी मांगोगे तो उलझे रहोगे। मांगो मत। इसलिए बुद्धपुरुषों ने कहा हैः तृष्णा से मुक्त हो जाओ। माया से नहीं, तृष्णा से, आकांक्षा से, वासना से। संसार से मुक्त नहीं होना है। मुक्त होना है, संसार के सामने तुम जो भिखारी बन कर खड़े हो, भिक्षापात्र लिए खड़े हो--इस भिखमंगेपन से मुक्त होना है। जो है उससे राजी हो जाओ। और-और की मांग छोड़ो। और-और की दौड़ छोड़ो। फिर कौन तुम्हें डुबा सकता है? तुम तत्क्षण पाओगे कि जिससे तुम भयभीत हो रहे थे, वह भवसागर कहीं भी नहीं है; मृगमरीचिका थी। तुमने देखा जरूर था। जैसे कि रात के अंधेरे में लोग भूत-प्रेत देख लेते हैं; घबड़ाहट हो, भय हो, तो दिखाई पड़ जाते हैं। तुम्हारे भय पर ही सब निर्भर है।
जापान की प्रसिद्ध कहानी है। एक आदमी की पत्नी मरी।
पत्नियां, पहली तो बात, आसानी से मरतीं नहीं; अक्सर तो पतियों को मार
कर मरती हैं। स्त्रियां ज्यादा जीती हैं, यह ख्याल रखना--पांच साल औसत ज्यादा जीती हैं। आदमी को यह भ्रम है कि हम मजबूत हैं। ऐसी कुछ खास मजबूती नहीं। स्त्रियां ज्यादा मजबूत हैं। उनकी सहने की क्षमता, सहनशीलता आदमी से बहुत ज्यादा है। स्त्रियां कम बीमार पड़ती हैं; आदमी ज्यादा बीमार पड़ता है। स्त्रियां हर बीमारी को पार करके गुजर जाती हैं; आदमी हर बीमारी में टूट जाता है, कोई भी बीमारी तोड़ देती है उसे। और सारी दुनिया में स्त्रियां पांच साल आदमियों से ज्यादा जीती हैं--औसत। और फिर आदमियों को और एक अहंकार है कि समान उम्र की स्त्री से विवाह नहीं करते; पच्चीस साल का जवान हो तो उसे बीस साल की लड़की चाहिए। तो पांच साल का और फर्क हो गया। सो ये भैया दस साल पहले मरेंगे। इसलिए दुनिया में तुम्हें विधवाएं बहुत दिखाई पड़ेंगी, विधुर इतने दिखाई नहीं पड़ेंगे।
मगर कभी-कभी चमत्कार भी होता ही है, वह स्त्री मर गई। मगर मरते-मरते अपने पति को कह गई कि सुन लो, लफंगेबाजी नहीं चलेगी। पति ने कहाः क्या मतलब? पति तो दिल ही दिल में खुश हो रहा था कि यह झंझट कटी। अभी दो दिन पहले ही डाक्टर ने उससे कहा था कि मैं बहुत दुखी हूं, लेकिन पत्नी दो दिन से ज्यादा नहीं बचेगी। तो उसने डाक्टर को कहा था कि नाहक दुखी न हों। अरे जब मैंने तीस साल कष्ट झेल लिया तो दो दिन और सही। इसमें दुखी होने की क्या बात है? तीस साल गुजर गए तो दो दिन और सही।
पत्नी कहने लगी कि अब मैं मरने के करीब हूं, तुम्हें बताए जा रही हूं
कि मैं मर कर भूत-प्रेत होऊंगी और तुम्हारा पीछा करूंगी। और ध्यान रखना, भूल कर भी किसी और स्त्री के साथ संबंध मत बनाना, नहीं तो मैं तुम्हें सताऊंगी, मैं रोज आऊंगी रात।
पति डरा तो बहुत, कर भी कुछ नहीं सकता, अब करे भी क्या! पत्नी मर गई। पहली रात बहुत घबड़ाया हुआ घर आया। डरा हुआ था। जंतर-मंतर पढ़ रहा था। मगर

ठीक वक्त पर कोई बारह बजे पत्नी ने दरवाजे पर दस्तक दी। दरवाजा खोला तो वह सामने खड़ी थी। पसीना-पसीना हो गया, पैर कंप गए, गिरते-गिरते बचा। पत्नी ने कहा कि यह तो तुमने हरकत शुरू कर दी। तुम शराब पीकर आए हो और मैंने लाख दफे समझाया कि शराब पीना बंद करो। और तब तो मैं घर में रहती थी, तो मुझे बैठ कर अंतर्दृष्टि से पता लगाना पड़ता था--तुम कहां गए, क्या कर रहे हो? अब नहीं चलेगा। अब तो तुम जहां जाओगे, वहां मैं देख सकती हूं, वहां मैं आ सकती हूं। तुम शराबघर से आ रहे हो। तुमने इतनी शराब पी। और तुम उस स्त्री को घूर-घूर कर देख रहे थे!
बात बिल्कुल सच थी। इतनी उसने शराब पी थी। और शराब पीकर जब बाहर निकला
था तो एक सुंदर स्त्री को घूर-घूर कर भी देखा था। और उसने कहा कि सावधान रहो, आज तो पहला दिन है, क्षमा कर देती हूं, कल से ख्याल रखना।
उस आदमी की तो जान मुश्किल में पड़ गई। जिंदा थी, वही बेहतर था। कुछ बहाने भी खोज लेता था। कह देता था कि दफ्तर में ज्यादा काम है।... दफ्तर में काम ज्यादा निकलता है, हरेक को ज्यादा निकलता है। दफ्तर में दिन भर लोग काम करते ही नहीं--और ज्यादा काम निकलता है! ओवरटाइम! दफ्तर से फोन करते हैं कि आज नहीं आ सकेंगे, आज बहुत काम है। घर से बचते हैं जितना बच सकें। जमाने भर में भटकेंगे, घर भर नहीं आएंगे। घर तो आते ही तब हैं जब सब होटलें और सब शराबघर, सब रेस्तरां बंद हो जाते हैं, और जब कहीं इनको जगह नहीं मिलती तब घर आते हैं। क्योंकि घर तो हमेशा खुला हुआ है। पत्नी बैठी होगी तैयार।
अब तो इसकी बड़ी मुश्किल हो गई। कोई बहाना न चले। जो भी बहाना लेकर आए,
वह कहे कि तुम मुझे बना रहे हो? मैं वहां मौजूद थी। तुम दफ्तर गए? झूठ बोल रहे हो। तुम आज दिन भर दफ्तर नहीं गए। तुम कहां थे, मुझे रत्ती-रत्ती पता है।
उस आदमी की तो हालत हड्डी-हड्डी हो गई। यह स्त्री क्या मरी, जिंदा थी वही अच्छा था। सोचता था कि मर जाएगी तो बड़ा सुख मिलेगा, यह तो महा कष्ट हो गया। किसी ने सुझाव दिया कि गांव में एक फकीर आया हुआ है, तू उसके पास जा, शायद वह कुछ कर सके। फकीर के पास गया। फकीर को सारी बात बताई। फकीर ने कहाः एक काम कर। मुट्ठी खोल। और फकीर ने मुट्ठी भरी, पास में ही चावल रखे थे, मुट्ठी भर कर उसके हाथ में दे दिए। और कहा कि मुट्ठी बंद कर ले, अब खोलना मत, घर जा। और जब वह आए तो उससे कहना कि अगर तू सच में है, तो मेरी मुट्ठी में कितने चावल हैं, इनकी गिनती करके बता दे!
उसने कहा कि वह बता देगी। वह एक-एक चीज गिन कर बता रही है--कहां जाता हूं, किससे बात करता हूं, क्या कहता हूं। वह यह भी बताएगी कि अच्छा तो तुम उस फकीर के पास गए थे! वह फकीर मेरा बाल बांका नहीं कर सकता, वह कहेगी। उसने कहाः वह सब कहे, मगर ये चावल के दाने जब तक गिन कर न बताए। कल तू मुझे आकर खबर करना।
वह घर गया, वह पत्नी मौजूद थी। उसने कहाः तो गए थे उस फकीर के पास? वह क्या जानता है! उसकी हैसियत क्या है! इस-इस ढंग के कपड़े पहने हुए था? ऐसे- ऐसे मकान में बैठा हुआ था? पास में चावल रखे हुए थे? मुट्ठी भर कर उसने तेरी मुट्ठी में चावल दिए हैं और कहा है कि उससे कहना कि गिनती करके बता। बोल, इसमें कुछ झूठ है?
वह घबड़ा गया। उसने कहा कि फकीर का भी कुछ वश चलेगा नहीं इस पर, यह तो इसको सब पता है। पर उसने कहा, अब आखिरी कोशिश कर ही लो। उसने कहा कि हां, यह सब ठीक है। मगर चावल कितने हैं? उनकी गिनती करके बता!
जैसे ही उसने यह कहा, वह स्त्री एकदम नदारद हो गई। वह चावल की गिनती न
कर सकी। चारों तरफ खोजा, घर भर में खोजा, चिल्लाता फिरा कि भई कहां गई तू? चावल की गिनती बता! मगर कोई उत्तर नहीं, कोई पता नहीं। दूसरे दिन सुबह आया, फकीर से बोला कि चमत्कार कर दिया! ये चावल क्या हैं, गजब हैं! इनको मैं क्या सदा हाथ में ही रखे रहूं? रात भर इनको हाथ में ही रखे रहा, कपड़ा बांध लिया, कि इनमें कोई चमत्कार है।
उसने कहाः कोई चमत्कार नहीं है। जो बातें तू जानता है, बस वही तेरी पत्नी कह सकती है। जो तू ही नहीं जानता, वह तेरी पत्नी नहीं कह सकती। वह पत्नी वगैरह कुछ नहीं है, कोई भूत-प्रेत नहीं, तेरा मन है। तू इतना जानता

था कि फकीर के यहां गया, वह कैसा बैठा था, उसने चावल भर कर दिए। तेरे को भी पता नहीं कि संख्या कितनी है। अगर तुझे पता होती तो उसको भी पता होती। वह है नहीं। वह कोई भी नहीं है, तेरे मन का ही फैलाव है। चावल वगैरह का कोई जादू नहीं है। अब चावल में न बंध। ला चावल वापस कर। चावल छोड़ दे वापस अपनी जगह, जहां से उठाए थे। अगर तुझे चावलों की गिनती मालूम हो गई तो वह औरत तुझे फिर सताएगी। उसको भी मालूम हो जाएगी। वह स्त्री कुछ भी नहीं, तेरे मन का प्रतिफलन है, तेरे मन का ही साकार रूप है।
ऐसे ही राधिका प्रसाद, तुम्हारे मन की ही सारी लीला है, कोई और लीला नहीं है। तुम्हारा ही सब खेल है, कोई और खेल नहीं है। माया से नहीं छूटना है, मन से छूटना है। और छूटने के लिए कहीं नहीं जाना--ध्यान में जागना है। मैं तुम्हें नहीं बचा सकता। और तुम यह आशा छोड़ दो कि कोई तुम्हें बचा सकेगा। इस आशा में ही तो तुम भटकते रहते हो कि कोई तुम्हें बचा लेगा, कोई उद्धारक मिल जाएगा। बस इसी आशा में तुम अपने को नहीं बचा पा रहे। यह आशा तुम्हारी टूट जानी चाहिए। कोई उद्धारक नहीं है; प्रत्येक व्यक्ति अपना उद्धारक है।
बुद्ध ने कहा हैः अप्प दीपो भव। अपने दीये खुद बनो! कोई दूसरा तुम्हारा दीया नहीं बन सकता। तुम्हारे पास आंखें होंगी तो तुम देख सकोगे; और तुम्हारे पास कान होंगे तो तुम सुन सकोगे। यह भीतर की बात भी तुम्हारे पास ध्यान होगा तो ही घटित होगी। न तुम्हें जीसस बचा सकते हैं, न तुम्हें कृष्ण, न तुम्हें बुद्ध, न महावीर। लेकिन हम इतने बेईमान हैं कि हम अपने को बचा लेते हैं इनके बहाने! यह कह कर कि बचाएंगे ये, लोग बैठे सोच रहे हैं कि कृष्ण का अवतार होगा और वे सब को बचाएंगे। जब धर्म की ग्लानि हो जाती है... ! और अब धर्म की ग्लानि काफी हो गई है, अब और क्या ग्लानि होने में बची है? संभवामि युगे युगे! अब आते ही होंगे। बस अब देर नहीं है, आएंगे जल्दी और बचाएंगे।
उपद्रव तुम करो और कृष्ण उसका फल भोगें! बचाएं वे! और बचा सकते होते तो तभी न बचा लिया होता जब आए थे? तब क्या खाक बचा पाए! किसको बचा पाए? क्या बचा पाए?
जीसस किसको बचा पाए? महावीर किसको बचा पाए? बुद्ध किसको बचा पाए? लेकिन हम बेईमान हैं। हम यह बात भी दूसरों पर टाल देना चाहते हैं कि कोई बचाए। क्यों कोई बचाए? यह पर-निर्भरता क्यों?
मैं तुम्हें मेरे ऊपर निर्भर नहीं होने देना चाहता। मैं तुम्हारी जिम्मेवारी नहीं लेना चाहता। मैं तुम्हें इशारे दे सकता हूं। कैसे तुम अपने को बचा सकते हो, इसके इंगित कर सकता हूं। लेकिन मैं तुम्हें बचा नहीं सकता। बचाना तो तुम्हें स्वयं को होगा। तुमने ही उलझाया है, तुम्हीं सुलझाओ। तुम्हीं गिरे हो गड्ढे में, तुम्हीं निकलो। लेकिन तुम गड्ढे से न निकलना चाहो तो यह तरकीब अच्छी है कि आएगा उद्धारक और बचाएगा। न आएगा उद्धारक, न कोई बचाएगा। गड्ढे में तुम पड़े रहना। पड़े ही हो सदियों से। अभी ईसाई रास्ता देख रहे हैं कि जीसस का आगमन होगा और वे सारी मनुष्य-जाति का उद्धार करेंगे।
पहले नहीं कर पाए, अब कैसे करेंगे? पहले ही कर लेते न! कर सकते होते तो पहले ही कर लेते। कितने लोगों का उद्धार कर पाए? हां, इशारे दिए। जो समझ गए, उन्होंने अपना उद्धार कर लिया। इंगित दिए। लेकिन जो मूढ़ थे, वे राह देखते रहे कि तुम्हीं दवा बनाओ, तुम्हीं घोंटो, घुटी तैयार करो, और तुम्हीं पीओ--और बचें हम! कोई चिकित्सक भी ऐसे तुम्हें नहीं बचा सकता कि खुद दवाई पीए और बचाए तुम्हें; इसमें तो खुद भी मरेगा। दवा तुम्हीं को पीनी पड़ेगी।
मैं तुम्हें मार्ग दे सकता हूं, लेकिन चलना तुम्हें है।

दूसरा प्रश्नः मैं अज्ञान में बच्चे पैदा करता चला गया। दस बच्चे हैं मेरे, अब क्या करूं?

वीरचंद! अब तो बहुत देर हो चुकी। अब क्या करोगे? वीर आदमी हो, अब तो बढ़े चलो! चढ़े चलो! अब क्या रुकना! अरे जब मंजिल अब दो ही कदम रह गई, अब हताश

होते हो? वीरों के नाम को बदनाम करोगे? वीर पुरुष पीछे लौट कर नहीं देखते।
गिनती भी न करो।
तुमने भी खूब किया। जगह-जगह लिखा हुआ हैः दो या तीन बस! तब तुम न रुके। इश्तहार वगैरह पढ़ते हो कि नहीं? मगर दो या तीन बस का शायद तुम पर प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि उसमें तुक नहीं है। तुमने सोचाः दस और बस! दो या तीन बस-- अतुकांत कविता है। दस और बस--तुकांत कविता है। कवि मालूम होते हो। अब तुम्हें होश आया!
लेकिन ऐसा मत करना। यही तो भारत का गौरव है। इस पुण्य-भूमि में देवता जन्मने को तरसते हैं। दस देवताओं को तुमने जन्म दे दिया और बाकी देवता अभी और तरस रहे होंगे, उनका क्या होगा? देवताओं का भी तो कुछ ख्याल करो! उन पर भी तो कुछ दया रखो!
एक धर्म-सम्मेलन में मैं बोलने गया था, वहां करपात्री महाराज भी बोल रहे थे। वे समझा रहे थे लोगों को संतति-नियमन के विपरीत, विरोध में, कि ऐसा कभी मत करना, क्योंकि पता नहीं कौन सी आत्मा पैदा होने को आतुर हो और तुम रुकावट डाल दो! कौन देवता तुममें पैदा होने को उत्सुक हो, क्या पता! रवींद्रनाथ--उदाहरण के लिए वे कह रहे थे--अपने बाप की पहली संतान नहीं थे, बहुत से बच्चों के बाद पैदा हुए। अगर उसके पहले उन्होंने "दो या तीन बस" कर दिया होता तो दुनिया रवींद्रनाथ से वंचित रह जाती।
बात बड़ी पते की कह रहे थे! अब क्या पता ग्यारहवां बेटा तुम्हारा रवींद्रनाथ हो, शेक्सपियर हो, कालिदास हो, पता नहीं। यह तो अज्ञात का खेल है। और यह तो परमात्मा की लीला है! इसमें तुम कौन हो बीच में बाधा डालने वाले? जो उसकी मर्जी, होने दो! इसी को तो समर्पण कहते हैं! तुम कहां संकल्प का अड़ंगा लगा रहे हो! परमात्मा कभी क्षमा न करेगा, अगर तुमने इस तरह के अड़ंगे डाले। उसकी मर्जी है कि हों बच्चे। नहीं होगी मर्जी तो नहीं होंगे। अरे जिनको नहीं देना है, वे मर जाते हैं प्रार्थना कर-करके, पूजा कर-करके, मंदिरों में जा-जा कर, कब्रों पर बैठ-बैठ कर, चढ़ावा चढ़ा-चढ़ा कर, मनौतियां मना-मना कर... जिनको नहीं देना है, उनको नहीं देता। तुमको देना है, तुम पर खुश है। पिछले जन्मों का पुण्यकर्म है। आ रहे हैं देवी-देवता, आने दो! मैंने सुना है, जब पहली दफा चांद पर अमरीकी यात्री पहुंचे तो बड़े हैरान हुए। वे अपना झंडा गाड़ ही रहे थे कि पंद्रह-बीस बच्चे एकदम भागते हुए, और उनकी माताराम भी उनके पीछे, और उनके पिताराम भी उनके पीछे आकर खड़े हो गए भीड़ लगा कर। वे तो बड़े दंग रह गए। वे तो सोच रहे थे कि हम ही पहली दफा चांद पर आए हैं। इधर तो लोग पहले से ही मौजूद हैं! देखा तो हिंदुस्तानी थे। पूछा कि भई, आप कैसे आए?
उन्होंने कहाः हम तो पिकनिक मनाने ऋषि-मुनियों के जमाने से आते रहे! चंद्र-यात्रा कोई नई चीज है? शास्त्रों में उल्लेख है, वर्णन है।
उनको तो भरोसा ही नहीं आया। उन्होंने कहाः तुम आए कैसे? तुम्हारे पास साधन कहां हैं? राकेट कहां हैं? चंद्र की यात्रा करने के लिए तुम्हारे पास ऐसे विमान कहां हैं?
अरे, उन्होंने कहा, कहां के विमान! फिजूल की बातों में पड़े हो! हम तो स्वदेशी चीजों में विश्वास करते हैं। हम तो एक-दूसरे के कंधे पर खड़े हो जाते हैं। अरे चांद क्या, हम तारों पर पहुंच जाएं! इधर तो हम अक्सर आते हैं।
अब तुम क्या भारत की प्रतिष्ठा खराब करवाने पर उतारू हो? नहीं-नहीं, ऐसा मत करना। देखो धृतराष्ट्र अंधे थे, मगर सौ बेटे! इसको कहते हैंः अंधे को अंधेरे में दूर की सूझी! तुम तो आंख वाले हो वीरचंद! धृतराष्ट्र से मात खा जाओगे? ऐसे नहीं हारते। धृतराष्ट्र को तो मात देकर रहो। अंधों से आंख वाले हारने लगे तो जगत का क्या हाल हो जाएगा! और कहते हैं, धृतराष्ट्र की पत्नी ने भी पति को अंधा देख कर अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली थी। क्योंकि जब पति अंधा हो तो पत्नी कैसे देखे? पत्नी तो पति की छाया है; उसका कोई अपना व्यक्तित्व तो नहीं, कोई आत्मा तो नहीं। सो उसने आंख पर पट्टी बांध ली थी। सती-साध्वी थी।
अब जरा देखो, एक अंधे थे पति, और पत्नी ने आंख पर पट्टी बांध ली थी। फिर
भी एक-दूसरे को खोजते रहे, सौ बच्चे पैदा कर लिए! टटोलते फिरते होंगे कि

कहां है। और सौ बच्चों की भीड़-भाड़ में खोजबीन करना बड़ा मुश्किल काम रहा होगा।
तुम तो आंख वाले हो, इतने जल्दी हार गए! नहीं, यह भारतीय परंपरा नहीं। क्या परंपरा को नष्ट करोगे? बाप-दादों ने ऐसा नहीं किया, तुम ऐसा करोगे? रघुकुल रीति सदा चलि आई! यह तो चलता ही रहा। जरा पुराणों में तो देखो, कितने-कितने बेटे पैदा किए लोगों ने! वे थे वीरपुरुष! और तुम्हारा नाम वीरचंद है और तुम दस पर ही बस हुए जा रहे हो!
निराशा छोड़ो! हताशा त्यागो! फिर से झंडा ऊंचा करो। झंडा ऊंचा रहे हमारा! ऐसे कहीं झंडा नीचा करते हैं! और तुमने अगर बच्चे ज्यादा पैदा नहीं किए तो कितना अहित करोगे, इसका भी तो सोचो। अगर तुम बच्चे पैदा न करोगे, समाज-सेवकों का क्या होगा? अनाथालयों का क्या होगा? मदर टेरेसा को नोबल प्राइज कैसे मिलेगी? अरे वीरचंद, सब तुम्हारे जैसे महापुरुषों पर निर्भर है। असल में तुमको मिलनी चाहिए नोबल प्राइज, मिल रही है मदर टेरेसा को। एक बच्चा पैदा किया नहीं। दूसरों के बच्चों पर, उधार, अनाथालय चला रही हैं। नोबल प्राइज! भारत-रत्न! भारत-रत्न तुम्हें होना चाहिए। और सेवा का अवसर छीन लोगे क्या? ऐसे बच्चे पैदा करोगे तो देश गरीब रहेगा, दुखी रहेगा, तो इससे लोगों को सेवा का अवसर मिलता है। भूदान यज्ञ चलेगा, सर्वोदय होगा। नहीं तो विनोबा भावे संत कैसे होंगे? संतों का संतत्व छीन लोगे, नोबल प्राइज वालों को नोबल प्राइज न मिलेगी। तुम भी कैसे खतरनाक विचारों में उलझे हो!
और अब मैं तुम्हें सलाह दूं तो फिर गालियां मुझको पड़ती हैं कि मैंने भारत का सारा गौरव नष्ट करवा दिया! भारत की प्रतिमा ही खंडित करवा दी! जब तक सेवा का अवसर न मिले तो लोग स्वर्ग जाकर मेवा कैसे पाएंगे? तुम तो सेवा का अवसर दो, पाने दो लोगों को स्वर्ग, मिलने दो उनको मेवा। इतने ईसाई मिशनरी बेचारे एकदम खाली हो जाएंगे, एकदम बेकार। ये क्या करेंगे? किसके लिए अस्पताल खोलेंगे? किसके लिए स्कूल खोलेंगे? किसके लिए अनाथालय? और तुम अगर बच्चे पैदा करना बंद कर दोगे तो फिर वृद्धाश्रम में कौन भरती होगा? फिर विधवा-आश्रम में कौन भरती होगा? तुम तो बच्चे पैदा करते जाओ, करते जाओ, सो तुम जल्दी मरोगे। सो पत्नी होगी विधवा, विधवा-आश्रम चलेगा। अगर तुम जी गए तो समय के पहले बूढ़े हो जाओगे, तो वृद्धाश्रम चलेगा। और बच्चे हैं, सो वे अनाथ-आश्रम चलवाएंगे। इस तरह समाज-सेवा चलती है, सर्वोदय होता है, अंत्योदय होता है, क्या-क्या नहीं होता! नहीं, इस तरह के खतरनाक विचार मत करो।
मैंने सुना है--

प्रदर्शनी में,
एक तंबू के सामने
एक जोकर लगा था चिल्लाने में--
"आइए, बीस फुट लंबा सांप देखिए केवल एक आने में।"
तभी एक सज्जन पधारे
आधे पके थे, आधे कच्चे
साथ में थे बीस बच्चे
जोकर बोला--
"बाहर क्यों खड़े हैं आप?
भीतर देखिए बीस फुट लंबा सांप! गधैया गाती है अंग्रेजी गाना। टिकट सिर्फ एक आना।"
सज्जन बोले--
"मेरे साथ तो बीस बच्चे हैं।" जोकर बोला--
"जी, बहुत अच्छे हैं।
ये सब क्या आपके हैं?"
सज्जन दहाड़े--

"नहीं तो क्या आपके बाप के हैं?"
जोकर हंस कर बोला--
"अच्छा आइए-आइए
लाइन में लगा कर बच्चों को अंदर ले आइए।" सज्जन के भीतर जाते ही
जोकर नाचने-गाने लगा
जोरों से चिल्लाने लगा--
"आइए-आइए
केवल दो आने में
तमाशे का मजा उठाइए
बीस फुट लंबा सांप देखिए
और साथ में
बीस बच्चों वाला बाप देखिए।"

कम से कम बीस का लक्ष्य तो वीरचंद रखो ही। अब इतनी भूल की, थोड़ी और सही। अब इतने गिरे, थोड़े और।
हमें समझ ही नहीं है कि हम क्या कर रहे हैं, क्यों कर रहे हैं। यंत्रवत जीए चले जाते हैं, पशुवत जीए चले जाते हैं। जैसे पशु बच्चे पैदा करते हैं-- एक प्राकृतिक परवशता है--वैसे ही आदमी बच्चे पैदा किए जाता है। और अब जब कि कोई प्राकृतिक परवशता नहीं है, अब तुम्हारे हाथ में है। लेकिन बहाने खोजता है नये-नये, कि फिर उन आत्माओं का क्या होगा? जैसे तुमने सारी दुनिया की आत्माओं का ठेका लिया है! एक तुम अपनी आत्मा की तो फिकर नहीं कर पा रहे और सारी दुनिया की आत्माओं की चिंता में लगे रहते हो, कि सारी आत्माओं का क्या होगा? कहीं हिंसा तो नहीं हो जाएगी, अगर बच्चे पैदा नहीं हुए?
मुझसे लोग प्रश्न पूछते हैंः इसमें हिंसा तो नहीं हो जाएगी?
हिंसा इसमें होगी कि तुम जितने बच्चे छोड़ जाओगे उतनी इस जमीन पर हिंसा होने वाली है। उतनी इस जमीन पर उपद्रव की स्थिति घनी होती चली जाएगी। महामारियां फैलेंगी, युद्ध होंगे, भूकंप आएंगे; क्योंकि सिवाय उसके प्रकृति को संतुलन बिठाने का कोई उपाय नहीं रह गया। दरिद्रता रहेगी। लोग जीएंगे, अधमरे जीएंगे। जीने का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। नहीं रह गया है।
मगर इससे महात्मागण प्रसन्न होते हैं, वे कहते हैं कि हम तो पहले से
ही कहते हैं कि जीवन दुख है। अरे यह सब माया है! देख लो तुम, अपने अनुभव से देख लो! भारतीयों को यह बात जंचती है। जंचने का कारण यह है कि सच में ही जीवन यहां इतना दुख है कि महात्मा ठीक ही कहते होंगे कि जीवन दुख है। जीवन इतना दुख इस कारण नहीं है कि जीवन दुख है; जीवन दुख इसलिए हो गया
है कि हम सजग नहीं हैं, सावधान नहीं हैं। नहीं तो जीवन काफी आनंदपूर्ण हो सकता है, उत्सवपूर्ण हो सकता है। होना चाहिए! थोड़ी सूझ-बूझ, थोड़े विचार की जरूरत है। घर क्या हैं, कबूतरखाने हो गए हैं! भरे हैं बच्चे-कच्चे। न चैन है, न शांति है। न तुम उनको भोजन जुटा सकते हो, न कपड़े जुटा सकते हो, न शिक्षा दे सकते हो। उनके मस्तिष्क अविकसित रह जाएंगे। उनके शरीर अविकसित रह जाएंगे।
मगर तुम बहाने खोज रहे हो। और बाप-दादों ने नहीं किया ऐसा। बाप-दादे करते भी कैसे? उनको पता भी नहीं था। वे करना भी चाहते तो नहीं कर सकते थे। तुम्हें पता है और पता होते हुए तुम न करो तो पाप है।
रोको! अब भी तुम पूछते हो कि क्या करूं? जैसे अभी भी तुम्हें होश नहीं है! अभी भी पूछने को कुछ बचा है कि क्या करूं? बात सीधी-साफ है। तुम्हारे जीवन ने ही साफ कर दी है, कि अब यह पागलपन छोड़ो। जिंदगी में कुछ और करना है कि सिर्फ बच्चे ही पैदा करना है? और फिर बच्चे बच्चे पैदा करेंगे, क्योंकि उनके बाप यह कर गए सो वे भी करेंगे। इस सिलसिले का अंत कहां होगा?
बुद्ध के जमाने में इस देश की आबादी दो करोड़ थी, आज सत्तर करोड़ है। और अगर हम पाकिस्तान को भी जोड़ लें--जो कि जोड़ना चाहिए, क्योंकि इस दो करोड़ में वह भी जुड़ा था--तब तो नब्बे करोड़ से ऊपर पहुंच गई आबादी। एक अरब आबादी

हुई जा रही है जल्दी। और फिर भी तुम चाहते हो कि जीवन की सुविधाएं मिलनी चाहिए, गरीबी मिटनी चाहिए, दारिद्य्र मिटना चाहिए। तुम्हारा काम है कि दरिद्रता पैदा करवाओ और किसी और का काम है कि दरिद्रता मिटाए! यह खूब मजे की रही!
फिर तुम्हारी हर सरकार असफल होगी। और असफलता का कारण तुम हो। मगर जिम्मा यह है कि सरकार असफल होती है। सरकार के बलबूते के बाहर है मामला। इस देश में लोकतंत्र असफल होने को आबद्ध है, क्योंकि तुम लंगोटी कस कर लोकतंत्र को हराने में लगे हुए हो। इस देश में लोकतंत्र जीत नहीं सकता, लोकतंत्र की मौत होकर रहेगी। कारण साफ हैः क्योंकि अगर लोकतंत्र चलता है तो तुम्हारा यह उपद्रव जारी रहता है। इस देश को जरूरत है कि तुम्हें सख्ती से रोका जाए, तुम अपने आप नहीं रुकने वाले हो। इस देश को जरूरत है कि जैसे कोई युद्ध के पैमाने पर तैयारी करता है, उस पैमाने पर हमें बच्चों से सावधानी बरतनी होगी। इस देश की संख्या को जहां है वहां तो रोकना ही है, उससे नीचे वापस लाना है!
यह देश सुखी हो सकता है, अगर इसकी आबादी बीस-पच्चीस करोड़ के करीब हो। नहीं तो यह देश कभी सुखी नहीं हो सकता। अमरीका इतना प्रसन्न है, आबादी बीस करोड़ है। जमीन तुमसे कई गुनी ज्यादा, आबादी तुमसे कई गुनी कम। रूस खुश है, आबादी बीस करोड़ है और जमीन तुमसे बहुत ज्यादा। वैज्ञानिक सुविधाएं तुमसे बहुत ज्यादा। तुम्हारे पास जमीन कम, वैज्ञानिक सुविधाएं नहीं और आबादी बढ़ती चली जाती है। अब तुम्हारी हालत ऐसी हो गई है कि सिर ढांको तो पैर उघड़ जाते हैं, पैर ढांको तो सिर उघड़ जाता है। चादर छोटी होती जाती है, तुम बड़े होते चले जाते हो। और अगर चादर नहीं ढांक पाती तो तुम बड़े नाराज हो, तुम एकदम क्रोधित हो उठते हो। तुम पूर्ण क्रांति करने को तैयार हो जाते हो-- बिना यह सोचे-समझे कि जो लोग पूर्ण क्रांति करने की बात कर रहे हैं, उनके पास क्या आयोजन है? क्या योजना है? कुछ भी नहीं!
जयप्रकाश नारायण ने तीन साल के लिए इस देश को और गड्ढे में डाल दिया, क्योंकि इस देश की बागडोर बिल्कुल ही गलत हाथों के लोगों में सौंप दी, जिन्होंने तीन साल में कुछ भी नहीं किया, जो कुछ कर सकते नहीं थे--निपट नपुंसक साबित हुए! तीन साल यूं हाथ से बह गए। और तीन साल में तुम्हारी आबादी खूब बढ़ती चली गई। क्योंकि आबादी के मामले को ही लेकर इंदिरा को हारना पड़ा था। आबादी के मामले में ही इंदिरा ने सख्ती बरती थी। बरतनी चाहिए। ठीक किया था। सख्ती और भी बरतनी चाहिए।
लेकिन लोग ऐसे हैं--ऐसे मूढ़, ऐसे मूर्च्छित--कि मुझे पता है, संतति- निग्रह से बचने के लिए कुछ लोग अपने गांव छोड़ कर भाग गए थे, वे अभी तक नहीं लौटे। भागे सो भागे!
यह तो जब तक इस देश को संतति-निग्रह का काम सेना के हाथ में न सौंप दिया जाए, तब तक कोई उपाय नहीं है।
इंदिरा से तुमने इस देश की सत्ता हाथ से छीन ली थी उसके--सिर्फ एक कारण
से कि उसने तुम्हें बच्चे पैदा करने की जो तुम्हारी जन्मजात स्वतंत्रता है, स्वरूप-सिद्ध अधिकार है, उस पर बाधा डाल दी थी। तुम्हारी स्वतंत्रता मर गई। एक ही स्वतंत्रता तुम चाहते हो--बस बच्चे पैदा करने की स्वतंत्रता! एक ही आजादी से तुम्हें मतलब है--भीड़-भाड़ बढ़ाने की आजादी! कीड़े-मकोड़ों की तरह बच्चे पैदा करने की तुम्हारी आकांक्षा है। उसने उसमें बाधा डाली, तो तुमने उसे सत्ता से अलग कर दिया।
और जो लोग तुमने चुन कर भेजे, स्वभावतः वे इसी आश्वासन पर गए थे कि हम ज्यादती नहीं करेंगे। सो तीन साल में आबादी दस करोड़ बढ़ गई, क्योंकि उन्होंने फिर कोई बाधा ही नहीं डाली। "दो या तीन बस" की बात ही खत्म हो गई। संतति-निग्रह का मामला ही हटा दिया गया।
अब पुनः इंदिरा के हाथ में सत्ता है। अब उसके सामने सवाल है, स्वाभाविक--अगर सत्ता में रहना है तो तुम्हारी मूढ़ता को जारी रखना चाहिए। अगर तुम्हारी मूढ़ता में बाधा डाली जाए, सत्ता खो जाएगी। मैं तो सलाह दूंगाः सत्ता बचे कि जाए, लेकिन तुम्हारी मूढ़ता तोड़ी ही जानी चाहिए। इंदिरा को फिक्र होती है कि उसकी प्रतिमा सारी दुनिया में खंडित होती है कि वह लोकतांत्रिक नहीं है। मैं तो कहूंगाः सारी दुनिया में बदनामी भी

उठानी पड़े, सारी दुनिया यह कहे कि अधिनायक हो गई है इंदिरा, कोई फिकर नहीं है। देश के लिए इतना त्याग तो कम से कम करो कि खंडित हो जाने दो अपनी प्रतिमा को, कहने दो सारी दुनिया को कि अधिनायकवाद है।
यह देश अभी लोकतंत्र के लिए तैयार नहीं है। लोकतंत्र के लिए तैयार होने का अर्थ होता है--खुद की सूझ-बूझ इतनी होनी चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति अपने पर नियंत्रण खुद कर ले। फ्रांस में संख्या गिर रही है, ये लोकतांत्रिक देशों के लक्षण हैं। संख्या गिर रही है, बढ़ नहीं रही। क्योंकि फ्रांस का प्रत्येक व्यक्ति समझ रहा है कि संख्या जितनी कम होगी, देश उतना सुखी होगा; उतने हम सुखी होंगे; उतने हमारे बच्चे सुखी होंगे। वीरचंद, बिल्कुल रुक जाओ। पूर्ण विराम लगा दो! और धोखे की बातों में
मत पड़ना कि ब्रह्मचर्य साधेंगे। साध लिया ब्रह्मचर्य तुमने काफी, तीन-चार हजार साल से साध रहा है यह देश ब्रह्मचर्य। और क्या ब्रह्मचर्य का परिणाम है? यह बकवास नहीं चलेगी।
महात्मा गांधी ब्रह्मचर्य सधवाने की बात करते थे। खुद पांच बच्चे पैदा कर लिए, फिर इसके बाद ब्रह्मचर्य! जैसे तुमने दस पैदा कर लिए, अब तुम भी सोचो कि ब्रह्मचर्य! ऐसे हरेक अगर दस-पांच पैदा करने के बाद सोचे कि ब्रह्मचर्य, तो कोई हल नहीं होगा। और कितने लोग ब्रह्मचर्य साध सकते हैं? व्यावहारिक होना आवश्यक है। और ब्रह्मचर्य जबरदस्ती साधोगे तो उसके घातक परिणाम होंगे।
महात्मा गांधी को मरते दम तक सपनों में कामवासना सताती रही। आखिरी- आखिरी दिनों में तो वे एक नग्न स्त्री को लेकर साथ बिस्तर पर सोने लगे। कहते तो थे कि तांत्रिक प्रयोग कर रहे हैं। इस बात को छिपाने की कोशिश की गई। उनके शिष्यों ने ही छिपाया। उनके शिष्य ही इस बात को प्रकट नहीं होने देना चाहते थे, कि कहीं यह बात प्रकट हो जाए, आम जनता में जाहिर हो जाए, तो महात्मा गांधी के महात्मा होने का क्या होगा! सो इसको छिपा कर रखो। इस बात को प्रकट मत होने दो। मगर यह बात इस बात का सबूत है कि जिंदगी भर जबरदस्ती थोपा गया ब्रह्मचर्य काम नहीं आया। महात्मा गांधी के काम नहीं आया, तो तुम्हारे क्या काम आएगा!
तो मैं यह नहीं कहता कि कोई ब्रह्मचर्य से इस देश का मसला हल होने वाला है। ब्रह्मचर्य अदभुत बात है, लेकिन ध्यान से सधती है। कोई बहुत गहरे ध्यान को उपलब्ध होता है तो ब्रह्मचर्य सधता है। ब्रह्मचर्य का अर्थ समझो। ब्रह्मचर्य का अर्थ होता हैः ब्रह्म जैसी चर्या, ईश्वरीय चर्या। उसका कुछ कामवासना से छूट जाना ही, इतना ही अर्थ नहीं है, उसका बड़ा अर्थ है। राम जैसे हो जाना उसका अर्थ है। काम से मुक्त हो जाना ही उसका अर्थ नहीं है। काम से मुक्त होना तो उसका एक छोटा सा हिस्सा है। जब तुम ब्रह्म को जानोगे तो ब्रह्मचर्य पैदा होगा, उसके पहले नहीं।
अभी तो विज्ञान ने साधन दे दिए हैं, उनका उपयोग करो। और व्यर्थ की पिटी-पिटाई बातों को मत दोहराए रखना। पंडित वही दोहराए रहते हैं। और यह देश इतना मूढ़ है कि उनकी बातें जंचती हैं। करपात्री लोगों को समझा रहे थे तो लोग सिर हिला रहे थे, ताली बजा रहे थे कि यह बात बिल्कुल सच है कि देवी- देवताओं को पैदा होना है। और बच्चे... पता नहीं कौन सा बच्चा मेधावी पैदा हो, उसको रोकना उचित नहीं है।
मैं बस्तर गया। जिस गांव में ठहरा हुआ था, उस गांव के लोगों ने कहाः आपका क्या ख्याल है? बस्तर में एक बांध बना, बांध से बिजली पैदा हुई। बस्तर के लोग उस बांध को लेने को राजी नहीं हैं, क्योंकि महात्मागणों ने यह खबर उड़ा दी वहां, साधु-संन्यासियों ने, कि इस पानी में से तो ताकत निकल ही गई। इस पानी में से बिजली तो निकल गई, तो ताकत निकल गई। अब यह पानी बिल्कुल बेकार है। फुफ्फस! इसमें कुछ है ही नहीं।
गांव के लोगों को यह बात जंची कि बात तो सच्ची है। अरे जब ताकत ही निकल गई... ताकत तो यानी बिजली... तो बिजली तो निकल चुकी। यह तो ऐसे ही समझो कि जैसे दूध में से घी निकाल लिया, अब पी रहे हैं छाछ और समझ रहे हैं कि इससे मुस्तंड हो जाएंगे। कुछ भी नहीं होगा। और पेचिश वगैरह की बीमारी हो जाए। वह खेतों में उन्होंने पानी देना बंद कर दिया कि यह पानी हम क्या करेंगे? और हमारे गेहूं खराब हो जाएं! यह पानी भी नपुंसक हो गया!

इतने मूढ़ देश में बड़ी कठिनाई है। लोकतंत्र अभी इस देश के योग्य नहीं था। जिन लोगों ने, पंडित जवाहरलाल नेहरू और उनके साथियों ने, इस देश को लोकतंत्र देने की कोशिश की, उन्होंने इसका जरा भी विचार नहीं किया कि इसकी पात्रता भी है या नहीं? अनुकरण कर लिया पश्चिम का, कि लोकतंत्र थोप दो ऊपर से। ऊपर से चीजें थोपी नहीं जातीं। पश्चिम में लोकतंत्र धीरे-धीरे विकसित हुआ है और हम पर ऊपर से थोप दिया गया है।
एक तो होता है गुलाब का फूल जो गुलाब में से आता है और एक होता है प्लास्टिक का फूल जो ऊपर से लटका दो। हमारा लोकतंत्र प्लास्टिक का फूल है। इस देश को तय करना होगा। लोकतंत्र चाहिए तो यह देश मरेगा, बरबाद होगा। अभी इस देश को कम से कम बीस वर्ष, यह आने वाली सदी का अंतिम हिस्सा, बीस वर्ष, एक उदार अधिनायकशाही चाहिए, एक करुणापूर्ण अधिनायकशाही चाहिए--जो सख्ती से इस देश की जड़ धारणाओं को तोड़ दे, बदल दे। फिर इसके बाद लोकतंत्र की संभावना पैदा हो सकती है, उसके पहले पैदा नहीं हो सकती।
मैं तो इंदिरा को कहूंगा कि होती हो बदनामी दुनिया में, फिकर मत करो।
एक बीस साल सब कुर्बानी कर दो। लोकतंत्र की भी कुर्बानी कर दो! यह थोथी स्वतंत्रता की भी कुर्बानी कर दो। इस देश को बीस साल अनुशासन चाहिए--ऐसा अनुशासन कि इस देश का प्रत्येक व्यक्ति इस योग्य हो जाए कि खुद सोच सके, विचार कर सके और निर्णय ले सके, और निर्णय के अनुसार जी सके। यह न हुआ तो यह देश बचेगा नहीं; इसका भविष्य बहुत अंधकारपूर्ण है।

तीसरा प्रश्नः वह पांचवां क क्या है? बहुत सोचा, लेकिन नहीं सोच पाया। किसी और से पूछूं, हो सकता था कोई बता देता। लेकिन फिर सोचा आप से ही क्यों न पूछूं?

प्रकाश! पांचवां क कोई बहुत कठिन नहीं है; किसी भी पंजाबी से पूछते तो पता चल जाता। पांचवां क अर्थात कच्छा। कच्छा यानी बजरंगबली जिसको पहले से ही पहनते रहे। जांघिया। ये पांच चीजें आदमी को पंजाबी से सिक्ख बना देती हैं, सरदार बना देती हैं--ये पांच क। बड़ी गजब की चीजें हैं--कंघा, केश, कृपाण, कड़ा और कच्छा। इनमें सबसे गजब का कच्छा।
मैंने सुना है, पंडित जवाहरलाल नेहरू के मंत्रिमंडल में सरदार बलदेव सिंह थे। उनके संबंध में तो बहुत कहानियां थीं, एक कहानी कच्छे की भी थी। एक सभा में सरदार बलदेव सिंह तो अध्यक्षता करने वाले थे और जवाहरलाल नेहरू उदघाटन करने वाले थे। तो उन्होंने कहा कि सरदार जी, एक कृपा करना! आप नहाने-धोने में तो विश्वास करते ही नहीं। आपके कच्छे से ऐसी बदबू आती है कि अब हम तो किसी तरह आदी हो गए हैं, गुजार लेते हैं, सह लेते हैं; मगर और नये-नये लोग वहां होंगे सभा में, उनको क्यों कष्ट देना! और उन सबका ध्यान आपके कच्छे पर ही जाएगा।
नहाना-धोना वे मानते नहीं थे, क्योंकि नहाने-धोने से शरीर घिसता है।
और शरीर घिस जाए तो इसी में तो आदमी दुबला-पतला हो जाता है। सो उन्होंने कहाः अच्छी बात, मैं अभी जाकर कच्छा बदल आता हूं।
सभा में पहुंचे। जवाहरलाल ने देखा कि बास और भी ज्यादा आ रही है।
उन्होंने कहा कि बलदेव सिंह... कान में फुसफुसाए... कि मैंने तुमसे कहा था कि कच्छा बदल कर आओ, तुमने बदला नहीं मालूम होता है, क्योंकि बास और भी ज्यादा आ रही है।
बलदेव सिंह ने जल्दी से खीसे में से कच्छा निकाल कर बताया कि इसीलिए
कि आप मानोगे नहीं, मैं पुराना कच्छा भी साथ में ले आया हूं, ये देखो!
अब बास और ज्यादा आएगी ही, खीसे में रखे हो। और निकाल कर बता दिया आम जनता में, सो गंध फैल गई होगी। और जवाहरलाल ने सिर ठोंक लिया होगा।
मगर पता नहीं, एक सरदार का मंत्रिमंडल में होना जरूरी है! बिल्कुल जरूरी है। पुराने राजा-महाराजा भी ऐसा करते थे। सरदार तो उस समय नहीं थे, मगर सरदारों जैसे लोग तो थे ही सदा से। हर राजा-महाराजा अपने नवरत्नों के साथ-साथ एकाध पहुंचे हुए बुद्धू को भी मंत्रिमंडल में रख लेता था, दरबार में रखता था--संतुलन के लिए। क्योंकि सभी बुद्धिमान हों तो अति हो जाती है बुद्धिमानी की। तो दूसरे तराजू पर बिठा दिया एक बुद्धू को, नवरत्नों को

रास्ते पर लगा देता, एक बुद्धू काफी। नवरत्न एक तरफ और एक बुद्धू एक तरफ। और कभी-कभी बुद्धू बड़े पते की बात कह देते हैं। क्योंकि नवरत्न तो होशियार हैं, ऐसी बात कहेंगे जो राजा को अच्छी लगे, फिर चाहे वह हित की हो कि अहित की हो। वे तो सब खुशामदी और चापलूस होंगे। बुद्धू सच्ची बात कह देगा, बिल्कुल सच्ची बात कह देगा। उसको पता ही नहीं कि वह सच्ची बात कह रहा है; यह राजा के खिलाफ जा रही है या क्या हो रहा है। और अक्सर उन बुद्धुओं ने राजाओं को बड़े कष्टों से बचा लिया। तो यह रिवाज था--सारी दुनिया में; भारत में ही नहीं, सारी दुनिया में--एक महामूढ़ राजदरबार में रखा ही जाता था। क्योंकि बाकी जो समझदार हैं, वे तो झूठ बोलने में कुशल हो जाते हैं; वे तो चमचे हो जाते हैं।
सरदार बलदेव सिंह को भी शायद पंडित जवाहरलाल नेहरू ने संतुलन के लिए
ही रख छोड़ा था।
लेकिन ख्याल रखना, सरदार सब में छिपा बैठा हुआ है। अगर कमी है तो वही पांच क की है। वह कोई खास कमी है? जब तक तुम होशपूर्ण नहीं हो, तब तक तुम मूढ़ हो ही। पृथ्वी मूढ़ों से भरी है। कुछ सरदार प्रकट हैं, कुछ अप्रकट; कुछ जाहिर, कुछ गैरजाहिर; कुछ घोषणा कर दिए हैं, कुछ ने घोषणा नहीं की है। मगर सच पूछो तो सारी दुनिया उसी अवस्था में है, कुछ भेद नहीं है। इसलिए हंसना मत। यह मत सोचना कि मैं सरदारों के खिलाफ कुछ कह रहा हूं। सरदार तो मूढ़ों की बस एक जाति समझो। सारी मनुष्यता मूढ़ है। जब तक मूर्च्छा है, तब तक मूढ़ता है।
चंदूलाल, ढब्बूजी व मुल्ला नसरुद्दीन सैर को निकले थे। चांदनी रात। मस्त थे। भांग चढ़ा रखी थी। उन्होंने देखा कि सामने से ही एक गधा चला आ रहा है। तीनों में शर्त लग गई कि देखें कौन गधे को मजबूर कर सकता है--न में सिर हिलाने को। गधा करीब आया, तीनों ने अपनी-अपनी तरकीब आजमाई। चंदूलाल और ढब्बूजी तो असफल रहे। मगर जैसे ही मुल्ला ने गधे के कान में कुछ कहा कि वह तो सिर हिलाने लगा, जोर-जोर से, एकदम सिर हिलाने लगा। कहने लगाः नहीं! नहीं! चंदूलाल, ढब्बूजी चकित रह गए। उन्होंने पूछाः मुल्ला, तुमने ऐसा क्या कहा कि एकदम गधा सिर हिलाने लगा? कहने लगाः नहीं-नहीं!
मुल्ला ने कहा कि पहले तुम लोग बताओ कि तुमने क्या कहा था?
चंदूलाल ने कहा कि मैंने तो बड़ी पुरानी तरकीब आजमाई, लेकिन असफल हुआ। मैंने उससे पूछा कि भैया, शादी करवानी है? अब कौन गधा होगा जो सिर न हिला दे! अरे गधे से गधा भी होगा तो भी कह देगा कि नहीं। मगर वह नालायक मुस्कुराने लगा! वह तो एकदम खुश हो गया! जैसे वर बनने को ही निकला हो! ढब्बूजी ने बताया कि मैं तो अपने बच्चों के अनुभव से कहता हूं कि सबसे बड़ी कठिन चीज यह है कि सुबह उनको स्कूल भेजना। कोई पाखाने में छिप जाता है, कोई बाथरूम से ही नहीं निकलता, कोई बिस्तर से ही नहीं उठता कि बुखार चढ़ा हुआ है, किसी के पेट में दर्द है, किसी के सिर में दर्द है। सो मैंने गधे से पूछा कि भैया, स्कूल में भरती होना है? मैंने सोचा था कि जरूर सिर हिला देगा कि नहीं-नहीं! कितना ही गधा हो, स्कूल में कौन भरती होना चाहेगा! गधे से गधे भी स्कूल में नहीं जाना चाहते। स्कूल का नाम सुन कर ही एकदम फुरफुरी छूट जाती है, एकदम रोमांच हो जाता है। मगर गधा बिल्कुल शांत बना रहा, अविचल, बिल्कुल स्थितप्रज्ञ। न हां, न न। जैसे सफलता-असफलता में समभाव रखो, सुख-दुख में समभाव रखो! अरे स्कूल जाना हो कि मधुशाला जाना हो, समभाव रखा उसने। अब तुम बोलो, तुमने क्या कहा?
तो मुल्ला नसरुद्दीन बोला कि मैंने पूछाः भैया, सरदार जी बनना है? बस एकदम सिर हिलाने लगा कि नहीं।
लेकिन मेरे देखे, जब तक तुम्हारे भीतर मूर्च्छा है, तब तक मूढ़ता है। ध्यान का दीया न जले तो तुम सभी सरदार हो। ध्यान का दीया जले तो ही तुम्हारे जीवन में थोड़ी बुद्धिमत्ता फैलनी शुरू होती है। थोड़ा प्रकाश चाहिए--चाहिए ही चाहिए! और तुम्हारे अतिरिक्त यह प्रकाश कोई पैदा नहीं कर सकता। दूसरों पर हंस कर मत रह जाना। सरदारों की कहानियां तुम सुन लेते हो, सुन कर हंस लेते हो--यह सोच कर कि औरों के बाबत बात हो रही है। मारवाड़ियों की कहानियां सुन लेते हो--सुन कर हंस लेते हो कि मारवाड़ियों के बाबत बात हो

रही है। मारवाड़ी की बात हो, सरदार हंस लेता है; सरदार की बात हो, मारवाड़ी हंस लेता है।
लेकिन ध्यान रखना, मैं सिर्फ तुम्हारी ही बात कर रहा हूं, क्योंकि तुम्हारे भीतर सब तरह के सांप-बिच्छू छिपे हैं। मारवाड़ी तुम्हारे भीतर बैठा है, सरदार तुम्हारे भीतर बैठा है, सिंधी तुम्हारे भीतर बैठा है। अरे कौन है जो तुम्हारे भीतर नहीं बैठा है!
पश्चिम में एक कहावत है कि रूसी इटैलियन को धोखा दे सकते हैं, फ्रेंच
को धोखा दे सकते हैं, अंग्रेज की जेब काट सकते हैं, स्पेनी को दगा दे सकते हैं, पुर्तगाली का गला घोंट सकते हैं; सिर्फ उनकी मुसीबत अगर कोई कर सकता है तो वह एक है--वे हैं जिप्सी। वे रूसियों के छक्के छुड़ा देते हैं। और जिप्सियों की भी अगर कोई पत्ती काट सकता है तो वे हैं यहूदी। वे उनको भी रास्ते पर लगा देते हैं। और यहूदियों की भी अगर कोई जेब काट सकता है तो वे हैं यूनानी। और कहावत कहती है कि यूनानियों को अगर कोई धोखा दे सकता है तो वह केवल शैतान। वह बात गलत है; उनको मारवाड़ियों का कोई पता नहीं। मारवाड़ी किसी को भी चकमा दे सकता है। चकमा उसकी कला है। उसने उस कला को खूब निखारा है, सदियों से संवारा है। वह खुद को ही धोखा देने तक में कुशल हो गया है, दूसरों की तो बात और।
मैं कलकत्ता में एक मारवाड़ी मित्र के घर मेहमान था। मैं बड़ा हैरान हुआ। उनके बाथरूम में नहाने गया। संगमरमर का तो बाथरूम, मगर संगमरमर पर न मालूम कितने आंकड़े लिखे हैं, जगह-जगह आंकड़े! दो-दो फोन तो बाथरूम में भी लगे। मैंने उनसे पूछा कि मामला क्या है? सुंदर बाथरूम बनाया है, दीवालें सब गंदी कर रखी हैं! क्या लिख रखा है?
उन्होंने कहाः अरे खाते-बही कौन रखे! मैं हूं सटोरिया, खाते-वही रखो
तो न मालूम कितना टैक्स लग जाए। सो मैं तो बाथरूम की दीवालों पर ही लिख कर काम चला लेता हूं। तुमने देखा होगा, इसीलिए बाथरूम में मैंने टेलीफोन लगा रखे हैं। सब सट्टा वहीं से करता हूं। यह जो टेलीफोन लगा रखा है आफिस में, यह तो ऐसे ही कुशल-समाचार पूछने को, इससे सट्टा करता ही नहीं। सट्टे का सारा काम बाथरूम से।
तभी मैंने कहा कि तभी मैं सोचता था कि आप बाथरूम में जाते हैं तो तीन-तीन घंटे, चार-चार घंटे... ! तो मैं भी सोचता था कि गजब कर दिया! मारवाड़ देश के वासी, चार-चार घंटे नहाते हो! मारवाड़ में लोटा भर पानी मिलना मुश्किल होता है। तुम्हें यह नहाना कहां से आ गया!
अरे! उन्होंने कहाः नहाने की फुर्सत किसको! महीने में एकाध-दो बार नहा लिया तो बहुत। क्योंकि टेलीफोन की घंटी बजती ही रहती है।
वे काफी बड़े दानी थे। उन्होंने बहुत दान किया, मगर टैक्स कभी नहीं दिया। उन्होंने कांग्रेस को भी बहुत दान दिया। और जब पंडित जवाहरलाल नेहरू प्रधानमंत्री हुए तो उनसे उन्होंने कहा कि अब आप कुछ टैक्स वगैरह का भी इंतजाम करें।
उन्होंने कहा कि टैक्स वगैरह की बात ही न करना आप। दान जितना चाहिए वह मैं दे सकता हूं। जो मांगो वह दान दे सकता हूं। टैक्स-वैक्स का कोई हिसाब हमारे पास नहीं है। खाते-बही ही नहीं रखते, हम कोई धंधा ही नहीं करते। उनका धंधा ही टेलीफोन था और दीवाल पर उनके खाते-बही थे।
मारवाड़ी को तो शायद शैतान भी धोखा न दे पाए, शैतान की भी जेब काट ले! मगर ये सब तुम्हारे भीतर बैठे हैं। जिप्सी भी तुम्हारे भीतर बैठा है, और मारवाड़ी भी तुम्हारे भीतर बैठा है, और सरदार भी तुम्हारे भीतर बैठा है। मैं ये बातें किन्हीं बाहर के लोगों के संबंध में नहीं कर रहा हूं, इस भ्रांति में मत पड़ना। नहीं तो लोग नाराज हो जाते हैं, मुकदमे चल जाते हैं। मोरारजी देसाई मुझ पर कम से कम एक सौ दो मुकदमे चला गए हैं, थोड़े-बहुत नहीं। मैं तो उनकी गिनती नहीं रख पाता, मैं तो कभी जाता नहीं अदालत। मैं सोचता था तीस-पैंतीस। तो एक दिन मैंने प्रवचन में कहा कि तीस-पैंतीस मुकदमे चला गए हैं। लक्ष्मी ने बताया कि आपको उन मुकदमों की संख्या भी नहीं मालूम। पूरे एक सौ दो मुकदमे हैं--छोटे-बड़े, प्रत्यक्ष-परोक्ष। अब वे चला गए हैं तो वे चलेंगे कुछ देर, घसिटेंगे कुछ देर। जरा-जरा सी बात में। अगर मैंने कुछ कह दिया तो किसी हिंदू की धार्मिक भावना को चोट पहुंच गई, बस

मुकदमा। ऐसी छुई-मुई धार्मिक भावना कोई धार्मिक भावना है! कि मुसलमान की धार्मिक भावना को चोट पहुंच गई, कि मैंने कह दिया काबा जाने से कुछ भी नहीं होगा, बस धार्मिक भावना को चोट पहुंच गई! तब तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। वह तो कबीर भी कह गए हैं। और नानक का क्या करोगे? नानक मिल जाएं तब तो उनको तुम जेलखाने में ही बंद करवा दो, क्योंकि वे तो काबे की तरफ पैर करके सो गए थे। और इतना ही नहीं, उनके पैर जब घुमाए गए तो जिस तरफ घुमाए गए पैर, उसी तरफ काबा घूम गया। यह काबा भी अपराधी है। इस पर भी धार्मिक भावना को चोट पहुंचाने की अदालत में घसीटन होनी चाहिए। क्योंकि काबा होकर कम से कम इतना तो ख्याल रखना था मुसलमानों का, कि एक हिंदू के पैरों की तरफ घूम रहे हो, अरे शर्म नहीं आती! काबा होकर और यह काम करते हो!
किसी के संबंध में कुछ कह दो और बस धार्मिक भावना को चोट पहुंच गई, मुकदमा शुरू! धार्मिक भावना का अर्थ भी समझते हो? और अगर ऐसी चोट पहुंचने लगी तो ये धार्मिक आदमी न हुए, ये तो बहुत छुई-मुई हो गए; ये तो बहुत कमजोर और दीन-हीन हो गए। जवाब दो! उत्तर दो! अगर तुम्हारी बात का खंडन हुआ है तो अपनी बात के समर्थन में कुछ कहो! कुछ नहीं बनता। बस धार्मिक बात को चोट पहुंच गई, अदालत में चले। अदालत क्या कर लेगी?
मैं फिर कहता हूंः काबा जाने से कुछ भी होने वाला नहीं है। क्योंकि अगर काबा जाने से कुछ होता होता तो इतने लोग तो हर वर्ष काबा जाते हैं, क्या हो जाता है? और काशी जाने से भी कुछ नहीं होता। अरे कितने गधे तो काशी में बसे हैं, क्या होता है? और गिरनार और शिखरजी जाने से भी कुछ नहीं होता। चले जा रहे हैं जैन तीर्थयात्री। लौट कर वैसे के वैसे घर आ जाते हैं। जान बची और लाखों पाए, लौट कर बुद्धू घर को आए! कुछ मिलता नहीं, कुछ पाते नहीं। भीतर जाने से कुछ मिलेगा। वहीं है काबा, वहीं काशी, वहीं गिरनार, वहीं शिखरजी, वहीं जेरुसलम--भीतर! और तुम्हारा चैतन्य ध्यान में जगे तो सरदार भी मिट जाएगा, मारवाड़ी भी मिट जाएगा, जिप्सी भी मिट जाएगा। शैतान ही मिट जाएगा! अंधकार ही मिट जाएगा!
मैं जो भी बातें कर रहा हूं, वे प्रतीक हैं। इसलिए कोई बुरा न माने, कोई नाहक कष्ट न ले। समझने की फिक्र करो।
लेकिन समझ तो जैसे खो गई है! नासमझी का हमने ठेका ले लिया है। हम व्यंग्य भी नहीं समझ सकते, मजाक भी नहीं समझ सकते। हंसना ही भूल गए हैं। हंसते भी हैं तो औरों पर हंसते हैं। और जब तक हम अपने पर हंसना न सीखें, तब तक जानना--हंसना हमें आया नहीं।
मैं जो भी तुमसे कह रहा हूं, तुम्हारे बाबत है--सिर्फ तुम्हारे बाबत।
और जब तुम हंसो तो ख्याल रखना, तुम अपने पर हंसो, किसी और पर नहीं। तुम अपने पर हंस सको तो समझो कि एक बड़ी घटना की शुरुआत हुई। तुम अपने पर हंस सको तो एक बड़े रूपांतरण का प्रारंभ है, एक बड़ी क्रांति की पहली किरण फूटनी शुरू हो गई। सुबह हुई, भोर हुई, रात गई! तुम अपने पर हंस सको तो समझो कि तुम अपने भी साक्षी होने लगे। तुम अपने पर हंस सको तो उसका अर्थ हुआ, अपने अहंकार से तुमने अपने को अलग करना शुरू कर दिया; तुम जानने लगे कि यह मैं नहीं हूं। इसलिए तो हंस सकते हो।
ये सारे व्यंग्य, जो मैं कभी उपयोग करता हूं, तुम्हारे संबंध में हैं।
इतना सदा स्मरण रखना है। तो तुम्हें लाभ होगा। यहां जो भी मैं कह रहा हूं, वह किसी का मनोरंजन नहीं है; जो भी मैं कह रहा हूं, वह मनोभंजन है।
आज इतना ही।

रहिमन धागा प्रेम का
तीसरा प्रवचन

रसो वै सः

पहला प्रश्नः ईश्वर को खोजना है। कहां खोजूं?

विद्याधर! ईश्वर की खोज की बात ही गलत है। स्वयं को खोजो, ईश्वर मिलेगा। स्वयं को खोजो, ईश्वर तुम्हें खोजेगा। स्वयं को न खोजा, लाख सिर पटको ईश्वर की तलाश में--और कुछ भी मिल जाए, ईश्वर मिलने वाला नहीं है। जो स्वयं को ही नहीं जानता, वह अधिकारी नहीं है ईश्वर को जानने का; उसकी कोई पात्रता नहीं है। पहले पात्र बनो।
आत्म-अज्ञान सबसे बड़ी अपात्रता है। वही तो एकमात्र पाप है। और सब पाप
तो उसी महापाप की छायाएं हैं। और सारे पापों से लोग लड़ते हैं--क्रोध से लड़ेंगे, काम से लड़ेंगे, लोभ से लड़ेंगे, द्वेष से लड़ेंगे, मद-मत्सर से लड़ेंगे--और एक बात भूल ही जाएंगे कि भीतर अंधकार है। और ये सांप-बिच्छू उस अंधकार में पलते हैं। भीतर रोशनी चाहिए, प्रकाश चाहिए, आत्मबोध चाहिए। ध्यान की बात पूछो, ईश्वर की चर्चा ही मत उठाओ। बीज बोए नहीं और फूलों
की बात करने लगे! कहां से फूल आएंगे?
हां, प्लास्टिक के फूल मिल सकते हैं बाजार में। मंदिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में, गिरजों में प्लास्टिक के भगवान हैं, आदमी के गढ़े हुए भगवान हैं। वे मिल सकेंगे। और अगर तुमने ज्यादा मेहनत की, बहुत कल्पना को दौड़ाया, तो तुम्हारी कल्पना में भी धनुर्धारी राम का दर्शन हो जाएगा। सपना है वह, इससे ज्यादा नहीं। कि मोर-मुकुट बांधे हुए कृष्ण खड़े हो जाएंगे। वह भी तुम्हारी कल्पना है, इससे ज्यादा नहीं।
जब तक तुम जागते नहीं हो भीतर, जब तक तुम भीतर सोए हुए हो--उसी निद्रा
को मैं आत्म-अज्ञान कह रहा हूं--तब तक तुम जो भी करोगे, गलत ही होगा। विद्याधर, ईश्वर को क्यों खोजना है? ईश्वर ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? और अगर ईश्वर तुमसे छिपना चाहता है... जरूर छिपना चाहता होगा, नहीं तो मिल जाता, खुद ही तुम्हारे द्वार पर दस्तक देता। आखिर यह ताली दोनों तरफ से बजनी है, यह आग दोनों तरफ लगनी है। एक हाथ से ताली नहीं बजती। अगर परमात्मा तुम्हें नहीं खोजना चाहता है और भागा-भागा फिरता है, तो तुम कितना ही खोजो, तुम्हारी बिसात कितनी है? तुम्हारे हाथ कितने दूर जा सकेंगे? तुम्हारी पहुंच की सीमा है और वह असीम है। वह अपने को छिपा-छिपा लेगा।
लेकिन लोग सोचते हैं यह बड़ी तात्विक बात है--ईश्वर को खोजना। अपने को खोजेंगे नहीं, ईश्वर को खोजने के लिए राजी हैं। असली सवाल यह हैः मैं हूं, तो क्या हूं? कौन हूं? इस एक प्रश्न के अतिरिक्त सारे प्रश्न व्यर्थ हैं, खोपड़ी की खुजलाहट से ज्यादा नहीं हैं।
ईश्वर को खोजना चाहते हो! ईश्वर यानी कौन? जब तक मिला नहीं, तब तक तो तुम्हें यह भी पता नहीं कि ईश्वर शब्द का अर्थ भी क्या होगा। ईसाइयों के लिए एक अर्थ है, हिंदुओं के लिए दूसरा है, मुसलमानों के लिए तीसरा है। जितने धर्म हैं, उतने अर्थ हैं। और एक-एक धर्म में कितने संप्रदाय हैं! और एक-एक संप्रदाय में कितने उप-संप्रदाय हैं! और उन सबकी अपनी-अपनी धारणा है। किस ईश्वर को खोजोगे? ये सारी धारणाएं मनुष्य द्वारा निर्मित हैं। और ईश्वर पाया जाता है तब, जब मनुष्य-निर्मित सारी धारणाएं गिरा दी जाती हैं, जब तुम धारणा-शून्य हो जाते हो, धारणा-मुक्त हो जाते हो।
यह ईश्वर की खोज उठती ही क्यों है तुम्हारे मन में? यह तुम्हारी खोज है? या कि पंडित-पुरोहित, साधु-महात्मा चूंकि ईश्वर की चर्चा करते रहते हैं, इसलिए यह बात तुम्हारे सिर में भी गूंजने लगती है?
रूस में तो कोई ईश्वर को नहीं खोजता, क्योंकि रूस में कोई ईश्वर की चर्चा का सवाल नहीं है। ईश्वर की बात करो तो लोग हंस देंगे। बीस करोड़ लोग यूं हंस देते हैं कि तुम मूर्खतापूर्ण बात कर रहे हो। क्योंकि प्रचार ईश्वर का नहीं किया जा रहा है। आज साठ साल से प्रचार बंद है। तो लोग भूल-

37

भाल गए, किसी को नहीं खोजना ईश्वर को। रूस की तो छोड़ दो, तुम्हारे पड़ोस में ही जैन रहते हैं, वे ईश्वर को नहीं खोजते, क्योंकि जैन धर्म में ईश्वर के लिए कोई स्थान नहीं है, कोई स्रष्टा नहीं है। बौद्ध ईश्वर को नहीं खोजते। सारा एशिया बौद्ध है।
तो तुम खोजते क्या हो? यह खोज तुम्हारी है? यह प्यास तुम्हारी है? जैसे प्यासे को पानी की तलाश होती है, ऐसी यह तलाश है?
नहीं, ऐसी यह तलाश नहीं है। यह तलाश ऐसी है जैसे अखबार में विज्ञापन
पढ़ कर पैदा हो जाती है। क्षण भर पहले तक जरा तुम्हें कोई अड़चन न थी; अखबार में विज्ञापन पढ़ लिया किसी नई चीज का, जिसकी तुम्हें अभी क्षण भर पहले तक कोई जरूरत नहीं थी, और अब अचानक तुम्हें लगता है कि इसके बिना जीना बेकार है। तुम व्यर्थ ही जी रहे हो। कि जब तक तुमने इस नाम की सिगरेट नहीं पी, क्या खाक जीए! जब तक तुमने इस नाम की शराब नहीं पी, तब तक तुम पैदा ही क्यों हुए! जब तक तुमने यह मशीन न खरीदी, तब तक अकारथ है तुम्हारा जीवन!
पहले अर्थशास्त्री कहते थेः जिस चीज की मांग होती है, बाजार में उसे पैदा करने वाले लोग तैयार हो जाते हैं, उसकी पूर्ति करने वाले लोग तैयार हो जाते हैं। अब हालात बदल गए। अब पहले लोग पूर्ति कर देते हैं और फिर धुआंधार विज्ञापन करते हैं और मांग पैदा हो जाती है। पहले मांग होती थी, फिर पूर्ति होती थी। अब मामला उलट गया है। अब विज्ञापन की कला बहुत विकसित हो गई है। अमरीका जैसे देशों में उत्पादन दो-तीन साल बाद शुरू होता है, विज्ञापन दो-तीन साल पहले शुरू हो जाता है। इसके पहले कि बाजार में कोई चीज आए, तीन साल तक धुआंधार प्रचार चलता है। लोगों की खोपड़ियां भनभनाने लगती हैं उस प्रचार से। अखबार में वही पढ़ते हैं, कि जिंदगी का मजा ही और है कोकाकोला के संग! अब जिंदगी में कौन मजा नहीं लेना चाहता? और किसकी जिंदगी में मजा है? सो सोचते हैं, हो न हो, कोकाकोला में मजा है! कौन जाने कहां छिपा हो! करो धुआंधार प्रचार। अखबार में हो, बाजार में निकलो तो बड़े-बड़े बोर्ड लगे हों। सिनेमा में जाओ तो वहां विज्ञापन, रेडियो पर सुनो तो वहां विज्ञापन, टेलीविजन पर देखो तो वहां विज्ञापन।
और जो लोग विज्ञापन तैयार करते हैं, ढंग से करते हैं। जो आदमी कोकाकोला पी रहा है विज्ञापन में, उसके चेहरे पर ऐसी मुस्कुराहट मालूम होती है कि बुद्धों को ईर्ष्या हो, कि महावीर झेंप कर खड़े हो जाएं--कि हमने भी अकारथ जीवन गंवाया, कोकाकोला भी न पीया! सुंदर स्त्रियां उन लोगों की तरफ देखती हैं--ललचाई नजरों से--जो कोकाकोला पी रहे हैं। अरे जो कोकाकोला पीता है, उसके शरीर में खून थोड़े ही, अमृत बहता है। वह बूढ़ा थोड़े ही होता है, वह सदा जवान रहता है। उसमें जवानी की गंध होती है, ताजगी होती है। हाथ में कोकाकोला की बोतल, चेहरे पर मुस्कुराहट, जवानी के रंग-ढंग! जहां निकल जाता है वहीं स्त्रियां एकदम उसकी तरफ देखने लगती हैं, लौट-लौट कर देखती हैं, झुंड बना कर खड़ी हो जाती हैं। तुम्हारा भी दिल होता है कि है कुछ राज कोकाकोला की बोतल में!
ऐसा ही तुम्हारा ईश्वर है। चल रहा है प्रचार सदियों से। तुम्हें ईश्वर से क्या लेना-देना! तुमने अभी अपनी तक तलाश नहीं की और तुम परम सत्य को खोजने चले! अपना सत्य देखे बिना? प्रचार है लेकिन, भयंकर प्रचार है। और हजारों साल से चल रहा है। हर शास्त्र दोहरा रहा है कि आनंद ही आनंद है जिसने ईश्वर को पा लिया उसे; उसके लिए शाश्वत आनंद है; उसके लिए बैकुंठ के सुख हैं, मोक्ष का मजा है। और तुम्हारी भी लार टपकने लगती है, तुम भी ललचा जाते हो। तुम भी सोचते होः जब इतने महात्मा कहते हैं तो गलत न कहते होंगे। प्रचार का एक ही परिणाम होता हैः लोग सम्मोहित हो जाते हैं। धुआंधार अगर एक ही बात दोहराई जाए, बार-बार सदियों तक, तो ऐसा कौन होगा नासमझ जो खोजने न निकल पड़े? नहीं तो तुम्हें ईश्वर की कोई प्यास है? सच, अपने में तलाशो। अगर औरों ने तुमसे ईश्वर के बाबत न कहा होता तो तुम ईश्वर को खोजते? अगर पंडित-पुजारी निरंतर विज्ञापन न कर रहे होते तो तुम ईश्वर को खोजते?
बहुत बड़ा यहूदी धनपति हुआः रथचाइल्ड। वह कभी विज्ञापन नहीं देता था। पुराने ढंग का धनपति था। नई हवा न लगी थी। एक विज्ञापन-विशेषज्ञ उसके पीछे पड़ा था। वह विज्ञापन मांगने वाले लोगों को धक्के देकर निकलवा देता था

अपने दफ्तर से। वह कहता थाः मेरा काम बिना विज्ञापन के ही अच्छा चल रहा है। मैं क्यों फिक्र करूं? लेकिन इस विशेषज्ञ ने भी तय कर लिया था कि अगर इस आदमी को विज्ञापन में नहीं उलझाया तो हमारी विशेषज्ञ होने की बात ही बेकार है। वह एक दिन सुबह-सुबह ही पहुंच गया। ऐसे नहीं पहुंचा जैसे कि विज्ञापन लेने गया हो। ऐसे पहुंचा कि जैसे किसी और काम से आया है। दफ्तर में नहीं गया, घर गया। रथचाइल्ड बगीचे में टहल रहा था। वह अंदर गया, उसके फूलों की प्रशंसा की, उसके बगीचे की प्रशंसा की। रथचाइल्ड भी उत्सुक हो गया। उसे साथ लेकर अपना बगीचा दिखाया, यह भूल ही गया कि यह आदमी कौन है। पूछाः कैसे आए?
उसने कहाः आपके पड़ोस में नया-नया आया हूं, सोचा आपसे परिचय कर लूं। और इससे शुभ घड़ी क्या होगी, सुबह-सुबह आप बगीचे में थे तो मैं चला आया!
पूछाः काम क्या करते हो?
तो उसने कहा कि विज्ञापन-विशेषज्ञ हूं।
रथचाइल्ड थोड़ा चौंका। लेकिन अब देर हो चुकी थी। और यह कोई वक्त भी नहीं था इसे धक्के देकर निकलवाने का। यह विज्ञापन लेने आया भी नहीं था। तो उसने पूछा, रथचाइल्ड ने, कि ये विज्ञापन मांगने वाले मेरे पीछे पड़े रहते हैं, इसमें कुछ सार है कि यह बकवास है? क्योंकि मैं तो बिना विज्ञापन के खूब कमाया हूं, क्या जरूरत? आप तो विशेषज्ञ हैं, आप क्या कहते हैं? आपकी क्या राय है?
तभी पास की पहाड़ी पर खड़े हुए चर्च की घंटियां बजने लगीं। उस विज्ञापन-विशेषज्ञ ने कहा कि सुनिए, यह चर्च कितना पुराना है?
रथचाइल्ड ने कहाः होगा कम से कम डेढ़ सौ वर्ष पुराना।
उस विज्ञापन-विशेषज्ञ ने कहाः लेकिन अभी भी यह रोज घंटी बजाता है, कि लोग भूल न जाएं। रोज सुबह घंटी बजाता है, ताकि गांव में लोगों को याद रहे कि अभी चर्च है। स्मरण दिलाता है। यही तो विज्ञापन का राज है कि लोगों को याद दिलाते रहो, लोग भूल न जाएं। जब आपने बिना विज्ञापन के इतना कमाया, तो जरा सोचिए तो कि विज्ञापन से कितना न कमाया होता!
रथचाइल्ड ने पहली दफा विज्ञापन देना शुरू किया। इस आदमी ने उसका दिल जीत लिया। और इसने जो तरकीब बताई, वह बताईः चर्च भी, ईश्वर का घर भी, बिना विज्ञापन के नहीं जीता। वह जो मंदिर में झांझ बजती है, आरती होती है, चर्च में घंटी बजती है, मंत्रोच्चार होता, अखंडपाठ होता, कीर्तन होता, भजन होता--वे सब पुराने ढंग हैं खबरें पहुंचाने के गांव में, कि भूल मत जाना, हम हैं! और अगर सतत इस तरह की बात तुम्हारे ऊपर पड़ती रहे, पड़ती रहे, पड़ती रहे, तो कभी न कभी तुम्हारे मन में भी सवाल उठेगाः इतने लोग खोजे हैं, हम भी खोजें!
विद्याधर, लेकिन जिस खोज का जन्म तुम्हारी अंतरात्मा से न हुआ हो, उस खोज में सफलता नहीं मिलेगी। परमात्मा की अभीप्सा है? या बस एक उधार आकांक्षा पैदा हो गई है? लोग नकलची हैं। और लोग खोज रहे हैं तो हमें भी खोजना चाहिए। परमात्मा इस तरह नहीं खोजा जा सकता।
मेरा सुझाव तो हैः तुम परमात्मा की फिक्र ही छोड़ो। परमात्मा से क्या तुम्हें लेना-देना? तुम अपनी तो फिक्र कर लो। और एक बात जरूर मैं तुमसे कहता हूंः जिन्होंने अपनी फिक्र कर ली, जिन्होंने अपने भीतर का घर सजा लिया, वह मेहमान अपने आप आ जाता है। तुम तैयार हो जाओ, वह तुम्हें खोजता आएगा, आना ही चाहिए! अपरिहार्य है, अनिवार्य है। तुम पात्र हो जाओ और परमात्मा उस पात्र में न बरसे, यह कैसे हो सकता है? यह तो शाश्वत नियम के विपरीत हो जाएगी बात। जो भी जिस बात के लिए पात्र है, उसे मिलती ही है वह। इस जगत में तुम जिस बात के योग्य हो, उसका मिलना सुनिश्चित है। यह जगत बहुत न्यायपूर्ण है।
आदमी ने एक व्यवस्था बना ली है समाज की, जो अन्यायपूर्ण है। लेकिन परमात्मा आदमी की व्यवस्था के भीतर नहीं है। परमात्मा का तो अर्थ ही होता हैः शाश्वत नियम, ऋत, ताओ, धर्म। तुम तैयार हो जाओ। तुम जरा भीतर से कूड़ा- कर्कट साफ करो। तुम कोमल बनो, निर्मल बनो। तुम निर्दोष हो जाओ। तुम्हारे भीतर जगह भी तो हो! तुम्हारा सिंहासन खाली भी तो हो! आ जाएगा परमात्मा तो बिठाओगे कहां? तब सोचोगेः आज ही घर में बोरिया न हुआ! बोरिया भी नहीं होगा

बिछाने को। उसे बिठाओगे कहां? मालिक को बुला रहे हो तो कम से कम घर की साज-संवार तो कर लो। साधारण मेहमान भी घर में आते हैं तो हम तैयारी करते हैं, सफाई करते हैं, रंग-रोगन करते हैं। परमात्मा को निमंत्रण देना चाहते हो, उसके पहले अपने भीतर इतना आकाश तो पैदा कर लो कि वह विराट समा सके! अनंत को बुलाते हो, कम से कम शांत तो हो जाओ, मौन तो हो जाओ। सत्य को बुलाते हो, कम से कम झूठ का कचरा तो हटा दो। प्रकाश को बुलाते हो और अंधेरे से भांवरें पाड़ रखी हैं; अंधेरे के साथ विवाह रचाया हुआ है; अंधेरे में जी रहे हो; अंधेरे में तुम्हारा सारा न्यस्त स्वार्थ जुड़ा हुआ है।
सच तो यह है कि परमात्मा अगर आज तुम्हारे द्वार पर आकर खड़ा हो जाए तो तुम पीछे के दरवाजे से निकल भागोगे। मैं तुमसे यूं ही नहीं कह रहा हूं; यही होगा। तुम निकल भागोगे एकदम। उसका आमना-सामना कैसे करोगे? उसके सामने आंख उठाने का बल कैसे पाओगे? वह तुम्हें आलिंगन में भरना चाहेगा। तुम पाओगे अपने को इस योग्य कि उसकी बांहों में समा जाओ?
इसलिए मैं ईश्वर की खोज के लिए बहुत मूल्य नहीं देता। मैं तो ठीक जगह
से खोज शुरू करना चाहता हूं। पूछो कि मैं कौन हूं, इसे कैसे जानूं?
लेकिन पंडित-पुजारियों को इसमें उत्सुकता नहीं है; क्योंकि मैं कौन हूं, इसमें न तो पूजा पैदा होगी, न सत्यनारायण की कथा पैदा होगी, न रामायण पैदा होगी, न मंदिर बन सकता है इसके आस-पास, न मस्जिद खड़ी हो सकती है, न कुरान, न गीता, न बाइबिल, कुछ नहीं। मैं कौन हूं, यह सीधा-सादा अस्तित्वगत प्रश्न है। तुम खुद ही निपटाओगे तो निपटेगा। किसी दूसरे का मध्यस्थ बनने का भी उपाय नहीं। हां, ईश्वर को खोजना है तो तुम्हें पंडित के पास जाना ही पड़ेगा; उससे व्याख्या पूछनी पड़ेगी, ईश्वर के लक्षण पूछने पड़ेंगे, ईश्वर तक जाने का मार्ग पूछना पड़ेगा--कैसा है ईश्वर? कहां है ईश्वर?
विद्याधर, मैं कोई पंडित नहीं हूं, कोई पुरोहित नहीं हूं। मैं तुम्हें पूजा-उपासना सिखाने के लिए नहीं हूं। तुम यह प्रश्न और जगह भी पूछते रहे होओगे। हां, तुम शंकराचार्य से पूछोगे पुरी के, तो जरूर उत्तर मिलेगा। क्योंकि शंकराचार्य का और उपयोग क्या है? ईश्वर को जितना अगम्य बता सकें, जितना दुर्गम बता सकें, जितना दूर बता सकें, और जितने लंबे रास्ते की चर्चा कर सकें--उतना ही उनके लिए उपयोगी है। न तुम उतने लंबे रास्ते पर कभी जाओगे...
और मजा यह है कि ईश्वर दूर नहीं है, पास से भी पास है; तुम्हारे हृदय की धड़कन में धड़क रहा है; तुम्हारी श्वासों में प्रवाहित है। मगर तुम अपने से अपरिचित हो, इसलिए उससे अपरिचित हो। किसी मध्यस्थ की कोई आवश्यकता नहीं है।
लेकिन लोग पूछते हैं इस तरह के प्रश्न और सोचते हैं, ये प्रश्न तात्विक हैं। ये प्रश्न तात्विक नहीं हैं। ये प्रश्न थोथे हैं, अतात्विक हैं।

कभी की जा चुकीं नीचे यहां की वेदनाएं,
नये स्वर के लिए तू क्या गगन को छानता है?

बताएं भेद क्या तारे? उन्हें कुछ ज्ञात भी हो।
कहे क्या चांद? उसके पास कोई बात भी हो।
निशानी तो घटा पर है, मगर किसके चरण की?
यहां पर भी नहीं यह राज कोई जानता है।

सनातन है, अचल है, स्वर्ग चलता ही नहीं है; तृषा की आग में पड़ कर पिघलता ही नहीं है।
मजे मालूम ही जिसको नहीं बेताबियों के, नई आवाज की दुनिया उसे क्यों मानता है?

धुओं का देश है नादान! यह छलना बड़ी है। नई अनुभूतियों की खान वह नीचे पड़ी है।
मुसीबत से बिंधी जो जिंदगी, रोशन हुई वह,

किरण को ढूंढ़ता, लेकिन, नहीं पहचानता है।

गगन में तो नहीं, बाकी जरा कुछ है अनल में।
नये स्वर का भरा है कोष पर, अब तक अतल में।
कढ़ेगी तोड़ कर कारा अभी धारा सुधा की,
शरासन को श्रवण तक तू नहीं क्यों तानता है?

नया स्वर खोजने वाले! तलातल तोड़ता जा।
कदम जिस पर पड़ें तेरे, सतह वह छोड़ता जा।
नई झंकार की दुनिया खतम होती कहां पर?
वही कुछ जानता, सीमा नहीं जो मानता है।

वहां क्या है कि फव्वारे जहां से छूटते हैं? जरा सी नम हुई मिट्टी कि अंकुर फूटते हैं? बरसता जो गगन से, वह जमा होता मही में,
उतरने को अतल में क्यों नहीं हठ ठानता है?

हृदय जल में सिमट कर डूब, इसकी थाह तो ले।
रसों के ताल में नीचे उतर अवगाह तो ले।
सरोवर छोड़ कर तू बूंद पीने की खुशी में,
गगन के फूल पर शायक वृथा संधानता है।

आकाश की तरफ देख रहे हो--और वह भीतर छिपा है। गगन में खोज रहे हो, चांद-तारों से पूछ रहे हो। अरे अपने से पूछो! उत्तर आएगा तो तुम्हारे अंतर से आएगा, अंतर्तम से आएगा। वहीं हैं वेद, वहीं है कुरान, वहीं है बाइबिल। और सब तो आदमी की बौद्धिक कलाबाजियां हैं। मन से छूटो। मन की सतत उलझनों से छूटो। धीरे-धीरे मन के साक्षी बनो। मन को देखो। लड़ो भी नहीं और मन के साथ चलो भी नहीं। सिर्फ द्रष्टा मन के! और तुम चकित हो जाओगे। जैसे-जैसे द्रष्टा का भाव थमेगा, ठहरेगा, सघन होगा, वैसे-वैसे मन विरल होगा, विलीन होगा, विसर्जित होगा। जिस दिन तुम्हारा साक्षी-भाव, द्रष्टा-भाव पूर्ण हो जाएगा, उसी दिन मन शून्य हो जाएगा। बस मन शून्य हुआ, साक्षी पूर्ण हुआ, कि तुम आ गए मंदिर के द्वार पर, तुम आ गए परमात्मा के द्वार पर! वही तुम्हें पुकार दे देगा। वही तुम्हें आलिंगन में ले लेगा। मत खोजो उसे। सिर्फ पात्र बनो।
खोजेगी बुद्धि। पात्र बनना होगा--हृदय से। ये दोनों अलग-अलग बातें हैं। खोजना तो बुद्धि का धंधा है। इसलिए बुद्धि विज्ञान में ठीक है। विज्ञान में खोज चलती है। हृदय खोजता नहीं। हृदय स्त्रैण है; प्रतीक्षा करता है, प्रार्थना करता है। बुद्धि आक्रामक है, करीब-करीब बलात्कारी है। इसलिए विज्ञान ने प्रकृति पर बलात्कार कर दिया है। बुद्धि पुरुष है और हृदय स्त्रैण है। हृदय ग्राहक है। हृदय ऐसे है, जैसे स्त्री का गर्भ।
तुम बुद्धि से हृदय की तरफ सरको। यह सोच-विचार छोड़ो कि ईश्वर कहां है? क्या है? कैसे खोजूं?
विद्याधर, यह सब विद्या भूलो। यह ज्ञान सब उधार और बासा है। जानो कि मैं अज्ञानी हूं। जानो कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं, तो बुद्धि से छुटकारा हो जाएगा। छोटे बच्चे की भांति निर्दोष बनो और सरको हृदय की तरफ, ताकि तुम आश्चर्य से भर जाओ; ताकि तुम, चारों तरफ यह जो सौंदर्य है प्रकृति का, इसे देख कर अवाक हो जाओ; ताकि तुम्हारे भीतर संगीत उठे, नृत्य उठे, गीत उठे; ताकि तुम्हारे भीतर गुलाल उड़े, रंग उड़े; ताकि तुम्हारे भीतर उत्सव शुरू हो! उसी उत्सव में, उसी वसंत के क्षण में परमात्मा का आगमन होता है। साक्षी बनो और पूछो कि मैं कौन हूं?
और मुझसे मत पूछो। यह तुम्हें पूछना है अपने से ही। क्योंकि मैं जो भी उत्तर दूंगा, वह तुम्हारे भीतर ज्ञान बन जाएगा; वह बुद्धि का हिस्सा हो जाएगा; स्मृति में संजो कर तुम उसे रख लोगे। मेरा उत्तर काम नहीं आएगा।
पूछना है अपने से।

एक छोटा सा ध्यान ही करो। जब भी समय मिल जाए, शांत बैठ कर, एक ही प्रश्न अपने भीतर पूछोः मैं कौन हूं? पहले शब्दों में पूछो कि मैं कौन हूं? फिर धीरे-धीरे शब्द छोड़ दो और सिर्फ भाव रह जाए भीतर कि मैं कौन हूं? एक प्रश्नवाचक अवस्था रह जाए कि मैं कौन हूं? जब तक शब्दों में पूछोगे, बुद्धि सक्रिय रहेगी। जब शब्द छोड़ दोगे, सिर्फ भाव रह जाएगा कि मैं कौन हूं, तो हृदय में प्रश्न उतर जाएगा। और वहीं से उत्तर है। वहीं से झरना फूटेगा। और उसकी एक बूंद भी तुमने चख ली कि तुमने अमृत का स्वाद जाना। और वहीं से तुम पात्र बनोगे। वहीं से--केवल वहीं से--जब भी किसी ने जाना है तो जाना है!
हां, पंडित बनना हो तो बात और। पंडित बनना तो बड़ा सस्ता है। तोते भी पंडित हो जाते हैं। सिवाय तोतों के पंडित और कौन होता है? पांडित्य से बचो।
विद्याधर, तुम्हारा नाम खतरनाक है। अपने अज्ञान को स्मरण करो। कहीं
इस नाम में भरोसा न कर लेना। नाम बड़े धोखे दे रहे हैं। हम तो सुंदर से सुंदर नाम दे देते हैं बच्चों को और बच्चे उन पर भरोसा कर लेते हैं। वही उनकी अकड़ बन जाती है। वे यह मान कर ही जीने लगते हैं कि शायद ऐसा ही है। अनाम पैदा होते हैं और एक नाम का लेबल चिपका देते हैं। और स्वभावतः नाम देंगे तो अच्छे ही देंगे। नाम देने में कोई कंजूसी करता है! प्यारे-प्यारे नाम हम दे देते हैं। और फिर उन नामों पर भरोसा हो जाता है। फिर उन नामों के पीछे हम अटके रह जाते हैं।
जिन्होंने जाना है, उन्होंने कहा हैः दो चीजें ही आदमी को अटकाती हैं--नाम और रूप। नाम भी झूठ, रूप भी झूठ। नाम मन में बैठ जाता है और रूप देह है, शरीर है। तुम दोनों नहीं हो। न तुम नाम हो, न तुम रूप हो। तुम अनाम हो, अरूप हो। और तुमने अगर अपने अनाम-अरूप को अनुभव कर लिया तो वही तो परमात्मा का प्रथम अनुभव है।

दूसरा प्रश्नः आप कहते हैं संन्यासी को सृजनात्मक होना चाहिए। सो मैंने काव्य-सृजन शुरू कर दिया है। मगर कोई मेरी कविताएं सुनने को राजी नहीं है। आपका आशीष चाहिए।

सीता मैया! यह तो खतरनाक काम शुरू किया। कुछ और सृजन करो। कुछ सृजन ऐसा करो कि जिसमें दूसरों पर हमला न हो। यह कविता में तो आक्रमण है, क्योंकि कविता का सृजन किया तो अब श्रोता चाहिए। मगर श्रोता को भी तो बेचारे को आत्मरक्षा का अधिकार है।
एक आदमी कुएं में गिर गया था, चिल्ला रहा थाः बचाओ-बचाओ! और एक आदमी घाट पर ही खड़ा था कुएं के, नीचे झांक कर देख रहा था, कुछ बोल नहीं रहा था। दूसरा आदमी आया, उसने कहा कि खड़े देख क्या रहे हो? अरे वह मर रहा है आदमी, उसको बचाते नहीं?
उसने कहाः वह खुद ही कूदा है।
तो दूसरे ने पूछाः कूदा क्यों?
उसने कहा कि मैं कवि हूं, मैं उसको अपनी कविता सुना रहा था। वह एकदम कूद गया कुएं में, अब चिल्ला रहा है बचाओ-बचाओ!
दूसरे ने कहाः तुम फिक्र मत करो, मैं भी कवि हूं। मैं कुएं में जाकर सुनाऊंगा। वह भी कूद पड़ा। उसने कहा कि मैं उसको वहीं कविता-पाठ सुनाऊंगा। क्या फिक्र है! अगर कुएं में कूद गया तो क्या चिंता है! अच्छा ही है, भाग भी नहीं सकता। जितना दिल होगा उतनी सुनाएंगे।
मैंने तो सुना है, एक गांव में इतने कवि हो गए कि हालत बदलनी पड़ी। मतलब श्रोताओं को बिठालना पड़ा मंच पर और कवि बैठे भवन में। और श्रोताओं को शाल भेंट करनी पड़ी और गजरे पहनाने पड़े और इक्कीस-इक्कीस रुपया... अरे फूल नहीं तो पंखुड़ी भेंट में देना पड़ी। और फिर भी द्वार-दरवाजे बंद करके पहलवानों को खड़ा रखना पड़ा कि कोई भाग न जाए। फिर डट कर चला कवि-सम्मेलन।
सृजन कुछ ऐसा करो कि किसी दूसरे का विध्वंस न हो। अब अगर दूसरे सीता मैया की कविता नहीं सुनना चाहते, तो मैं कैसे आशीष दूं? तुम्हारी जितनी

मौज है उतनी कविता करो, मगर खुद ही पढ़ो। खुद ही गुनगुना लिए एकांत में, खुद ही अपनी पीठ थपथपा लिए। थोड़ा अहिंसात्मक भी तो होना ही चाहिए।
प्लेटो ने, यूनान के बहुत बड़े विचारक ने, कल्पना की है कि समाज कैसा होना चाहिए--अपने प्रसिद्ध ग्रंथ रिपब्लिक में। उसमें उसने सबको प्रवेश दिया है, कवियों को भर नहीं। पहले जब मैंने यह बात पढ़ी तो मैंने कहा कि यह तो बात ठीक नहीं हुई। क्यों कवियों के साथ यह विरोध?
लेकिन फिर जब कवियों को मैंने सुना तो मजबूरन मुझे प्लेटो से राजी होना पड़ा। मैंने कहा कि उसने बात पते की कही है। कविता में कोई हर्जा नहीं है, मगर सौ कवियों में एकाध कवि होता है, निन्यानबे बड़े खतरनाक लोग होते हैं। सिर खा जाते हैं दूसरों का। तुकबंदी को कविता समझ लेते हैं। और तुकबंदी करने में कोई कठिनाई है?
एक कवि के घर में एक चोर घुस गया रात। कवि ने तो चोर को पकड़ लिया। कहा
कि बैठो। अब आ ही गए तो सुन कर ही जाना पड़ेगा।
चोर ने कहाः भैया हाथ जोड़ते हैं, मुझे जाने दो। मुझे दूसरे भी काम करने हैं। और मैं गलती से आ गया, अब कभी नहीं आऊंगा। मुझे क्या पता कि यहां कवि रहता है! वैसे भी कवियों के घर में रखा क्या है! मेरी भूल का मुझे इतना दंड मत दो।
मगर कवि कहीं सुनने वाला था! आखिर उसने कहा कि कम से कम मुझे घर फोन तो
कर लेने दो--उस चोर ने कहा। उसने पुलिस-स्टेशन फोन किया कि हलो-हलो, मैं फलां-फलां जगह से बोल रहा हूं। इस घर में चोर घुस आया है। फौरन पुलिस भेजिए।
इंस्पेक्टर ने कहाः अभी भेजते हैं। आप कौन हैं?
उसने कहा कि मैं चोर हूं।
इंस्पेक्टर हैरान हुआ। उसने कहाः यह पहला मौका है जीवन में कि चोर फोन कर रहा है।
अरे--उसने कहा--यह मौका भी पहला है कि कवि के घर में फंस गया हूं। इससे
तो हवालात बेहतर। यह रात भर में मार ही डालेगा। इसने तो इतनी बड़ी पोथी खोल ली है, द्वार-दरवाजे बंद कर दिए हैं।
बहुत हाथ-पैर जोड़े, गिड़गिड़ाया, तो कवि ने कहाः अच्छी बात है, जा।
उसने कहाः कभी आऊंगा फुर्सत में, सुन लूंगा आपकी, मगर अभी मेरे धंधे
का समय है।
मगर उसने कहाः कुछ तो लेता जा। कवि ने कहाः कुछ लेता जा, घर पढ़ लेना।
तो उसने पूछाः क्या-क्या है इसमें?
तो उसने कहाः खंडकाव्य है, महाकाव्य है। तुक्तक हैं, मुक्तक हैं।
उसने कहाः तुम मुक्तक ही दे दो। क्योंकि मैं मुक्त होना चाहता हूं।
सीता मैया, वह तो मैं ठीक कहा हूं कि संन्यासी को सृजनात्मक होना चाहिए। जो भी करो, उसे इतने प्रेम से करो, इतने आह्लाद से करो कि जैसे सारा जीवन उसी कृत्य को करने के लिए बना हो। जैसे कल होगा ही नहीं। और आज जो कर रहे हो, उसमें अपने को पूरा उंडेल देना है। जो भी करो, उसे इतने उत्सव और अनुग्रह-भाव से करो कि परमात्मा ने इतना किया है हमारे लिए--परमात्मा कहो, अनजान प्रकृति कहो, अज्ञात ऊर्जा कहो, जो भी नाम देना चाहते हो, अ ब स, कोई भी नाम ठीक है--इतना तय है कि कोई अज्ञात ऊर्जा बहुत कुछ कर रही है। अन्यथा हम कैसे होते? चांद कैसे होता? तारे कैसे होते? वृक्षों में फूल कैसे लगते? पक्षियों के कंठों में गीत कैसे जन्मते? यह जो दूर से कोयल कूकने लगती है! यह जो पपीहा पुकारता है पी-कहां! यह सारा सौंदर्य! यह एक-एक तितली के पंखों पर ऐसा रंग! एक विराट सृजनात्मक शक्ति काम कर रही है। तो तुम जो भी करो, इसे अपना अनुदान समझो--इस विराट सृजनात्मक शक्ति के साथ सहयोग का। मेरे देखे, परमात्मा अगर स्रष्टा है, तो तुम जब भी कोई स्रष्टा की अवस्था में पहुंचते हो, तो परमात्मा से तुम्हारा तालमेल हो जाता है। इसलिए सृजन से बड़ी कोई प्रार्थना नहीं है। रोटी बनाओ, सीता मैया, चलेगा। इसी ख्याल से बनाओ कि रामजी के लिए बना रही हो। जिसके लिए भी बना रही हो, उसके भीतर ही राम है। अब धनुर्धारी राम के लिए मत बैठी रहो। अब आजकल कहां धनुर्धारी राम मिलेंगे? हो सकता है सूट-पैंट पहने हुए, टाई वगैरह लगाए आएं। कोई फिक्र नहीं। किसी शक्ल में आएं, पहचानो।

एक गांव में बड़ा उपद्रव हो गया। मैं उस गांव में ठहरा हुआ था। गांव के कालेज के लड़कों ने एक ड्रामा किया हुआ था। झगड़ा हो गया, डंडे चल गए। छोटी सी बात पर! क्योंकि लड़कों ने तो एक हास्य-नाटक का आयोजन किया था। हंसी की बात थी। लेकिन भारत तो हंसना ही भूल गया है। भारत तो ऐसा गंभीर हुआ है! ब्रह्मज्ञानियों ने ऐसी कुटाई-पिटाई की है भारत की! ब्रह्मज्ञानी ऐसा कचरा लाद गए हैं लोगों के ऊपर! ओंठ सी गए हैं, हंस नहीं सकते। हंसना कुछ अधार्मिक मालूम होता है। वह तो उन्होंने मजाक की थी। मगर गांव के लोग तो समझे नहीं। झगड़ा हो गया। मजाक यह थी कि रामचंद्रजी सूट पहने हुए हैं, टाई बांधे हुए हैं, बगल में सोला हैट दबाए हुए हैं। और यहां तक भी तो ठीक था, सीता मैया एड़ीदार जूते पहने हुए हैं और सिगरेट पी रही हैं! बस गांव ने कहा कि हद्द हो गई, सीता मैया और सिगरेट पी रही हैं? मारो इनको! परदे फाड़ दिए, पिटाई-कुटाई हो गई। सीता मैया की पिटाई हो गई! रामचंद्रजी की छीन ली टाई और कहा कि शर्म नहीं आती?
धनुर्धारी राम होते वे--वही सज्जन--तो ये ही उनके पैर छूते। गांव में जहां भी रामलीला होती है, जो भी राम बन जाए, गांव का लफंगा से लफंगा आदमी राम बन जाए... और लफंगों के सिवाय और कौन बनता है? किसको पड़ी है फुर्सत? किसको समय है? तो लोग पैर छूते हैं, चढ़ौतरी चढ़ाते हैं, पूजा करते हैं, आरती उतारते हैं। और जानते हैं भलीभांति कि गांव का लफंगा है। यह ही उपद्रव कल करेगा और कल कर रहा था उपद्रव, अभी रामचंद्रजी बना हुआ बैठा है रथ में, शोभायात्रा निकल रही है, बारात जा रही है जनकपुरी! भलीभांति लोग जानते हैं कि सीता मैया मैया ही नहीं हैं; यह भी गांव का एक छोकरा बना बैठा है। मगर उनकी भी पूजा चल रही है!
मगर वहां लोग गुस्से में आ गए, दंगा-फसाद हो गया। छोटी सी बात पर। और ज्ञानी तुमसे कहते रहे कि सब में राम देखो। तो टाई बांधे हुए राम में कोई अड़चन है? टाई क्या राम को खत्म कर देगी? टाई का इतना बल? ये निर्बल के बल राम! टाई ने मारा! टाई ने बिगाड़ा!
अरे सीता मैया ने पी ली सिगरेट तो पी ली। थोड़ा निकोटिन चला गया भीतर
तो क्या बिगड़ता है? कोई टिका थोड़े ही रहता है! चौबीस घंटे में शरीर के बाहर हो जाता है। इतनी क्या अड़चन?
मगर अड़चन हो गई। और एड़ीदार जूते, उस पर बहुत एतराज हो गया कि यह कैसी सीता मैया!
तो मैं तुमसे कहूंगाः चाहे रोटी बनाओ, चाहे कपड़े सीओ, चाहे घर साफ करो--राम के लिए ही कर रही हो।
कबीर से कोई पूछता था कि आप कपड़ा बुनते हैं, अब बुद्धत्व को पाकर? अब
तो बंद कर दें! उनके शिष्य कहतेः अब हम राजी हैं, जो आपको चाहिए। हमारे रहते आप क्यों कपड़ा बुनें?
कबीर कहतेः लेकिन नहीं, रामजी मेरे कपड़े बहुत पसंद करते हैं। और जब गांव में जाते थे बेचने कबीर अपने कपड़े तो हर ग्राहक को कहते थे कि राम जी, ले जाओ। रामजी के अलावा कोई था ही नहीं। जो भी आया वही राम है। राम ही है, और तो कुछ है नहीं।
मुझे तो कबीर की इस बात में ज्यादा अर्थ, गरिमा और गौरव मालूम होता है--बजाय तुलसीदास की इस घटना में कि उनको जब कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया, तो नाभादास ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि तुलसीदास कृष्ण के मंदिर में झुके नहीं। कृष्ण को कैसे झुकें? राम के भक्त! और यही तुलसीदास कहते हैं कि सारे जग में मैंने सीता-राम को ही देखा। सियाराममय सब जग जानी! और भूल गए वहां, सब में देख लिया। कविता ही कर रहे हैं मालूम होता है, तुकबंदी बिठा रहे हैं मालूम होता है। कृष्ण में नहीं देख सके।
नाभादास ने लिखा है कि तुलसीदास ने कहा कि मैं नहीं झुकूंगा। तुलसी झुके न माथ। जब तक धनुष-बाण हाथ में नहीं लोगे, तब तक मेरा माथा झुकने वाला नहीं है। बाबा तुलसीदास की असलियत जाहिर हो गई। वह सारे जग में जो राम को देखा था, वह कविता ही थी, वह जीवन-अनुभव नहीं था। कृष्ण में भी न देख सके राम को! कृष्ण के सामने भी झुकने से इनकार कर दिया! धनुष-बाण लेहु हाथ! तब झुकेगा, तुलसी का माथा तब झुकेगा! तो यह तो भक्त भगवान पर शर्त लगाने लगा कि मेरी शर्त पहले पूरी करो। यह झुकना भी बेशर्त न रहा। यह समर्पण भी

सशर्त हो गया। और सशर्त समर्पण मर गया, आत्महत्या हो गई उसकी। गले में फांसी लगा कर मर गया। सशर्त कोई समर्पण होता है--कि मैं ऐसा करूंगा, कि मैं वैसा करूंगा, तो! समर्पण तो बेशर्त होता है। समर्पण तो कहता हैः जो तेरी मर्जी! अगर तेरी आज मर्जी ऐसी है कि मोर-मुकुट बांध कर खड़ा है, तो चल, हम तुझे ऐसे में भी देखेंगे।
यह तो कबीर ज्यादा ठीक काम कर रहे हैं। आम ग्राहक, जो खरीदने चला आया
है सामान, उससे कह रहे हैंः राम जी, ले जाओ। बहुत मेहनत से बुना है। यूं ही नहीं बुना है, बहुत प्रेम से बुना है। भीनी-भीनी बीनी रे चदरिया! राम-रस में डुबा-डुबा कर रंगा है। मस्ती में बुना है। गा-गा कर बुना है। गुनगुनाते थे और बुनते थे। डोलते थे और बुनते थे। निश्चित ही उनका खुमार, उनके भीतर की शराब फैल जाती होगी तानों-बानों पर। जरूर कुछ न कुछ छाप रह जाती होगी। और कहते थे कि इतनी मेहनत से बुना है, इतना मजबूत बुना है, कि फाड़ना भी चाहोगे तो भी वर्षों लग जाएंगे। ले ही जाओ!
तो वे कहते कि रामजी आएंगे बाजार में, खोजेंगे कि कबीर आया कि नहीं, और मुझे नहीं पाएंगे तो बड़े उदास होंगे। जीवन की अंतिम घड़ी तक कपड़े बुनते रहे।
इसे मैं सृजनात्मकता कहता हूं। सृजनात्मकता से यह भ्रांति होती है कि
या तो मूर्ति बनाओ या कविता करो या पेंटिंग बनाओ, इस तरह की दो-तीन चीजों से लोग सृजनात्मकता का अर्थ लेते हैं। सृजनात्मकता का इतना ही अर्थ नहीं होता।
यहां आश्रम में लोग आते हैं। उनको जो सबसे ज्यादा बात छूती है, वह छूती है--आश्रम में आनंद-मग्न काम करने वाले लोग। चाहे वे संडास साफ कर रहे हों। क्योंकि यहां तो कोई नौकर नहीं है, एक भी नौकर नहीं है। नौकर की बात ही अमानवीय है। यहां तो सारा काम संन्यासी कर रहे हैं। और इसमें कोई भेदभाव ही नहीं है। जो पाखाने साफ कर रहा है उसमें और जो दफ्तर में बैठ कर ध्यान-विश्वविद्यालय का कुलपति है उसमें--कोई भेद नहीं है। वैसे भी भेद नहीं है। संडास और बाथरूम साफ करने वाले संन्यासियों में पीएचड़ी. हैं। सवाल ही नहीं है कि कौन क्या कर रहा है। एक पीएचड़ी. आश्रम की गाड़ियों को चलाते हैं, ड्राइव करते हैं। एक पीएचड़ी. आश्रम के बगीचे में सब्जी उगाते हैं।
सृजनात्मकता का अर्थ इतना ही नहीं है कि कविता करो। जो भी करो, वह तुम्हारा ध्यान हो, मौज हो, मस्ती हो। फर्श साफ करो तो ऐसे जैसे परमात्मा के लिए किया जा रहा है।
इसलिए आश्रम में तुम्हें एक ताजगी मिलेगी, एक सुवास मिलेगी, एक स्वच्छता मिलेगी, एक अलग गंध मिलेगी। और वह गंध है सृजनात्मकता की। जो भी जिस काम में लगा है, उसमें ऐसे तल्लीन है कि वही पूजा है, वही प्रार्थना है।
सीता मैया, कविता करो, कोई हर्जा नहीं है। कविता में कुछ बुराई नहीं है। मगर खतरा एक ही है कि कविता काम की तो बहुत कम होती है। और फिर कविता बन गई तो स्वभावतः ख्याल उठता है कि कोई सुने। कोई सुने ही न तो कविता में सार क्या! कोई प्रशंसा करे। फिर मुसीबत शुरू होती है। अगर यह स्वांतः सुखाय हो तब तो ठीक, नहीं तो खतरा है।
महान कवि ढब्बूजी एक बार बीमार हो गए। बीमारी कुछ ऐसी कि डाक्टरों की समझ में न आए। अंततः हार कर उन्होंने ढब्बूजी से ही पूछा कि आप ही बताइए, हम सब तो इस बीमारी को समझने में असमर्थ सिद्ध हो गए हैं। आपने हमें हरा दिया। आप ही बताएं कि इस बीमारी की मूल जड़ क्या है? अरे आप तो महाकवि हैं। आप तो बड़ी गहरी बातें खोज लाते हैं। जरा अपनी बीमारी के बाबत भी कुछ बताएं। क्या आपको कोई मानसिक यातना सता रही है? कोई तनाव है? बात क्या है? ढब्बूजी बोलेः बीमार न होऊं तो और क्या हो! अरे पिछले तीन सप्ताह से
एक भी श्रोता नहीं मिला। सो कविताएं भीतर उबल रही हैं। श्रोता चाहिए।
अब डाक्टरों की खोपड़ी में कुछ सूझा। उन्होंने एक बहरे आदमी को दस रुपये देकर राजी किया कि वह आज रात भर इस तरह से ढब्बूजी की कविताएं सुनता रहे, जैसे कि बहुत मजा आ रहा है! यही एकमात्र उपाय है ढब्बूजी को मृत्यु से बचाने का। बहरा राजी हो गया। जब दूसरे दिन सुबह-सुबह डाक्टर आया देखने के

लिए कि माजरा क्या है, तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा! ढब्बूजी तो एकदम स्वस्थ, प्रसन्न, प्रफुल्लित और आनंद-विभोर होकर कविता-पाठ कर रहे थे और बेचारा बहरा श्रोता पता नहीं कब का मर चुका था!
सीता मैया, तुम्हें मेरा आशीष! जी भर कर कविता करो। मगर किसी को सुनाना मत। एकांत में द्वार-दरवाजे बंद करके गुनगुना लेना--मैं सुन लूंगा! यही तो लाभ है। तस्वीर टांग ली, सुना दी। नहीं तो लाकेट तुम्हारे पास है ही, बस लाकेट को पकड़ा और सुना दी कविता। तस्वीर तो मर नहीं सकती, मैं मुस्कुराए ही चला जाऊंगा। तुम भी खुश, मैं भी खुश!
मगर सृजनात्मकता को और विधाएं दो। सारा जीवन सृजनात्मक होना चाहिए।
तो जीवन में एक प्रसाद आ जाता है, एक सौंदर्य आ जाता है। उठो-बैठो तो, चलो- फिरो तो। बुद्ध चलते हैं तो काव्य है। कृष्ण बैठते हैं तो काव्य है, उठते हैं तो काव्य है। जीसस सूली पर भी लटके हैं तो भी एक प्रसाद है। और तुम सिंहासन पर भी बैठो तो भी प्रसाद नहीं होगा।
और यह सारी बात इसलिए संभव हो पाती है, यह चमत्कार इसलिए संभव हो पाता हैः जब तुम समर्पित हो परमात्मा को, अस्तित्व को, जब तुमने अपने अहंकार को अलग कर लिया, बस! सृजनात्मक का अर्थ होता हैः अपने अहंकार को अलग कर लेना और परमात्मा जो कराए करना, उसके हाथों... बस उसके लिए एक माध्यम बन जाना। आएं उसकी हवाएं, ले चलें उड़ा कर तुम्हें एक सूखे पत्ते की भांति, तो उड़ना! आए उसकी नदी, आए उसकी बाढ़, ले चले बहा कर तुम्हें सागर की तरफ, तो बहना। परमात्मा जो कराए, करना।
सब छोड़ दो अस्तित्व पर। चिंता गल जाएगी, संताप मिट जाएगा। फिर यह भी
हो सकता है कि काव्य उठे, गीत जन्में। तब उन गीतों में बात और होगी। तब तुम्हें श्रोता नहीं खोजने होंगे, श्रोता तुम्हें खोज लेंगे। क्योंकि तुम्हारे शब्द-शब्द में रस होगा। रस परमात्मा का दूसरा नाम है। रसो वै सः!

तीसरा प्रश्नः आपकी "नारी के समान अधिकार" की बातें बहुत अच्छी लगीं। इसके अतिरिक्त जो आप इच्छाओं को न दबाने और उनसे न लड़ने की बात कहते हैं, वह भी हृदय को स्पर्श करती है। किंतु इसके साथ-साथ जब आद्य शंकराचार्य, पतंजलि और तुलसी वगैरह की बातें याद आ जाती हैं तो द्वंद्व खड़ा होता है। शंकराचार्य ने नारी की निंदा किस दृष्टि से की है? अद्वय ब्रह्म का अनुभवी क्या ऐसी निंदा कर सकता है? क्या वे भी केवल एक विद्वान मात्र थे, अनुभवी नहीं? पतंजलि समाधि के लिए यम-नियम पर विशेष जोर देते हैं, आप नहीं। इसका क्या कारण है?

शांतानंद सरस्वती! पहली तो बात यह, भूल कर भी कभी तुलना मत करना, नहीं
तो उलझते चले जाओगे सुलझने की बजाय। बुद्ध और महावीर को साथ-साथ सोचोगे, पागल हो जाओगे। कृष्ण और क्राइस्ट को साथ-साथ सोचोगे, भयंकर द्वंद्व में पड़ जाओगे, विक्षिप्त हो जाओगे।
मुक्त करने के लिए एक सदगुरु काफी है। हां, विक्षिप्त होना हो तो फिर बहुत सदगुरुओं की बातों में उलझना। क्योंकि प्रत्येक सदगुरु की अभिव्यक्ति अनूठी होती है। प्रत्येक सदगुरु अद्वितीय होता है, बेजोड़ होता है। वह किसी और की नकल नहीं होता। वह अपना अनुभव कहता है, वह अपनी प्रतीति कहता है। वह अपने उपाय खोजता है, अपनी विधियां खोजता है। तो सारे सदगुरुओं की बातें भिन्न-भिन्न होंगी।
अब तुम अगर बुद्ध को भी, महावीर को भी, कृष्ण को भी, क्राइस्ट को भी, शंकराचार्य को भी मेरे साथ-साथ सोचोगे, तो तुम्हारी कठिनाइयों का अंत नहीं आएगा कभी, तुम्हारे उलझाव रोज-रोज बढ़ते जाएंगे, तुम विक्षिप्त हो जाओगे।
अभी-अभी ऐसा हुआ। अद्वैत बोधिसत्व के भाई पढ़े-लिखे हैं, होशियार हैं, प्रतिभाशाली हैं। मुझे भी पढ़ते हैं, सुनते हैं; कृष्णमूर्ति को भी पढ़ते हैं और सुनते हैं। अब भारी तनाव में पड़ गए हैं। संन्यास लेना चाहते हैं। लेकिन कृष्णमूर्ति कहते हैंः किसी के शिष्य मत बनना, किसी को गुरु मत बनाना। अब बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई। कृष्णमूर्ति की मानें तो संन्यासी नहीं हो सकते। मेरी मानें तो संन्यासी होना है। किसकी मानें? और मुश्किल उनकी

बढ़ जाती है, क्योंकि मैं कहता हूंः कृष्णमूर्ति प्रबुद्ध पुरुष हैं। जो कहते हैं, उनकी दृष्टि से ठीक ही कहते हैं। तब तो और अड़चन बढ़ गई। अगर मैं यह भी कह दूं कि वे प्रबुद्ध पुरुष नहीं हैं, तो भी एक सुलझाव हो जाए; या तो वे मुझे चुन लें या उन्हें चुन लें। उनको खबर भी दी गई थी कि इस उलझन में ज्यादा न पड़ो। दिन भर टेप सुनते हैं मेरा, फिर कृष्णमूर्ति का; कृष्णमूर्ति का, फिर मेरा। फिर अभी चार-छह दिन पहले खबर आई, वे घर से भाग गए, नदारद हैं। अद्वैत बोधिसत्व भागे हुए गए कि क्या हुआ? कहां गए? बेहोश पाए गए हैं। आज चार-पांच दिन से बेहोश हैं अस्पताल में। क्या हो गया? सीमा से ज्यादा खिंचाव हो गया।
यह घटना घटी इक्कीस तारीख को। आना चाहते थे यहां और कृष्णमूर्ति खींच रहे होंगे कि कहां जाते हो! सो न यहां आए, न कृष्णमूर्ति के हुए; घर छोड़-छाड़ कर भाग गए कि अब किसी तरह इस झंझट से बचो। फिर क्या हुआ, यह तो जब वे होश में आएं, तो पता चले कि क्या मुसीबत हुई, कैसे बेहोश हुए, कहां पाए गए, किस तरह लाए गए--यह सारी कथा तो पीछे हो। अभी तो डाक्टर कहते हैं कि उनको जितनी देर बेहोश रहें, अच्छा है। सोने दो। जितनी देर नींद में गुजर जाए उतना बेहतर है, ताकि मस्तिष्क वापस थोड़ा शांत हो जाए।
तो पहली तो बात तुमसे कहना चाहता हूं, शांतानंदः तुलना मत करना, नहीं
तो द्वंद्व में पड़ोगे। प्रत्येक सदगुरु अपने समय के लिए बोलता है। समय रोज बदल जाता है। समय के अनुसार समस्याएं बदल जाती हैं। प्रत्येक सदगुरु अपने शिष्यों के लिए बोलता है, सारे जगत के लिए भी नहीं, क्योंकि सारा जगत तो उसे मिलता नहीं सुनने को। जो उसके पास होते हैं, उनके लिए बोलता है। उनकी जरूरतों की पूर्ति करता है। उनकी बीमारियों की फिक्र लेता है।
अब जैसे पतंजलि ने यम-नियम पर जोर दिया; मैं नहीं देता। कारण हैं। पतंजलि जिस समाज में पैदा हुए आज से पांच हजार साल पहले, वह अत्यंत भोगी समाज था, निपट भोगी समाज था। धर्म भी धर्म नहीं था; वह भी भोग की ही आकांक्षा का विस्तार था। ऋषि-मुनि भी कुछ खाक ऋषि-मुनि नहीं थे। उनकी पत्नियां थीं। पत्नियां ही नहीं थीं, उप-पत्नियां भी थीं, जो वधुएं कही जाती थीं। धन था उनके पास, सुविधाएं थीं उनके पास। सब तरह की राजनीति में उलझे हुए लोग थे। कहने को ऋषि-मुनि थे, मगर सब तरह की राजनीति में उलझे हुए लोग थे। वैदिक धर्म कोई योग का धर्म नहीं था। लोग यज्ञ-हवन करते थे, वे भी भोग के लिए थे।
तुम जरा वेद की ऋचाएं पढ़ो। सब मांगें हैं वासनाओं की--हे प्रभु, यह दे दे! हे प्रभु, वह दे दे! बस देने ही देने की बात है। और कैसी छोटी-छोटी मांगें! हैरानी होती है कि किन पागलों ने इन शब्दों को वेदों में इकट्ठा कर लिया! कि मेरी गऊ के स्तन में दूध बढ़ा दे। यह भी प्रार्थना! कि मेरे खेत में जरा ज्यादा पानी गिरा दे। यह भी प्रार्थना! और बात यहीं नहीं रुकी। बात यहीं कभी रुकती नहीं। मेरे दुश्मन की गऊ का थन सूख ही जाए। यह भी प्रार्थना! मेरे दुश्मन के खेत में पानी गिरे ही नहीं। यह भी प्रार्थना! इंद्र देवता भी बड़ी मुश्किल में पड़ते होंगे कि अब एक के खेत में पानी गिराओ और पड़ोसी के खेत में पानी न गिराओ। क्योंकि दुश्मन अक्सर पड़ोसी होता है। दुश्मन होने के लिए पहले पड़ोसी होना जरूरी है। तुम दुश्मन खोजने कोई बहुत दूर थोड़े ही जाओगे, कि रहोगे हिंदुस्तान में और दुश्मन होगा चीन में! दुश्मन तुम्हारा पड़ोस में होगा, वह जो रेडियो जोर से बजाएगा और जिसके लड़के चीख-पुकार मचाएंगे, गिल्ली-डंडा खेलेंगे, तुम्हारे घर की खिड़कियों के कांच फोड़ेंगे। दुश्मन कौन होगा? दुश्मन यानी पड़ोसी। और दुश्मन के खेत में कम... । दूसरे गांव में तो होगा ही नहीं, इतना तो पक्का ही है। और उन जमानों में न रेलगाड़ी थी, न हवाई जहाज था, कि तुम बहुत दूर-दूर जाकर दुश्मनी करो, कि रहो अमरीका में और गोआ में दुश्मनी करो, यह नहीं हो सकता था। तो एक खेत में पानी ज्यादा गिरा देना, दूसरे में कम। इंद्र देवता की भी तकलीफ देखते हो! एक की गाय के थन में दूध बढ़ा देना, दूसरे का उड़ा देना, नदारद ही कर दो!
ये कोई प्रार्थनाएं हैं? ये निपट भोगियों के लक्षण हैं। और भोग भी किस निम्न कोटि का! क्रूरता और कठोरता से भरा हुआ। और कितनी कलह है! विश्वामित्र और वशिष्ठ में कितनी कलह है! कितना झगड़ा-झांसा है! वही कलह

चलती रही, वही झगड़ा-झांसा चलता रहा। समाज भोगी था, निपट भोगी था। गांव-गांव में वेश्याएं थीं। और वेश्याएं स्वीकृत अंग थीं। उनको नगरवधू कहा जाता था। असल में नियम यह था कि नगर में जो सबसे सुंदर युवती हो, उसको नगरवधू घोषित कर दिया जाता था, ताकि उसके कारण ईर्ष्या न पैदा हो। नहीं तो वह किसी एक की पत्नी बनेगी, झगड़ा-झांसा खड़ा होगा। दूसरे भी उम्मीदवार हैं। तो कलह पैदा होगी। कलह से बचने के लिए बेहतर यह है कि उसको नगरवधू घोषित कर दो। इसलिए वह सबकी पत्नी है।
नगरवधुएं स्वीकृत थीं। लोग भोगी थे। शराब प्रचलित थी। सोमरस के नाम
से तरह-तरह के मादक द्रव्य चल रहे थे--गांजा, अफीम। तुम यह मत सोचना कि कोई आजकल के साधु ही इनका उपयोग कर रहे हैं। यह बड़ी प्राचीन परंपरा है, बाप-दादे करते रहे हैं। सच तो यह है, आजकल इनकी बेचारों की निंदा होती है। अगर कोई साधु मिल जाए गांजा पीते हुए, तुम कहते होः तुम कैसे साधु? हालांकि यह पांच हजार साल की पुरानी परंपरा मान रहा है, यह वस्तुतः साधु है। अगर कोई गांजा न पीए, उससे पूछना चाहिएः तुम कैसे साधु? न पीए गांजा, न पीए भांग, न चखा सोमरस--और हो गए साधु? अरे पहले कुछ अनुभव भी तो करो! और बिना भांग के कहां भगवान! बिना गांजे के कहीं कोई समाधिस्थ हुआ है? वह तो गांजे में ही उड़ान आती है!
तो पतंजलि के समय में जो चारों तरफ भोग-विलास था और साधुओं के नाम पर
भी जो चल रहा था, उस सबको रोकने के लिए यम-नियम को उन्होंने मूल्य दिया। आज हालत बिल्कुल उलटी है। आज हालत दमन की है। आज लोग दमन से पीड़ित हैं। नैसर्गिक प्रवृत्तियों का इतना दमन करवा दिया गया, यम-नियम इतना ज्यादा हो गया कि अब लोगों के पास और कुछ बचा ही नहीं, बस यम-नियम हैं। और भीतर? भीतर सब लपटें जल रही हैं--वासनाओं की, इच्छाओं की। भयंकर लपटें जल रही हैं! उनका निष्कासन जरूरी है। उनको दबा कर मिटाया नहीं जा सकता। उनका ऊर्ध्वीकरण करना जरूरी है।
इसलिए मैं यम-नियम पर जोर नहीं देता, मैं बोध पर जोर देता हूं। क्योंकि यम-नियम पर जोर देने का परिणाम यह हुआ कि लोगों ने दमन करना शुरू कर दिया। भोगी गलत होता है; और जिसने दमन किया, वह भी गलत होता है। न तो भोग में मार्ग है, न दमन में मार्ग है; दोनों के मध्य में मार्ग है।
मगर तुम अगर यह सब सोचने बैठोगे तो तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। तुम्हारे सामने कुछ साफ नहीं होता--कि क्या स्थिति थी जब पतंजलि ने यम-नियम की बात कही? किनसे कही? कौन सुनने वाले थे?
फिर सबके अपने-अपने अनुभव हैं। प्रत्येक व्यक्ति के अपने अनुभव हैं; उसके जीवन की अपनी धारा है। अपने अनुभव के आधार पर ही वह कुछ बोलता है, कुछ कहता है।
शंकराचार्य निपट विद्वान नहीं थे, प्रबुद्ध पुरुष थे। लेकिन उन्होंने जो भाषा चुनी थी अपनी अभिव्यक्ति की, वह परंपरा की थी। शायद उस दिन और किसी भाषा में बोला भी नहीं जा सकता था। आज भी बोलना कितना कठिन हो रहा है! मेरी कठिनाई देखते हो? मैंने चूंकि परंपरागत भाषा नहीं चुनी, चूंकि परंपरागत औपचारिकता नहीं चुनी, तो मुझे कितनी गालियां पड़ रही हैं! मुझमें तो वे ही लोग उत्सुक हो सकते हैं, जिनमें थोड़ा परंपरा से मुक्त होने का साहस है--दुस्साहस कहना चाहिए। इसलिए दूसरे देशों से लोग ज्यादा आ रहे हैं, भारतीय कम; क्योंकि भारतीय बहुत जकड़े हैं रूढ़ि से, बहुत परंपरा से बंधे हैं। और फिर डरते भी हैं, क्योंकि अगर यहां आएंगे तो पास-पड़ोस के लोग क्या कहेंगे! गांव में खबर पहुंच जाएगी कि यह आदमी भी गया!
मैं बंबई में था, तो जो मित्र बंबई में कभी मुझे सुनने नहीं आए, वे यहां आ जाते हैं। उनमें से कई ने यहां आकर संन्यास ले लिया। मैं उनसे पूछता हूंः बंबई में क्यों नहीं आए? उन्होंने कहाः बंबई में आने में अड़चन थी। मैं जबलपुर था, तो जो लोग जबलपुर में मुझे कभी मिलने नहीं आए, वे यहां मिलने आते हैं। और मुझे पक्का पता है, जब पूना मैं छोड़ दूंगा तब पूना के लोग भी आने शुरू हो जाएंगे। अभी पूना में आने में कठिनाई है, क्योंकि बदनामी कौन सहे? गांव, बाजार, दुकानदारी, सब सम्हालना है। लड़की का विवाह भी करना है। लड़के को स्कूल में भरती भी करवाना है। हजार झंझटें हैं। जिस भीड़ के साथ रहना है, उस भीड़ के विपरीत जाना खतरे से खाली नहीं है।

शंकराचार्य ने परंपरागत भाषा चुनी। जो परंपरा कहती थी, उसी भाषा का उपयोग करके अपना संदेश दिया। निश्चित ही उस भाषा में आज बहुत भूलें दिखाई पड़ेंगी; उस दिन नहीं दिखाई पड़ी थीं। इसलिए शंकराचार्य सहज स्वीकृत हो सके।
तुमने एक बात देखी? बुद्ध सहज स्वीकृत नहीं हो सके, क्योंकि बुद्ध ने गैर-परंपरागत भाषा चुनी। इसलिए बुद्ध के मरने के बाद बुद्ध-धर्म भारत से उखड़ गया। भारत बहुत रूढ़ि-चुस्त देश है। लकीर के फकीर हैं लोग। लोग बिल्कुल मर गए हैं, कब के मर गए हैं; बहुत समय हो गया तब के मर चुके हैं! बस चले जा रहे हैं मरे-मराए! किसी तरह धक्कमधक्की में चले जा रहे हैं, चलते जा रहे हैं।
तुमने कई कहानियां सुनी होंगी कि राणासांगा की गर्दन कट गई और फिर भी
वे लड़ते रहे। ये कहानियां सच्ची हों या न हों, मगर भारत में तुम्हें जगह-जगह ऐसे लोग मिलेंगे, जिनकी गर्दन कब की कट चुकी है, लड़े जा रहे हैं, चले जा रहे हैं; दुकान भी कर रहे हैं, बाजार भी कर रहे हैं, बच्चे भी पैदा कर रहे हैं--मर चुके हैं बहुत पहले। भारत में लोग मर जाते हैं बहुत पहले, गड़ाए जाते हैं बहुत बाद में।
यहां बुद्ध ने एक प्रयोग करके देख लिया। महावीर परंपरागत भाषा बोले, इसलिए जैन धर्म मरा नहीं। हालांकि इतनी परंपरागत भाषा बोले कि जैन धर्म भारत के बाहर न जा सका। क्योंकि उतनी परंपरागत भाषा में भारत के बाहर कोई उत्सुक नहीं हो सकता था। भारतीयों की परंपरा थी, इसलिए वह बात भारत के बाहर किसी को प्रभावित नहीं की। जैन धर्म सिकुड़ कर रह गया, मगर जिंदा रह गया। रही क्षीण धारा उसकी, मगर जिंदा रहा।
बुद्ध ने बिल्कुल नूतन भाषा बोली, मौलिक भाषा बोली। अपने सिक्के गढ़े, अपनी टकसाल खोली। नहीं पुराने सिक्के चलाए। तो बुद्ध जब तक जीवित रहे, गालियां बहुत खाईं, लेकिन उनके व्यक्तित्व का प्रभाव था, जब तक जीवित रहे, तब तक लोगों ने उनके साथ सत्संग किया, उनसे जुड़े। लेकिन बुद्ध के हट जाने के बाद मुश्किल खड़ी हो गई। बुद्ध के विदा हो जाने के बाद भारत से बौद्ध धर्म उखड़ गया।
शंकराचार्य बुद्ध के इस अनुभव से सजग हो गए। शंकराचार्य ने करीब-करीब वही बातें कही हैं जो बुद्ध ने, तुम हैरान होओगे। मेरे हिसाब में शंकराचार्य छिपे हुए बौद्ध हैं, प्रच्छन्न बौद्ध। रामानुज, निम्बार्क और वल्लभ ने यही उनकी आलोचना की है कि यह छिपा हुआ बौद्ध है। यह बातें तो कर रहा है हिंदू शास्त्रों की, मगर व्याख्या ऐसी कर रहा है कि जो हिंदू शास्त्रों की नहीं है। यह शब्द तो उपयोग कर रहा है हिंदुओं के, मगर अर्थ दे रहा है बौद्धों के। यह रामानुज, निम्बार्क और वल्लभ को दिखाई पड़ गया। वे बिल्कुल परंपरागत लोग हैं। वे पहचान गए कि शंकराचार्य होशियारी का काम कर रहे हैं।
जो भूल बुद्ध ने की थी, इस अर्थ में भूल थी कि बात टिक नहीं सकी। अनूठा प्रयोग था, मगर टिक नहीं सका। शंकराचार्य ने वही बात टिका दी, मगर फिर परंपरागत शब्दों का उपयोग करना पड़ा। तो शंकराचार्य रूढ़िवादी दिखाई पड़ते हैं। टिक गए। ऐसे टिके कि शंकराचार्य सबसे ज्यादा प्रभावी व्यक्ति हो गए। भारत में शंकराचार्य ने जितना प्रभाव छोड़ा, किसी और व्यक्ति ने नहीं छोड़ा। सारा संन्यास शंकराचार्य से प्रभावित हो गया। मगर एक बहुमूल्य कीमत चुका दी उन्होंने। बात मार दी। बात में जो धार थी, वह चली गई।
बुद्ध की बात में धार है। माना कि धर्म खो गया, यहां भारत में कोई बुद्ध-धर्म की जड़ें न रहीं, मगर बुद्ध के शब्दों में जो तलवार जैसी धार है, उस पर जंग न चढ़ी। शंकराचार्य ने माना कि धर्म को टिका दिया, मगर धार खो गई। मगर प्रत्येक व्यक्ति को अपना चुनाव करना होता है। और कोई किसी को कह नहीं सकता कि क्यों उसने ऐसा चुनाव किया। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी परिस्थिति देखनी होती है, अपना समय देखना होता है, अपनी जरूरत देखनी होती है।
लेकिन शांतानंद, तुम इन उलझनों में मत पड़ो। अब तुम देखो, अगर मैं परंपरागत भाषा बोलूं तो मेरी वही हालत हो जो महावीर की हुई; मैं भारत में सीमित रह जाऊं। मैं कोई दस वर्ष तक ऐसी ही भाषा का उपयोग कर रहा था। और तब

मैंने देखा कि यह बात भारत के बाहर जा नहीं सकती। यह बात भारत के बाहर पहुंचानी असंभव है। तब जैन मुझसे प्रसन्न थे; हिंदू मुझसे प्रसन्न थे; मुसलमान मुझसे प्रसन्न थे। क्योंकि मैं, जो भी मुझे कहना होता, कुरान के बहाने कहता; जो भी मुझे कहना होता, महावीर के बहाने कहता; जो भी मुझे कहना होता, वह गीता के बहाने कहता। गीता से मुझे क्या लेना-देना? और महावीर से भी क्या लेना-देना? मैं अपनी बात सीधी कह सकता हूं। लेकिन मैंने देखा कि सीधी बात सुनने वाला भी कोई नहीं है। हां, महावीर के नाम से जैन आ जाता है सुनने; वह महावीर को सुनने आता है। मगर उस बहाने वह मुझे सुन लेता है, कुछ मेरी बात भी उसके कानों में पड़ जाती है। धीरे-धीरे वह मुझमें भी उत्सुक हो जाता है।
लेकिन फिर मैंने देखा कि यह बात तो सिकुड़ कर रह जाएगी, इसका विस्तार नहीं हो सकेगा, यह जागतिक नहीं हो सकेगी। और आज मनुष्य की जरूरत है जागतिक धर्म की। एक ऐसा धार्मिक आंदोलन, जो कहीं आबद्ध न हो, जिसमें सारी दुनिया के लोग सम्मिलित हो सकें। स्वभावतः, उस विस्तार में जाने का एक ही अर्थ था कि वे जो छोटे-छोटे घेरे के लोग मेरे पास इकट्ठे थे, वे बिखर जाएंगे। वह कीमत चुकानी पड़ेगी। मगर वह कोई कीमत न थी।
मैं महावीर पर बोलने पूना आता था तो जो लोग मुझे सुनते थे, उनमें से दस-पांच ही अब मौजूद हैं। हजारों सुनते थे। गीता पर बोलने आता था, हजारों सुनते थे। आज उनमें से दो-चार ही मौजूद हैं। उनके अंगुलियों पर नाम गिनाए जा सकते हैं। बाकी सब लोग कहां गए? गीता पर बोलूं, आज वे फिर हजारों लोग वापस आ जाएंगे। मगर सारी दुनिया में एक लाख संन्यासी फैल गए। एक दस साल के भीतर एक करोड़ संन्यासी होंगे सारी दुनिया में--बिना अड़चन के।
तो तीस लाख हिंदुस्तान के जैनियों में आबद्ध रह जाने की बजाय... और इनके सुनने में भी कोई सार नहीं था। क्योंकि इनको कुल मतलब इतना था कि मैंने महावीर की प्रशंसा कर दी, ये खुश होकर चले गए। महावीर की प्रशंसा से इनको ऐसा लगता है कि इनकी प्रशंसा हो गई। इनके अहंकार को थोड़ा सा रस आ जाता, बस इससे ज्यादा कुछ भी मतलब न था। इनमें कोई फर्क नहीं होगा, कोई भेद नहीं होगा। ये वैसे के वैसे रहेंगे। गीता पर लोग, हिंदू इकट्ठे हो जाएंगे, सुन लेंगे, बस उनको अच्छा लगेगा, मनोरंजन हो जाएगा। उनकी लकीर पीटी जा रही है, उनकी परंपरा की प्रशंसा कर दी गई है, वे खुश होकर चले जाएंगे।
यह मैंने देख लिया दस वर्ष प्रयोग करके कि इस तरह उनके जीवन में कोई रूपांतरण होने वाला नहीं है और मैं नाहक अपना समय गंवा दूंगा। मुझे अपनी पूरी व्यवस्था बदल देनी पड़ी। और व्यवस्था बदलते ही क्रांति शुरू हो गई। अब जो मैं कह रहा हूं, उसका एक जागतिक परिणाम है। आज दुनिया का कोई ऐसा देश नहीं है जिसकी भाषा में मेरे शब्द न पहुंच गए हों, किताबें अनुवादित न हुई हों। ऐसा कोई देश नहीं है जहां संन्यासी न हों, जहां आश्रम खड़े न हो गए हों।
तो प्रत्येक व्यक्ति को अपने ढंग से सोचना होता है। अपने समय और अपने समय की समस्याओं का प्रत्युत्तर देना होता है।
तुम इस चिंता में न पड़ो। शंकराचार्य क्या कहते हैं स्त्री के संबंध में, वह शंकराचार्य का वक्तव्य कम है, वह हिंदू शास्त्र जो कहते रहे स्त्री के संबंध में, उसको सिर्फ उन्होंने दोहरा दिया है। हिंदू उससे प्रसन्न होते हैं। हिंदू पुरुषों का अहंकार उससे तृप्त होता है। और नारी का तो कोई मूल्य था नहीं शंकर के जमाने में। आज मुझे सुनने वालों में जितने पुरुष हैं उतनी नारियां हैं, क्योंकि यह जागतिक समुदाय है। लेकिन जब मैं पुराने ढंग की भाषा का उपयोग कर रहा था तो उसमें नारियां इनी-गिनी होती थीं, मुश्किल से होती थीं; समूह पुरुषों का होता था। शंकराचार्य को सुनने वाले सब पुरुष रहे होंगे, स्त्रियों को कहां मौका था? उनको तो सुनने का अधिकार भी नहीं था। तो शंकराचार्य सिर्फ वही बोल रहे हैं जो शास्त्रों में लिखा हुआ था। मैं जानता हूं कि बे-मन से बोल रहे हैं, मगर मजबूरियां हैं; काम करना असंभव होता उन्हें।
नारी का एक डर पुरुष के मन में है। और डर का कुल कारण दमन है। नारी में कोई डर नहीं है, नारी में क्या डर हो सकता है? लेकिन डर का कारण दमन है। तुमने जितनी अपनी कामवासना दबा ली है, उतने तुम नारी से डरोगे। यह बड़े मजे

की बात है कि नारियां पुरुषों से नहीं डरतीं। उन्होंने पुरुषों की निंदा में कुछ नहीं कहा। हालांकि उनके पास पुरुषों की निंदा में कहने के लिए बहुत ज्यादा सामग्री है, मगर उन्होंने पुरुषों की निंदा में कुछ भी नहीं कहा। क्योंकि नारियों ने कोई दमन नहीं किया। नारियां ज्यादा सहज स्वाभाविक हैं, ज्यादा पार्थिव हैं, ज्यादा व्यावहारिक हैं। ब्रह्मज्ञान वगैरह में उनका रस नहीं, फालतू बकवास में वे पड़तीं नहीं। वह पुरुषों पर छोड़ देती हैं कि यह तुम्हीं करो।
मुल्ला नसरुद्दीन से कोई पूछ रहा था कि तुझमें और तेरी पत्नी में झगड़ा नहीं होता, कैसे तूने हल कर लिया? यह शाश्वत मसला कैसे हल कर लिया? उसने कहाः मैंने पहले ही दिन हल कर लिया। पहले ही दिन मैंने कहा कि देख, अपन तय कर लें। जो महत्वपूर्ण समस्याएं हैं, उनका निर्णायक मैं रहूंगा; और जो गैर-महत्वपूर्ण समस्याएं हैं, उनकी निर्णायक तू रहेगी। और तब से कोई झगड़ा नहीं हुआ। महत्वपूर्ण समस्याएं मैं हल करता हूं, गैर-महत्वपूर्ण वह हल करती है।
सुनने वाले ने कहा कि यह तो बड़ी आश्चर्य की बात है! इससे कैसे हल हो जाएगा? कौन सी समस्याएं महत्वपूर्ण हैं और कौन सी गैर-महत्वपूर्ण? नसरुद्दीन ने कहाः यह मत पूछो। उससे सब राज ही खुल जाएगा। महत्वपूर्ण समस्याएं यानी ईश्वर है या नहीं? संसार कब बना? स्वर्ग है या नहीं? कितने नरक हैं? कर्म का सिद्धांत? पुनर्जन्म होता कि नहीं? भूत-प्रेत होते कि नहीं? ये सब महत्वपूर्ण समस्याएं मैं तय करता हूं। मकान कौन सा खरीदना, कार कौन सी खरीदनी, बच्चों को किस स्कूल में भरती करना, साड़ी कौन सी खरीदनी, मेरे लिए भी कौन सा कोट खरीदना--यह सब वह तय करती है। छोटी-मोटी समस्याएं! झगड़े का कोई सवाल ही नहीं उठता।
स्त्रियां बिल्कुल प्रसन्न होती हैं--तुम करो तत्व-चर्चा, जितनी तुम्हें करनी है, मजे से करो। छोटी-मोटी समस्याएं... तनख्वाह पहली तारीख को स्त्री ले लेती है, वह कहती हैः अब तुम तत्व-चर्चा करो, तनख्वाह यहां रख दो।
स्त्रियां ज्यादा सहज-स्वाभाविक, पार्थिव हैं। उन्होंने दमन किया नहीं, इसलिए पुरुषों की निंदा की नहीं। पुरुष हमेशा घबड़ाए रहे।
एक वैज्ञानिक से उसके विद्यार्थियों ने पूछा कि आप नारी की रासायनिक व्याख्या क्या करते हैं?
उस वैज्ञानिक ने कहाः मानव-जाति की एक सदस्या रूप में परिचित; कभी-कभी
ही अपनी प्राकृतिक अवस्था में प्राप्त; चमड़ी के रंगों से पुती; तापमान अनिश्चित, कभी गरम, कभी सर्द; अत्यधिक विस्फोटक; मुख्यतः अलंकृत; पुरुष को मार्गच्युत करने की संभवतः सबसे बड़ी शक्ति; एक से अधिक रखना अवैध।
पुरुष डरा रहता है।
चंदूलाल का बेटा चंदूलाल से पूछ रहा था कि पापा, यह नियम क्यों बनाया गया है कि दो शादियां करना जुर्म है?
चंदूलाल ने कहाः बेटा, यह उनके लिए बनाया गया है जो अपनी रक्षा खुद नहीं कर सकते। एक ही काफी है। तू अपनी मम्मी को देख न! मुझको देख, घर के बाहर कैसा सिंह जैसा सीना फुला कर चलता हूं! और घर में जब आता हूं, एकदम कुत्ते की तरह पूंछ दबा कर आता हूं। अब एक ही स्त्री जब यह हालत कर रही है, और दो-तीन हों, तो फिर मुसीबत हो जाएगी, फिर अड़चन हो जाएगी। और पुरुष ऐसा है कि अपनी रक्षा करने में असमर्थ है, इसलिए कानून बनाना पड़ा है। नहीं तो वह दो-तीन-चार क्या, वह तो बढ़ाता ही जाएगा।
पुरुष डरा रहा है। अपने भीतर दबाया है जो, उससे भयभीत है, उससे घबड़ाया हुआ है। इसलिए सदियों से वह स्त्रियों के खिलाफ बोलता रहा है। वह स्त्रियों के खिलाफ नहीं है; वह सिर्फ अपनी ही मनोदशा की अभिव्यक्ति है। ओलंपिक दौड़ प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले धावक से
एक पत्रकार ने पूछाः आपकी दौड़ने की इस आश्चर्यजनक तीव्र रफ्तार के पीछे कौन सी प्रेरणा काम करती है भाईजान?
वह धावक बोलाः दौड़ते समय मैं हमेशा यह सोचता रहता हूं कि मेरी पत्नी मेरे पीछे दौड़ रही है और उसने मुझे अब पकड़ा! अब पकड़ा! बस फिर जैसी गति मेरे तन-प्राण में आती है, उसका विश्वास मुझे स्वयं ही नहीं होता।

और उसने यह भी कहा कि सुनो, मुझे भाईजान मत कहो, बस भाई ही भाई हूं, जान कहां! जान तो शादी हुई उसके पहले थी। तब से तो भाई ही भाई हूं।
पुरुष डरे हुए हैं।
एक स्त्री अपने जीवन की अंतिम सांसें गिन रही थी। बामुश्किल थोड़ा सा ऊपर उठ कर उसने पास ही बैठे अपने पति से पूछाः प्रिये, क्या मेरी मृत्यु के तुरंत बाद तुम दूसरा विवाह कर लोगे?
नहीं-नहीं, कभी नहीं! पति बोला। ऐसी बातें ही मत सोचो। पहले मैं कुछ दिन आराम करूंगा।
पुरुष ज्यादा वासनाग्रस्त है। और कारण, कि वासना को दबाने का पाठ उस
पर थोपा गया है। सो डरता है। स्त्री को देखा कि उसे कंपकंपी हुई, उसे घबड़ाहट हुई, उसे बेचैनी हुई। वह जानता है कि अगर वह स्वतंत्रता ले तो कुछ न कुछ उपद्रव हो जाएगा। स्वतंत्रता नहीं ले सकता। इसलिए यम-नियम-संयम! बांध कर रखो अपने को!
और यह बड़ी अशोभन बात है कि तुम सहज न हो सको और यम-नियम के सहारे... कि एकदम देखी स्त्री कि जल्दी से इधर-उधर देखने लगे, स्त्री को छोड़ कर राम-राम जपने लगे, माला फेरने लगे, एकदम सोचने लगे ज्ञान की बातें, कि किसी तरह यह स्त्री टल जाए, यह कहां से दिखाई पड़ गई!
संत ने पूछा है--संत हमारे पहरेदार हैं--उन्होंने पूछा है कि यहां जब
भी मैं भारतीयों को आश्रम दिखाने ले जाता हूं तो बस विदेशी युवतियों को, संन्यासिनियों को देख कर वे एकदम ठगे खड़े रह जाते हैं, एकदम उनके मुंह से लार टपकने लगती है। ऐसा क्यों होता है?
संत महाराज! यह इस बात का सबूत है कि ये ऋषि-मुनियों की असली संतान हैं। ये पुण्यभूमि भारत में पैदा हुए हैं। ये धार्मिक लोग हैं। यह धार्मिक लोगों का लक्षण है। और फिर स्वभावतः उनको आत्मग्लानि होगी, अपराध-भाव अनुभव होगा, तो वे मुझको गालियां देंगे। वे बाहर जाकर मुझको गालियां देंगे। और एक से एक झूठी बातें गढ़ेंगे! ऐसी झूठी बातें कि जिनका हिसाब नहीं।
कल मैं एक बंगाली पत्रिका, "परिवर्तन" देख रहा था। बड़ा लेख छापा है। दोनों तरफ मुख्य कवर पर आश्रम के चित्र दिए हुए हैं। और पत्रकार ने लिखा है कि मैं खुद आश्रम में होकर आया हूं। और इससे बड़ी झूठ दूसरी नहीं हो सकती, क्योंकि जो बात उसने लिखी है वह यह लिखी है कि सबसे पहले मैं मा योग लक्ष्मी को मिला, वह कैथलिक साध्वी जैसे सफेद कपड़े पहने हुए थी। यह आदमी यहां आया होगा? इस आदमी को यहां आने का कुछ... यानी पता नहीं यह कहीं कोई और जगह पहुंच गया, क्या हुआ! जो भी लिखा है, सब अनर्गल है। लिखा है कि रोज रात मैं सौ व्यक्तियों को संन्यास देता हूं।... चाहूंगा तो जरूर कि सौ व्यक्ति रोज रात संन्यास लें।... यह वह आंखों देखा हाल लिख रहा है! और संन्यास लेते वक्त प्रत्येक को नग्न होना होता है। जब तक नग्न न होओ, तब तक संन्यास नहीं मिलता।
ये सब झूठ चल जाते हैं और लोगों को जंच जाते हैं। क्योंकि लोगों के भीतर एक रुग्ण दशा है, उससे इनका तालमेल बैठ जाता है।
फिर स्त्रियों को जब तुम्हारे साधु-संत गालियां देते रहे--वे गालियां
दे रहे थे अपने को ही, मगर स्त्रियों को गालियां देते रहे--तो उनका अपनी स्त्रियों से जो जीवन-संबंध रहा होगा, अपनी पत्नियों से उनके जो अनुभव रहे होंगे, वे कड़वे रहे होंगे। इसमें जिम्मेवार वे भी रहे होंगे, मगर अपनी तो कोई बात कहता नहीं, अपनी तो लोग छिपा जाते हैं। स्त्रियों की निंदा अभी भी उनके पीछे पड़ी है। अभी भी वे सोच रहे हैं कि स्त्रियां खतरनाक हैं। घर छोड़ कर भाग गए हैं, साधु हो गए हैं... ।
एक जैन मुनि गणेशवर्णी की मृत्यु हुई, कुछ ही वर्ष पहले। जिन्होंने उनकी जीवन-कथा लिखी है, वे मेरे परिचित हैं। वे जब किताब छपी तो मुझे भेंट करने आए। मैं किताब उलट-पलट कर देखा, उसमें एक बात देख कर मैं दंग रह गया-- कि उन्होंने तीस साल पहले अपनी पत्नी को त्याग दिया। और तीस साल बाद उनकी पत्नी मरी। पत्नी को आटा पीस-पीस कर जिंदा रहना पड़ा, किसी तरह जीवन गुजारा करना पड़ा। किस मुसीबत में जी, वह वह जाने, उसका कुछ उल्लेख है नहीं ज्यादा। लेकिन तीस साल बाद जब वे काशी में थे और उनको खबर मिली कि उनकी पत्नी चल

बसी, तो उनके मुंह से एक उदगार निकला--कि चलो झंझट मिटी! इसका बड़े ही प्रशंसात्मक ढंग से उल्लेख किया गया है कि वाह, कैसे अनासक्त पुरुष थे! कैसे वीतराग! कि उन्होंने पत्नी की मृत्यु पर आंसू भी नहीं गिराया। उलटे कहा कि चलो झंझट मिटी!
मैंने उन लेखक को कहा कि तुम महामूढ़ हो। आंसू गिराया होता तो समझ में
आ सकता था। उसमें थोड़ी आदमियत होती, थोड़ी अहिंसा होती, थोड़ी करुणा होती। यह कहना कि चलो झंझट मिटी, इससे तो सिर्फ एक बात सिद्ध होती है कि तीस साल पहले जिस पत्नी को यह छोड़ कर भाग आया आदमी, उसकी झंझट भीतर इसके अभी भी चल रही है। और कुछ सिद्ध नहीं होता। जिसको तुम तीस साल पहले छोड़ आए, उसकी झंझट बची कहां? तुम्हें झंझट क्या है? तीस साल से उस पत्नी को देखा नहीं, मिले नहीं, उसको हर तरह की झंझट में डाल आए--और अब कह रहे हो कि झंझट मिटी! तो जरूर इसके भीतर-भीतर सुलगती रही होगी आग, अंगारा रहा होगा राख के भीतर। यह अभी भी डरा हुआ दिखता है अपनी पत्नी से। हो सकता है पत्नी सामने आ जाए तो इसके अभी छक्के छुड़ा दे। यह अभी भूल जाए अपनी साधुता वगैरह।
एक स्त्री कुत्ता खरीदने गई। तो फर्म के मैनेजर ने एक कुत्ता दिखाते हुए कहाः महोदया, इस नस्ल का यही एक कुत्ता बाकी बचा है। यदि आपको पसंद हो तो आज ही खरीद लीजिए। पता नहीं कल तक कोई और खरीदार आ जाए!
वह महिला बोलीः लेकिन मेरे पति को इस नस्ल के कुत्ते कतई पसंद नहीं हैं।
मैनेजर ने पूछाः जहां तक मैं समझता हूं, आप कविवर ढब्बूजी की पत्नी हैं।
स्त्री ने प्रसन्नतापूर्वक कहाः आपने ठीक पहचाना। मैं श्रीमती ढब्बूजी ही हूं।
मैनेजर बोलाः तब मैं आपसे कहना चाहूंगा कि आप अपने पति की पसंद की जरा
भी फिक्र न करें। अरे इस नस्ल का कुत्ता मिलना दुबारा मुश्किल है, जब कि आपके पति की नस्ल के पति बिना ढूंढ़े जितने चाहो उतने मिल जाएंगे।
और मैंने सुना है कि यह सुनते ही श्रीमती ढब्बूजी कुत्ता खरीद कर घर लौट आई हैं और तब से श्रीमान ढब्बूजी साधु होने का विचार कर रहे हैं। अब ये अगर साधु हो गए तो ये जिंदगी भर स्त्री को गाली देंगे। कुत्तों को गाली देंगे, स्त्री को भी नहीं! इनकी गालियां खबर देंगी इस बात की कि इनके जीवन-अनुभव क्या हैं।
तुम पूछते हो, शांतानंद, कि क्यों तुलसी ने निंदा की है?
तुलसी ने निंदा की है, क्योंकि तुलसी कामुक व्यक्ति थे, बहुत कामुक व्यक्ति थे। कुछ दिन के लिए पत्नी मायके गई थी, तो भी पहुंच गए पीछे-पीछे। बरसात के दिन थे, नदी तैर कर पार कर ली--एक मुर्दे को पकड़ कर, समझ कर कि कोई लकड़ी का ठूंठ बहा जा रहा है। अंधे रहे होंगे बिल्कुल वासना में। और फिर पीछे की तरफ से मकान पर चढ़े तो सांप को रस्सी समझ कर चढ़ गए। इतने कामांध व्यक्ति को स्त्री ने ही बोध दिया। कहा कि अगर इतना तुम्हारा प्रेम परमात्मा से होता तो तुम उसे कभी का पा लेते, जितना प्रेम तुम्हारा मुझसे है। काश परमात्मा से होता, तुम क्या से क्या न हो जाते! इस स्त्री ने बोध दिया और इसी स्त्री को जीवन भर गाली देते रहे। धन्यवाद देना था। थोड़ी तो सौजन्यता बरतनी थी।
मगर तुलसीदास कोई बुद्धत्व को प्राप्त व्यक्ति नहीं हैं। महाकवि जरूर हैं, लेकिन महाकवि होने से कोई बुद्ध नहीं हो जाता। वह जो स्त्री ने अपमान कर दिया--उन्हें अपमान लगा--वह जो आत्मग्लानि हुई पैदा कि अरे मैं कैसा कामी! लौट पड़े, मगर क्रोध में लौटे। छोड़ दिया घर-द्वार, मगर स्त्री पर नाराजगी जाहिर है। तो ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी। इनको सताओ, मारो, पीटो--यह फिर उनके जीवन भर का स्वर बन गया।
तुम इस झंझट में न पड़ो।
बहुत से तो व्यक्ति हैं जो ज्ञान को उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन तुम समझते
हो कि ज्ञान को उपलब्ध हैं। वे तुम्हें और भी झंझट में डाल देंगे। जो ज्ञान को उपलब्ध हैं, उनकी बातें भी भिन्न-भिन्न होंगी, उनकी अभिव्यक्ति भी भिन्न-भिन्न होगी। तुम अगर खंड-खंड में टूट जाना चाहते हो तो बात अलग।

शांतानंद, अगर अशांतानंद होना है तो बात अलग। हरेक के देखने का अपना नजरिया है।
रास्ते में मुल्ला नसरुद्दीन की मुलाकात अनायास अपने एक बचपन के दोस्त से हो गई। मुल्ला ने पूछाः कहो भाई, क्या हालचाल हैं? शादी-वादी हुई कि नहीं?
जवाब मिलाः शादी हुए तो काफी अरसा गुजर चुका है और ऊपर वाले की कृपा
से पिछले माह ही एक बच्चा भी हो गया है।
मुल्ला ने पूछाः अच्छा, तो तुमने ऊपर की मंजिल में क्या कोई किराएदार
रख लिया?
मत झंझटों में पड़ो। अब मेरे पास आ गए हो, मैं काफी हूं। अब तुम किस-किस
की बातों को सोचते रहोगे? तुलना में मत पड़ो। ऊहापोह न खड़ा करो। इससे बुद्धि उलझेगी, जाल बढ़ेगा। सरल होने से सत्य मिलता है, उलझने से नहीं।

आखिरी प्रश्नः क्या सच ही मारवाड़ियों को शैतान भी धोखा नहीं दे सकता है?

सहजानंद! कल का प्रवचन सुन कर नसरुद्दीन को भी ताव आ गया। मैंने कहा
था कि मारवाड़ी को शैतान भी धोखा नहीं दे सकता। सो मुल्ला ने मन ही मन सोचाः ऐसी की तैसी मारवाड़ियों की! आज ही किसी मारवाड़ी को ऐसा चकमा दूंगा कि उसकी सात पीढ़ियों तक को याद रहेगा।
सांझ का समय था, सूरज ढल चुका था और बिजली की खराबी के कारण सड़क पर अंधेरा था। नसरुद्दीन ने देखा कि एक लंबा घूंघट काढ़े पड़ोस के ही मारवाड़ी सेठ धन्नालाल की नई बहू हाथ में एक खूबसूरत बैग लटकाए चली आ रही है। मुल्ला ने सोचा, अच्छा मौका है, इस मारवाड़िन को आज मजा चखाया जाए। वह जल्दी से उठा और उस स्त्री के साथ हो लिया। साढ़े सात बजे शाम का अंधेरा और फिर लंबा घूंघट! स्त्री ने सोचा कि मेरे पतिदेव आ गए। वह बोलीः सुनो जी, मुझे तो कोकाकोला पीने की इच्छा हो रही है।
मुल्ला समझ गया कि यह औरत मुझे अपना पति समझ रही है। वह बोलाः चलो पास
ही में यह रेस्तरां है, चल कर कोकाकोला पीएंगे।
इस तरह मुल्ला उस स्त्री को अपने घर ले आया। कमरे का दरवाजा बंद करके मुल्ला ने उस स्त्री के साथ बलात्कार किया। स्त्री न रोई, न चिल्लाई।
मुल्ला को बहुत खुशी भी हो रही थी कि आखिर एक मारवाड़िन को धोखा दे ही दिया। पर स्त्री के प्रतिरोध न करने से आश्चर्य भी हो रहा था। जब स्त्री चली गई तो नसरुद्दीन भी उत्सुकतावश छिपा-छिपा उसके घर तक पहुंचा। खिड़की में से झांक कर उसने जो हाल देखा तो उसे छठी का दूध याद आ गया।
वह महिला रो-रो कर बता रही थी कि एक अजनबी ने मेरे साथ व्यभिचार किया है।
उसके ससुर और पति ने पूछाः अरी मूर्ख, बैग में जो सोने के कंगन लेकर तू
जा रही थी, क्या वे भी छिन गए?
स्त्री बोलीः नहीं-नहीं, मैंने होशियारी से उन सोने के कंगनों को बैग में से निकाल कर अपनी जूतियों में छिपा लिया था। वह हरामजादा यह देख भी न पाया। और यही नहीं, उसके तकिए के नीचे उसका मनीबैग रखा था, वह भी मैं ले आई हूं।
ऐसा कहते हुए उस मारवाड़िन ने अपनी जूतियों में से कंगन निकाले और मुल्ला का मनीबैग निकाला, जिसमें तीन हजार रुपये थे। सबके सब प्रसन्न हो उठे। सबके चेहरे चमक उठे। ससुर ने संतोष की सांस लेते हुए कहाः चलो, बलात्कार हुआ तो हुआ! अपना क्या गया! अरे इज्जत बच गई, यही क्या कम है!
आज इतना ही।

रहिमन धागा प्रेम का
चौथा प्रवचन

श्रद्धा की अनिवार्य सीढ़ी: संदेह

पहला प्रश्नः सिवाय ध्यान के आपकी हर बात को मैंने सहजता से स्वीकार नहीं किया--संन्यास भी, कपड़े भी और माला भी। हर बात पर मैंने विरोध किया, विद्रोह किया और अवज्ञा भी। बार-बार भागने को चाहा, और हर बार और ज्यादा खिंचता चला आया। फिर भी मुझ अपात्र को आपने स्वीकार किया। आज आपके प्रेम में डूबा जा रहा हूं। भीतर न कोई विरोध है, न विद्रोह; सब शांत और मौन है। फिर भी एक अपराध-भाव सताता है। प्रभु, आप जीते, मैं हारा। मुझे माफ कर दें। आपकी असीम अनुकंपा के लिए अनुगृहीत हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें!

आनंद किरण! श्रद्धा और संदेह में विरोध नहीं है, जैसा कि आमतौर से सोचा जाता है। संदेह श्रद्धा की अनिवार्य सीढ़ी है। जिसने संदेह नहीं किया, वह श्रद्धा क्या खाक करेगा! संदेह भी न कर सका तो श्रद्धा तो कैसे करेगा!
संदेह तुम्हें सजग रखता है, ताकि श्रद्धा गलत जगह न हो जाए। संदेह तुम्हें चेताए रखता है। संदेह सेवक है, रक्षक है। नहीं तो श्रद्धा तो शायद ही हो, अंधश्रद्धा होगी। संदेह तुम्हारी श्रद्धा को अंधा नहीं होने देता। संदेह तुम्हारी श्रद्धा की आंखों को काजल देता रहता है, उनकी धूल पोंछता रहता है।
इसलिए मेरे हिसाब में, संदेह से कोई दुश्मनी नहीं है। संदेह के कारण भूल कर भी कोई अपने को अपराधी न समझे। यद्यपि तुम्हारे धर्मगुरु तुम्हें यही समझाते हैं कि संदेह किया तो भटक जाओगे। मैं तुमसे कहता हूंः जी भर कर संदेह करो। जब तक संदेह कर सकते हो, जरूर करो। जब संदेह अपने से गिर जाए और श्रद्धा आविर्भूत हो, तो वह आंख वाली श्रद्धा है।
अंधी श्रद्धा परमात्मा तक नहीं ले जा सकती। अंधा क्या खाक परमात्मा
तक जाएगा! अंधा जमीन पर नहीं चल सकता, आकाश में क्या उड़ेगा! अंधे को तो हर क्षण पूछना होता है किसी और से। और इसलिए पंडित-पुरोहित चाहते हैं कि तुम अंधे रहो। यही तो उनके व्यवसाय का राज है। तुम अंधे रहो तो पुरोहित का मूल्य है। तुम्हारे पास आंख हो तो पुरोहित की क्या आवश्यकता है? तुम्हारी आंख ही पर्याप्त होगी। पूछने की जरूरत न होगी। तुम अपना रास्ता खुद खोज लोगे। तुम अपने दीये स्वयं बन जाओगे।
पंडित समझाता है, पुरोहित समझाता है, धर्म के ठेकेदार समझाते हैं। फिर वे हिंदू हों या मुसलमान, या जैन, या बौद्ध, इससे फर्क नहीं पड़ता। दुकानों के नाम अलग हैं, सामान एक ही बिकता है। लेबल अलग होंगे, मार्के अलग होंगे, डिब्बे अलग होंगे; मगर भीतर जो वस्तु तुम्हें मिलती है, वह एक ही है। कहीं से खरीद लो, वही जहर है। अलग-अलग फैक्टरियों में बना होगा, अलग हाथों से बना होगा, रंग अलग होंगे, मगर ढंग अलग नहीं हैं।
सच्ची श्रद्धा संदेह से भयभीत नहीं होती, संदेह को अंगीकार करती है। संदेह के कारण श्रद्धा की तलवार पर धार लगती है। श्रद्धा संदेह का भी उपयोग करने में समर्थ है--इतनी बलवान है, इतनी आत्मवान है! संदेह से भयभीत नहीं है। संदेह को आत्मसात कर लेती है।
संदेह ऐसे है, जैसे बीज को चारों तरफ घेर कर खोल होती है। खोल बीज की दुश्मन नहीं है, उसकी रक्षक है। जब तक ठीक भूमि न मिल जाएगी, खोल उसे बचाएगी। जब ठीक भूमि मिल जाएगी तो खोल गल जाएगी और बीज में से अंकुर का जन्म हो जाएगा। उस अंकुर को धन्यवाद देना चाहिए खोल के लिए। न होती खोल तो यह अंकुर न मालूम कहां कंकड़ों-पत्थरों में कहां निकल आता और मर जाता! ऐसा ही संदेह है। वह शरीर-रक्षक है श्रद्धा का।
मैं तुम्हें यह बार-बार स्मरण दिला देना चाहता हूं कि मेरे पास जो लोग
आए हैं, मैं उन्हें अंधश्रद्धालु की तरह नहीं निर्मित हुआ देखना चाहता हूं। अंधे श्रद्धालुओं से तो पृथ्वी भरी है; उन्हीं से तो मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे भरे हैं। वे ही तो गिरजों में हैं, सिनागॉग में हैं,

चैत्यालयों में हैं। उन्हीं अंधों की तो भीड़ है। और फिर अंधों को अंधे चलाने वाले मिल जाते हैं। अंधे पहचानें भी कैसे कि जो हमें मार्गदर्शन दे रहा है वह भी अंधा है!
नानक ने कहा हैः अंधा अंधा ठेलिया! अंधे अंधों को ठेल रहे हैं। और कबीर ने कहा हैः दोई कूप पड़ंत। गिरेंगे ही कुएं में, आज नहीं कल।
संदेह को सजग रखो! क्योंकि मेरा भरोसा इस बात में है कि अगर कहीं सत्य
है तो संदेह कितनी देर टिकेगा? सत्य के समक्ष टिक नहीं सकता। अगर आग सच्ची है तो संदेह जलेगा, राख हो जाएगा। आग ही झूठी हो तो संदेह को नहीं जला पाएगी। तो संदेह ही आग को बुझा देगा। जो संदेह श्रद्धा को मिटा दे, वह दो कौड़ी की है, नपुंसक है। संदेह सशक्त चाहिए, बलवान चाहिए। लड़े आखिर तक, जूझे आखिर तक। हां, और जब पाए कि सत्य के सामने हारना ही होगा, तो हारे।
जब तक तुम नहीं कह सको, जरूर नहीं कहे जाओ। तुम्हारे नहीं कहने से ही
एक दिन हां का आविर्भाव होगा। जो कभी नास्तिक नहीं रहा, उसकी आस्तिकता का मुझे बहुत भरोसा नहीं है। जिसने कभी ईश्वर को इनकार नहीं किया, जिसने कभी धर्मशास्त्रों को दुत्कारा नहीं, जिसने कभी मंदिरों की तरफ पीठ नहीं की, उस आदमी का मंदिर की तरफ मुख करना भी बहुत मूल्य नहीं रखता है। वह गोबर-गणेश है। उसे जहां बिठाल दिया, वहीं बैठ गया। मां-बाप ने जहां पहुंचा दिया, वहीं पहुंच गया। परिवार ने, परंपरा ने जहां धक्का दे दिया, वहीं चला गया। उसकी न कोई अपनी बुद्धि है, न अपना कोई विचार है, न अपना कोई विवेक है।
ऐसे गोबर-गणेशों के कारण ही तो पृथ्वी पर धर्म का आविर्भाव नहीं हो पाया। कितने धार्मिक लोग हैं, मगर धर्म कहां? धर्म की जलती हुई ज्वालाएं कहां? अगर धर्म हो तो पृथ्वी पर आनंद हो, धर्म हो तो पृथ्वी स्वर्ग बने। पृथ्वी नरक बन गई है। और इतने धार्मिक लोग हैं और इन्हीं सबकी कृपा से नरक बन गई है। ये धार्मिक लोग लचर-पचर हैं। इनकी धार्मिकता में कोई बल नहीं है। ये मुर्दे हैं। इन्होंने कभी नास्तिक होने की हिम्मत नहीं जुटाई। इनकी आस्तिकता कैसी आस्तिकता! इनके ऊपर-ऊपर आस्तिकता है, लिपी- पुती, और भीतर अभी भी संदेह है। दबा दिया है, खूब गहरा दबा दिया है। दूसरों से ही नहीं छिपाया, अपने से भी छिपा लिया है।
मगर तुम कभी जरा अपने भीतर तलाशना--सच में तुम ईश्वर पर भरोसा करते हो? सच में? डरना मत। खोजबीन करना, तलाशना, थोड़ा कुरेदना। और तुम पाओगेः यद्यपि तुम पूजा भी करते हो, पाठ भी करते हो, मंदिर भी जाते हो, मगर कहीं भीतर संदेह अभी भी जी रहा है; कहीं भीतर कोई कह रहा है कि पता नहीं, ईश्वर हो भी कि न हो! पता नहीं परलोक है भी या नहीं! कोई लौट कर तो आता नहीं। कौन जाने यह सिर्फ पंडित-पुरोहितों की ईजाद हो! यह चालबाजों की चालबाजी हो! यह आदमी के शोषण की व्यवस्था हो! कौन जाने, यह भी राजनीति का एक खेल हो धर्म की आड़ में! तुम भी अपने भीतर संदेह को जागा हुआ पाओगे, चाहे तुम्हारी आस्तिकता कितनी ही हो।
इसलिए मैं तो चाहता हूं कि आनंद किरण, जो तुम्हारे जीवन में हुआ है, वह जैसा होना चाहिए वैसा ही हुआ है। मेरे प्रत्येक संन्यासी को ऐसे ही विकसित होना है। लड़ो! इनकार करो! बगावत करो! विद्रोह करो! मैं तुम पर कुछ भी थोपना नहीं चाहता। मुझसे जूझो! अगर अपने गुरु से न जूझोगे तो किससे जूझोगे? अगर अपने गुरु से भी विवाद न कर सके तो किससे विवाद करोगे?
लेकिन तुम कमजोर गुरुओं के साथ जीए हो। वे कहते हैंः विवाद नहीं करना। हम जो कहें, वह मानो। जैसा कहें, वैसा मानो। संदेह किया तो नरक में सड़ोगे। वे तुम्हें डरवाते हैंः अगर संदेह किया तो भटक जाओगे! वे खुद डरे हुए हैं कि तुम्हारा संदेह कहीं उनके भीतर संदेह पैदा न करवा दे! क्योंकि उनके भीतर भी संदेह है, प्रज्वलित है, दबा पड़ा है, राह देख रहा है, प्रतीक्षा कर रहा है। कोई मौका आ जाए, कोई चुनौती मिल जाए तो उनके भीतर भी संदेह है। वे तुमसे नहीं डर रहे हैं, अपने संदेह से डर रहे हैं। वे सुनना नहीं चाहते संदेह की बात। वे भागते हैं संदेह से। वे कहते हैंः संदेह दुश्मन है।
मैं तुमसे कहना चाहता हूंः संदेह परम मित्र है। परमात्मा ने संदेह बनाया ही न होता, अगर वह दुश्मन होता। परमात्मा तुम्हारा दुश्मन बनाएगा? और इतना गहरा बिठाएगा? असंभव! परमात्मा ने तुम्हें संदेह दिया है,

प्रत्येक बच्चे को संदेह दिया है। यह जरा मजे की बात है, सोचना। हर बच्चा संदेह लेकर पैदा होता है। बच्चे कितने प्रश्न पूछते हैं! कितने प्रश्न उठाते हैं! बड़े-बूढ़े उनको दबाते हैं कि नहीं, प्रश्न मत पूछो। हम जो कहते हैं, मानो। बड़े होओगे, तब तुम भी जान लोगे। और मैं तुमसे कहता हूं कि बड़े होकर तुम भी यही अपने बच्चों से कहने लगते हो। न तुम्हारे बाप-दादों ने जाना, न तुम जानते हो।
मेरे गांव में मेरे पिता के एक मित्र थे--ब्राह्मण थे, पंडित थे, वैद्य थे। और गांव के सत्संगियों का अड्डा उनके घर पर था। शायद ही कोई महात्मा हो भारत का जो उनके घर आकर मेहमान न हुआ हो। चूंकि वे मेरे पिता के मित्र थे, मैं उन्हें दादा कहता था। उनके घर जाता था। वैसे वे मुझे कभी नहीं रोकते थे, लेकिन जब उनके घर कोई महात्मा आता, वे खबर भिजवा देते कि अभी दो- चार दिन मेरी तरफ मत आना। आना ही मत! इस गैल ही मत निकलना!
मैं कोई ऐसे रुकने वाला नहीं था। उनकी खबर मिलते ही पहुंच जाता कि ऐसे कैसे हो सकता है? महात्मा आएं और मैं सत्संग में न आऊं! वे अपना सिर ठोंक लेते। वे कहतेः तुमको लाख दफे समझा दिया कि जब घर में महात्मा हों, तब कभी मत आना। क्योंकि तुम ऐसी बातें उठा देते हो कि बेचैनी हो जाती है, झगड़ा- झांसा खड़ा करवा देते हो।
उनके घर पर ही सबसे पहले मेरी करपात्री महाराज से टक्कर हुई। उनके घर
पर ही पुरी के शंकराचार्य से मेरी टक्कर हुई। उनके घर पर ही न मालूम कितने महात्माओं से! मगर जब उनके घर कोई महात्मा होता तो मैं भी अड्डा वहीं जमा देता। मैं भी कहता कि नहीं दादा, सत्संग होगा। वे मेरे हाथ जोड़ते। वे मुझे समझाते कि भैया तू घर जा, और कहीं सत्संग कर, अभी नहीं। जब महात्मा चले जाएं, फिर तू मुझसे जितना चाहे सत्संग कर लेना।
और वे मुझसे बार-बार कहते, जैसे उनके महात्मा कहते कि जब बड़े होओगे, तब समझोगे। मैंने उनसे पूछा कि बड़ा मैं कब होऊंगा, यह आप बता दो, ठीक-ठीक तारीख-तिथि। क्योंकि इसका कोई हिसाब नहीं। मैं जब पूछता हूं तभी आप कहते हो। पांच साल हो गए मुझे कहते, पांच साल में कुछ बड़ा हुआ कि नहीं? अभी तक कुछ समझ में मेरे आया नहीं। कब बड़ा हो जाऊंगा?
मैं उनसे पूछता ही रहा, पूछता ही रहा। जब वे मरणशय्या पर पड़े थे, मैं विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हो गया था। खबर मिली तो मैं भागा गांव गया। मैंने मरणशय्या पर उनको जाकर हिलाया। बिल्कुल मर रहे थे, आखिरी समय था। आंखें खोलीं। मैंने कहा कि अब तक मैं बड़ा हुआ कि नहीं, यह तो बता जाओ! क्योंकि मैंने जो-जो प्रश्न पूछे हैं, उनका कोई उत्तर अभी तक नहीं मिला। मरते वक्त आदमी में एक ईमानदारी आ जाती है, जिंदगी भर के धोखे टूट जाते हैं। जिंदगी ही टूट गई तो जिंदगी भर के धोखे टूट जाते हैं। उनकी आंख में दो आंसू टपक गए। उन्होंने कहा कि आज झूठ न बोल सकूंगा। वह सब झूठ था जो मैं तुमसे कहता था कि बड़े होओगे, समझ जाओगे। बड़े होकर मैं भी नहीं समझा। तुम भी नहीं समझोगे। बड़े होने से कोई समझ का सवाल नहीं है। वह तो सिर्फ तुम्हें हम टालते थे। तुम प्रश्न ऐसे उलटे-सीधे उठाते थे कि आखिर हमें भी तो आत्मरक्षा का अधिकार है! हम अपनी आत्मरक्षा के लिए टालते थे।
और मैंने कहाः तुम्हारे महात्मा भी यही कहते थे कि बड़े हो जाओगे, तब समझ लोगे।
वे मुस्कुराए। उन्होंने कहा कि न उनको पता है। सबने विश्वास कर लिया है।
हम विश्वास से जी रहे हैं। हमें कोई पता नहीं है। हमने अपने बाप-दादों
से मान लिया था। उन्होंने अपने बाप-दादों से मान लिया था। ऐसे हम माने चले जा रहे हैं। हमने सोचा नहीं, खोजा नहीं। हमने खोज के लायक हिम्मत ही नहीं की।
खोज के लिए साहस चाहिए, आनंद किरण। अच्छा हुआ कि तुम मेरी बातों को सहजता से नहीं मान सके। मान लेते तो चूक होती। मान लेते तो अपराध होता। तुमने नहीं माना, अच्छा किया। अगर बात में कोई बल है तो आज नहीं कल मानोगे, स्वीकारोगे। और तब वह संदेह का दमन नहीं होगी, श्रद्धा का जन्म होगी। और इन दोनों में जमीन-आसमान का भेद है। संदेह के दमन से तुम जैसे हो वैसे के

ही वैसे होते हो। श्रद्धा के जन्म से तुम्हारे जीवन में क्रांति हो जाती है। श्रद्धा तुम्हारी भीतर की आंख है--हृदय की आंख!
तुम कहते होः "सिवाय ध्यान के आपकी हर बात को मैंने सहजता से स्वीकार नहीं किया।"
ध्यान को भी तुमने इसीलिए स्वीकार कर लिया होगा कि वह शब्द पुराना है। हालांकि ध्यान के नाम से जो मैं करवा रहा हूं, वह ध्यान के नाम से कभी करवाया नहीं गया।
अब तुमने बात ही उठा दी तो सच्ची बात बता दूं। नाम ही पुराना है। नहीं
तो ध्यान के नाम से एकाग्रता करवाई जाती रही है। तुम्हारी किताबों में ध्यान का अर्थ लिखा होता हैः एकाग्रता। मेरी दृष्टि में, ध्यान और एकाग्रता बड़ी भिन्न बातें हैं; भिन्न ही नहीं, विपरीत। एकाग्रता होती है मन की और ध्यान है मन से मुक्ति। एकाग्रता तो एक तरह का विचार ही है--एक विचार, उस पर ही टिक कर बैठ गए। और ध्यान है निर्विचार। न एक, न दो, न अनेक। विचार ही नहीं। एकाग्रता में चेष्टा है, श्रम है, तनाव है। इसलिए एकाग्रचित्त होकर बैठने की कोशिश करोगे, जल्दी थक जाओगे।
ध्यान विश्राम है, विराम है। अपने भीतर मौज में डूबना है, मस्ती में डोलना है। कोई जबरदस्ती एकाग्रता नहीं थोपनी है। एकाग्रता में कोई विषय होता है। साधारणतः मन चंचल है। एक विषय से दूसरे विषय पर छलांग लगाता रहता है। एकाग्रता में एक ही विषय पर छलांग लगाता है, उसी पर कूदता है। जैसे कोई एक ही जमीन पर खड़ा हुआ वहीं-वहीं कूदे। कोई दौड़े, यह मन। और कोई एक ही जगह खड़े होकर उछल-कूद करता रहे, यह एकाग्रता। और कोई न दौड़े और न उछले-कूदे, लेट ही जाए आराम से, उसे मैं ध्यान कहता हूं। उछल-कूद ही गई।
मेरे ध्यान की बड़ी अपनी अनुभूति है, अपनी प्रतीति है। लेकिन शब्द पुराना है। मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि ध्यान किस पर करना? स्वभावतः, क्योंकि उनके लिए ध्यान का अर्थ होता है एकाग्रता। वे पूछते हैंः एकाग्रता किस पर करनी है? राम पर करें? कृष्ण पर करें? महावीर पर करें? बुद्ध पर करें? जपुजी पर करें? गायत्री मंत्र पढ़ें? क्या करें? ओंकार का जाप करें? नमोकार मंत्र? एकाग्रता किस पर? ध्यान किसका?
मैं उनसे कहता हूंः जब तक किसका रहे तो जानना कि ध्यान नहीं। जब गायत्री भी गई, जपुजी भी गया। इसीलिए तो नानक ने कहा हैः अजपा। अजपा का मतलब होता है, वहां जपुजी कैसे बचेगा, जरा सोचो! अजपा में जपुजी कैसे बचेगा? अजपा का मतलब ही हुआ कि जपने को ही कुछ न बचा। जप ही गया। जपुजी भी गए! वह जपुजी भी मन की ही बात है। वह भी मन का ही खेल है। कोई आदमी गालियां दे रहा है, कोई आदमी गीत गा रहा है, कोई भजन कर रहा है--ये सब मन के ही खेल हैं। एक गालियां दे रहा है, एक गीत गा रहा है, एक भजन कर रहा है--ये शब्द भी एक ही हैं। इनसे गालियां भी बन जाती हैं, गीत भी बन जाते हैं, भजन भी बन जाते हैं। मगर यह सब मन का ही जाल है। मन के जाल के बाहर हो जाना--अमनी दशा-- उसका नाम ध्यान है।
तुम कहते होः "ध्यान के सिवाय आपकी और किसी बात को मैंने सहजता से स्वीकार नहीं किया।"
अच्छा किया। ध्यान को भी सहजता से स्वीकार न करते तो अच्छा ही था। सहजता से कुछ भी स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हें सिखाता ही नहीं कि तुम अंध-भक्त बनो। अगर भक्त बनना है तो अंध-भक्त बनने से बचना। अगर धार्मिक बनना है तो अंधविश्वासी बनने से बचना।
ध्यान रहे, अधर्म धर्म के विपरीत नहीं है। अंधविश्वासी धर्म धर्म के विपरीत है। अधर्म धर्म का बाल बांका नहीं कर सकता। क्या करेगा? अधर्म की औकात क्या? लेकिन अंधविश्वासी धर्म धर्म को बर्बाद कर देता है, घुन की तरह लग जाता है। नकली सिक्का असली सिक्के को डुबो देता है। लेकिन जो सिक्का ही नहीं है, वह कहीं असली सिक्के को डुबो सकता है? नकली सिक्के से सावधान रहना, क्योंकि नकली सिक्का असली खतरा है असली सिक्के को।
अर्थशास्त्री कहते हैंः नकली सिक्के की एक खूबी है, वह असली सिक्के
को चलन के बाहर कर देता है। और तुम्हारा भी अनुभव होगा। ये अर्थशास्त्री तुम्हारे ही अनुभव के आधार पर यह सिद्धांत खोजे हैं। यह सिद्धांत बड़ा सच्चा है। यह जीवन के हर पहलू पर लागू होता है। नकली सिक्के असली सिक्कों

को चलन के बाहर कर देते हैं। तुम्हारी जेब में दो नोट हैं--एक दस का असली नोट, एक दस का नकली नोट। पहले तुम कौन सा चलाओगे? पहले तुम नकली चलाओगे, क्योंकि नकली से जितनी जल्दी छुटकारा हो जाए अच्छा। सिगरेट खरीद लोगे, पान खरीद लोगे, सब्जी खरीद लोगे। ठहराओगे भी नहीं, दाम भी नहीं करोगे, मोल-भाव भी नहीं। जान भी रहे होओगे कि रुपये के सवा रुपये मांग रहा है, मांगने दो, जल्दी से निपटाओ; देर-दार की और कहीं वह नकली दस का नोट पहचान न ले! मुल्ला नसरुद्दीन गया घुड़दौड़ की टिकट खरीदने। जीत भी गया उसका घोड़ा।
जब वे रुपये उसे मिले तो वह एक-एक नोट को बड़े गौर से देख कर, उलट-पलट कर और गिनती करने लगा। नोट देने वाले ने कहा कि इतने क्या गौर से देख रहे हो? क्या तुम सोचते हो हम तुम्हें नकली रुपये देंगे?

उसने कहा कि नहीं-नहीं, कभी नहीं! मैं यह देख रहा हूं कि मैंने जो दिए थे, कहीं वही तो वापस नहीं मिल रहे हैं! तुम्हारे रुपयों पर मुझे शक नहीं है, अपने रुपयों का मुझे पता है।
तुम जिसको नकली दे आए, जैसे ही उसको पता चलेगा... पान वाले को दे आए, एक आने का पान चार आने में ले लिया, तभी उसको शक तो पैदा हो जाएगा, मगर चार आने के लोभ में जल्दी से वह भी निपटा देगा। फिर गौर से देखेगा, पहचानेगा, देखेगा कि मामला नकली है। अब वह भी पहला काम यह करेगा कि जिसको भी पकड़ा दे। अखबार ही खरीद लेगा, नहीं भी पढ़ना तो भी! मराठी समझ में न भी आती हो तो भी चलेगा, अखबार ही खरीद लेगा। वह दस रुपये का नोट जितने जल्दी निकल जाए... । जिसके हाथ में पड़ेगा, वही चलाएगा। और अगर समाज में बहुत नकली रुपये चल रहे हों तो असली रुपये तिजोड़ियों में बंद हो जाते हैं और नकली चलते रहते हैं।
नकली का चलन होता है, असली चलन के बाहर हो जाते हैं।
यही हुआ है धर्म के जगत में। नकली धर्म ने धर्म को मारा है, अधर्म ने नहीं। अधर्म क्या मारेगा! अंधेरा नहीं मार सकता है रोशनी को, ख्याल रखना। तुमने कभी देखा, कि ले आए पोटली भर कर अंधेरा और डाल दिया दीये पर और दीया बुझ गया? जरा करके तो देखो! अंधेरे को ला सकते हो पोटली में बांध कर कि टोकरी में भर कर? अंधेरे को ला ही नहीं सकते पोटली में बांध कर। चले जाओ खूब अंधेरी रात में, दूर से दूर घने जंगल में और जहां अंधेरा बिल्कुल सघन हो, बांध लो पोटली में। घर आओगे, खाली पोटली पाओगे। अंधेरा पोटली में नहीं बंधता। और दीये पर डालोगे, दीया भी खिलखिला कर हंसेगा कि यह क्या कर रहे हो? कुछ होश है? दीये को कहीं बुझाया जा सकता है--नकली, थोथे, अस्तित्वहीन अंधेरे से?
दीये को अगर तुम्हें झंझट में डालना है तो अंधेरे से नहीं मिटा सकते। हां, दीये की एक तस्वीर ले आओ और घर में टांग लो और बच्चों को कहो कि यह है असली दीया! सुंदर तस्वीर! रंगीन तस्वीर! ज्योति भी है, किरणें भी फूट रही हैं। दीये से भी ऐसी किरणें फूटती साफ-साफ नहीं दिखाई पड़तीं जैसी कि तस्वीर में दिखाई पड़ रही हैं। हां, तस्वीर टांग लो और बच्चों को कहो कि यह है दीया! यह कोई साधारण दीया नहीं है। जब बड़े हो जाओगे, तब तुम पहचानोगे। बड़े होकर वे भी अपने बच्चों को यही कहेंगे, क्योंकि बच्चों के सामने कोई बूढ़ा यह स्वीकार नहीं करना चाहता कि मैं जिंदगी भर अज्ञान में रहा। इससे अहंकार को चोट लगती है।
काश दुनिया के बूढ़े ईमानदारी से स्वीकार कर लें कि हम अज्ञान में जीए,
तो इस दुनिया से अज्ञान का डेरा उठ जाए! मगर बूढ़ों का अहंकार बड़ा होता चला जाता है। वे जो भी करते रहे, उसी का पोषण करते हैं। उससे उन्हें कुछ भी न मिला हो, मगर उसी का पोषण करते हैं। कारण? अहंकार। इतनी जिंदगी, कोई हम बुद्धू हैं? हम कोई पागल हैं? हमने जिंदगी ऐसे ही गंवाई? अब कैसे स्वीकार करें कि हम पत्थर की मूर्ति के सामने सिर पटकते रहे, वहां कुछ भी न था, पत्थर था! सिर जरूर काला पड़ गया, और कुछ भी न हुआ! कि हम घोंटते रहे किताबें, जिनमें शब्द थे, और कुछ भी न था!
किताबों में कहीं सत्य होते हैं? सत्य खोजने होते हैं चैतन्य में। और खोज का पहला चरण हैः जी भर कर संदेह करो, अथक संदेह करो। और मैं तुमसे कहता हूं इतने बलपूर्वक, क्योंकि मैं जानता हूं कि सत्य के सामने संदेह नहीं

टिक सकता। सत्य होना चाहिए बस। सत्य ही न हो तो संदेह टिक सकता है। सत्य हो तो आज नहीं कल लड़खड़ाएगा संदेह और गिरेगा। वही हुआ।
तुम कहते होः "न मैंने संन्यास को स्वीकार किया सहजता से, न कपड़े, न माला।"
स्वाभाविक है। किसी के भी मन में सवाल उठता है कि यह कपड़े बदलने से क्या होगा? किसके मन में सवाल नहीं उठता कि कपड़े बदलने से क्या होगा! लेकिन जीवन के अनुभव को जरा गौर से देखो और तुम हैरान होओगे, छोटी सी बदलाहट बड़ी बदलाहटों का सिलसिला हो जाती है।
जरीन है, एक प्रतिष्ठित पारसी परिवार की महिला। एक डाक्टर की पत्नी। उसके पति ही उसे यहां ले आए थे। डाक्टर मेरी किताबों में उत्सुक थे। भूल हो गई उनसे कि पत्नी को यहां ले आए। क्योंकि वे तो किताबों में ही उत्सुक थे, बौद्धिक उनकी खुजलाहट थी। लेकिन स्त्रियां जब उत्सुक होती हैं तो वह बात खोपड़ी की नहीं रहती, हृदय की हो जाती है। उनकी पत्नी हार्दिक रूप से उत्सुक हो गई। कुछ कर भी न सके वे, क्योंकि वे मेरे पक्ष में थे बौद्धिक रूप से, इसलिए सहते गए, सहते गए। बात बहुत आगे बढ़ गई। बात इतनी आगे बढ़ गई कि पत्नी ने संन्यास लेना चाहा। सुशिक्षित व्यक्ति हैं, स्त्री स्वातंष्य के अधिकार को मानते हैं, तो इनकार भी न कर सके। बेमन से स्वीकार किया कि ठीक है, तू स्वतंत्र है, अगर तू संन्यास लेना चाहती है तो ले ले। तो जरीन संन्यासी हो गई।
घर के लोगों ने समझाया, पास-पड़ोस के लोगों ने समझाया। पारसियों में हंगामा मच गया, उन्होंने समझाया--कि कपड़े बदलने से क्या होगा? पर उसने कहा कि कम से कम कपड़े तो बदलने दो, ताकि और बदलाहट के लिए हिम्मत जुटा सकूं। मैं भी जानती हूं कि कपड़े बदलने से क्या होगा, तुम भी जानते हो; इसमें विवाद कहां है? मगर कम से कम कपड़े तो बदलने दो! अगर कपड़े बदलने से कुछ नहीं होता तो तुम सब मुझे समझाने क्यों आए हो? कुछ होता ही होगा। तुम इतने परेशान क्यों हो? कपड़े मैं बदल रही हूं, तुम तक को कुछ हो रहा है! तो मुझे भी जरूर कुछ होगा। तुम्हें देख कर लगता है कि मुझे भी कुछ होगा। जब दूसरों तक को होने लगा, मैंने अभी कपड़े बदले भी नहीं।
फिर उसने कपड़े बदल लिए, फिर तो बहुत तहलका मचा, कि तू पारसी होकर अपने धर्म का त्याग कर रही है!
उसने कहाः मेरे जीवन में धर्म का पहली दफा प्रवेश हो रहा है। पारसी होकर मेरा धर्म से कोई नाता ही नहीं था। एक औपचारिकता थी।
लोग समझाने लगेः छोड़ यह माला! माला में क्या रखा है? अरे हृदय की बात है, तो हृदय में रख!
उसने कहा कि अगर हृदय की ही बात है तो फिर तुम क्यों पारसी मंदिर में जाते हो? हृदय में ही चले गए! फिर क्यों जरथुस्त्र के चित्र को घर में लगाया हुआ है? तो हृदय में ही लटका लो।
घर के लोगों ने भी सोचा कि कपड़े ही बदलती है, क्या होगा, बदल लेने दो! कपड़े बदले, फिर बदलाहट का सिलसिला शुरू हुआ।
पहले तो यह तर्क किसी को भी उठता है कि कपड़े बदलने से क्या होगा? मगर मैं जब तुम्हारी अंगुली पकड़ लूंगा, तो पहुंचा भी पकड़ लूंगा। और पहुंचा पकड़ में आ गया, तो तुम कितने दूर हो? और आहिस्ता ही आहिस्ता पकड़ना होता है। एकदम से किसी की गर्दन पकड़ो तो वह भाग ही खड़ा हो। तो कपड़े से शुरू करता हूं। और तुम देखते हो, कपड़े से भी रूपांतरण होता है! क्योंकि तुम छोटी-छोटी चीजों से मिल कर ही तो बने हो। डाक्टर जरा सी दवा देता है और बड़ी सी बीमारी दूर हो जाती है। तुम यह नहीं कहते कि क्या होगा! होम्योपैथी की गोलियां देखीं? तुम यह नहीं कहते कि शक्कर की चार गोलियां, इनसे क्या होगा! शक्कर की चार गोलियां कभी-कभी चमत्कार कर देती हैं। कभी-कभी तो यह भी हो जाता है कि दवा हो या न हो उनमें, मगर तुम पर परिणाम हो जाता है। तुम्हें यह भरोसा भी हो कि यह दवा है, तो वह भरोसा भी काम कर जाता है। तुम्हारे चित्त पर यह ख्याल आ जाए कि दवा काम कर रही है, तो तुम्हारे चित्त का बड़ा बल है।
आखिर हम सैनिक को कपड़े पहनाते हैं, सिपाही को कपड़े पहनाते हैं। तुमने कभी ख्याल किया? वही आदमी जब सिपाही के कपड़े में तुम्हारे कंधे पर हाथ रखता है तो फुरफुरी छूट जाती है, एकदम रोमांच हो जाता है, एकदम कुंडलिनी

जगने लगती है कि फंसे! पता नहीं किसलिए कंधे पर हाथ रखा है! अब क्या करेगा यह और! और वह अगर कहता है कि चलो अदालत की तरफ, तो तुम एकदम पीछे हो लेते हो, ना-नुच नहीं करते। भूल जाते हो सब अकड़। और यही आदमी अगर साधारण कपड़ों में, पहने पाजामा-कुरता मिल जाए, कंधे पर हाथ रखे, तो कहोगेः नीचे करो हाथ! होश से चलो! किसके कंधे पर हाथ रख रहे हो!
तुमने देखा, इस देश में एक चमत्कार होते देखा? सिक्खों का इतिहास पुराना नहीं है, केवल पांच सौ साल पुराना है। लेकिन एक चमत्कार होते देखा? सिक्ख कोई अलग कौम नहीं है। जैसे और पंजाबी हैं, वैसे ही सिक्ख हैं। लेकिन क्या फर्क हो गया? सिक्ख एक नई ही जाति की तरह पैदा हो गए--एक सैनिक जाति की तरह पैदा हो गए! बदला क्या था? साफा बांध लिया तो क्या होगा? कड़ा पहन लिया तो क्या होगा? दाढ़ी-मूंछ रख लीं तो क्या होगा? बाल बांध लिए तो क्या होगा? बात तो ठीक ही है, ऐसे कहीं कुछ होता है! मगर कुछ हो जाता है।
मैं मनाली जा रहा था एक शिविर लेने। बड़ी गाड़ी, मनाली का रास्ता संकरा, इंपाला गाड़ी, ड्राइवर बीच में डरने लगा। और एक जगह वर्षा हो गई थी, कीचड़ मची हुई थी, रास्ता संकरा था और गाड़ी बड़ी थी। हालांकि ड्राइवर सरदार था, मगर उसकी भी हिम्मत टूटने लगी। उसने तो एक जगह जाकर गाड़ी खड़ी ही कर दी बीच में पहाड़ पर कि अब मैं आगे नहीं जा सकता। यहां तो जीवन को खतरा है।
मैंने कहाः तेरे ही जीवन को खतरा है? मैं भी बैठा हूं। तू फिकर न कर, बढ़!
मगर वह कहे कि मैं एक कदम आगे नहीं बढ़ सकता। या तो आप उतर जाएं यहां या मैं आपको वापस दिल्ली छोड़ सकता हूं।
पीछे से मेरे एक मित्र, जो कि पुलिस के आई.जी. थे पंजाब के, वे भी शिविर में भाग लेने आ रहे थे, वे अपनी जीप में आए। उनको मैंने कहा कि कुछ करिए, यह आदमी तो अटक कर ही खड़ा हुआ है। वे आए और उन्होंने कहा कि अरे, सरदार होकर, शर्म नहीं आती?
बस उनका इतना कहना कि सरदार होकर, शर्म नहीं आती, उसने पगड़ी-वगड़ी ठीक
की और वह तो चल पड़ा! मैंने उससे पूछाः क्यों भाई? उसने कहाः मैं तो भूल ही गया था! उन्होंने याद दिला दी। अरे खालसा का आदमी होकर... । तो उसने बस वाह गुरुजी का खालसा, वाह गुरुजी की फतह--और चल पड़ा! उसने कहा, अब जो होगा होगा। सरदार होकर पीछे कैसे लौट सकता है!
जरा सी बात, मगर जान खतरे में डाल दी उसने।
वैसे बिल्कुल नट गया था। सब कोशिश करके हार चुके थे। वह जाने को, कदम बढ़ाने को राजी ही नहीं था। इतने तक मैं राजी हो गया था कि तू पीछे बैठ, मैं ड्राइव करता हूं। उसने कहा कि मारा मैं और भी जाऊंगा। फिर तो मौत पक्की है। मैं अनुभवी हूं इस रास्ते का, पहाड़ी पर चलाने का, आप कैसे चलाएंगे? जब मेरी हिम्मत नहीं पड़ रही आगे जाने की, तो मैं गाड़ी के व्हील पर आपको हाथ नहीं रखने दूंगा।
मैंने उससे कहाः तू उतर जा, हम गाड़ी ले जाते हैं।
उसने कहाः लौट कर मालिक को क्या कहूंगा?
सब उपाय करके हार गए थे। मगर एक याददाश्त--कि तू खालसा का सदस्य है और यूं कमजोरी दिखा रहा है! बस जोश वापस आ गया, बल आ गया वापस।
सिक्खों ने एक क्रांति कर दी भारत में, एक नई कौम खड़ी कर दी। और मजा यह
है कि कोई सिक्ख संन्यासी हो जाता है तो सिक्ख ही उसको समझाते हैं कि गैरिक वस्त्र पहनने से क्या होगा? यह तर्क स्वाभाविक है। इसमें कुछ आश्चर्यजनक नहीं। लेकिन गैरिक वस्त्र पहनने से कुछ होता है, यह अनुभव की बात है।
एक शराबी ने संन्यास लिया। उसने कहा कि आप मुझे गैरिक वस्त्र पहना रहे हैं। मैं शराबी हूं और मैं कहे देता हूं कि शराब मुझसे ऐसी आसानी से छूटने वाली नहीं है। जिंदगी हो गई, छोड़ने के बहुत उपाय कर चुका हूं, बिल्कुल हार गया हूं। अब तो उपाय भी नहीं करता।
मैंने कहाः तू फिक्र छोड़। मुझे कुछ एतराज नहीं। तू इस तरह मत सोचना कि संन्यासी होकर शराब पी रहा है। तू इस तरह सोचना कि धन्यभाग मेरे कि शराबी हूं, फिर भी कम से कम संन्यासी तो हूं! उसको मैंने एक कहानी सुनाई। दो यहूदी युवक अपने गुरु के आश्रम में थे। दोनों को एक घंटे बगीचे में घूमने

का मौका मिलता था। दोनों को सिगरेट पीने की आदत थी। और वही एक घंटा था जब वे पी सकते थे। लेकिन वह घंटा भी मिलता था ध्यान के लिए कि घूम कर ध्यान करें। तो सवाल था कि ध्यान करते समय सिगरेट पीना कि नहीं? तो दोनों ने तय किया कि गुरु से पूछ लेना उचित है। तो पहले ने जाकर पूछा। गुरु ने कहाः नहीं, बिल्कुल नहीं! यह बात पूछने की है? शर्म नहीं आती? नालायक कहीं के! जाओ ध्यान करो!
वह तो बड़ा दुखी वापस लौट आया। एक बेंच पर आकर बैठ गया बड़ा उदास होकर। दूसरा आया, वह तो सिगरेट पीता चला आ रहा था। पहले ने पूछा कि मामला क्या है? मुझ पर तो बहुत नाराज हुए गुरु! क्या तुझे सिगरेट पीने की आज्ञा दी? उसने कहाः हां। मैंने पूछा तो उन्होंने कहा--हां, मजे से।
उसने कहाः यह तो हद अन्याय हो रहा है! यह कैसा पक्षपात!
तो दूसरे ने कहाः मैं तुझसे पूछता हूं तूने पूछा क्या था?
उसने कहाः मैंने पूछा था कि मैं ध्यान के समय, ध्यान करते समय सिगरेट
पी सकता हूं? वे एकदम नाराज हो गए, आगबबूला हो गए कि नहीं, बिल्कुल नहीं। दूसरा हंसने लगा। उसने कहाः वहीं भूल हो गई। मैंने गुरु से पूछा कि क्या मैं सिगरेट पीते समय ध्यान कर सकता हूं? उन्होंने कहा--हां, बिल्कुल कर सकते हो! अरे कम से कम ध्यान तो कर रहे हो!
तो मैंने उसको कहा कि तू यह मत सोचना कि तू शराबी है और गैरिक वस्त्र पहने हुए है। यह तो अच्छी बात नहीं है। ऐसा मत सोचना। ऐसा सोचना कि धन्यभाग तेरे, है तो शराबी, मगर फिर भी संन्यास की भावदशा जगी है, फिर भी संन्यास की तूने हिम्मत की है। इसलिए मैं तो दूसरी बात मान कर तुझे संन्यास दे रहा हूं।
पांच-सात दिन बाद वह आया, उसने कहा कि आप भी धोखेबाज मालूम होते हैं। मुझे फंसा दिया। कल मैं शराबघर के बाहर खड़ा था, दो आदमी एकदम मेरे पैरों में गिर पड़े और कहाः स्वामी जी, आप यहां कैसे? यह शराबघर है, अंदर मत जाइएगा! सो मुझे उन्हें आशीर्वाद देना पड़ा। अरे जब कोई पैर पड़ रहा है... ! और गया तो शराबघर के लिए था, लौट कर घर आ गया कि अब क्या जाना! सो आज सात दिन हो गए, हिम्मत नहीं पड़ रही जाने की उस तरफ, क्योंकि कोई पैर पड़ ले, अंदर घुसो... । अच्छी मुसीबत में डाल दिया।
उसने कहाः एक दिन मैं सिनेमाघर गया कि चलो शराब नहीं पीना तो कम से कम सिनेमा देख आऊं। वहां क्यू में खड़ा था कि एक आदमी ने पीछे से हुद्दा मारा मुझे और कहा कि महाराज, आप यहां कैसे खड़े हैं? सो मैं उससे झूठ बोला कि मैंने समझा कि यहां गीता का प्रवचन हो रहा है। उसने कहाः अरे नहीं महाराज, यहां हुड़दंगी फिल्म चल रही है, आप घर जाइए। यहां कहां गीता का प्रवचन! सो मुझे घर लौट कर आना पड़ा। अच्छा फंसाया!
और उसने कहा कि एक मजे की बात देखो। मेरी पत्नी ही मुझसे ऐसा व्यवहार करती है, जैसे मैं अछूत। कहती है--दूर रहना महाराज, छूना मत! संन्यासी होकर क्या स्त्री को छुओगे? मारे गए, बिल्कुल मारे गए!
उसने कहाः क्या, हम तो सोचते थे कि गैरिक वस्त्र पहनने से क्या होगा! अरे अपनी स्त्री कहीं साथ ले जाने को तैयार नहीं--कि नहीं-नहीं, तुम साथ न आओ, या तो तुम आगे जाओ या पीछे आना। लोग रास्ते में पूछते हैं कि वह कौन से स्वामीजी के साथ जा रही थीं?
और तुम सोचोगे कि गैरिक वस्त्र पहनने से क्या होगा? प्रश्न बिल्कुल स्वाभाविक है, मगर अनुभव के अतिरिक्त पता नहीं चलेगा। सारे संदेह ठीक थे। माला से भी क्या होगा? लेकिन जिन्होंने माला पहनी है, अब तो तुम भी जानते हो--क्या होगा। एक दिन उतार कर रखना भी मुश्किल हो जाती है।
अभी कल जर्मनी से एक अखबार आया। जर्मनी के एक बहुत प्रसिद्ध अभिनेता
ने संन्यास लिया है। संन्यास लेकर यहां से गया, उसके डायरेक्टर ने वक्तव्य दिया है कि हम बड़ी मुसीबत में पड़ गए हैं, क्योंकि यह आदमी कपड़े तो पहले बदलने को तैयार नहीं था, वह कहे कि मैं गैरिक वस्त्र में ही अभिनय करूंगा यह। सारी कहानी खराब किए दे रहा है। अब इसको गैरिक वस्त्र में और जर्मन कहानी में कैसे इसको जमाओ! और इसके बिना कहानी आगे चल नहीं सकती, आधी कहानी हो चुकी है। फिल्म की आधी शूटिंग हो चुकी है। बामुश्किल हाथ-पैर जोड़ कर इसको समझाया कि भैया, तू इस फिल्म को पूरी करवा दे, कपड़े कम से कम बदल

ले। तो वह राजी हुआ, मगर माला तो कोई हालत में निकाले ही नहीं। चलो, उस डायरेक्टर ने कहा कि हम बर्दाश्त कर लेंगे, जो कुछ होगा होगा, पहने रहने दो माला। मगर एक दृश्य आता है जिसमें वह नग्न दिखाया जाता है। जर्मन फिल्म है। तो नंगा तो खड़ा है, मगर माला नहीं उतारता।
तो डायरेक्टर ने कहा कि कपड़ों में तो ठीक-ठीक, माला चल जाएगी, कोई समझेगा कि होगा कुछ, झक्की है या कुछ है; मगर नंगे खड़े हो और माला पहने हो! यह तो ऐसा ही जैसे कि कोई नंगा खड़ा है, टाई बांधे हुए है! तू माला उतार दे! बामुश्किल उसने माला उतारी, मगर बिल्कुल अपने पास में रखी। और ध्यान उसका माला पर। बातें कर रहा है अभिनेत्री से और आंखें लगाए है माला पर! तो उसने कहा कि यह कैसे फिल्म बनेगी? लोग क्या कहेंगे! कोई माला तेरी ले जाएगा? मगर उसने कहा कि मेरे प्राण निकले जा रहे हैं, उसके बिना अब मैं क्षण
भर नहीं रह सकता। तुम मुझसे एक जघन्य अपराध करवा रहे हो। मैं तो नजर माला पर रखूंगा। उतारनी हो फिल्म तो उतार लो, न उतारनी हो तो तुम जाओ भाड़ में और जाए तुम्हारी फिल्म भाड़ में!
मगर मजबूरी थी, फिल्म पूरी करनी पड़ी! सो वह देखे माला की तरफ और बातें करे। देखे माला की तरफ और कह रहा है प्रेयसी से कि अहा, तेरा मुख चांद का टुकड़ा है!
जब माला के साथ जीओगे कुछ दिन तो वह तुम्हारे प्राण का अंग हो जाएगी। बाहर दिखाई पड़ेगी, लेकिन भीतर प्रविष्ट हो जाएगी। लेकिन वे सब नाते प्रेम के, हृदय के हैं। वे तो अनुभव के नाते हैं। ऊपर से तो तर्क संदेह उठाएगा। इसलिए मैं संदेहों का विरोध नहीं करता।
तुम कहते होः "मैंने बार-बार भागना चाहा और ज्यादा खिंचता चला आया।"
तुम भाग भी कैसे सकते हो? मैंने तुम्हें बांधा नहीं है। किसी को बांधो
तो वह भाग सकता है। जंजीरें हों तो तोड़ सकता है। मैंने तुम्हें पूरी स्वतंत्रता दी है। तुम भागना चाहो तो तुम मालिक हो अपने। मैं तुम्हें तुम्हारी मालकियत दे रहा हूं। सारा स्वर यही है मेरा कि तुम्हारी परम स्वतंत्रता है। इसलिए तुम भाग कैसे सकते हो? स्वतंत्रता से कोई कैसे भाग सकता है? परतंत्रता से भाग सकता है। इसलिए तुम और खिंचते आओगे।
और तुम कहते होः "मुझ अपात्र को आपने स्वीकार किया!"
कोई भी अपात्र नहीं, आनंद किरण। सबके भीतर परमात्मा बैठा है। अपात्र कौन? कैसा पात्र, कैसा अपात्र? एक ही तो विराजमान है। ढंग-ढंग के पात्र हैं, अपात्र कोई भी नहीं। मैंने तो अब तक कोई अपात्र नहीं देखा। लाखों लोग मेरे संपर्क में आए, मैंने कोई अपात्र नहीं देखा। अपात्र कोई है ही नहीं। हां, लेकिन तुम्हें समझाया गया है, क्योंकि तुम्हारे धर्मों के जो ठेकेदार हैं, वे इसी पर जीते हैं कि तुम्हें अपात्र सिद्ध करें, तुम्हें पापी सिद्ध करें, तुम्हें अपराधी सिद्ध करें, तुम्हें हीन-भाव से भर दें, तो ही तुम्हारा शोषण किया जा सकता है।
मैं तो तुम्हें सिर्फ एक ही बात का स्मरण दिलाना चाहता हूंः तत्वमसि!
कि तुम परमात्मा हो! उसकी ही अभिव्यक्ति हो! कैसा पाप? कुछ छोटे-मोटे काम भी कर लेते हो, भूल-चूकें हो सकती हैं, पाप इत्यादि कुछ भी नहीं। और भूल-चूकें इसलिए हो जाती हैं, क्योंकि तुम सो रहे हो, मूर्च्छित हो, निद्रा में हो। जाग आओगे ध्यान में, तो वे अपने आप विदा हो जाएंगी। सपने में कोई जैसे चोरी कर ले तो क्या चोर हो जाता है? और सपने में कोई साधु हो जाए तो क्या साधु हो जाता है? सुबह जाग कर दोनों पाएंगे कि सपना था--चोर भी और साधु भी। सुबह दोनों पाएंगे--न कोई चोर है, न कोई साधु है। ऐसे ही जिस दिन तुम जागोगे ध्यान में, उस दिन पाओगे--न कोई पाप है, न कोई पुण्य है; न कोई अच्छा है, न कोई बुरा है; न कोई असाधु है, न कोई साधु है--एक ही परमात्मा है! एक ओंकार सतनाम! वही सबमें विराजमान है।
इसलिए मेरी दृष्टि में तो कोई अपात्र नहीं है। तुम्हारी दृष्टि में अपात्र तुम हो सकते हो, क्योंकि तुम अब भी जाने-अनजाने सदियों-सदियों में जो कचरा तुम पर थोपा गया है, उसको ढो रहे हो। छोड़ो यह ख्याल। छोड़ते ही तुम्हारे भीतर एक नवोन्मेष होगा, एक नई ऊर्जा जन्मेगी, एक नया जीवन प्रारंभ होगा।
तुम कहते होः "लेकिन आज आपके प्रेम में डूबा जा रहा हूं।"

जानता था, यह होगा। इसलिए भागने भी दिया, इसलिए संदेह भी करने दिया, क्योंकि मैं तुम्हारी परम संभावना से परिचित हूं। मैं प्रत्येक व्यक्ति के भीतर परम संभावना जो है उससे परिचित हूं। प्रत्येक व्यक्ति को जानना ही है परमात्मा को देर-अबेर। क्या फर्क पड़ता है आज जाना कि कल जाना! इस अनंत काल में आज और कल में क्या भेद है? बुद्ध ने पच्चीस सौ साल पहले जाना, मैंने आज जाना; तुम सोचते हो इस अनंत काल में पच्चीस सौ साल से कोई फर्क पड़ता है? जैसे समुद्र में बूंद का क्या मूल्य है? नानक ने पांच सौ साल पहले जाना, तुम आज जानोगे, तो तुम सोचते हो कोई फर्क पड़ गया बहुत? अरे कोई रात दो बजे उठा, कोई दो बज कर पांच मिनट पर उठा, कोई दो बज कर सात मिनट पर उठा--बस ऐसी बात है। मिनट की भी बात कहनी ठीक नहीं, सेकेंडों का फर्क है।
एक आदमी बड़ा दानवीर था। उसने करोड़ों रुपये दान किए। तो अकड़ से स्वर्ग
के दरवाजे पर जाकर दस्तक दी। द्वारपाल ने द्वार खोला। पूछा कि आप इतने अकड़ से दरवाजा खटखटा रहे हैं, अकड़ का कारण?
उसने कहाः करोड़ों रुपये दान किए हैं!
द्वारपाल ने कहा कि यहां पृथ्वी के करोड़ों रुपये की कीमत कौड़ी से ज्यादा नहीं है।
धक्का लगा धनपति को स्वभावतः। यहां बड़े-बड़े महात्मा, बड़े-बड़े शंकराचार्य कहते थे--अहा, दानी हो तो आप जैसा! दाता हो तो आप जैसा! अरे बहुत दाता देखे, मगर आप जैसा कोई दाता नहीं! और यह इज्जत हो रही है मेरी स्वर्ग के दरवाजे पर! वह तो सोच कर गया था कि बैंड-बाजे लिए खुद परमात्मा खड़े होंगे, फूलमालाएं सजाई होंगी, घंटा वगैरह बजा रहे होंगे खड़े होकर, लाउडस्पीकर लगा होगा--आइए, स्वागत है! बंदनवार बंधे होंगे, द्वार बने होंगे। यहां तो कुछ भी नहीं, सन्नाटा है। और यह दुष्ट द्वारपाल, यह क्या कह रहा है कि वहां के करोड़ों रुपये यहां कौड़ियों के बराबर हैं! थोड़ा सम्हला धक्के से तो उसने कहाः अच्छा ऐसा है! तो क्या आप मुझे दो कौड़ी उधार दे सकते हैं?
द्वारपाल ने कहाः निश्चित। लेकिन दो मिनट ठहरना पड़ेगा।
धनपति तब नहीं समझा। द्वारपाल जो गया भीतर सो गया ही। लाखों साल बीत गए, धनपति सिर पीट रहा है अभी भी। हां, लोग आते-जाते हैं, वे कहते हैंः भई, दो मिनट पूरे होंगे तब न। तुम्हें तभी समझ जाना था। जब यहां करोड़ों रुपये पृथ्वी के दो कौड़ी के बराबर होते हैं, तो यहां के दो मिनट पृथ्वी के करोड़ों वर्षों के बराबर होते हैं।
अनंत काल की तुलना में क्या फर्क पड़ता है?
तुम सोचते हो सूरज से कलकत्ता की दूरी और न्यूयार्क की दूरी में कोई फर्क है? सूरज से कोई फर्क नहीं है। हालांकि कलकत्ता और न्यूयार्क की दूरी में फर्क है, मगर सूरज पर खड़े हो जाओ तो कोई फर्क नहीं है। और सूरज बहुत दूर नहीं है। और किसी तारे पर खड़े हो जाओ तो और भी फर्क नहीं है। और दूर से दूर तारे हैं। जितने दूर हटते जाओगे, उतना ही फर्क खतम होता जाता है।
कोई अंतर नहीं पड़ता, देर-अबेर कब जागे। इसलिए मैं, कोई भी आता है, उसे संन्यास देने को राजी हूं। किसी को इनकार नहीं है। क्योंकि मैं जानता हूंः आज नहीं कल, तुम जागोगे। जागना तुम्हारी क्षमता है। तुम्हारे भीतर छिपा हुआ बीज है, फूटेगा।
और इसलिए आज तुम प्रेम में डूबे जा रहे हो। तुम कहते होः "अब न भीतर विरोध है, न विद्रोह।"
उठ कर गया तो अच्छा। दबा लेते तो बुरा हो जाता। दबा लेते तो कभी न कभी उठता। जो दबा लेते हैं उनका कभी न कभी उठेगा। इसलिए अच्छा है निपट ही लेना, उठा लेना, छूट जाना। भीतर सम्हाल कर नहीं रखना। स्वभावतः, मन अब मौन होगा, शांत होगा।
अब आनंद किरण, इस अपराध-भाव को भी छोड़ दो। यह तुम व्यर्थ ढो रहे हो। यह
भी छाया है पंडित-पुरोहितों के शिक्षण की। क्योंकि उन्होंने सिखाया हैः संदेह करने में पाप है। गुरु पर संदेह न करना। अरे तो और किस पर करोगे? तुम्हें समझाया गया हैः दूसरों के शास्त्रों पर संदेह करना, अपने शास्त्र पर नहीं। और मैं तुमसे कहता हूंः अपने पर पहले करना। दूसरों के शास्त्र से तुम्हें क्या लेना-देना? क्यों अपना समय खराब करना? हिंदू कुरान पर संदेह

करता है, गीता पर नहीं; जब कि करना उसको गीता पर चाहिए। मुसलमान गीता पर संदेह करता है, कुरान पर नहीं; जब कि करना उसको कुरान पर चाहिए। गीता से उसका क्या लेना-देना? लेकिन तुम्हें यही समझाया गया हैः दूसरों के शास्त्र पर संदेह करो। दूसरों के शास्त्र कुशास्त्र। दूसरों के गुरु कुगुरु। दूसरों के धर्म मिथ्या धर्म। अपने पर संदेह मत करना। अपने से तो अपना अहंकार जोड़ना। और यही हम सब किए बैठे हैं। परिणाम क्या हुआ है? थोथे रह गए हैं, प्राण नहीं है, आत्मा नहीं है।
नहीं, मैं तो अपने प्रत्येक संन्यासी से कहता हूंः संदेह करना हो तो मुझ पर करना। किसी और पर क्या करना? जीसस पर करने से क्या फायदा होगा? बुद्ध पर करने से क्या फायदा होगा? नानक पर करने से क्या? मोहम्मद पर करने से क्या? संदेह करना हो, मुझ पर करना। इधर मैं सामने मौजूद हूं। मुझ पर संदेह करोगे तो गलेगा, मुझ पर संदेह करोगे तो संदेह मरेगा। और मुझसे तुम्हारा नाता है, और किसी पर क्यों संदेह करोगे? जो भी द्वंद्व हो, संघर्ष हो, मुझसे हो। और मुझे भरोसा है, इसलिए इतनी निश्चिंतता से कह रहा हूं। तुम्हारे पंडित-पुरोहित नहीं कह सकते, उन्हें भरोसा नहीं है; वे जानते हैं कि तुमने टक्कर ली कि उनके पैर के नीचे से जमीन खिसक जाएगी। उनको खुद ही भरोसा नहीं है अपने पर। वे तुमसे कैसे कह सकते हैं कि आओ, संदेह को तुम्हारे चुनौती देते हैं!
मैं तुमसे कहता हूंः जितनी नहीं कहना हो, मुझसे कहना। अगर मैं तुम्हारी नहीं को हां में बदलने में असमर्थ होता तो ऐसा तुम्हें निमंत्रण न देता। लाओ कांटे! उन्हीं कांटों को हम फूल बना लेंगे। छोड़ दो अपराध-भाव, व्यर्थ बोझ मत ढोओ। तुमने कुछ पाप नहीं किया, कोई गुनाह नहीं किया। जो उचित था वही किया। अनजाने किया, इसलिए तुम्हें अपराध-भाव पैदा हो रहा है। अब तुम कहते होः "प्रभु, आप जीते, मैं हारा।"
मगर तुम्हें पता है, प्रेम में हार जाना जीतना है! हार कर तुम जीत गए। जीतते तो हारते। प्रेम का अपना ही गणित है, अलग ही गणित है--अनूठा गणित है।
तुम हार गए तो जीत गए।
कहते हो, माफ कर दूं!
मैं कभी तुम पर नाराज नहीं हुआ तो माफ कैसे कर दूं? माफ तो वह करे जो नाराज हुआ हो। न कभी नाराज हुआ, न तुम्हें माफ करने की मुझे कोई जरूरत है। मैं तुमसे सदा प्रसन्न रहा हूं। तुम मुझसे राजी हो कि नाराजी, यह तुम्हारा मामला है। मेरी तरफ से मैं सदा एकरस हूं। तुम मेरी तरफ पीठ किए खड़े हो, तो भी मैं वैसा हूं; तुम मेरी तरफ मुंह कर लो, तो भी मैं वैसा हूं। मैं जैसे का तैसा हूं। जस का तस! भूल कर मुझसे माफी मत मांगना, क्योंकि मैं देने में असमर्थ हूं। ऐसा मत सोचना कि मैं माफ नहीं कर सकता। नहीं, इसलिए असमर्थ हूं, क्योंकि माफ तो तब करूं जब पहले तुम पर नाराज हो जाऊं।
एक महावीर-जयंती पर मैं बंबई में बोल रहा था। मुझसे पहले एक जैन मुनि, चित्रभानु बोले। उन्होंने कहा कि महावीर महाक्षमावान थे। जिन्होंने उन्हें सताया, उन्हें भी उन्होंने क्षमा कर दिया। जिन्होंने उनके कान में खीले ठोंके, उनको भी उन्होंने क्षमा कर दिया।
तालियां पिट गईं। जैनियों की ही भीड़ थी। मैं बहुत चौंका। मैं उनके बाद बोलने खड़ा हुआ तो मैंने कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। ये जो जैन मुनि अभी बोल रहे थे, इनको महावीर का कुछ भी पता नहीं है। ये कैसे मुनि हैं! इन्हें कोई अनुभूति नहीं है। क्योंकि महावीर को क्षमावान कहने का अर्थ यह है कि पहले वे नाराज हुए थे। जो नाराज हो, वही क्षमा करे। मैं महावीर को क्षमावान नहीं कह सकता। उन्होंने कभी किसी को क्षमा नहीं किया, क्योंकि वे कभी किसी पर नाराज नहीं हुए। तुम अपनी धारणाएं उन पर थोप रहे हो।
मुनि तो आगबबूला हो गए। उनकी प्रतिष्ठा थी। वे तो एकदम मुझसे माइक छीन लिए। मैंने कहा कि ये सज्जन हैं, जो शायद क्षमा करें, शायद क्षमा न भी करें। यह क्रोधित व्यक्ति नाराज होगा तो क्षमा करेगा। ये अपने को ही महावीर पर आरोपित कर रहे हैं। इनको महावीर का कुछ भी पता नहीं है। महावीर ने न तो कभी नाराजगी की, न कभी क्षमा किया। इसलिए मैं महावीर को क्षमावान नहीं कह सकता। मैं महावीर को करुणावान भी नहीं कह सकता, क्योंकि जो क्रूर

ही नहीं है वह करुणावान कैसे होगा? हमारे कोई शब्द महावीर जैसे व्यक्तियों के काम के नहीं हैं। हमारे सब शब्दों में द्वंद्व है--और महावीर निर्द्वंद्व हैं। हमारे सब शब्दों में द्वैत है, दुई है--और महावीर द्वैत के पार हैं, अद्वैत में हैं। उन पर हमारे कोई शब्द लागू नहीं होते। हमारे सब शब्द छोटे पड़ जाते हैं, ओछे पड़ जाते हैं। हमें सम्हाल कर बात बोलनी चाहिए।
मगर जैन मुनि जो मुझ पर नाराज हुए, वह नाराजगी अब भी चलती है। वर्षों
हो गए इस बात को हुए। यह पहले वर्ष हमारा साथ हुआ। दूसरे वर्ष कुछ युवक मुझमें उत्सुक हो गए। उन्होंने कहाः बात जमी। उन्होंने फिर मुझे निमंत्रण दे दिया। मुनि मुझसे पहले बोले थे पहली बार, उन्होंने शर्त रखी कि इस बार वे मेरे से पीछे बोलेंगे, क्योंकि मैं खंडन करता हूं। मैंने कहा कि मुझे क्या फर्क पड़ता है कि आप कब बोलते हैं! मैं पहले बोलूंगा। पहले बोला तो हालत और खराब हो गई, क्योंकि पहले जो मैं बोला, उससे वे एकदम किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। उन्हें फिर कुछ सूझा ही नहीं कि अब क्या करें! क्योंकि मैंने जो बातें कहीं, वे उनकी समझ के बिल्कुल पार थीं। सो वे जो बोले, लोग ताली पीटने लगे, लोग हंसने लगे। जैन! जिनसे कि वे आशा नहीं करते थे कि ऐसा व्यवहार करेंगे। क्योंकि मैंने एक बात कही। मैंने कहा कि जब वर्धमान की मृत्यु हो गई तो महावीर का जन्म हुआ।
वर्धमान--महावीर का पुराना नाम, मां-बाप का दिया हुआ नाम। महावीर उनका नाम नहीं था, वर्धमान नाम था। वर्धमान नाम दिया गया था उनको, क्योंकि जब वे पैदा हुए, उनके घर में सब चीजों में वृद्धि हुई। धन बढ़ा, यश बढ़ा, साम्राज्य बढ़ा। तो मां-बाप ने उनको नाम दिया--वर्धमान। होना भी चाहिए। यह कहानी प्रीतिकर है। महावीर जैसा व्यक्ति घर में जन्मे तो क्यों न हर चीज बढ़े! फूल ज्यादा खिले होंगे उस वर्ष। बगिया में गंध ज्यादा उड़ी होगी उस वर्ष। वसंत जल्दी आ गया होगा और देर तक ठहरा होगा। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। ऐसा होना ही चाहिए; हुआ हो या न हुआ हो, लेकिन होना जरूर चाहिए। यह कहानी प्रीतिकर है कि सब चीजें बढ़ीं, खूब बढ़ीं। तो उनको वर्धमान नाम दिया। लेकिन मैंने जब कहा कि वर्धमान की मृत्यु पर महावीर की शुरुआत है। तो
वे फिर बौखला गए। उनसे न रहा गया। वे बीच में ही खड़े हो गए कि आपको कुछ जैन धर्म का पता नहीं है। महावीर और वर्धमान एक ही व्यक्ति के नाम हैं! तो जनता भी हंसी। मैंने कहा कि अब मैं क्या कहूं, लोग ही आपको जवाब दे रहे हैं! यह तो मैंने भी नहीं कहा कि ये दो व्यक्तियों के नाम हैं। और आप इतनी कुंठित बुद्धि के होंगे, यह मैं समझा नहीं।
मगर वे तो क्रोध से भनभना रहे थे, तो क्रोध में तो आदमी की बुद्धि कुंठित हो जाती है। वे तो कंप रहे थे एकदम। वे तो समझे कि मैं यह कह रहा हूं कि ये दो व्यक्ति हैं। मैं तो सिर्फ एक प्रतीक कह रहा था। मैं तो यह कह रहा था कि वर्धमान नाम का जो व्यक्तित्व था, वह जब समाप्त हो गया, तो एक नये व्यक्ति का जन्म हुआ--जो बिल्कुल अनूठा है, अद्वितीय है, जो पुरानीशृंखला से मुक्त है। न किसी का बेटा है, न किसी का भाई है, न किसी का पति है, न किसी का पिता है। वर्धमान तो किसी का बेटा था, किसी का भाई था, किसी का पति था, किसी का पिता था। यह तो महावीर, अब किसी का कोई नहीं है! वर्धमान तो शरीर को अपना मानता था, मन को अपना मानता था; यह महावीर न तो जानता है कि शरीर हूं मैं, न मन हूं मैं; यह तो पहचानता है कि मैं सिर्फ साक्षी-भाव हूं। यह तो और ही बात हो गई। इतनी सी बात कहने के लिए मैंने कहा था कि वर्धमान तो मर गया, कब का मर गया, तब महावीर का जन्म हुआ।
मगर वे तो भन्ना गए। तीसरे साल तो उन्होंने कह दिया कि या तो मैं बोलूं या वे बोलें, दोनों साथ नहीं बोल सकते। आगे भी बोल कर देख लिया, पीछे भी बोल कर देख लिया। मैं पूना था और महावीर-जयंती पर बोलने मुझे बंबई जाना था। जैसे ही मैं यहां से कार से निकल रहा था, खबर आई कि मुझे कार से अकेला न भेजा जाए, क्योंकि वे मुनि इतने ज्यादा क्रुद्ध हैं कि हो सकता है वे रास्ते में कोई बाधा खड़ी करें, सिर्फ इसलिए ताकि मैं समय पर बंबई न पहुंच सकूं, या मेरे शरीर को कोई नुकसान पहुंचाने की कोशिश की जाए।

अब ये जैन मुनि! ये अहिंसा के भक्त हैं! ये अहिंसा के प्रचारक हैं! ये महावीर का संदेश सारी दुनिया को देने जा रहे हैं! इस तरह के लोगों ने गलत-सलत बातें समझा रखी हैं।
न तुम्हें अपराध-भाव रखने की जरूरत है, न मुझे तुम्हें माफ करने की जरूरत है। कहीं कुछ भूल-चूक हुई ही नहीं। सब ठीक-ठीक ही हुआ है। तीर जहां लगना था वहीं लगा है। क्यों तुम अपराधी? क्यों मैं तुम्हें माफ करूं?
तुम कहतेः मैं हारा, आप जीते! और मैं कहताः तुम हारे, इसमें तुम्हारी जीत हो गई।

दूसरा प्रश्नः मैं संन्यास लेने के पहले आश्वस्त होना चाहता हूं कि मुझे निर्वाण पाने में सफलता मिलेगी या नहीं?

रामकृष्ण! यह नाम तुम्हें किसने दिया? न तुम राम हो, न कृष्ण। राम की
भी लुटिया डुबा दी, कृष्ण की भी लुटिया डुबा दी। कुछ तो अपने नाम की इज्जत रखते!
एक उपन्यासकार ने मुल्ला नसरुद्दीन से कहा कि जरा मेरा यह नया-नया उपन्यास है, इसे पढ़ें और कुछ आपकी आलोचना हो या सुझाव हों तो मुझे दें। मुल्ला नसरुद्दीन ने उपन्यास पढ़ा और कहा कि उपन्यास तो आपने जैसा लिखा है सो ठीक है, मगर उपन्यास को जो नाम दिया है वह ठीक नहीं है। उपन्यास लेखक ने कहाः लेकिन मैं तो समझता था कि नाम काफी जोरदार है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः यही तो मेरा भी ख्याल है। लेकिन कथानक ने सारी मिट्टी पलीद कर दी।
नाम तुम्हारा इतना जोरदार है और कथानक बिल्कुल मिट्टी पलीद किए दे रहा है।
रामकृष्ण! क्या पूछ रहे हो कि मैं संन्यास लेने के पहले आश्वस्त होना चाहता हूं! कोई गारंटी? संन्यास का अर्थ क्या होता है? असुरक्षा में उतरना। वे जो आश्वस्त होना चाहते हैं, वही तो गृहस्थ हैं। वे जो सब तरह की सुरक्षा चाहते हैं, वही तो गृहस्थ हैं। संन्यस्त का अर्थ इतना होता है कि परमात्मा मेरी सुरक्षा है। रखेगा जैसे, रहूंगा। जिलाएगा जैसे, जीऊंगा। कराएगा जो, करूंगा। जिंदगी, तो उसकी है; और मौत, तो उसके हाथों। अब उसका हूं। अब हिसाब-किताब अपना क्या रखना!
तुम दुकानदारी समझते हो संन्यास को? पहले आश्वस्त होना चाहते हो? यह जुआरियों का काम है। अभी मैंने तुम्हें जरीन की बात कही न! अब बात इतनी बढ़ गई है कि उसके घर के लोग कहते हैं कि अब तू चुन ले--या तो संन्यास और या फिर तू जान।
मैंने तो उसे कहलवा दिया है कि तू फिकर न कर, अगर यही बात हो तो यह आश्रम तेरा घर है। क्षण भर विचार मत करना। यह आश्रम ही किसलिए है! अगर तुझे संन्यास छोड़ना हो तो तू मजे से छोड़ दे। मैं कहता नहीं कि रख। तू खुश, तेरा घर खुश। लेकिन तू अगर न छोड़ना चाहे तो यह मत सोचना कि तेरा कोई घर नहीं है। छोटा घर छूटेगा, यह बड़ा घर है। छोटा परिवार छूटेगा, यह बड़ा परिवार है।
अभी तीन हजार संन्यासी हैं यहां। और तुम कहां पाओगे इससे बड़ा परिवार?
और कितने प्रेम से यह परिवार चल रहा है, इसकी तुम कल्पना कर सकते हो? और बिना किसी व्यवस्था के! घर में तीन आदमी हों तो भी तीन-पांच मची रहती है। पांच होते ही नहीं, मगर तीन ही तीन-पांच मचा देते हैं। यहां तीन हजार हैं, मगर तीन-पांच का कोई सवाल ही नहीं है। और एक मैं हूं कि मैं कभी अपने कमरे के बाहर आता नहीं। सब अपने से चल रहा है जैसे, कोई चलाने वाला नहीं! मुझे तो पता ही नहीं कि कैसे चल रहा है। मैं पता रखना भी नहीं चाहता। मैं तो सब उस पर पहले ही छोड़ चुका हूं। यह आश्रम भी उस पर ही छूटा हुआ है। उसकी जैसी मर्जी! लेकिन सब चल रहा है--एक अपूर्व सौंदर्य से! एक अपूर्व प्रसाद से चल रहा है!
तो जरीन को मैंने खबर भेज दी है कि यह तेरा घर है, तू एक क्षण भी सोचना मत। हां, तुझे संन्यास छोड़ना हो तो तेरी मौज। और तुझे लगे कि संन्यास न छोडूं, तो जाऊं कहां! तो यह तेरा घर है।

रामकृष्ण, पहले से आश्वस्त होने की इतनी क्या चिंता कर रहे हो? संन्यास लेना है कि कोई सौदा करना है? थोड़ा जुआरी होना भी सीखो। थोड़ा दांव लगाना भी सीखो।
लेकिन हमारी व्यवसायी बुद्धि है।
दो युवक बहुत वर्षों के बाद मिले। एक की हालत तो खस्ता थी। दफ्तर-दफ्तर घूमता था, बेकार था; यद्यपि विश्वविद्यालय से गोल्ड मेडल लेकर निकला था। दूसरा विद्यार्थी तो कभी कालेज तक पहुंचा ही नहीं। टेंथ में ही दस बार फेल हुए, उसके आगे बढ़े नहीं। टेंथ का ही अभ्यास दस बार किया। फिर आशा भी छोड़ दी। मगर अब वे लखपति हो गए थे। व्यवसायी का बेटा था, हो सकता है मारवाड़ी रहा हो। पहले की तो हालत बड़ी खस्ता थी, जूते फटे थे, कपड़े गंदे थे। और उसने कहाः यह माजरा क्या है? और यह आलीशान मकान! खस की टट्टियां! दूसरा तो इसकी गद्दियों पर बैठने में भी शर्माए कि कहीं गद्दियां गंदी न हो जाएं--इतनी झकाझक, इतनी सफेद! वह तो सिकुड़ कर बैठा। उसने पूछा कि अपना राज तो कहो! मैं तो भूखा मर रहा हूं, गोल्ड मेडल मैंने पाया विश्वविद्यालय से।
और तुम तो टेंथ क्लास से कभी आगे बढ़े नहीं।
उसने कहाः अरे टेंथ से इसका क्या लेना-देना! एक रुपये में चीज खरीदते हैं, दो रुपये में बेच देते हैं! एक परसेंट के लाभ से बस सब चल रहा है।
एक परसेंट लाभ! एक रुपये में खरीदते हैं, दो रुपये में बेच देते हैं।
हुए होंगे टेंथ में दस दफे फेल, जरूर हुए होंगे। मगर एक रुपये पर एक रुपये के लाभ को एक परसेंट का लाभ समझते हैं, तो हो गए लखपति।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दफा जीत गया लाटरी--दस लाख रुपये। सब चकित थे कि मुल्ला तूने इस टिकट के नंबर का पता कैसे लगाया?
मुल्ला ने कहा कि क्या कहूं! रात मैंने देखा कि सात का नंबर तीन बार दिखाई पड़ा। सो मैंने सोचा, सात तिया अठारह। सो अठारह नंबर की टिकट मैंने खरीद ली। और यह लाटरी जीत गया।
दूसरे ने कहाः हद्द हो गई, सात तिया अठारह! अरे सात तिया इक्कीस होते हैं, अठारह नहीं।
तो मुल्ला ने कहाः गणित तुम करो, लाटरी मुझे मिली है। तू जा भाड़ में और तेरा गणित जाए भाड़ में! सवाल लाटरी का है। लाटरी किसको मिली?
तुम गणित जमाने बैठे हो! तुम पूछते होः"मैं संन्यास लेने के पहले आश्वस्त होना चाहता हूं कि मुझे निर्वाण पाने में सफलता मिलेगी या नहीं?" और निर्वाण और सफलता, इनका कोई तालमेल है? सफलता की आकांक्षा संसार है। सफलता से ही मुक्त हो जाने का नाम निर्वाण है। और तुम सफलता को वहां भी घुसेड़े जा रहे हो! निर्वाण में भी! अच्छा हुआ, तुमने यह नहीं पूछा कि निर्वाण पाऊंगा तो भारत-रत्न की उपाधि मिलेगी कि नहीं? कि निर्वाण पाने पर नोबल प्राइज मिलेगी कि नहीं? तुकबंदी तो ठीक है--निर्वाण और नोबल प्राइज! मगर मैं नहीं सोचता कि अगर बुद्ध आज होते तो उनको कोई नोबल प्राइज मिलती।
यह जरा मजा तो देखो, जीसस को सूली मिली और कलकत्ता की टेरेसा को नोबल प्राइज! यह जीसस की अनुयायी। जीसस को नोबल प्राइज मिलती? अभी भी होते तो सूली मिलती। नोबल प्राइज तो मिलती है--कूड़ा-कर्कट को, कचरों को। समाज की पिटी-पिटाई लकीरों को जो पीटते रहते हैं--चमचों को। समाज की रूढ़ियों का जो परिपोषण करते हैं, उनको मिलती है। समाज के न्यस्त स्वार्थों की जो सेवा करते हैं, उनको मिलती है। भारत-रत्न भी उनको ही मिलेगा। बिल्कुल रत्न जैसा जिनमें कुछ भी नहीं होगा! भारत-रतन कहो--पहुंचे हुए रतन! तो उनको मिलेगी। सफलता? सफलता का भाव ही अहंकार का भाव है। और निर्वाण तो अहंकार का विसर्जन है। वहां कोई महत्वाकांक्षा, कोई वासना लेकर जाओगे तो निर्वाण भर नहीं मिलेगा, और कुछ भी मिल जाए।
संन्यास अहोभाव से लो, आश्वासन से नहीं; किसी सफलता की आकांक्षा से नहीं, मौज से! जीवन की व्यर्थता को पहचान कर। जीवन की शैली को बदलना है यह। एक ढंग से जीवन जीकर देख लिया--सफलता पाने का, दिल्ली जाने का, पद पाने का, धन पाने का--एक जीवन जीकर देख लिया और पाया कि नहीं है वहां कुछ; हाथ कुछ भी नहीं लगता। जान तो निकल जाती है, बिल्कुल जान निकल जाती है--भाई ही भाई रह जाते हैं। भाईजान में से जान चली जाती है, भाई ही भाई! जैसे मोरारजी भाई!

बस भाई ही भाई! फुफ्फस! अब कुछ नहीं भीतर। भीतर बिल्कुल भूसा भरा हुआ। भाई ही भाई! गुजराती भाई! जान वगैरह कहां! जान तो निकल गई।
जो समझ लेता है यह कि यहां जिंदगी में तो सिर्फ गंवाना है--प्राण गंवाना, आत्मा गंवानी--संन्यास उसके लिए है। संन्यास उस बोध में फलित होता है। संन्यास कुछ पाने के लिए नहीं है। संसार में कुछ पाने योग्य नहीं है, इस बोध में संन्यास का फूल खिलता है। संन्यास किसी और चीज का साधन नहीं है, स्वयं साध्य है। स्वांतः सुखाय!

चल तू अपनी राह पथिक, चल, तुझको विजय-पराजय से क्या?

भंवर उठ रहे हैं सागर में,
मेघ घुमड़ते हैं अंबर में,
आंधी औ" तूफान डगर में,
तुझको तो केवल चलना है, चलना ही है, फिर हो भय क्या?
चल तू अपनी राह पथिक, चल, तुझको विजय-पराजय से क्या?

इस दुनिया में कहीं न सुख है,
इस दुनिया में कहीं न दुख है,
जीवन एक हवा का रुख है,
होने दे होता है जो कुछ, इस होने का हो निर्णय क्या? चल तू अपनी राह पथिक, चल, तुझको विजय-पराजय से क्या?

अरे, थक गया! फिर बढ़ता चल,
उठ, संघर्षों से अड़ता चल,
जीवन विषम पंथ चलता चल,
अड़ा हिमालय हो यदि आगे, "चढूं कि लौटूं" यह संशय क्या?
चल तू अपनी राह पथिक, चल, तुझको विजय-पराजय से क्या?

कोई रो-रो कर सब खोता,
कोई खोकर सुख में सोता,
दुनिया में ऐसा ही होता,
जीवन का क्रय मरण यहां पर, निश्चित ध्येय यदि, फिर क्षय क्या? चल तू अपनी राह पथिक, चल, तुझको विजय-पराजय से क्या?

तीसरा प्रश्नः कल आपने एक कालेज के युवकों द्वारा आयोजित नाटक में बताया कि सीता मैया सिगरेट पी रही थीं। क्या आपको सीता मैया को सिगरेट पीते देख कर धक्का नहीं लगा?

ख्यालीराम! जब तुमको तक धक्का लगा--और तुम केवल ख्यालीराम हो! न आयाराम, न गयाराम, न जगजीवनराम--ख्यालीराम! बस ख्याल में ही राम हो! तुम तक को धक्का लग गया तो मुझको न लगेगा? अरे मुझको भी लगा। बहुत धक्का लगा। छाती में बिल्कुल जैसे कोई छुरा मार दे।
धक्का लगने का कारण था। पहला तो यह कि सीता मैया पनामा सिगरेट पी रही थीं। यह बिल्कुल ठीक नहीं। पनामा भी कोई सिगरेट है? न गधा, न घोड़ा--खच्चर समझो। अरे इससे तो बीड़ी भी पीतीं तो कम से कम स्वदेशी! कम से कम गांधी बाबा का सिद्धांत पूरा होता! अब पनामा सिगरेट, न तो बीड़ी, न कोई सिगरेट। कुछ आदमी पीते हैं। आदमी क्या, जिनको पजामा समझो! पनामा सिगरेट! कम से कम सीता मैया को भी पिलानी थी तो पांच सौ पचपन! अमरीकी सिगरेट होती कोई, इंपोर्टेड होती। पांच सौ पचपन सिगरेट का टाइम में विज्ञापन निकलता है--दि टेस्ट ऑफ सक्सेस! सफलता का स्वाद! और सीता मैया से ज्यादा सफल और कौन? अरे रामजी पा गईं, अब और क्या पाने को बचा!
तो जब मुझे पता चला कि पनामा सिगरेट पी रही थीं तो बहुत दुख हुआ। और जिस गाड़ी में से उतरीं, वह भी एंबेसेडर गाड़ी! शर्म भी खाओ! संकोच भी खाओ!

सीता मैया को एंबेसेडर गाड़ी में बिठाओगे? चलो धोबियों का बहुत डर भी रहा हो, न बिठालते रॉल्स रॉयस में, क्योंकि धोबी बड़े दुष्ट! कोई धोबी एतराज उठा दे। धोबियों को तो दिखाई ही पड़ते हैं धब्बे! लोगों की चादरें वगैरह धोते- धोते उनको धब्बे ही धब्बे दिखाई पड़ते हैं। चांद-सूरज में भी जब जिसने पहली दफे धब्बे देखे होंगे, वह धोबी रहा होगा। सीता मैया तक में उनको धब्बे दिखाई पड़े! तो कोई धोबी हो सकता है एतराज उठाता। उठाने दो, धोबियों से क्या बनता-बिगड़ता है!
मगर जब रामजी डर गए थे तो बेचारे कालेज के छोकरे, वे भी डरे होंगे। नहीं तो कम से कम इंपाला तो ले आते। सीता मैया को एंबेसेडर गाड़ी में बिठाया। एंबेसेडर गाड़ी में अगर गर्भवती स्त्री को बिठा लो तो जच्चा- अस्पताल के पहले ही बच्चा हो जाता है। और सीता मैया को दो-दो बच्चे पेट में थे, कुछ तो सोचो! दुख हुआ, बहुत दुख हुआ। छाती में छुरी लग गई!
ख्यालीराम, तुमने ठीक प्रश्न पूछा। कालेज के नालायक छोकरे ही ऐसा कर सकते हैं--जिनको न भारत के गौरव की कोई समझ है, न धर्म की कोई प्रतिष्ठा जिनके मन में है। नहीं तो ऐसा कहीं करते हैं!
लेकिन ख्यालीराम, भारत को थोड़ी क्षमता चाहिए व्यंग्य को समझने की, थोड़ा हंसने की क्षमता चाहिए। भारत भूल ही गया हंसने की कला। यहां बिल्कुल चेहरे मातमी हो गए हैं।
तो मैं इस लिहाज से कुछ खुश हुआ कि चलो कुछ बात तो हंसने की हुई। मगर लोग ऐसे मूढ़ हैं कि चढ़ गए मंच पर, फिर उन्होंने न यह देखा कि सीता मैया हैं कि रामचंद्र जी, पिटाई-कुटाई कर दी। रामचंद्रजी और सीता मैया की पिटाई-कुटाई! अब यह तो हद्द हो गई! इससे मुझे और भी दुख पहुंचा। पनामा सिगरेट भी ठीक है, चलो एंबेसेडर गाड़ी भी ठीक है। जो हुआ सो हुआ। छोटी-मोटी भूलें थीं। मगर लोगों ने पिटाई कर दी। यह भी न देखा कि अब सीता मैया, कुछ भी हो, हैं तो सीता मैया! रामचंद्रजी माना कि टाई बांधे हुए थे और सूट पहने हुए थे, यह बात जंचती नहीं; मगर आधुनिक समय में इसमें क्या एतराज हो सकता है? और नाटक का नाम ही थाः आधुनिक रामलीला!
मगर गांव के मूढ़, उन्होंने आग लगा दी, मंच जला दिया, परदे फाड़ डाले, पिटाई-कुटाई कर दी। इस बात से भी हमें थोड़ा समझना चाहिए कि इस देश में हंसने की क्षमता चली गई है। हमारा बोध ही चला गया है। हम बस गंभीर ही होना जानते हैं। और गंभीर होना कोई अच्छा लक्षण नहीं है--बीमारी का लक्षण है। मैंने सुना है, पिकासो ने एक भारतीय की तसवीर बनाई, पोर्ट्रेट बनाया
और एक मित्र को दिखाया। मित्र था डाक्टर। आधा घंटे तक देखता रहा। इधर से देखे, उधर से देखे। देखे ही नहीं, तसवीर को दबाए भी। पीछे भी गया तसवीर के। पिकासो ने कहाः हद्द हो गई! बहुत देखने वाले देखे। तस्वीर के पीछे क्या कर रहे हो? और तस्वीर देखते हो कि दबाते हो?
उसने कहा कि इस आदमी को अपैंडिक्स की बीमारी है। इसके चेहरे से साफ जाहिर हो रहा है। यह बड़े दर्द में है।
पिकासो ने कहाः महाराज, दर्द वगैरह में नहीं है, यह भारतीय है।
यह तो भारतीयों का बिल्कुल राष्ट्रीय लक्षण है कि ऐसे गंभीर रहे आते हैं कि जैसे अपैंडिक्स में दर्द हो, कि प्राण निकले जा रहे हैं। हंसते भी हैं तो इतनी कंजूसी, जिसका हिसाब नहीं।

और आखिरी सवालः क्या मारवाड़ी सच ही ऐसे गजब के लोग हैं?

रंजन! इस कहानी पर ध्यान करना--
अकबर और बीरबल के बीच विवाद खड़ा हुआ। अकबर का कहना था कि मुल्ला ही सबसे आदिम और चतुर लोग हैं। पंडित, पुजारी। जब कि बीरबल का कहना था कि मारवाड़ी को चतुराई में कोई मात नहीं कर सकता। अकबर ने सबूत जानना चाहा। बीरबल ने मुल्ला नसरुद्दीन को बुलाया और कहा कि बादशाह को आपकी दाढ़ी-मूंछ चाहिए। उसके बदले में जो कीमत हो, वे चुका देंगे। मुल्ला से कहा गया कि वह यदि दाढ़ी-मूंछ कटवाने से इनकार करेगा तो उसकी गर्दन उड़ा दी जाएगी। मुल्ला ने पहले तो बड़ी दलीलें दीं और गिड़गिड़ाए कि दाढ़ी-मूंछ न काटी जाए, महाराज। मैं मुल्ला हूं, धर्मगुरु हूं, दाढ़ी-मूंछ कट गई तो मेरे धंधे

को बड़ा नुकसान पहुंचेगा। अरे दाढ़ी-मूंछ कट गई तो कौन मुझे मुल्ला समझेगा? इस पर ही तो मेरा सारा व्यवसाय टिका है।
मगर बीरबल ने कहा कि फिर समझ ले, तैयार हो जा। अगर दाढ़ी-मूंछ बचानी है
तो गर्दन कटेगी।
मुल्ला ने भी सोचा कि दाढ़ी-मूंछ की बजाय गर्दन कटवाना तो महंगा सौदा है। इससे तो दाढ़ी-मूंछ ही कटवा लो, फिर उग आएगी। गर्दन थोड़े ही दुबारा उगेगी। अरे दाढ़ी-मूंछ तो दो-चार-छह महीने की बात है, भग जाएंगे कहीं, छिप जाएंगे कहीं हिमालय की गुफा में, चार-छह महीने में फिर उग आएगी।
सो धमकाने की वजह से वह राजी हो गया। घबड़ाहट के मारे उसने कोई कीमत भी मांगना उचित नहीं समझा, कि जान बची लाखों पाए। जल्दी से दाढ़ी कटवाई और भाग गया जंगल की तरफ।
बीरबल ने फिर धन्नालाल मारवाड़ी को बुलवाया। दाढ़ी-मूंछ कटवाने की बात सुन कर पहले तो वह कांप उठा, परंतु फिर सम्हल कर उसने कहाः हुजूर, हम मारवाड़ी नमकहराम नहीं होते। आपके लिए दाढ़ी-मूंछ तो क्या, गर्दन कटवा सकते हैं।
अकबर ने बीरबल की ओर मुस्कुरा कर देखा। बीरबल ने भी आंखों से ही कहा
कि जरा आगे देखिए क्या होता है! बीरबल ने पूछाः क्या कीमत लोगे? मारवाड़ी ने कहाः एक लाख अशर्फियां। सुनते ही अकबर तो मारे गुस्से के उबल पड़ा। एक दाढ़ी-मूंछ की इतनी कीमत? मारवाड़ी ने कहाः हुजूर, पिता की मृत्यु पर पिंड दान और सारे गांव को भोजन करवाना पड़ा--दाढ़ी के इन दो बालों की खातिर। मां के मरने पर काफी दान-पुण्य करना पड़ा--दाढ़ी के इन दो बालों की खातिर। अरे दाढ़ी की इज्जत के लिए क्या नहीं किया! हुजूर, शादी करनी पड़ी--दाढ़ी के इन दो बालों की खातिर। नहीं तो लोग कहते थे कि अरे, क्या नामर्द हो? सो मर्द सिद्ध करने के लिए शादी तक करनी पड़ी। हुजूर, कैसे-कैसे कष्टों में पड़ा, आपको क्या पता, क्या-क्या गिनाऊं! बच्चे पैदा करने पड़े--दाढ़ी के इन दो बालों की खातिर। आज दर्जनों बच्चों की कतार लगी है, उनका खाना-पीना, भोजन-खर्चा, हर तरह का उपद्रव सह रहा हूं--दाढ़ी के इन दो बालों की खातिर। फिर बच्चों की शादी, पोते-पोती, इन पर खर्च करना पड़ा--दाढ़ी के इन दो बालों की खातिर। और अभी परसों पत्नी की जिद्द के कारण हमारी शादी की पचासवीं सालगिरह पर खर्च हुआ--सो दाढ़ी के इन दो बालों की खातिर।
अकबर कुछ कर न पाया और कीमत चुका दी। दूसरे दिन अकबर ने नाई को मारवाड़ी के घर दाढ़ी-मूंछ कटवाने के लिए भेजा, तो मारवाड़ी ने उसे मना कर दिया और कहाः खबरदार अगर बादशाह सलामत की दाढ़ी को हाथ लगाया! बादशाह अकबर की दाढ़ी में हाथ डालते हुए शर्म नहीं आती? नाई को उसने खूब धमकाया और घर से बाहर निकाल दिया। नाई ने आकर अकबर से शिकायत की तो अकबर का गुस्सा आसमान छूने लगा। वह बीरबल पर भी बड़ा नाराज हुआ। तुरंत मारवाड़ी को बुलाया गया। बीरबल ने पूछा कि जब दाढ़ी बिक चुकी है तो अब उसे कटवाने क्यों नहीं देता? मारवाड़ी ने कहाः हुजूर, अब यह दाढ़ी-मूंछ मेरी कहां है? यह तो बादशाह सलामत की धरोहर है! इसको अब कोई नाई छूने की मजाल नहीं कर सकता। अरे करे कोई मजाल, गर्दन उड़ा दूंगा। यह मेरी इज्जत का सवाल नहीं, बादशाह की इज्जत का सवाल है। इसे मुंडवाना तो खुद बादशाह की दाढ़ी-मूंछ मुंडवाने के बराबर होगा। यह मैं जीते-जी नहीं होने दूंगा। आप चाहे मेरी गर्दन कटवा दें, पर इस कीमती धरोहर की रक्षा करना अब मेरा और मेरे परिवार का फर्ज है।
अकबर हक्का-बक्का रह गया और बीरबल मुस्कुराता रहा। महीने भर बाद अकबर
के नाम मारवाड़ी का पत्र आया, जिसमें उसने दरखास्त की थी कि दाढ़ी-मूंछ की रक्षा करने तथा इसकी साफ-सफाई रखने पर महीने में सौ अशर्फियां मिलती रहें।
रंजन, तू पूछती है कि क्या मारवाड़ी सच ही ऐसे गजब के लोग हैं?
लगता है तेरा मारवाड़ियों से पाला नहीं पड़ा। भगवान करे कभी पड़े भी नहीं!
आज इतना ही।

रहिमन धागा प्रेम का
पांचवां प्रवचन

प्रार्थना और प्रतीक्षा

पहला प्रश्नः और कितनी प्रतीक्षा करूं? और कितनी देर है? प्रभु-मिलन
के लिए आतुर हूं और अब और विरह नहीं सहा जाता है।

कृष्णानंद! प्रभु के लिए अनंत प्रतीक्षा की तैयारी चाहिए। ऐसा नहीं
है कि अनंत प्रतीक्षा करनी होती है; अनंत प्रतीक्षा की तैयारी हो तो क्षण भर में भी क्रांति घट सकती है। लेकिन जल्दबाजी हो तो अनंत काल तक भी नहीं घटेगी। जल्दबाजी में बाधा है। जितना अधैर्य करोगे, उतनी देर हो जाएगी। चूंकि अधैर्य चित्त को अशांत रखता है; धैर्य चित्त को शांत करता है। अधैर्य चित्त को विह्वल करता है, चित्त में तरंगें उठाता है, आंधियां और तूफान। और ऐसे चित्त में परमात्मा आना भी चाहे तो कैसे आए? चित्त चाहिए शांत झील जैसा--जरा सी भी तरंग न हो।
ईश्वर को पाने का विचार भी वासना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। यह वासना का नया रूप। यह वासना का नया ढंग। यह पुरानी ही वासना है--नया वेश।
कभी धन पाना चाहते थे तो अधैर्य था--जल्दी मिल जाए, लाटरी खुल जाए। धंधा तक करने की शांति नहीं थी--जुआ ही खेल लें, चोरी ही कर लें, बेईमानी ही कर लें।
फिर कर लेंगे पुण्य। फिर गंगा-स्नान कर लेंगे। फिर एक मंदिर बना देंगे। फिर पूजा-पाठ सब कर लेंगे। एक बार खजाना हाथ लग जाए।
पद पाने की इच्छा थी तो भी वैसी ही दौड़ थी। वैसी ही आपाधापी थी। चाहे लोगों के सिरों की सीढ़ियां बनानी पड़ें, तो भी चिंता नहीं की। जिनके सहारे चढ़े, उनको ही गिराना पड़ा, तो भी चिंता नहीं की। सच तो यह है कि जिनके सहारे व्यक्ति चढ़ता है, उनको गिराना ही पड़ता है, क्योंकि उनसे खतरा है--दूसरे भी उनके सहारे चढ़ सकते हैं।
इसलिए किसी राजनीतिज्ञ को भूल कर भी साथ-सहयोग मत देना, क्योंकि सबसे पहले तुम ही उसके शिकार होओगे। जिस दिन वह पद पर होगा, पहले तुम्हें मारेगा। तुम आदमी खतरनाक हो! तुमने ही उसे पहुंचाया, तुम किसी और को भी पहुंचा सकते हो। तुम्हारा रहना खतरे से खाली नहीं है। इसलिए राजनीति में कोई किसी का मित्र नहीं होता, सब सबके शत्रु होते हैं।
पद है, धन है, यश है--उस सबसे किसी तरह छूटे, मगर बात वही की वही पुरानी रही। लेबल बदला, रंग बदला, कपड़े बदल दिए, मगर वासना को समझा नहीं तुमने। वासना का अर्थ होता हैः और मिले! और मिले! जितना है, कम है। जो है, कम है। वासना अर्थात शाश्वत अतृप्ति। वासना का अर्थ हैः जल्दी मिले, बहुत देर हुई जा रही है। क्षण भर भी प्रतीक्षा नहीं वासना करना चाहती। क्षण भर भी प्रतीक्षा करनी पड़े तो आग जलने लगती है बेचैनी की, बुखार चढ़ आता है, उत्तप्त हो जाते हो, क्रुद्ध हो उठते हो।
अब तुम पूछते होः "और कितनी प्रतीक्षा करूं?"
कृष्णानंद, तुमने अभी प्रतीक्षा का आनंद ही नहीं लिया, इसलिए पूछते होः और कितनी प्रतीक्षा करूं? परमात्मा की प्रतीक्षा आनंद है, सौभाग्य है। इससे बड़ी और क्या धन्यता है? यह परमात्मा को पाने से भी बड़ा सौभाग्य है--परमात्मा की प्रतीक्षा, उसकी इंतजारी। और जो लुत्फ इंतजारी में है, वह पाने में भी नहीं है। जो आंखें बिछा कर राह देखने में है, जो द्वार-दरवाजे खोल कर, जाग कर, प्रार्थनापूर्ण हृदय से निमंत्रण भेज कर, पलक-पांवड़े बिछा कर बैठने में है--वह पाने में भी नहीं। जिस दिन तुम्हें प्रतीक्षा आनंदपूर्ण हो उठेगी, क्या ऐसा पूछोगेः और कितनी प्रतीक्षा करूं? जिस दिन प्रतीक्षा आनंदपूर्ण हो उठेगी, उसी दिन परमात्मा का मिलन भी हो जाएगा। क्योंकि जब प्रतीक्षा भी आनंद हो गई तो क्रांति घट गई। अब यह पुरानी वासना न रही। अब यह वासना ही न रही, चित्त वासना से मुक्त हो गया। अब तुम्हारे भीतर और-और की मांग नहीं है। जल्दी भी नहीं है। न मांग है, न जल्दी है। अब तो तुमने कहाः जो तेरी मर्जी! आज आए तो स्वागत, कल आए तो स्वागत, परसों आए

तो स्वागत! कभी न आए तो स्वागत! ऐसे अनंत धैर्य का ही नाम प्रार्थना है। प्रार्थना प्रतीक्षा की गहनता का नाम है।
तुम तो प्रार्थना थोड़े ही करते हो, वासना ही करते हो--यह मिल जाए, वह मिल जाए। प्रार्थना का अर्थ होता हैः जितना तूने दिया है, उसके लिए धन्यवाद। और वासना का अर्थ होता हैः जो भी तूने दिया, कम है, मेरी योग्यता से कम है। दूसरों को ज्यादा दे दिया--जिनकी कोई योग्यता नहीं, कोई पात्रता नहीं। प्रार्थना का अर्थ होता है कि मुझ अपात्र को इतना दिया--इतना कि मेरी झोली में समाता नहीं है! कि मेरी झोली छोटी पड़ी जाती है! कि मेरी आत्मा छोटी पड़ी जाती है! कि तू है कि बरसाए चला जाता है! रखूं तो कहां रखूं? भरूं तो कहां रखूं? यह मोतियों को कहां सम्हालूं? ये खजाने कहां बचाता फिरूं? और तू है कि दिए चला जाता है! सुबह और सांझ! न दिन देखे, न रात! अहर्निश दे रहा है! प्रति श्वास दे रहा है!
प्रार्थना का अर्थ होता हैः धन्यवाद। और वासना का अर्थ होता हैः शिकायत। यह तो शिकायत हो गई कृष्णानंद।
तुम कहते होः "और कितनी प्रतीक्षा करूं?"
तुम तो यह कह रहे हो कि मैं पात्र, सब भांति योग्य। योग किया, ध्यान किया, तप किया, त्याग किया--और अब भी देर हो रही है! और अजामिल जैसे तर गए, जिंदगी भर पाप किया, पुण्य की जिन्हें गंध नहीं थी, प्रभु का कभी स्मरण नहीं किया था। मरते वक्त उस महापापी अजामिल ने अपने बेटे को बुलाया। बेटे का नाम नारायण था। चूंकि बेटे का नाम नारायण था, ऊपर के नारायण धोखे में आ गए! और अजामिल ने अपने बेटे को बुलाया था। और निश्चित ही अजामिल ने बुलाया होगा बताने को कि धन कहां गड़ा रखा है और चोरी का कोई नुस्खा, डाके का कोई ढंग, कोई आखिरी राज--जो जिंदगी भर उसने किया था, बेटे को भी सिखा जाना चाहता होगा। आखिर और क्या! मरते वक्त आदमी की सारी जिंदगी का निचोड़ आ जाता है। अजामिल कोई बेटे को यह नहीं कह रहा होगा कि बेटा रोज सुबह उठ कर प्रार्थना करना, प्रभु का स्मरण करना, पूजा-पाठ करना। यह तो निश्चित ही नहीं कह रहा होगा। यह तो उसने खुद ही कभी नहीं किया। वह यह नहीं कहेगा कि चोरी मत करना बेटा, कि मैंने की और पाया कि सब व्यर्थ है।
कोई बाप अपने बेटे के सामने यह स्वीकार नहीं करता कि मैं हार गया हूं,
कि मैं असफल हो गया हूं। हर बाप चाहता है कि बेटा मेरे जैसा ही हो जाए। हर बाप की यही आकांक्षा है--बिना इसकी फिक्र किए कि मैंने क्या पा लिया है, जो अपने बेटे को भी यही बनाने में लगा हूं! हर बाप इसी कोशिश में है कि बस बेटा उसकी प्रतिलिपि हो, प्रतिछवि हो, उसकी तस्वीर हो। इसके पीछे कारण है। बाप जानता हैः मैं तो मर जाऊंगा, लेकिन मेरे अमर होने का एक ही ढंग है कि कम से कम अपनी छाप छोड़ जाऊं। मेरे ही वीर्याणु से पैदा हुआ कोई व्यक्ति ठीक उसी काम को करता रहे जो मैं करता था। इसलिए हर बाप अपनी अधूरी महत्वाकांक्षाओं को अपने बेटों के कंधों पर लाद जाता है; अपने सब रोग अपने बेटों को दे जाता है। और बेटे मजबूर हैं, अवश हैं, असहाय हैं। स्वीकार करना होता है। और करेंगे भी क्या? अगर बाप ठीक से नहीं पढ़ पाया, लिख पाया, तो बेटों को धक्के दे-दे कर स्कूल भेजता है। पढ़ाएगा-लिखाएगा। उसकी महत्वाकांक्षा अधूरी रह गई है। वह सोचता हैः पढ़-लिख लेता तो पता नहीं और कितने करोड़ इकट्ठे कर लेता! इतने जो करोड़ इकट्ठे किए, इनसे कोई तृप्ति नहीं हुई। और न मालूम कितने करोड़ इकट्ठे कर लेता!
बेपढ़े-लिखे बाप बेटों के साथ बहुत धक्कमधुक्की करते हैं, उनको पढ़ा- लिखा कर ही रहेंगे। बाप गरीब हो तो बेटे को अमीर बनाने की कोशिश में लगा है। बाप अगर पद पर न पहुंच पाया हो--कोशिश तो जिंदगी भर उसने भी की थी, मगर थक गया, जिंदगी के संघर्ष में नहीं जीत पाया--तो बेटा इस काम को जारी रखे। पीढ़ी दर पीढ़ी वही रोग चलते रहते हैं।
अजामिल कोई बेटे को भक्ति का उपदेश देने के लिए नहीं बुलाया था। यह तो संयोग की बात थी कि नारायण नाम था। उन दिनों सभी नाम भगवान के नाम थे। अभी भी अधिकतम नाम भगवान के ही नाम हैं। हमारे पास एक पूरा का पूरा शास्त्र हैः विष्णु सहस्र नाम। विष्णु के हजार नाम। अब तुम नाम खोजने भी जाओगे तो कहां से खोजोगे? उन्हीं हजार नामों में से कोई न कोई नाम होगा। कोई राम हैं, कोई हरि हैं, कोई विष्णु हैं, कोई कृष्ण हैं, कोई शिव हैं, कोई कुछ हैं,

कोई कुछ हैं। मगर नाम तो वही के वही हैं। मुसलमानों में सौ नाम हैं, वे सब ईश्वर के नाम हैं। सारी दुनिया में ऐसा था। पुराने जमाने में सभी नाम परमात्मा के नाम थे।
सो संयोगवशात नाम नारायण था। लेकिन ऊपर के नारायण ने समझा कि अजामिल
को आखिरी समय में बुद्धि आ गई। हद्द हो गई! ऊपर का नारायण भी धोखा खा गया! ऊपर के नारायण को भी इतनी आसानी से धोखा दिया जा सकता है! सो अजामिल मरा और सीधा बैकुंठ-लोक गया।
जरूर चालबाजों ने यह कहानी गढ़ी होगी। बेईमानों ने यह कहानी गढ़ी होगी। पंडित-पुरोहितों ने यह कहानी गढ़ी होगी, कि मत घबड़ाओ, अरे मरते वक्त भी अगर गंगाजल मुंह में पड़ गया तो बस सब ठीक है। मरते-मरते भी अगर कान में गायत्री का मंत्र पड़ गया तो बस सब ठीक है!
मरता हुआ आदमी, उसको न कुछ सुनाई पड़ रहा है, न कुछ सूझ रहा है, सब अंधेरा हुआ जा रहा है, और कोई दूसरा उसके कान में गायत्री मंत्र पढ़ रहा है! जिंदगी बिना गायत्री के बीत गई, अब आशा की जा रही है कि गायत्री मरते वक्त नौका बन जाएगी।
और अजामिल की कथा! सो तुमको लगता होगा कृष्णानंद कि अब और मैं कितनी प्रतीक्षा करूं? एक ही बार उसने पुकारा था नारायण और बैकुंठवासी हो गया और मैं पुकार-पुकार मरा जा रहा हूं और बैकुंठ की कोई न खबर आती, न कोई चिट्ठी- पत्री, न कोई संदेशवाहक आते, न कोई देवदूत उतरते। तुम ध्यान करते-करते बीच में आंख खोल कर देख लेते होओगे कि फरिश्ते आए कि अभी तक नहीं आए? फिर आंख बंद कर लेते होओगे कि धत तेरे की! बड़ी देर हो रही है। सुनी है कहावत न कि देर है, अंधेर नहीं! मगर अब तो अंधेर हुआ जा रहा है। इतनी देर! इसी को तो अंधेर कहते हैं। और पापी तरे जा रहे हैं, पापी पहुंचे जा रहे हैं। और तुम चिल्ला-चिल्ला कर मरे जा रहे हो कि हे पतितपावन! और बहरा हुआ बैठा है बिल्कुल। कोई खोज-खबर नहीं लेता। सुदिन आने तो दूर, रोज-रोज दुर्दिन आते हैं। रोज-रोज मुसीबतें आती हैं।
नहीं; यह प्रतीक्षा नहीं है। तुमने अभी प्रार्थना ही नहीं जानी। तुमने अभी प्रतीक्षा का रस नहीं पीया। तुमने प्रतीक्षा का प्रेम नहीं सीखा। धन्यवाद दो! जीवन दिया उसने, तुमने धन्यवाद दिया? ये आंखें दीं उसने, जिनसे सूरज को देखो, चांद-तारों को देखो, इस विराट विश्व के सौंदर्य को देखो! ये कान दिए उसने कि सुनो नाद को, कि सुनो चारों तरफ व्याप्त अनाहत को! धन्यवाद दिया तुमने? सौंदर्य को देखने और परखने की संवेदना दी। जीवन को अनुभव करने का बोध दिया, चैतन्य दिया। धन्यवाद दिया तुमने? नहीं; जो हमारे पास है, उसके लिए हम धन्यवाद नहीं देते। अगर तुमसे कोई कहे कि लाओ एक आंख बेच दो, कितने दाम में देने को राजी होओगे? गरीब से गरीब आदमी भी कहेगा कि किसी कीमत पर अपनी आंख नहीं बेच सकता। अरे आंख जैसी चीज कोई बेची जाती है!
एक आदमी मर रहा था, आत्महत्या कर रहा था। एक फकीर ने उसको पकड़ लिया कि
यह क्या करता है भाई?
उसने कहाः छोड़ दो मुझे! मुझे छोड़ दो! मैं तो मरूंगा।
उसने कहा कि तू मर जाना, तुझे मैं नहीं रोक रहा हूं। मगर जाते-जाते मेरा थोड़ा भला कर जा। इसमें तेरा क्या बिगड़ता है?
उस आदमी ने कहाः क्या भला?
उसने कहा कि तुझे तो मरना ही है न!
उसने कहाः मैंने बिल्कुल निश्चय कर लिया है। इसमें कोई शक-शुबहा नहीं है।
तो उसने कहाः इतना काम कर, एक दो-तीन घंटे और रह जा, इतने दिन रहा। मेरे लिए!
उस आदमी ने कहाः लेकिन करना क्या पड़ेगा?
उसने कहाः तू जरा मेरे साथ आ।
वह उसको सम्राट के पास ले गया। सम्राट फकीर का भक्त था। सम्राट के कान में कुछ फुसफुसाया और सम्राट से बोला कि इस आदमी की आंखें खरीद लो। सम्राट ने कहाः कितने लेगा? क्या पैसे लेगा?

उस आदमी ने कहाः आंखें! तुमने समझा क्या है? आंखें जैसी बहुमूल्य चीज पैसों में बिकती है?
सम्राट ने कहाः लाख ले ले, दस लाख ले ले, पचास लाख ले ले, करोड़ ले ले।
उस आदमी ने कहाः करोड़! अरे तू अरब दे तो मैं अपनी आंख नहीं दे सकता।
उस फकीर ने कहाः अरे भई, क्या कर रहा है तू? अभी नदी में कूद कर मर रहा था, उसमें आंख भी चली जाती। यह सम्राट सब चीजें लेने को तैयार है। आंख भी लेगा, कान भी लेगा, हाथ भी लेगा, दांत भी लेगा, नाक भी लेगा। हम सब बेचे दे रहे हैं। यही तो मैंने तुझसे कहा कि तू इतना मेरा भला कर जा जाते-जाते। तू तो मुफ्त में नदी में डूब ही जा रहा है, तो मुझे तेरी बिक्री कर लेने दे। मैं जिंदगी भर का फकीर अमीर हुआ जाता हूं। तू मजे से मर! मैं वहां बैठा ही इसलिए था कि कोई आ जाए नदी के किनारे मरने तो मैं बेच लूं। तू आ गया। यही तो मेरी प्रार्थना थी। भगवान भी सुन ही लेता है--अगर करते ही रहो, करते ही रहो, करते ही रहो। आखिर उसने तुझे भेज दिया। अब तू नटा जा रहा है!
उस आदमी को तब बोध आया कि मैं क्या कर रहा था! उसने कहाः मुझे नहीं मरना है। मैं अपने घर जा रहा हूं। न मुझे आंख बेचनी, न मुझे मरना है। आज मुझे पहली बार पता चला कि जीवन कितना बहुमूल्य है!
ऐसी ही कहानी सिकंदर के संबंध में है कि वह जब भारत आ रहा था तो एक रेगिस्तान में भटक गया। प्यास लगी। एक फकीर एक लोटे में जल लेकर उपस्थित हुआ। सिकंदर तो, बांछें खिल गईं उसकी, उसने कहा कि आप एक फरिश्ते हैं! मैं मरा जा रहा था। मुझे पानी पिलाओ। बस मेरी आखिरी सांसें हैं। अगर जल नहीं मिला तो कंठ सूखा जा रहा है।
उस फकीर ने कहाः एक लोटे जल के लिए कितना देने को राजी है?
सिकंदर ने कहाः मैं मर रहा हूं और तुझे सौदा करने की पड़ी है?
फकीर ने कहा कि कितने लोग मर गए और तूने सौदा करने में कोई कमी नहीं की, कितनों को तूने मारा! मैं कोई तुझे मार नहीं रहा हूं। मेरे पास लोटा भर जल है, लेना हो ले ले। आधा साम्राज्य देने को राजी है?
एक क्षण सिकंदर झिझका, आधा साम्राज्य! जिंदगी गंवा दी उसने आधा साम्राज्य कमाने के लिए। मगर उस घड़ी में आधा लोटा भी पानी मिल जाए तो बहुत। उसने कहाः अच्छी बात है।
फकीर ने कहाः लेकिन नहीं। मैं तो पूछ रहा था कि कितना तू देने को राजी है। पूरा लूंगा तो पूरा लोटा पानी दूंगा। पूरा साम्राज्य देने को राजी है? और सिकंदर ने बेमन से कहा, लेकिन कहा कि हां! लेकिन पानी दो, राज्य तुम
ले लो।
उस फकीर ने कहा कि पानी तू ऐसे ही ले ले, मैं तो सिर्फ यह कह रहा था कि
इस राज्य की कीमत कितनी है? एक लोटा जल से ज्यादा नहीं है, जिसके लिए तूने जीवन गंवा दिया! जीवन की कितनी कीमत है!
हम धन्यवाद देना सीखें। हम थोड़ा पहचानना सीखें कि हमारे जीवन का कितना मूल्य है! कितनी अपूर्व वर्षा हमारे ऊपर वरदानों की होती रही है, हो रही है, प्रतिपल हो रही है! आशीष ही आशीष बरस रहे हैं! जिस दिन तुम उन आशीषों के लिए धन्यवाद दोगे, उस दिन तुमने प्रार्थना सीखी कृष्णानंद।
और प्रार्थना तत्क्षण पूरी हो जाती है। मगर प्रार्थना में यह भाव होता ही नहीं कि कब पूरी होगी।
और तुम पूछते होः "और कितनी देर है?"
प्रार्थना में समय मिट जाता है, देर-अबेर की बात कहां? तुमने प्रार्थना की ही नहीं अभी तक। जब भी प्रार्थना करोगे, समय से मुक्त हो जाओगे, समय के बाहर हो जाओगे, घड़ी बंद हो जाएगी। सब घड़ी की टिक-टिक खो जाएगी।
इस सदी में जो बड़ी से बड़ी खोजें दुनिया में हुईं, उनमें अल्बर्ट आइंस्टीन का सापेक्षवाद का सिद्धांत है, थियरी ऑफ रिलेटिविटी। सिद्धांत बहुत कठिन है, जटिल है। होगा ही, क्योंकि जीवन की बहुत जटिलताओं को सुलझाने की चेष्टा है। और जब भी उससे कोई पूछता था तो वह बड़ी मुश्किल में पड़ जाता था कि कैसे समझाएं। और हर कोई पूछता था। पार्टी में जाए, क्लब में जाए, मित्रों से मिले, बगीचे में घूमने जाए, कोई न कोई रोक ले कि आप अल्बर्ट

आइंस्टीन हैं? कृपा करके, यह आपका सापेक्षवाद का सिद्धांत क्या है, संक्षिप्त में बता दें!
तो अंततः उसने एक तरकीब निकाल ली थी। वह कहता थाः सापेक्षवाद का सिद्धांत बिल्कुल सरल है। यह ऐसा है कि जैसे तुम्हारी प्रेयसी तुम्हें मिल गई, वर्षों के बाद। जैसे मजनू को लैला मिली। दोनों हाथ में हाथ डाले बैठे हैं। पूर्णिमा की रात है। समुद्र का तट है। ताजी और नमकीन हवाएं हैं। मस्त वसंत की बहार है। चारों तरफ सुगंध है। आकाश में बारात सजी है तारों की। और वे हाथ में हाथ दिए बैठे हैं। तो समय जल्दी गुजर जाएगा कि धीरे-धीरे गुजरेगा? समय बहुत जल्दी गुजर जाएगा। इतनी जल्दी गुजर जाएगा कि वे अपनी घड़ी देखेंगे कि यह घड़ी धोखा तो नहीं दे रही? इतनी तेजी से भागी जा रही है! घंटा यूं गुजर जाएगा जैसे पल। और समझ लो कि तुम्हारी पत्नी, जो कह कर गई थी कि तीन दिन के लिए मायके जा रही हूं, पहले ही दिन वापस लौट आई। तुमने एक राहत की सांस ली थी...
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन मुझसे कह रहा था कि बैंगलोर बड़ी गजब की जगह है। बड़ी सुख-शांति मिलती है। स्वास्थ्यवर्धक। मानसिक रूप से भी शांतिदायी। मैंने पूछा कि नसरुद्दीन, तुम तो सदा यहीं दिखाई पड़ते हो, बैंगलोर गए कब? उसने कहाः मैं नहीं गया, मेरी पत्नी गई। और जब तक बैंगलोर में रही, ऐसा मेरा स्वास्थ्य और ऐसी मन की शांति... एक महीने तक जो आनंद मैंने पाया है, वाह रे बैंगलोर!
अब समझो कि पत्नी पहले ही दिन आ जाती है या स्टेशन से ही लौट आती है, कि दिल बदल गया। अरे पत्नियों का क्या भरोसा? पत्नियां सुख में नहीं देख सकतीं पतियों को।
फ्रांस में कहावत है कि जब किसी स्त्री को तुम प्रेम करते हो तो वह आंखें क्यों बंद कर लेती है? तो कहावत है कि वह इसलिए आंखें बंद कर लेती है कि वह पति को सुख लेते नहीं देख सकती। बर्दाश्त के बाहर है कि इस निखट्टू को और इतना आनंद मिल रहा है! वह जल्दी से आंखें बंद कर लेती है।
अल्बर्ट आइंस्टीन कहता था कि तुम्हारी पत्नी लौट आए जल्दी मायके से
और उसके पास तुम्हें बैठना पड़े। वही चांद, वही बारात सजी तारों की, वही समुद्र-तट, मगर समय ऐसे गुजरेगा जैसे घड़ी बंद हो गई। तुम बार-बार घड़ी कान से लगा कर देखोगे कि टिक-टिक कर रही है कि बंद ही हो गई है? चल रही है कि नहीं चल रही? समय गुजरता ही न लगेगा। इसको वह कहता थाः सापेक्षता। घड़ी तो अपने ढंग से ही चलती है; न उसे प्रेयसी का पता है, न पत्नी का। घड़ी को क्या लेना-देना? तुम सुख में हो तो समय जल्दी भागता मालूम पड़ता है--तुमको! तुम दुख में हो तो समय धीमे-धीमे सरकता मालूम पड़ता है, घसिटता मालूम पड़ता है-- तुमको! समय तो उसी गति से जा रहा है।
आइंस्टीन ये दो ही उदाहरण लेता था, क्योंकि तीसरे का उसको पता नहीं था। काश उसने कभी ध्यान किया होता, तो वह जानता कि एक ऐसा भी भाव का लोक है, जहां न समय भागता है, न घसिटता है, समय होता ही नहीं, समय शून्य हो जाता है। प्रेयसी के पास घड़ी तेजी से चलती है; पत्नी के पास धीमे-धीमे चलती है; ध्यान में चलती ही नहीं, ठहर ही जाती है।
कहां की पूछ रहे हो बात कि और कितनी देर है?
उतनी ही देर है जब तक तुम्हें यह समय का बोध है। बस उतनी ही देर है। यह समय का बोध जाने दो--और बस उसी घड़ी हो जाएगी बात, तत्क्षण हो जाएगी बात।
और तुम कहते होः "प्रभु-मिलन के लिए आतुर हूं।"
तुम तो भैया आतुर हो, ठीक; मगर कुछ कमी होगी कहीं तुम में अभी, प्रभु अभी इतना आतुर नहीं दिखता। और यह ताली दोनों तरफ से बजती है। तुम्हारी आतुरता से ही कुछ न होगा। उसकी आतुरता भी चाहिए। उसे भी आतुर बनाओ। और वह आतुर तभी होता है, जब तुम मग्न और मस्त होते हो। प्रभु भी, जो आनंदित हैं, उनसे ही मिलने को आतुर होता है।
लेकिन बड़ी अजीब दुनिया है यह! यहां दुखी आदमी प्रार्थना करते हैं और सुखी आदमी परमात्मा को भूल जाते हैं। और सुखी जो है वही परमात्मा को पा सकता है।
मेरी बात तुम्हें उलटबांसी लगेगी। मजबूरी है लेकिन, जो सच है वह मुझे तुमसे कहना ही होगा। दुख में तुम याद करते हो। तुम परमात्मा को याद नहीं

करते, तुम दुख से छुटकारा चाहते हो; सोचते हो शायद परमात्मा को याद करने से छुटकारा हो जाए। सो परमात्मा की तुम सेवा मांगते हो। तुम मालिक, उसको सेवक बनाना चाहते हो, उसका उपयोग करना चाहते हो। उसका तुम साधन की तरह उपयोग करना चाहते हो कि मैं दुखी हूं, आ, मेरा दुख दूर कर। जैसे तुमने चुनौती दे दी उसे कि है हिम्मत तो करके दिखा! अरे है तू कहीं कि नहीं? अगर हो तो आ जा! लेकिन जब तुम दुख में होते हो तब परमात्मा दूर-दूर तक खोजे से नहीं मिलेगा। जब तुम आनंदमग्न होते हो, मस्त होते हो, एक खुमार होता है तुम्हारे भीतर, डोलते हो--तब! परमात्मा उनके संग-साथ हो लेता है जो नाच रहे हैं। नाचने में उसे रस है। वह नर्तक है, नटराज है। उसे गीतों में रस है। वह बांसुरीवादक है। वह संगीत से आह्लादित होता है। जब तुम्हारा हृदय संगीतपूर्ण होता है, तब वह खिंचा चला आता है। तुम जरा उस आनंदभाव को अपने भीतर जन्माओ, जो उसे खींच ही ले, उसे आना ही पड़े। तुम फिक्र छोड़ो। तुम उसके पीछे-पीछे मत भागे फिरो। वह तुम्हारे पीछे-पीछे भागा-भागा फिरेगा।
कबीर ने कहा हैः हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराई। कि मैं तो खोजते- खोजते थक गया, खो ही गया। खोजते-खोजते खुद ही खो गया। वह तो नहीं मिला, मैं खो गया। लेकिन जिस दिन मैं खो गया, बस उसी दिन चमत्कार हो गया। पहले मैं चिल्लाता फिरता था कि हे प्रभु, तुम कहां हो? दिशा-दिशा में घूमता था, देश-देशांतर में भटकता था। और अब हालत उलटी है। वह मेरे पीछे-पीछे घूमता है-- कहत कबीर-कबीर!
तुम आनंद को जन्माओ। तुम्हारे भीतर फूल खिलने दो चैतन्य के। तुम्हारी सुगंध उठने दो। तुम मंदिर बनो। और प्रार्थना और प्रतीक्षा तुम्हें मंदिर बना देगी। तुम मंदिर जिस दिन हो जाओगे, धूप-दीप जलेंगे--उस दिन वह आया ही आया, निश्चित है, सुनिश्चित है! इससे अन्यथा कभी न हुआ है, न हो सकता है। हर चीज का समय है। हर चीज का मौसम है। बीज बो दो और राह देखो। फिर आएंगे आषाढ़ के मेघ, फिर वर्षा होगी, फिर बीज फूटेंगे, हरे अंकुर निकलेंगे। फिर आएगा समय मधुमास का, फूल भी लगेंगे। और न मालूम कहां छिपे भंवरे गीतों के गुंजार करते हुए चले आएंगे! न मालूम कहां छिपी हुई तितलियां उड़ने लगेंगी!

जब-जब भी बोए हैं फूल
उग आए हैं बबूल
धरती की फटी छाती की दरारों से
पनप आए अविश्वास के कैक्टस व शूल
प्यार बन गया है आकाश
जो इतना सुंदर, सशक्त
और सर्वव्यापी होकर भी
वास्तव में कुछ नहीं
क्योंकि जो है वह आत्मरति है
या महज आदान-प्रदान
प्यार नहीं!

भीड़ बुत बन गई है अचानक
अकेलेपन से त्रस्त मन
बन गया नदी किनारे खड़े वृक्ष सा खामोश वह बेहद प्यासा है
पर पनघट कहीं नहीं मिलता
क्योंकि हर कहीं प्यास है
वृक्ष की हर नंगी बांह भिक्षुक सी उदार आकाश से कुछ मांगती है
पर ऊपर से कुछ नहीं मिलता
फूटते हैं नवपल्लव, फूल और फल
अपनी ही भीतरी शक्तियों से
पर खिलने का भी मौसम है
जो दुखों के पतझड़ के बाद आता है रह-रह कर कांपती है वृक्ष की परछाईं

नदी के पानी में
पर बेमौसम कुछ नहीं खिलता

आने दो मौसम।
बेमौसम कुछ नहीं खिलता
कितने ही परेशान होओ, तुम्हारी परेशानी और देर कर देगी। शांत, मौन-- छोड़ो उस पर, जो उसकी मर्जी! आना होगा तब आएगा। कोई जबरदस्ती है? कम से कम परमात्मा पर तो हिंसा करने के इरादे छोड़ दो! हम उस पर भी हिंसा करने के इरादे रखते हैं। हमारा वश चले तो हम उसके घर पर भी धरना दे दें। वह तो मिलता नहीं, ऐसा छिपता है--तुम्हारे ही जैसे व्यक्तियों के कारण, कृष्णानंद!
पहले तो मैंने सुना है कि वह यहीं रहता था जमीन पर ही, बीच बाजार में। लेकिन लोगों ने जान खा डाली। चौबीस घंटे लोग सोने ही न दें। जब देखो तब लोग दरवाजे पर खड़े हैं, कतार ही लगी हुई है। इसको यह चाहिए, उसको वह चाहिए। और लोगों की मांगें ऐसी हैं कि एक की पूरी करो तो दूसरे की बिखर जाए, दूसरे की पूरी करो तो तीसरे की गड़बड़ हो जाए। कोई कह रहा है कि आज पानी गिराना, क्योंकि मैंने बीज बोए हैं। और कोई कह रहा है कि आज पानी न गिराना, मैंने कपड़े रंगे हैं, सुखाने हैं। अब परमात्मा क्या करे और क्या न करे? हजार लोग, हजार उनकी मांगें। इसलिए, मैंने सुना है, उसने अपने सलाहकारों को बुलाया और कहा कि भैया, मुझे कोई जगह बताओ जहां मैं छिप रहूं। अब जो भूल हो गई, हो गई, कि सृष्टि बना दी।
यह तो तुम्हें पता ही है कि आदमी बनाने के बाद उसने फिर कुछ नहीं बनाया। बात जाहिर है, क्यों नहीं बनाया? बनाने से ही विरक्त हो गया। आदमी को बना कर समझ गया कि हो गई भूल, बस अब ठहर जाओ, पूर्ण विराम लगा दिया। आदमी जब तक नहीं बनाया था, तब तक बनाता गया। घोड़े बनाए, गधे भी बनाए, तब भी नहीं घबड़ाया! शेर बनाए, बंदर बनाए, भालू बनाए, नहीं घबड़ाया। बड़ा मस्त था, बनाता ही चला गया, बनाता ही चला गया। उसी धुन में, उसी मस्ती में, उसी भूल में आदमी को बना गया। और बस आदमी ने ऐसी मुसीबत की उसकी कि सलाहकारों से सलाह लेनी पड़ी कि कहां छिप जाऊं, कोई जगह बताओ!
एक सलाहकार ने कहाः आप ऐसा करें कि गौरीशंकर, हिमालय के शिखर पर बैठ जाएं।
उसने कहाः तुम्हें पता नहीं, मैं तो आगे तक की देखता हूं। अरे थोड़े दिनों बाद, होगा एक आदमी तेनसिंग और एक आदमी हिलेरी, वे दोनों चढ़ जाएंगे। और एक दफा दो आदमी पहुंच गए कि बाकी के आने में कितनी देर है! जल्दी ही बसें वगैरह आएंगी, होटलें खुल जाएंगी, सिनेमाघर बन जाएंगे। मेरी जान ये वहीं खाएंगे। इससे कुछ ज्यादा देर मामला नहीं टलेगा। एक थोड़ी देर के लिए, अस्थायी उपाय समझ लो। मैं चाहता हूं कोई स्थायी उपाय, आदमी से बचने का कोई स्थायी उपाय।
किसी ने कहाः चांद पर चले जाओ।
उसने कहाः तुम भी नहीं समझे। और दो दिन की देरी समझो, चांद पर पहुंचेंगे ये। ये छोड़ने वाले नहीं कहीं।
तब एक बूढ़े सलाहकार ने उसके कान में कहाः आप ऐसा करो, आदमी के भीतर छिप जाओ। और यह बात उसे जंच गई और तब से वह आदमी के भीतर छिप गया। क्योंकि उस बूढ़े आदमी ने उससे कहा कि एक जगह भर आदमी कभी नहीं जाएगा--अपने भीतर। और सब जगह जाएगा। और दुनिया छान मारेगा। अपने भीतर कभी नहीं जाएगा।
कृष्णानंद, वह वहीं छिपा बैठा है। तुम कहां आंखें टकटकी लगाए बैठे हो? आकाश में, तारों से आएगा? कि मक्का-मदीना से आएगा? कि काशी-कैलाश से आएगा? कि गिरनार, शिखरजी से आएगा? तुम कहां आंखें अटकाए बैठे हो? आंख बंद करो और मौन-शांति में डूबो! आनंदमग्न! अपने भीतर! जितनी गहराई में बैठ सको, बैठ जाओ। वहीं तुम उसे पाओगे। वह वहां मौजूद ही है। न देर है, न अंधेर है। सिर्फ तुम ठीक जगह पहुंच जाओ, तुम ठीक हो जाओ। तुम्हारे तार ठीक बैठ जाएं, तुम सरगम में आ जाओ, तुम्हारा साज ठीक बैठ जाए--बस धुन बज उठेगी, गीत झर उठेंगे, फूल खिल उठेंगे!

दूसरा प्रश्नः किन अज्ञात हाथों से पैरों में घुंघरू बांध दिए हैं कि
अब मैं छम-छम नचंदी फिरां!

सीता! वही बांध रहा है, वही बांधता है। हाथ निश्चित ही अज्ञात हैं उसके, अदृश्य हैं, मगर वही पैरों में घूंघर बांध देता है। वही वेणी में फूल सजा देता है। वही तुम्हें अपने रंग में सरोबोर कर देता है। पहचानो उसके अदृश्य हाथों को।
और नाचने में कंजूसी मत करना। जी भर कर नाचो। ऐसे नाचो कि नाच ही रह जाए, तुम खो जाओ। हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराई। तुम नाचो, ताकि किसी दिन कह सकोः नाचत-नाचत हे सखी... । नाचते-नाचते!
और मैं तुमसे यह कहूं कि नृत्य की बड़ी खूबी है, जो किसी और कृत्य की नहीं। नृत्य में जितने जल्दी नर्तक डूब जाता है और खो जाता है, किसी और चीज में नहीं खोता। और हर चीज में द्वैत बना रहता है, नृत्य में बड़ा अद्वैत है। तुम चित्र बनाओ तो चित्र अलग हो जाता है चित्रकार से; मूर्ति बनाओ, मूर्ति अलग हो जाती है मूर्तिकार से; नाचो, लेकिन नृत्य नर्तक से अलग नहीं होता, संयुक्त ही रहते हैं, उनको अलग करने का उपाय ही नहीं। नर्तक और नृत्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और नृत्य अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचता है, जब नर्तक बिल्कुल विस्मरण हो जाता है--जब भीतर कोई अस्मिता, कोई अहंकार नहीं बचता, गल जाता है अहंकार, नाच में पिघल जाता है और बह जाता है--जब तुम नहीं नाचतीं, जब वही नाचता है तुम्हारे भीतर! शुभ घड़ी आई, शुभ दिन आया!

फिर संवार सितार लो।
बांध कर फिर ठाट, अपने
अंक पर झंकार दो।
फिर संवार सितार लो।

शब्द के कलि-दल खुलें,
गति-पवन भर कांप थर-थर
भीड़ भ्रमरावलि ढुलें,
गीत-परिमल बहे निर्मल
फिर बहार-बहार हो!
फिर संवार सितार लो।
स्वप्न ज्यों सज जाए
यह तरी, यह सरित, यह तट,
यह गगन, समुदाय।
कमल-वलयित सरल दृग-जल
हार का उपहार हो!
फिर संवार सितार लो।

बांध कर फिर ठाट, अपने
अंक पर झंकार दो।
फिर संवार सितार लो।

मैं इसी को तो, सीता, संन्यास कहता हूं--नृत्य की इस कला को, डूब जाने, अपने को विसर्जित, विस्मृत कर देने की इस अदभुत प्रक्रिया को। संन्यास मेरे लिए त्याग नहीं है। संन्यास मेरे लिए परमात्मा का भोग है। संन्यास मेरे लिए परमात्मा के साथ-साथ इस विराट विश्व के महारास में सम्मिलित हो जाना है।
नाचती रहो, नाचते-नाचते एक दिन पाओगी कि मिल गया वह जिसकी तलाश थी। और अपने भीतर ही मिल गया! और नाचते-नाचते जो मिलता हो, उसे रोते-रोते क्यों पाना? नाचते-नाचते जो मिलता हो, उसे उदास और गंभीर होकर क्यों पाना? हंसते-हंसते जो मिलता हो, उसके लिए लोग नाहक ही धूनी रमाए बैठे हैं। जैसे परमात्मा कोई दुष्ट है और तुम्हें सताने को आतुर है। सो गर्मी के दिन हों और आप धूनी रमाए बैठे हैं। उतने से भी चित्त नहीं मानता तो और भभूत लगा ली

है शरीर पर, ताकि शरीर में भी जो रंध्र हैं, जिनसे श्वास ली जाती है, वे भी बंद हो जाएं। किसको सता रहे हो? उसी को सता रहे हो! और इतने से भी चित्त नहीं मानता तो सिर के बल खड़े हैं। चारों तरफ धूनी लगा ली है, शरीर पर भभूत रमा ली है, बिल्कुल भूत बन गए हैं और अब सिर के बल खड़े हैं।
सिर के बल ही खड़ा करना होता उसे तो पैर के बल काहे के लिए खड़ा करता? तुम उसमें भी सुधार करने की कोशिश में लगे हो? तुम उसको भी कह रहे हो कि तूने बड़ी गलती की जो हमें पैर के बल खड़ा किया, अरे शीर्षासन करता हुआ पैदा करता तो हम जन्म से ही महात्मा होते! और यह क्या शरीर दिया जिसमें कि रंध्र ही रंध्र हैं जिनसे श्वास ली जाती है! दे देता प्लास्टिक का शरीर तो यह भभूत वगैरह तो न रमानी पड़ती।
क्यों सता रहे हो अपने को? लोग उपवास कर रहे हैं, भूखे मर रहे हैं और सोच रहे हैं कि इस तरह परमात्मा प्रसन्न होगा। तुम क्या सोचते हो कि परमात्मा कोई दुखवादी है? कोई सैडिस्ट है? कि तुम अपने को सताओ तो वह प्रसन्न हो? सो लोग अपने गालों में भाले भोंक लेते हैं, कांटों पर सो जाते हैं, अंगारों पर चलते हैं। ये सब कोशिशें चल रही हैं उसको प्रसन्न करने की! और मैं तुमसे कहे देता हूंः अगर वह कहीं भी हो तो तुमसे बचेगा। तुम आदमी भले नहीं, तुम्हारे साथ वह रहना नहीं चाहेगा। क्योंकि तुम्हारे साथ रहा तो तुम उसे भी कांटों की सेज पर सुलाओगे। नहीं तो तुम कहोगेः अरे पापी! हम तो कांटों की सेज पर सोए हैं और तुम डनलप की गद्दी पर लेटे हो! कि हमने भभूत रमाई, तुम क्या कर रहे हो? रमाओ भभूत! लगाओ धूनी! हम तो अनशन कर रहे हैं और तुम छप्पन प्रकार के भोग लगा रहे हो! तुम उसको जीने दोगे?
बर्नार्ड शॉ से किसी ने पूछा कि आप स्वर्ग जाना पसंद करेंगे कि नरक?
उसने कहाः जहां तक संग-साथ का संबंध है, मैं नरक ही जाना पसंद करूंगा, क्योंकि लोग वहां कम से कम जरा दिलबहार, मस्त, मौजी ढंग के लोग मिलेंगे। स्वर्ग से मैं डरता हूं। महात्मागणों की याद करके ही मन कंपता है। और एकाध ही महात्मा डराने को काफी होता है--महात्मा ही महात्मा! जिस झाड़ के नीचे देखो वहीं एक से एक अपने को सताने में लगे हैं! सरकस ही होगा पूरा स्वर्ग तो, कि बिना टिकट और देखो! और एक-दूसरे से बढ़-चढ़ कर खेल दिखा रहे हैं लोग। और तुम बिल्कुल पापी समझे जाओगे।
यह बात सच है। बर्नार्ड शॉ की इस बात में थोड़ी सचाई है। आदमी अगर सिगरेट पीता हो, शराब पीता हो, कभी-कभार ताश भी खेल लेता हो, दीवाली-होली जुआ भी खेल लेता हो--तो आदमी मिलनसार होता है, थोड़ा भला होता है, भलामानस होता है। जो न सिगरेट पीएं; सिगरेट दूर, चाय न पीएं; काफी न पीएं; जुए की बात कर रहे हो, जो ताश भी न खेलें; अरे ताश की बात कर रहे हो, जो तुम्हें ताश हाथ में लिए देख लें तो इस तरह देखें कि सड़ोगे नरक में! इस तरह के आदमियों को लोग दूर से ही नमस्कार करते हैं, क्योंकि इस तरह के आदमी के साथ रहना बड़ा मुश्किल हो जाता है। अगर तुम्हें चौबीस घंटे इनके साथ रहना पड़े तो ये तुम्हारा जीवन नरक बना दें। इसलिए महात्माओं के पास कोई रहता नहीं; जल्दी से पैर छुए और भागे! यह तरकीब है कि हे महात्मा जी, आप भी जीओ, हम भी जीएं! लिव एंड लेट लिव! आपको जो करना हो, आप करो; हमको जो करना है, हम करें। आप बड़ा काम कर रहे हैं, नमस्कार!
लोग महात्माओं के पास ज्यादा देर नहीं टिकते। तुम चौबीस घंटे किसी महात्मा के पास रह कर तो देखो! शक्ल मातमी हो जाएगी तुम्हारी। हंस नहीं सकोगे। महात्मा के पास कोई हंसता है? हंसे कि महात्मा ऐसे देखेंगे गुर्रा कर कि अरे संसारी जीव, भवसागर में डूब मरेगा! भवसागर में डूब रहे हो और हंस रहे हो! वैसे ही तो डूब रहे हो, हंसे तो और पानी मुंह में भर जाएगा। मुंह बंद रखो!
महात्माओं के साथ तो कोई संबंध बनाना नहीं चाहता। उनसे बचने की एक ही तरकीब हैः जल्दी से पांव छुओ, कि महात्मा आशीर्वाद दो--और भागे! कारण साफ है। तुम्हारे महात्मा रुग्ण हैं, बीमार हैं, मानसिक रूप से व्याधिग्रस्त हैं। इनको चिकित्सा की आवश्यकता है। जिनकी हंसी खो गई, इनसे आदमी बचना चाहते हैं, इनसे परमात्मा भी बचना चाहेगा। इस तरह के लोगों के साथ कौन होना चाहेगा?

इसलिए सीता, नाचो! जी भर कर नाचो! हंसो! गाओ! इस जगत को एक नाचते हुए, हंसते हुए, गाते हुए धर्म की जरूरत है। वही इस जगत को बचा सकता है।

तीसरा प्रश्नः आपने कहा--कमा लिटिला नियर, सिप्पा कोल्डा बियर। मैं आपसे कहता हूं--आई एम हियर, व्हेयर इ.ज दि बियर?

कमल भारती! भैया, पूछो शीला से। वही है मेरी बार-टेंडर। पर तुम्हारे संतोष के लिए कहता हूंः आर यू रियली हियर? देन आई एम दि बियर।

अब दो बहुत गंभीर और तात्विक प्रश्न। प्रश्नकर्ता हैंः स्वामी शांतानंद सरस्वती। जब से आए हैं, प्रश्नों पर प्रश्न लिख कर भेजे जा रहे हैं। रोज। सब कचरा प्रश्न। लेकिन हरेक का जवाब चाहते हैं। और जवाब नहीं मिलता तो बड़े उद्विग्न हुए जा रहे हैं, बड़े बेचैन हुए जा रहे हैं, क्रोधित हुए जा रहे हैं।
इसके पहले कि उनके दो प्रश्न तुम्हें पढ़ कर सुनाऊं, उनको मैं जवाब दूं, कुछ बातें कह देनी जरूरी हैं, क्योंकि और भी लोग होंगे जिनके प्रश्न आते हैं और जिन्हें जवाब नहीं मिलते।
पहली तो बातः तुमने पूछ लिया, इतना भर काफी नहीं है जवाब पाने के लिए। मैं अपनी मौज का आदमी हूं, तुम्हारा कोई गुलाम नहीं। तुम पूछने को स्वतंत्र हो, मैं जवाब देने को स्वतंत्र हूं--दूं या न दूं। मैंने कोई ठेका नहीं लिया है कि तुम्हारे सारे प्रश्नों के जवाब दूं। इसलिए किसी को नाराज होने या किसी को परेशान होने की जरा भी आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हें मजबूर नहीं कर सकता कि प्रश्न पूछो। तुम मुझे मजबूर कर सकते हो कि मैं जवाब दूं? यहां बहुत हैं जो कभी नहीं पूछते, तो उनको क्या मैं कह सकता हूं कि क्यों नहीं पूछते? पूछते हो कि नहीं पूछते? पूछना पड़ेगा, क्योंकि मुझे जवाब देना है।
वे भी स्वतंत्र हैं, उनकी मौज, नहीं पूछते। तुम्हारी मौज, तुम पूछते हो। लेकिन जवाब देना न देना मेरी मालकियत है। तुमने पूछ लिया, इतना भर काफी नहीं है कि तुम्हें जवाब मिलना ही चाहिए। मैं अपने ढंग से सोचता हूं। मैं देने योग्य जवाब मानता हूं तो जवाब देता हूं; देने योग्य नहीं मानता तो नहीं देता हूं। नाराज होने का कोई कारण नहीं है। बहुत ज्यादा नाराजगी हो, दरवाजा खुला है, दरवाजे के बाहर! भीतर आने पर पाबंदी है, बाहर जाने पर कोई पाबंदी नहीं है।
और जब मैं बहुत दिन तक तुम्हारे प्रश्नों के जवाब न दूं तो इतनी अकल
तो होनी चाहिए कि तुम्हारे प्रश्नों में कुछ होगा कूड़ा-कर्कट। और अगर तुम सोचते हो तुम्हारे प्रश्न बड़े बहुमूल्य हैं, तो उत्तर तुम खुद ही खोज लो। अगर इतने बहुमूल्य प्रश्न खोज सकते हो तो उत्तर नहीं खोज सकोगे?

पहला प्रश्नः बंधी परंपराओं के विरुद्ध आपके विचार बहुत अच्छे व प्रेरणादायी लगते हैं। किंतु माला और भगवे कपड़े में बांधने के आपके प्रयास में हमें परंपरा की बू मालूम पड़ती है। हमें लगता है कि भगवान का संबोधन स्वीकार करने और माला तथा भगवे रंग के कपड़ों को देने के पीछे आपकी एक पीर-पैगंबर या अवतारी पुरुष होने की वासना छिपी हुई है। यह मेरा नितांत भ्रम भी हो सकता है। कृपा करके इसका निवारण करें!

शांतानंद सरस्वती! सबसे पहला काम तो तुम यह करो कि माला छोड़ो और गेरुए वस्त्र छोड़ो। जिस चीज में तुम्हें परंपरा की बू आती हो, उसमें उलझना क्यों? मैं तुम्हें बुलाने नहीं गया। मेरी कोई उत्सुकता नहीं है कि तुम संन्यासी होओ। तुम आकर प्रार्थना करते हो कि संन्यासी होना है; मैं तो अपने कमरे से बाहर भी नहीं निकलता। दरवाजे के बाहर नहीं गया वर्षों से। मेरी कोई उत्सुकता नहीं है तुम में, तुम्हारे संन्यास में। तुम माला और गेरुए वस्त्र छोड़ दो। क्यों इस परेशानी में पड़ना? जिस चीज में बू आती हो परंपरा की तुम्हें, तुमसे कहता कौन है कि उलझो? और अगर तुम्हारी हिम्मत न पड़ती हो माला छोड़ने की, तो संत महाराज को मैं कहे देता हूं, तुम जब बाहर

जाओगे दरवाजे के, वे माला तुमसे वापस ले लेंगे, ताकि तुम्हारा छुटकारा हो।
इस तरह के लोगों को मैं यहां चाहता भी नहीं। मेरा कोई भी रस नहीं है इस तरह के लोगों में।
मैंने गैरिक वस्त्र इसीलिए चुने हैं कि गैरिक वस्त्रों को परंपरा ने बदनाम कर दिया। मैं गैरिक वस्त्रों को चुन कर परंपरा से मुक्त कर रहा हूं। गैरिक वस्त्र प्यारे वस्त्र हैं, बड़े प्रतीकात्मक वस्त्र हैं। गैरिक रंग वसंत का रंग है। और वसंत तुममें आए तो ही परमात्मा आए। गैरिक रंग सूर्योदय का रंग है। तुम्हारे भीतर भी ध्यान का सूर्योदय हो तो परमात्मा तुम्हारे भीतर आए। गैरिक रंग फूलों का रंग है, मस्ती का रंग है, खिलावट का रंग है। तुम्हारे भीतर समाधि का फूल खिले, सहस्रदल कमल खिले, तो ही तुम जान सकोगे कि सत्य क्या है। गैरिक रंग लहू का रंग है; वह जीवन का प्रतीक है।
बुद्ध ने पीत वस्त्र चुने थे अपने भिक्षुओं के लिए--पीले, क्योंकि पीत रंग, पीले पत्ते का रंग, मौत का प्रतीक है। और बुद्ध की पूरी की पूरी देशना यही थी कि जीवन असार है, व्यर्थ है, छोड़ देने योग्य है; मृत्यु वरण करने योग्य है। इसलिए पीला रंग उन्होंने चुना था। वह प्रतीक रंग है।
जैनों ने सफेद रंग चुना है अपने साधुओं के लिए--सफेद वस्त्र। सफेद वस्त्र त्याग का प्रतीक है। अगर तुम प्रकाश के विज्ञान से परिचित हो तो सफेद वस्त्र त्याग का प्रतीक है। क्यों? क्योंकि सफेद कोई रंग नहीं है, सब रंगों का अतिक्रमण है। सफेद न लाल है, न पीला है, न हरा है, न नीला है। सारे रंगों के मिलने से, सारे रंगों के एक साथ जुड़ जाने से, संगम हो जाने से--एक अतिक्रमण पैदा होता है, वह सफेद रंग है। सफेद रंग रंगों के पार जाना है। जीवन सतरंगा है। जीवन इंद्रधनुष जैसा है। उसमें सातों रंग हैं। जीवन में सातों राग हैं--सा, रे, ग, म, प, ध, नि। सफेद राग-रहित है, वह विराग है। उसमें सातों राग खो गए, सातों रंग खो गए। वह कोरा है। इसलिए जैनों ने सफेद वस्त्र चुने थे।
हिंदुओं ने गैरिक वस्त्र चुने थे। सिर्फ इसलिए कि हिंदुओं ने गैरिक वस्त्र चुने, मैं गैरिक वस्त्र न चुनूं, यह नहीं हो सकता। यह तो परंपरा से डरना हो जाएगा। मैं न तो परंपरावादी हूं और न परंपरा से भयभीत हूं। मुझे तो जो उचित लगता है, जो प्रीतिकर लगता है, वह मेरा है। वह फिर किसी का हो, मैं फिक्र नहीं करता इसकी; वह बाइबिल में हो, कुरान में हो, गीता में हो, धम्मपद में हो, समयसार में हो--मैं किसी की बपौती नहीं मानता। मैं गैरिक रंग को सफेद और पीत दोनों रंगों से ऊंचाई पर मानता हूं।
इस्लाम ने हरा रंग चुना है, क्योंकि वह हरियाली का प्रतीक है, वृक्षों
का प्रतीक है। लेकिन इन सारे रंगों पर विचार करने के बाद मुझे तो गैरिक जमा। इसलिए नहीं चुना है कि वह परंपरा का प्रतीक है, क्योंकि मैं कोई हिंदू घर में पैदा नहीं हुआ, हिंदू होना मेरी परंपरा नहीं है। मैं पैदा तो जैन घर में हुआ, लेकिन सफेद वस्त्र मैंने नहीं चुने। वे मेरे लिए परंपरागत वस्त्र थे। मैंने चुने गैरिक वस्त्र, क्योंकि मुझे लगा कि इन सारे रंगों में गैरिक रंग की जितनी विधाएं हैं, जितना बहुआयामी है, उतना कोई दूसरा रंग नहीं है। यह मुझे प्रीतिकर लगा। इसलिए मैंने चुना है। और इसलिए भी कि मैं चाहता हूं कि पृथ्वी पर इतने गैरिक संन्यासी हों मेरे कि वे पुराने ढब के जो गैरिक संन्यासी हैं, डूब ही जाएं, उनका पता चलना मुश्किल हो जाए। उन्हें मैं डुबाना चाहता हूं। मुक्तानंद, अखंडानंद, नित्यानंद, शिवानंद... इनको मैं डुबाना चाहता हूं। इसलिए मैं अपने संन्यासियों को नाम भी दे रहा हूं--शिवानंद, मुक्तानंद, नित्यानंद--ताकि यह तय करना ही मुश्किल हो जाएगा एक दस साल के भीतर कि कौन कौन है। मैं इतने शिवानंद और इतने नित्यानंद और इतने मुक्तानंद खड़े कर दूंगा कि वे जो पिटे-पिटाए मुक्तानंद थे, इस भीड़-भाड़ में कहीं खो जाएंगे, उनकी कुछ पूछ न रह जाएगी।
और सवाल इसका नहीं है कि क्या परंपरागत है। क्योंकि जीवन कोई एकदम से थोड़े ही आविर्भूत होता है। सारी चीजें संबद्ध हैं,शृंखलाबद्ध हैं। जो गंगा तुम प्रयाग में पाते हो, वह गंगोत्री से चल रही है। वही गंगा नहीं है, लेकिन फिर भी वही है। दोनों बातें ध्यान में रखना। बहुत कुछ नया आ गया है उसमें, लेकिन शुरुआत, प्रारंभ, स्रोत तो पुराना ही है।

तो मेरा संन्यास प्राचीन से प्राचीन है और नवीन से नवीन। इसलिए मैंने पुराने से पुराना रंग चुना है उसके लिए और नये से नया ढंग चुना है उसके लिए। यह मेरा चुनाव है। तुम्हें प्रीतिकर लगे, ठीक; तुम्हें प्रीतिकर न लगे, तुम छोड़ने को मुक्त।
तुम पूछते हो कि "भगवान का संबोधन स्वीकार करने... "
मैंने किसी का संबोधन स्वीकार नहीं किया; यह मेरी घोषणा है। यह किसी
का संबोधन नहीं है। यह मेरी घोषणा है कि प्रत्येक व्यक्ति भगवान है। तो क्या तुम सोचते हो, सिर्फ मैं अपने को अपवाद मान लूं कि मुझे छोड़ कर सब व्यक्ति भगवान हैं? भगवत्ता प्रत्येक व्यक्ति के भीतर छिपी है, यह मेरी उदघोषणा है। और जो मेरी उदघोषणा तुम्हारे बाबत है, वह मेरे बाबत भी है। यह तुम्हारा संबोधन नहीं है। दुनिया में मुझे एक भी व्यक्ति भगवान न कहे तो भी मैं अपने को भगवान कहूंगा। मैं क्या कर सकता हूं इसमें, कोई कहे या न कहे! यह तुम्हारी मौज, तुम्हें जो कहना हो। मुझे शैतान कहने वाले लोग हैं। यह मेरी उदघोषणा है, ख्याल रखना।
उपनिषदों में जब ऋषियों ने घोषणा की--अहं ब्रह्मास्मि, तो वह किसी का संबोधन नहीं है। वे कहते हैंः मैं ब्रह्म हूं! जब अलहिल्लाज मंसूर ने उदघोषणा की--अनलहक, कि मैं ईश्वर हूं, तो वह किसी का संबोधन नहीं है। तुम क्या संबोधन करोगे? तुम्हें अपना पता नहीं, तुम मुझे क्या संबोधन करोगे? तुम्हें अपने भीतर की भगवत्ता का बोध नहीं है, तुम मेरी भगवत्ता को कैसे पहचानोगे? मुझे मेरी भगवत्ता का बोध है, इसलिए तुम्हारी भगवत्ता को भी पहचानता हूं।
और तुम कहते हो कि "आपकी एक पीर-पैगंबर या अवतारी पुरुष होने की वासना छिपी हुई है।"
भगवान से ऊपर तो नहीं होते पीर-पैगंबर। या अवतारी पुरुष भगवान से ऊपर
तो नहीं होते। और मैं भगवान से इंच भर नीचे उतरने को राजी नहीं हूं। तुम कहां की बातें कर रहे हो!
और इस तरह के प्रश्न रोज लिख कर भेजते हो। अब तुम चाहते हो, इनके उत्तर होने चाहिए। इतने लोगों का समय खराब करवाना है?
और दूसरा प्रश्न और भी अदभुत है, जो कि वे करीब-करीब रोज लिख कर भेजते हैं, जिससे कि बहुत कुछ जाहिर होता है।

पूछा हैः आप संदेह की निवृत्ति के लिए हमें जूझने का आह्वान करते हैं। क्या आपका ऐसा आह्वान सभा-भवन में मात्र आपकी औपचारिक विचार-स्वतंत्रता की प्रीति और उदारता का परिचायक नहीं है, जब कि न तो हमारे प्रश्नों का जवाब ही मिलता है और न आपसे मिल पाने की छूट और सुविधा ही?

तुम पूछने के लिए मुक्त हो, जवाब देने के लिए मैं मुक्त हूं। तुम सोचते हो तुम्हीं को स्वतंत्रता दे रहा हूं मैं पूछने की? मैं भी स्वतंत्रता ले रहा हूं जवाब देने की। हम दोनों स्वतंत्र हैं।
अनेक लोग यह बात पूछते हैं कि मैं मिलता क्यों नहीं?
तुम मिलना चाहते हो, बड़ी कृपा, धन्यवाद! लेकिन मुझे भी तो कोई रस हो तुमसे मिलने में! तुम्हें देख कर ही विराग पैदा होता है। तुम्हें देख कर ही मुझे लगता है कि अब हिमालय ही चला जाऊं। तुम्हें देख कर मैं समझ जाता हूं कि क्यों ऋषि-मुनि बेचारे भागते फिरे। संसार वगैरह से नहीं भाग रहे थे, तुम जैसे महात्माओं से... कि जो सत्संग करने के लिए एकदम धरना दिए बैठे थे।
बहुत दिन तक मैं मिलता-जुलता था, थक गया, बुरी तरह थक गया। क्योंकि लोगों के मिलने-जुलने का कोई हिसाब ही नहीं। किसी को बारह बजे रात सत्संग करने की सूझ जाए तो बारह बजे आकर दरवाजा खटखटा दे! एक बार एक सज्जन दो बजे रात आ गए। दरवाजा खटखटाया तो मैं समझा किसी मुसीबत में होंगे। दरवाजा खोला, तो वे बोले कि असल बात यह है कि मैं ट्रेन से जा रहा था, लेकिन ट्रेन चूक गया, तो सोचा कि चलो आपसे सत्संग ही कर लें। अब दूसरी गाड़ी तो सुबह पांच बजे जाएगी, तब तक सत्संग हो जाएगा। सो उन्होंने दो बजे रात से लेकर पांच बजे तक सत्संग किया।

ट्रेन में मैं सफर करता था तो ट्रेन में लोग डब्बों में चढ़ जाएं--उनको सत्संग करना है! किसी को पैर ही दबाने हैं। मैं उनसे कह रहा हूं कि भई, मुझे सोने दो। पर वे कहते हैंः आपको सोना हो तो आप सोओ, मगर हम तो सेवा करेंगे। सेवा के लिए आप इनकार नहीं कर सकते। अरे महात्माओं की सेवा तो सदा से चली आई है। सो वे मेरा पांव दबा रहे हैं। कोई मेरा सिर दबा रहा है। अब मैं सोऊं तो कैसे सोऊं? अब इनकी स्वतंत्रता देखूं या अपनी स्वतंत्रता देखूं?
आपकी बड़ी कृपा है कि आप मिलना चाहते हैं, लेकिन मेरी कोई इच्छा नहीं
रह गई है आपसे मिलने की। इतनी देर जो सामूहिक रूप से मिल लेता हूं, यह पर्याप्त समझो; यह भी ज्यादा दिन चलेगा नहीं। अगर तुम जैसे महापुरुष आते रहे, यह भी बंद हो जाएगा।
इस बात को समझ ही लो ठीक से कि तुम्हारी मेरे ऊपर कोई दावेदारी नहीं है, कोई अधिकार नहीं है। मैं अपना मालिक हूं, तुम अपने मालिक हो। ठीक, तुम्हारी मौज, तुम मिलना चाहते हो, लेकिन अगर मैं न मिलना चाहूं, तो हम दोनों को राजी होना चाहिए, तभी मिलन हो सकता है। नहीं तो यह तो जबरदस्ती हो जाएगी।
यहां लोग आ जाते हैं। मुझे पत्र आते हैं कि हम सत्याग्रह कर देंगे!
मैं कहता हूंः तुम करो। मैं कोई गांधीवादी नहीं हूं कि तुम मुझे सत्याग्रह वगैरह से डराओगे। मैं तुम्हारे आस-पास और लोगों को बिठाल दूंगा कि भजन करो। भैया सत्याग्रह कर रहे हैं, तुम भजन करो, तुम इनको साथ दो।
एक लफंगे ने एक आदमी के घर के सामने जाकर सत्याग्रह कर दिया। कहा कि मैं तुम्हारी लड़की से शादी करूंगा। मेरा प्रेम हो गया है।
वे भी बेचारे आदमी घबड़ाए, भीड़-भाड़ लग गई, अखबार वालों को तो मजा आ गया।
और लोग प्रोत्साहन देने लगे उस लफंगे को कि बिल्कुल ठीक, यह तो बिल्कुल गांधीवादी तरीका है, अहिंसात्मक! वह कोई हमला नहीं कर रहा, कुछ नहीं, सिर्फ बिस्तर लगाए सामने बैठा है। गांव भर में चर्चा और सभी की सहानुभूति कि बेचारा युवक अपनी जान दे रहा है। अरे इसको कहते हैं प्रेम! कलियुग में भी प्रेमी हैं जो अपनी जान देने को तैयार हैं!
बाप परेशान था, बहुत परेशान था। उसने किसी पुराने गांधीवादी से पूछा
कि भैया, क्या करें, तुम कुछ सहायता दो। उसने कहाः तुम एक काम करो। वह जो बूढ़ी वेश्या है गांव की, उसको ले आओ, उसको इसके बगल में ही बिस्तर लगवा दो। और यह पूछे कि क्यों? तो उससे बुढ़िया कहेगी कि मैं तुझसे ही विवाह करूंगी, मुझे तेरे से प्रेम हो गया है। नहीं तो सत्याग्रह करूंगी, यहीं मर जाऊंगी। सो बुढ़िया को ले आए वे दस रुपये देकर। उस बुढ़िया को देख कर युवक बहुत हैरान हुआ। उसने कहाः तू यहां किसलिए आई है? हट यहां से!
उसने कहाः कैसे हटूं? अरे तुम मेरे प्राण-प्यारे! तुम्हारे बिना मैं
मर जाऊंगी! तुम ही मेरे कृष्ण-कन्हैया।
वह बोलाः अरे क्या बक रही है? होश में आ! तू अस्सी साल की!
उसने कहाः साल का क्या सवाल है? प्रेम कोई साल मानता है? प्रेम तो किसी का किसी से हो जाए। मेरा तो हो गया तेरे से। अब प्रेम कोई करता थोड़े ही है, हो जाता है। वह तो बिस्तर फैलाने लगी।
उसने कहाः तू... क्या विचार हैं तेरे?
सत्याग्रह करूंगी, मर जाऊंगी यहीं, मगर तुम्हीं से विवाह रचाऊंगी।
आधी रात वह युवक अपना बिस्तर गोल करके भाग गया। उसने सोचा कि यह झंझट
का मामला है। लड़की तो गई ही गई और यह बुढ़िया पीछे न लग जाए।
सत्याग्रह करने आ जाते हैं लोग कि आपसे मिल कर ही रहेंगे।
मेरी कोई उत्सुकता नहीं है। कोई पीर-पैगंबर होने का सवाल ही नहीं है।
दो कौड़ी की चीजें हैं पीर और पैगंबर। मुझे छोटी-मोटी बातों में रस ही नहीं है।
तुम लेकिन गलत जगह आ गए।
उन्होंने मुझे सलाह भी दी है कि "क्या आप प्रश्नोत्तर अनावश्यक लंबा करने की बजाय, दस-पांच मिनट में उत्तर देकर अधिक प्रश्नों को नहीं निपटा सकते हैं?"
यहां कोई निपटाए नहीं जा रहे हैं प्रश्न। निपटाना हो तो पांच मिनट में सभी निपटा दूं, एक दिन में सब निपटा दूं। निपटाने का क्या सवाल है? यह

मेरी मौज है। यह मेरा मजा है, मेरा आनंद है। जितनी देर मुझे मौज होती है, उतनी देर किसी प्रश्न को लेता हूं। तुम मुझे सलाह मत दो। मैंने अपने जीवन में किसी की सलाह नहीं मानी। और सिर्फ मूढ़ व्यक्ति ही बिना मांगी सलाह देते हैं। जिनमें थोड़ी भी समझ होती है, वे बिना मांगी सलाह नहीं देते। तुम हो कौन जो मुझे कहो कि मैं कितनी देर में किसी प्रश्न को निपटाऊं? सिर्फ इसलिए कि तुम्हारे अनर्गल प्रश्नों का उत्तर देने के लिए समय बचना चाहिए? और पूछा हैः "पता नहीं आप किस मापदंड से उत्तर देने के लिए प्रश्नों
का चुनाव करते हैं!"
कोई मापदंड नहीं, मेरी मौज। मुझे जो प्रश्न जंच जाता है, लगता है कि प्रीतिकर है, सुखद है--उसका उत्तर देता हूं। यहां कोई गंभीरता और कोई ब्रह्मचर्चा के ही प्रश्न लिए जाते हों, ऐसा भी नहीं है। यह तो मधुशाला है, मयकदा है। जो चीज प्रफुल्लित करती है... ! सुबह उठ कर देखता हूं तुम्हारे प्रश्नों को, जो प्रश्न मुझे रुच जाते हैं, बस मेरी आंख को पकड़ लेते हैं कि यह प्रश्न प्यारा है--हो गई बात। कोई मापदंड नहीं है। कोई तराजू नहीं है जिस पर तौलता हूं बैठ कर। आने के दस मिनट पहले बस एक नजर तुम्हारे प्रश्नों को देख लेता हूं; उसमें जो प्रश्न मेरी मौज में आ जाते हैं... । यह सारा काम मस्ती का है। यह दीवानों की दुनिया है। यहां तुम कुछ पंडित, पंडिताऊ प्रवृत्ति के आदमी आ गए। तुम कुछ गलत आदमी आ गए; या यह गलत जगह समझो। तुम आदमी अच्छे हो, ठीक हो; यह गलत जगह है जहां तुम आ गए। और तुम जितनी जल्दी निकल भागो, उतना अच्छा; क्योंकि तुम असाध्य रोगी मालूम होते हो। मैंने तुम्हें पहले दिन प्रश्न का उत्तर नहीं दिया... यह प्रश्न अभी आ रहा है उनका जिसका मैंने उत्तर नहीं दिया। और नहीं दिया सिर्फ इसलिए कि नाहक तुम्हारी फजीहत होगी। मगर तुम फजीहत करवाने पर उतारू हो, तुम्हारी मौज।
पूछा हैः "यदि आप कल इस प्रश्न का जवाब दे देंगे तो मैं अपना पूना आना सफल समझूंगा... "
जवाब तो मैं दिए दे रहा हूं, लेकिन पूना आना तुम्हारा सफल नहीं है और न सफल हुआ और न हो सकता है। तुम बेकार आए। और भूल कर अब दुबारा मत आना।
"यह प्रश्न ही पूना लाने का विशेष हेतु था।"
अब उनका प्रश्न सुनिए--
"मुक्त यौन-संबंध के अंतर्गत क्या पिता-पुत्री और मां-बेटे के बीच भी यौन-संबंध हो सकता है? यदि नहीं तो क्यों नहीं?"
यह प्रश्न उन्होंने इतनी बार पूछा है कि मुझे शक है, तुम्हें अपनी मां
से यौन-संबंध करना है कि अपनी बेटी से, किससे करना है? यह प्रश्न इतनी बार तुम क्यों पूछ रहे हो? और यही प्रश्न हेतु है उन्हें पूना लाने का! तो जरूर यह मामला निजी होना चाहिए, व्यक्तिगत होना चाहिए। किससे तुम्हें यौन-संबंध करना है--मां से कि अपनी बेटी से? सीधी-सीधी बात क्यों नहीं पूछते फिर? फिर इसको इतना तात्विक रंग-ढंग देने की क्यों कोशिश करते हो? कम से कम ईमानदार अपने प्रश्नों में होना चाहिए।
मां-बेटे का संबंध या बेटी और बाप का संबंध अवैज्ञानिक है। उससे जो बच्चे पैदा होंगे, वे अपंग होंगे, लंगड़े होंगे, लूले होंगे, बुद्धिहीन होंगे। इसका कोई धर्म से संबंध नहीं है। यह सत्य दुनिया के लोगों को बहुत पहले पता चल चुका है। सदियों से पता रहा है। विज्ञान तो अब इसको वैज्ञानिक रूप से सिद्ध कर सका। भाई-बहन का संबंध भी अवैज्ञानिक है। इसका कोई नैतिकता से संबंध नहीं है। सीधी सी बात इतनी है कि भाई और बहन दोनों के वीर्यकण इतने समान होते हैं कि उनमें तनाव नहीं होता, उनमें खिंचाव नहीं होता। इसलिए उनसे जो व्यक्ति पैदा होगा, वह फुफ्फुस होगा; उसमें खिंचाव नहीं होगा, तनाव नहीं होगा, उसमें ऊर्जा नहीं होगी। जितने दूर का नाता होगा, उतना ही बच्चा सुंदर होगा, स्वस्थ होगा, बलशाली होगा, मेधावी होगा। इसलिए फिक्र की जाती रही कि भाई-बहन का विवाह न हो। दूर संबंध खोजे जाते रहे, जिनसे गोत्र का भी नाता न हो, तीन-चार-पांच पीढ़ियों का भी नाता न हो। क्योंकि जितने दूर का नाता हो, उतना ही बच्चे के भीतर मां और पिता के जो वीर्याणु और अंडे का मिलन होगा, उसमें दूरी होगी। दूरी होगी तो उस दूरी के कारण ही व्यक्तित्व में गरिमा होती है।

जैसे बिजली पैदा करनी हो तो ऋण और धन, इन दो ध्रुवों के बीच ही बिजली पैदा होती है। तुम एक ही तरह के ध्रुव--धन और धन, ऋण और ऋण--इनके साथ बिजली पैदा करना चाहो, बिजली पैदा नहीं होगी। बिजली पैदा करने के लिए ऋण और धन की दूरी चाहिए। व्यक्तित्व में उतनी ही बिजली होती है, उतनी ही विद्युत होती है, जितना वह दूर का हो।
इसलिए मैं इस पक्ष में हूं कि भारतीय को भारतीय से विवाह नहीं करना चाहिए; जापानी से करे, चीनी से करे, तिब्बती से करे, ईरानी से करे, जर्मन से करे, भारतीय से न करे। क्योंकि जब दूर ही करना है तो जितना दूर हो उतना अच्छा।
और यह अब तो वैज्ञानिक रूप से सिद्ध हो चुकी है बात। पशु-पक्षियों के लिए हम प्रयोग भी कर रहे हैं। लेकिन आदमी हमेशा पिछड़ा हुआ होता है, क्योंकि उसकी जकड़ रूढ़िगत होती है। अगर हमको अच्छी गाय की नस्ल पैदा करनी है तो हम बाहर से वीर्य-अणु बुलाते हैं; अंग्रेज सांड का वीर्य-अणु बुलाते हैं भारतीय गाय के लिए। और कभी नहीं सोचते कि गऊमाता के साथ क्या कर रहे हो तुम यह! गऊमाता और अंग्रेज पिता, शर्म नहीं आती? लाज-संकोच नहीं? ... मगर उतने ही स्वस्थ बच्चे पैदा होंगे। उतनी ही अच्छी नस्ल होगी।
इसलिए पशुओं की नस्लें सुधरती जा रही हैं, खासकर पश्चिम में तो पशुओं
की नस्लें बहुत सुधर गई हैं। कल्पनातीत! साठ-साठ लीटर दूध देने वाली गायें कभी दुनिया में नहीं थीं। और उसका कुल कारण यह है कि दूर-दूर के वीर्याणुओं को मिलाते जाओ, हर बार। आने वाले बच्चे और भी ज्यादा स्वस्थ, और भी ज्यादा स्वस्थ होते जाते हैं। कुत्तों की नस्लों में इतनी क्रांति हो गई है कि जैसे कुत्ते कभी भी नहीं थे दुनिया में। रूस में फलों में क्रांति हो गई है, क्योंकि फलों के साथ भी वे वही प्रयोग कर रहे हैं। आज रूस के पास जैसे फल हैं, दुनिया में किसी के पास नहीं। उनके फल बड़े हैं, ज्यादा रस भरे हैं, ज्यादा पौष्टिक हैं। और सारी तरकीब एक हैः जितनी ज्यादा दूरी हो।
यह सीधा सा सत्य आदिम समाज को भी पता चल गया था। मगर स्वामी शांतानंद सरस्वती को अभी तक पता नहीं है! और वे समझते हैं कि बड़े आधुनिक आदमी हैं, रूढ़ियों के बड़े विरोध में हैं! इसलिए भाई-बहन का विवाह निषिद्ध था। निषिद्ध रहना चाहिए। असल में चचेरे भाई-बहनों से भी विवाह निषिद्ध होना चाहिए। मुसलमानों में होता है, ठीक नहीं है। दक्षिण भारत में होता है, ठीक नहीं है, अवैज्ञानिक है। और मां-बेटे का विवाह तो एकदम ही मूढ़तापूर्ण है, एकदम अवैज्ञानिक है। क्योंकि वह तो इतने करीब का रिश्ता हो जाएगा कि जो बच्चे पैदा होंगे, बिल्कुल गोबर-गणेश होंगे। हां, गोबर-गणेश चाहिए हों तो बात अलग, पूजा-वगैरह के काम में उपयोगी रहेंगे। बिठा दिया उनको, हर साल गणेशजी बनाने की जरूरत नहीं, ले आए गणेशजी अपने, घर-घर में गणेशजी हैं। बिठा दिया, पूजा-वगैरह कर ली। उनको तुम सिरा भी आओ तो वे कुछ भी न कहेंगे, चुपचाप डुबकी मार जाएंगे कि अब क्या करना!
लेकिन यह प्रश्न तुम्हारे भीतर इतना क्यों तुम्हें परेशान किए हुए है? इसमें जरूर कोई निजी मामला है, जिसको तुम्हारी कहने की हिम्मत नहीं है। और बात तुम बड़ी बहादुरी की कर रहे हो। बात ऐसी कर रहे हो जैसे कि मुझे चुनौती दे रहे हो। इसी प्रश्न को पूछने तुम पूना आए! बड़े शुद्ध धार्मिक आदमी मालूम पड़ते हो! ऋषि-महर्षियों में तुम्हारी गिनती होनी चाहिए।
थोड़ा सोचा भी तो होता कि अगर मैं इसका उत्तर नहीं दे रहा हूं, बार-बार तुम पूछ रहे हो रोज, तो कुछ कारण होगा। इसीलिए नहीं दे रहा था कि तुम बदनाम होओगे, तुम्हारी मां बदनाम होगी; तुम बदनाम होओगे, तुम्हारी बेटी बदनाम होगी। कुछ न कुछ मामला गड़बड़ है। और तुम चाहते हो कि मेरा समर्थन मिल जाए। शायद तुमने इसीलिए संन्यास लिया है।
तुम्हारा संन्यास झूठा और थोथा है। तुम यहां संन्यास लेने इसीलिए आ
गए हो, मेरा संन्यास लेने, कि तुमको यह आशा होगी कि मैं तो सब तरह की स्वतंत्रता देता हूं, इसलिए इस बात की भी स्वतंत्रता दे दूंगा।
ऐसे कुछ लोग हैं। एक सज्जन आ गए थे। वे इसीलिए संन्यास लिए कि उनको अपनी बहन से प्रेम है। संन्यास लेने के बाद... दोनों ने संन्यास ले लिया,

फिर कहा कि अब आपको हम कह दें कि यह मेरी बहन है और सब लोग हमारे विरोध में हैं, इसलिए हम आपकी शरण आए हैं, इसलिए हमने संन्यास लिया है।
मैंने कहाः इसलिए संन्यास लेने की क्या जरूरत थी? अब यह संन्यास सिर्फ एक आवरण हुआ तुम्हें बचाने का। और तुम जाकर प्रचार करना कि मैं तुम्हारे समर्थन में हूं। मेरे दुश्मन मुझे जितना नुकसान पहुंचाते हैं, उससे ज्यादा नुकसान तुम तरह के लोग मुझे पहुंचाते हैं। तुम ही हो असली उपद्रव का कारण।
अब उस आदमी की इच्छा यह है कि मैं आशीर्वाद दे दूं कि शादी हो जानी चाहिए बहन-भाई की। मैंने कहाः यह तो गलत है। तुम चाहे संन्यास लो, चाहे न लो, मगर यह बात गलत है। और तुमने जिस कारण संन्यास लिया वह तो बिल्कुल ही गलत है। सिर्फ तुम अपने पाप को छिपाना चाहते हो--संन्यास की आड़ में।
लोग सोचते हैं कि मैं हर तरह की चीज के लिए राजी हो जाऊंगा। इस भूल में
मत रहना। जरूर मैं स्वतंत्रता का पक्षपाती हूं। मुक्त यौन से भी लोग गलत अर्थ ले लेते हैं। मुक्त यौन का यह अर्थ नहीं होता, जो तुम्हारे मन में बैठा हुआ है। कुछ भारतीय यहां आते हैं--सिर्फ इसीलिए कि वे सोचते हैं यहां मुक्त यौन की सुविधा है, कि हर किसी स्त्री को पकड़ लो, कोई कुछ नहीं कहेगा-- मुक्त यौन! तुम गलती में हो। यहां की संन्यासिनियां तुम्हारी इस तरह की पिटाई करेंगी कि तुम्हें जिंदगी भर भूलेगी नहीं। ये कोई भारतीय नारियां नहीं हैं कि घूंघट डाल कर और चुपचाप चली जाएंगी, कि कौन झगड़ा करे, कौन फसाद करे, कोई क्या कहेगा! ये तुम्हारी अच्छी तरह से पिटाई करेंगी। मुक्त यौन का यह अर्थ नहीं है।
यहां मुझे रोज शिकायतें आती हैं पाश्चात्य संन्यासिनियों की, कि भारतीय किस तरह के लोग हैं! कोहनी ही मार देंगे कुछ नहीं तो। मौका मिल जाएगा, धक्का ही लगा देंगे।
मैं उनसे कहता हूंः इन पर दया करो, ये ऋषि-मुनियों की संतान हैं। और अब
ये बेचारे क्या करें, ऋषि-मुनि सब अमरीका चले गए। महर्षि महेश योगी-- अमरीका; मुनि चित्रभानु--अमरीका; योगी भजन--अमरीका! सब ऋषि-मुनि तो अमरीका चले गए, संतान यहां छोड़ गए। उल्लू मर गए, औलाद छोड़ गए।
और ये ऋषि-मुनि क्यों अमरीका चले गए? ये भी क्या करें बेचारे! यहां बैठे बहुत दिन तक देखते रहे कि आए मेनका, आए उर्वशी। कोई आता ही नहीं। कुछ मालूम होता है इंद्र ने नियम ही बदल दिए। न उर्वशी आती, न मेनका आती! ये बेचारे बैठे हैं, माला जप रहे हैं, आंखें खोल-खोल कर बीच में देख लेते हैं-- न उर्वशी, न मेनका, कोई नहीं आ रहा! मामला क्या है? फिर इनको एकदम होश आता है कि अरे, यहां कहां उर्वशी-मेनका! हालीवुड! हालीवुड यानी होलीवुड। उसी पवित्र स्थल पर चलें! सो ये सब होलीवुड में रहने लगे जाकर और उनकी संतान यहां है। यह सदियों का दमन है।
मुक्त यौन से मेरा यह अर्थ नहीं है कि तुम हर किसी स्त्री को धक्का मार दो, कि हर किसी स्त्री का हाथ पकड़ लो या हर किसी स्त्री को तुम उठा कर ले जाने लगो। मुक्त यौन का अर्थ यह है कि जिससे तुम्हारा प्रेम है और जिसका तुमसे प्रेम है। यह बात इकतरफा नहीं है। जिसका तुमसे प्रेम है, जिससे तुम्हारा प्रेम है--यह प्रेम ही निर्णायक होना चाहिए, और बाकी गौण बातें हैं। यह प्रेम ही तुम्हारे मिलन का कारण बनना चाहिए, बाकी और बातें थोथी हैं।
मगर प्रेम वगैरह का तो सवाल ही नहीं है। प्रेम वगैरह तो तुम भूल ही गए
हो, धक्का-मुक्की याद रही। और धक्का-मुक्की भी कुछ खास करना नहीं जानते, नहीं तो घूंसेबाजी सीखो, मुक्केबाजी सीखो, मोहम्मद अली से लड़ो! अरे मोहम्मद अली की छोड़ो, तुम अगर घूंसेबाजी टुनटुन से भी करो तो मात खाओगे! चारों खाने चित्त पड़ोगे। मगर भीड़-भाड़ में किसी स्त्री को धक्का दे देना... कुछ थोड़ी तो समझ-बूझ, कुछ थोड़ी तो मानवीय गरिमा का ख्याल करो! कुछ थोड़ी तो अपनी प्रतिष्ठा का भी ख्याल करो! मगर तुम्हारे भीतर ये सब सांप-बिच्छू सरक रहे हैं।
अब तुम कहते हो कि "इसी प्रश्न का जवाब लेने मैं पूना आया हूं। अगर जवाब मिला तो समझूंगा कि सफल हो गया।"

जवाब तो मैंने दे दिया, मगर तुम यह मत समझना कि तुम सफल हो गए। क्योंकि जवाब मैंने ऐसा दिया कि अब तुम और मुश्किल में पड़ोगे। तुम आए होओगे कि मैं कहूंगा कि हां वत्स, आशीर्वाद! कि बेटा खुश रहो! जो भी करना हो सो करो, सब ठीक है।
इस तरह की मूर्खतापूर्ण बातों को मेरा कोई समर्थन नहीं है। मां-बेटे
के संबंध की बात ही नहीं उठती। ये भी तुम्हारे रुग्ण और दमित वासनाओं के कारण ये उपद्रव खड़े हो जाते हैं। नहीं तो कौन मां-बेटे को प्रेम करने की सूझेगी? किस बेटे के साथ मां यौन-संबंध बनाना चाहेगी? या कौन बेटा अपनी मां से यौन-संबंध बनाना चाहेगा? या कौन पिता अपनी बेटी से यौन-संबंध बनाना चाहेगा? जब सब तरफ द्वार-दरवाजे बंद होते हैं और तुम्हारे जीवन में कहीं कोई निकास नहीं रह जाता, तो इस तरह की गलतियां शुरू होती हैं, क्योंकि यह सुविधापूर्ण है। अब बेटी तो असहाय है, बाप के ऊपर निर्भर है, तुम उसे सता सकते हो। दूसरे की बेटी को छेड़खान करोगे तो मुसीबत में पड़ोगे।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को कह रहा था कि क्यों रे फजलू, तुझे शर्म नहीं आती? तुझमें अकल है या नहीं कि दूसरे की मां-बहनों को छेड़ता है? फजलू ने कहा कि अकल नहीं है? अरे अकल है, इसीलिए तो दूसरों की मां- बहनों को छेड़ता हूं। अकल न होती तो अपनी मां-बहनों को छेड़ता कि नहीं? बिल्कुल बुद्धिहीनता की बात तुम पूछ रहे हो। कारण न तो धार्मिक है मेरे विरोध का, न परंपरागत है, न संस्कारगत है, सिर्फ वैज्ञानिक है। अगर तुम उत्सुक हो तो संतति-शास्त्र के विज्ञान को समझने की कोशिश करो। शास्त्र उपलब्ध हैं। विज्ञान ने बड़ी खोजें कर ली हैं। विज्ञान का सीधा सा सिद्धांत हैः स्त्री और पुरुष के जीवाणु जितने दूर के हों, उतने ही बच्चे के लिए हितकर हैं--उतना ही बच्चा स्वस्थ होगा, सुंदर होगा, दीर्घजीवी होगा, प्रतिभाशाली होगा। और जितने करीब के होंगे, उतना ही लचर-पचर होगा, दीन-हीन होगा।
भारत की दीन-हीनता में यह भी एक कारण है। भारत के लोच-पोच आदमियों में
यह भी एक कारण है। क्योंकि जैन सिर्फ जैनों के साथ ही विवाह करेंगे। अब जैनों की कुल संख्या तीस लाख। महावीर को मरे पच्चीस सौ साल हो गए। अगर महावीर ने तीस जोड़ों को भी संन्यास दिया होता या श्रावक बनाया होता, तो तीस जोड़ों में भी पच्चीस सौ साल में तीस लाख की संख्या हो जाती। तीस जोड़े काफी थे। तो अब जैनों का सारा संबंध जैनों से ही होगा। और जैनों का भी पूरा जैनों से नहीं; श्वेतांबर का श्वेतांबर से और दिगंबर का दिगंबर से। और श्वेतांबर का भी सब श्वेतांबरों से नहीं; तेरापंथी का तेरापंथी से और स्थानकवासी का स्थानकवासी से। और छोटे-छोटे टुकड़े हैं। संख्या हजारों में रह जाती है। और उन्हीं के भीतर गोल-गोल घूमते रहते हैं लोग। छोटे-छोटे तालाब हैं और उन्हीं के भीतर लोग बच्चे पैदा करते रहते हैं। इससे कचरा पैदा हो रहा है। सारी दुनिया में सबसे ज्यादा कचरा इस देश में पैदा होता है। और फिर तुम रोते हो कि यह अब कचरे का क्या करें? तुम जिम्मेवार हो। ब्राह्मण सिर्फ ब्राह्मणों से शादी करेंगे। और वह भी सभी ब्राह्मणों
से नहीं; कान्यकुब्ज ब्राह्मण कान्यकुब्ज से करेंगे; और देशस्थ देशस्थ से; और कोंकणस्थ कोंकणस्थ से। और स्वस्थ ब्राह्मण तो मिलते ही कहां! वह तो असंभव ही है। कोंकणस्थ, देशस्थ--स्वस्थ का पता ही नहीं चलता। मुझे तो अभी तक नहीं मिला कोई स्वस्थ ब्राह्मण। और असल में, स्वस्थ हो, उसी को ब्राह्मण कहना चाहिए। स्वयं में स्थित हो, वही ब्राह्मण।
चमार चमार से करेंगे। फिर हो जाएंगे बाबू जगजीवन राम पैदा। फिर देखो इनकी सूरत और सिर पीटो! फिर इनके सौंदर्य को निरखो और कविताएं लिखो!
यह जो भारत की दुर्गति है, उसमें एक बुनियादी कारण यह भी है कि यहां सब जातियां अपने-अपने घेरे में जी रही हैं--वहीं बच्चे पैदा करना, कचड़-बचड़ वहीं होती रहेगी। थोड़ा-बहुत बचाव करेंगे। मगर कितना बचाव करोगे! जिससे भी शादी करोगे, दो-चार-पांच पीढ़ी पहले उससे तुम्हारे भाई-बहन का संबंध रहा होगा। दो-चार-पांच पीढ़ी ज्यादा से ज्यादा बचा सकते हो, इससे ज्यादा नहीं बचा सकते। जितना छोटा समाज होगा, उतना बचाना मुश्किल होता चला जाएगा। मुक्त होओ! ब्राह्मण को विवाह करने दो जैन से, जैन को विवाह करने दो हरिजन

से, हरिजन को विवाह करने दो मुसलमान से, मुसलमान को विवाह करने दो ईसाई से। तोड़ो ये सारी सीमाएं!
और तुम तो सीमाएं तोड़ने की बात तो दूर, तुम तो और ही सुगम रास्ता बता रहे हो। गजब की बात बता रहे हो स्वामी शांतानंद सरस्वती! कि कहां जाना दूर, अरे घर की बात घर में ही रखो! घर की संपदा घर में ही रखो। अपनी बेटी से ही शादी कर लो, कि अपनी मां से ही शादी कर लो! इस मूर्खतापूर्ण प्रश्न को पूछने तुम पूना आए हो? और इसका उत्तर तुम्हें नहीं मिल रहा है तो तुम बड़े बेचैन हुए जा रहे हो? अब दे दिया मैंने उत्तर, अब हो गए तुम सफल, हुआ तुम्हारा जीवन कृतार्थ, अब जाओ भैया!
आज इतना ही।

रहिमन धागा प्रेम का
छठवां प्रवचन

प्रेम का मार्ग अनूठा

पहला प्रश्नःऐ री मैं तो प्रेम दीवानी, मेरा दरद न जाने कोय।
न मैं जानूं आरती-वंदन, न पूजा की रीत,
लिए रीमैंने दो नयनों केदीपकलिए संजोय।
ऐरीमैं तो प्रेमदीवानी, मेरादरद न जाने कोय।
आंसुओं के सिवाय कुछ नहीं है। मैं आपको क्या चढ़ाऊं?

प्रेमतीर्थ! लूटो जितना लूट सको। चढ़ाने की बात ही भूल जाओ। तुम मेरे ऋणी नहीं हो रहे हो। तुम्हें ऋण नहीं चुकाना है। जैसे भरा बादल बरसेगा ही बरसेगा। जैसे फूल खिलेगा तो सुगंध उड़ेगी ही उड़ेगी। दीप जलेगा तो किरणें बिखरेंगी ही। न तो हम बादल को धन्यवाद देते हैं, न फूल को, न दीप को। न मुझे ही तुम्हें धन्यवाद देने की कोई जरूरत है। उलटे मैं ही तुम्हें धन्यवाद देता हूं कि तुमने झोली फैलाई और जो फूल झरे, उन्हें अपनी झोली में सम्हाल लिया, कि तुमने अपना आंचल फैलाया और फूलों को भूमि पर न गिर जाने दिया। वर्षा तो होती ही; कोई न सम्हालता तो भी होती। मेघ के वश के बाहर है कि जो उसके भीतर घटा है, उसे सम्हाल रखे। उसे लुटाना ही पड़ेगा। वह जीवन का अनिवार्य नियम है। उससे बचने का कोई उपाय नहीं है।
इसलिए तुमने शब्द तो सुना है--गुरु-ऋण, लेकिन सच बात यह है कि गुरु के प्रति कोई ऋण नहीं होता और इसीलिए उसे चुकाया नहीं जा सकता। माता का ऋण चुकाया जा सकता है, पिता का ऋण चुकाया जा सकता है, क्योंकि कुछ ऋण है तो चुकाया जा सकता है। गुरु के प्रति कोई ऋण होता ही नहीं, चुकाओगे भी तो कैसे चुकाओगे? इस चिंता में ही न पड़ो।
इसलिए आंसू जो बह रहे हैं, वे पर्याप्त हैं। उससे सुंदर और कुछ है भी
तो नहीं! न उससे सुंदर गीत हैं पृथ्वी पर, न संगीत है। फूलों में होगा बहुत सौंदर्य, पर आंसुओं के सामने सब फूल फीके हैं। आंसू कह रहे हैं अपनी कथा, अपनी व्यथा। उतना काफी है। उन आंसुओं को नाम भी न दो।
प्रीति को अनाम ही रहने दो। प्रेम को नाम देने से सीमा बंध जाती है, शर्त लग जाती है। और जहां शर्त है और सीमा है, वहीं प्रेम दूषित हो जाता है।
मीरा के ये शब्द प्यारे हैं। प्रेम निश्चित ही दीवाना है। इसलिए चतुर वंचित रह जाते हैं प्रेम से। उन नासमझों को, उन नादानों को पता ही नहीं चलता कि कितनी बड़ी संपदा गंवा बैठे! वे तो अपनी अकड़ में ही रह जाते हैं-- समझ की अकड़। वे तो अपनी बुद्धिमानी में ही घिरे रह जाते हैं। उन्हें पता ही नहीं चलता कि जीवन में एक और शराब भी थी, जिसे पीते तो अमृत का अनुभव होता, कि एक और रसधार भी थी जो पास ही बहती थी, जरा आंख भीतर मोड़ने की जरूरत थी।
मगर बुद्धिमान बाहर ही देखता रहता है। बुद्धिमानों से ज्यादा बुद्धू व्यक्ति खोजने मुश्किल हैं। बुद्धू इसलिए कि कूड़ा-कर्कट तो इकट्ठा कर लेते हैं--धन-संपदा, पद-प्रतिष्ठा; और जीवन की जो असली संपदा है, जो शाश्वत संपदा है, उससे वंचित रह जाते हैं। प्रेम के अतिरिक्त और कुछ भी शाश्वत नहीं है। शेष सब क्षणभंगुर है। शेष बस यूं है जैसे इंद्रधनुष--दिखाई तो पड़ता है बहुत रंगीन; दिखाई तो पड़ता है बड़ा प्यारा--मगर है वहां कुछ भी नहीं। मुट्ठी बांधोगे तो हाथ कुछ भी न लगेगा। शेष सब कुछ ऐसे ही है जैसे सुबह की धूप में चमकते हुए ओस-कण, लगें कि मोती ही मोती फैल गए हैं आज दूब पर; और पास जाओ तो कुछ भी नहीं है। दूर से मोती हैं; पास जाओ तो मिट्टी भी नहीं। ऐसे ही हमारे धन हैं, पद है, प्रतिष्ठा है। और इस सबके पीछे चलने वाली दौड़ है--क्षणभंगुर, पानी के बबूलों जैसी। बुद्धिमान उसी में अटका रह जाता है। वह रुपये ही गिनता रहता है। और गिनते-गिनते ही मर जाता है। कुछ जान नहीं पाता, कुछ जी नहीं पाता।

प्रेम है द्वार जीने का, जानने का। प्रेम एक अनूठा ही मार्ग है जानने का। एक मार्ग तो है शास्त्र-ज्ञान, शब्द-ज्ञान; वह जानने का धोखा है। उससे बस प्रतीति होती है कि जाना, और जानने में कुछ आता नहीं। पढ़ो वेद, पढ़ो कुरान, पढ़ो बाइबिल। हो जाएंगे याद तुम्हें शब्द, दोहराने लगोगे उन शब्दों को। सुंदर और प्यारे शब्द हैं। और दोहराओगे तो खुद को भी अच्छा लगेगा, हृदय में गुदगुदी होगी। लेकिन खाली आए, खाली ही जाओगे। तोतों की तरह दोहराते रहना राम-राम, राम-राम; जपते रहना मंत्र; फेरते रहना मालाएं। यूं ही मर जाओगे। बुद्धि से जाना नहीं जाता; जाना जाता है हृदय से। तर्क से नहीं जाना जाता; जाना जाता है प्रीति से। प्रीति है रीति जानने की। मगर बड़ी दीवानी रीति है, बड़ी पागल रीति है। इसलिए सिर्फ थोड़े से लोग ही हिम्मत जुटा पाते हैं। थोड़े से लोग ही साहस कर पाते हैं। कौन बदनाम हो! कौन डुबोए अपनी लोक-लाज! कौन रंगे अपने को प्रीति में! क्योंकि प्रीति में जैसे ही तुम रंगे गए, कि संसार तुम पर हंसेगा। स्वभावतः, क्योंकि तुम ऐसे काम करने लगोगे जो पूरे संसार को लगेंगे कि गलत हैं, व्यर्थ हैं, फिजूल हैं।
प्रेम संसार की समझ में आता नहीं, आ सकता नहीं; आ जाए तो संसार स्वर्ग
न हो जाए! संसार की समझ में घृणा आ जाती है, प्रेम नहीं आता; युद्ध आ जाता है, शांति नहीं आती; विज्ञान आ जाता है, धर्म नहीं आता। जो बाहर है, उसे तो संसार समझ लेता है; लेकिन जो भीतर है और असली है, जो प्राणों का प्राण है, वह संसार की पकड़ से छूट जाता है। दृश्य तो स्थूल है। अदृश्य ही सूक्ष्म है--और वही है आधार। संसार तो दृश्य पर अटका होता है। प्रेम की आंख अदृश्य को देखने लगती है। प्रेम तुम्हारे भीतर एक तीसरी आंख को खोल देता है। और स्वभावतः जिनकी वैसी आंख नहीं खुली है, वे तुम्हें न समझ पाएंगे; वे तुम्हें पागल कहेंगे। वे हंसेंगे, मुस्कुराएंगे। वे कहेंगे कि गए तुम काम से।
सदा उन्होंने यही कहा है। जीसस से उन्होंने यही कहा, बुद्ध से उन्होंने यही कहा, जरथुस्त्र से उन्होंने यही कहा। इस जगत में जो भी चमकदार लोग हुए, जो भी हीरे हुए, उन सब पर मिट्टी हंसी है। लेकिन मिट्टी बहुत है, उसके ढेर ही ढेर लगे हैं। और हीरा तो कोई-कोई कभी-कभी विरला होता है। मिट्टी ने बहुत तरह से अपमानित किया है हीरों को। बदला लिया है हीरों से। बदला किस बात का? इस बात का कि हीरों की मौजूदगी में मिट्टी को बहुत दीनता अनुभव होती है, चोट पड़ती है, कचोट पैदा होती है। यह जानना और मानना कि मैं मिट्टी हूं, अहंकार के विपरीत जाता है। कोई और हीरा--और मैं मिट्टी! नहीं, अहंकार यह मानने को राजी नहीं है। हटा लो इन हीरों को! मिटा दो इन हीरों को! कह दो कि ये पागल हैं!
इसलिए जीसस को लोग विक्षिप्त समझते हैं, बुद्ध को लोग पागल समझते हैं। समझेंगे ही। बुद्ध से ही हमारा बुद्धू शब्द बन गया। निश्चित ही लोगों ने कहा कि है बुद्धू! इतना राज्य था, धन-संपदा थी, सुंदर स्त्रियां थीं, सिंहासन था, अकेला बेटा था बाप का, सुनिश्चित अधिकारी था--इस सारे सुख, सुविधा, वैभव को छोड़ कर कोई जंगल में चला जाए, बैठ जाए वृक्षों के नीचे आंख बंद करके, बुद्धू न कहोगे तो और क्या कहोगे! जिन्होंने जाना उन्होंने बुद्ध कहा। जिन्होंने पहचाना उन्होंने बुद्ध कहा। लेकिन भीड़ ने तो बुद्धू ही कहा। बुद्धू शब्द की उत्पत्ति बुद्ध के साथ है। फिर बुद्ध को देख कर, बुद्ध की उमंग में आकर, बुद्ध के खुमार में आकर और भी कुछ दीवाने चल पड़े। तब तो लोगों ने कहाः ये भी हुए बुद्धू। ये भी हुए पागल।
बंगाल में मस्तों की एक परंपरा हुई हैः बाउल। बाउल का अर्थ ही होता है बावला, पागल। सूफियों में, जो पहुंच जाता है, उसको मस्त कहते हैं, अलमस्त! वह डूबा रहता है मस्ती में परमात्मा की। ऐसे ही एक अलमस्त ने--उमर खय्याम ने--रुबाइयात लिखी। लोग समझे ही नहीं। लोग समझे कि यह शराब की बात हो रही है--मधुशाला और मधुबाला, और पीने वाले और पिलाने वाले--यह बात शराब की हो रही है। यह बात शराब की नहीं थी। यह बात तो उस परम आनंद की थी। यह उमर खय्याम तो एक मस्त है, एक सूफी अलमस्त! लेकिन उमर खय्याम को समझा ही न जा सका। सदियां बीत गईं, हम समझते ही नहीं प्रेम को।
इसलिए बेचारी मीरा कहती है कि ऐ री मैं तो प्रेम दीवानी, मेरा दरद न जाने कोय!

मेरे भीतर कैसी पीड़ा उठ रही है। यह सोच कर कि मुझे कोई नहीं समझ पाता, मेरे इस दर्द को कोई भी नहीं समझ पा रहा है, मुझे दया उठती है, मुझे सहानुभूति होती है, करुणा आती है नासमझों पर, जो अपने को समझदार बैठे हैं मान कर; जो खुद पागल हैं और मुझे पागल समझ रहे हैं; जो खुद वस्तुतः विक्षिप्त हैं और मुझे विक्षिप्त मान रहे हैं। मेरे हृदय में इनके लिए बहुत दर्द उठता है। मगर ये न समझ सकेंगे। ये क्या समझेंगे? अंधा क्या समझेगा प्रकाश को? जिसने प्रेम नहीं किया वह प्रेम को क्या समझेगा?
और प्रेम का दर्द बड़ा मीठा दर्द है! तुमने दर्द तो बहुत देखे, लेकिन प्रेम का मिठास से भरा हुआ दर्द नहीं देखा, तो फिर कुछ भी नहीं देखा। आए खाली हाथ, गए खाली हाथ।
मीरा ठीक कहती हैः न मैं जानूं आरती-वंदन, न पूजा की रीत।
प्रेम मानता ही नहीं औपचारिकताओं में। औपचारिकताएं तो वे लोग करते हैं पूरी, जिनके जीवन में प्रेम नहीं है। वे ही जाते हैं मंदिर में घंटियां बजाते हैं, फूल चढ़ाते हैं, मस्जिदों में नमाज पढ़ते हैं, गुरुद्वारों में जपुजी का पाठ करते हैं, गिरजों में सूली पर चढ़े हुए जीसस को प्रणाम करते हैं। ये वे ही लोग हैं, जिनको प्रेम का पता नहीं है। तो प्रेम की कमी किसी तरह बेचारे पूरी कर रहे हैं। असली सिक्का तो पास नहीं, तो नकली सिक्के को ही हाथ में बंद किए हैं। भरोसा तो रहता है कि कुछ तो है। न सही असली, कुछ तो है। और फिर कुछ को हाथ में रखे-रखे अपने को सम्मोहित कर लेते हैं--कि नहीं, यही सच है। और फिर सभी तो यही नकली सिक्का लिए हुए बैठे हैं, इतने लोग गलत नहीं हो सकते! सो अपने को समझा लेते हैं, अपने को सांत्वना दे लेते हैं।
लेकिन प्रेम न तो जानता है आरती, न वंदन, न जानता है रीति। प्रेम तो मर्यादा-मुक्त है। प्रेम सीमाएं नहीं मानता।
रामकृष्ण पूजा करते थे काली की। वह पूजा एक प्रेमी की पूजा थी; वे कोई साधारण पुरोहित नहीं थे। मंदिर के ट्रस्टियों को पहले ही समझ लेना था कि यह कोई साधारण पुरोहित नहीं है, यह कोई साधारण ब्राह्मण नहीं है। मंदिर बनवाया था रानी रासमणि ने। रासमणि शूद्र थी। शूद्र थी, इसलिए उसके मंदिर में कोई ब्राह्मण पूजा करने को राजी नहीं था। शूद्र के मंदिर में कौन ब्राह्मण पूजा करेगा? बरसों मंदिर बिना पूजा के पड़ा रहा। ब्राह्मण न मिले कोई पूजा करने को। कौन शूद्र के मंदिर में पूजा करे? कौन अपनी बदनामी कराए?
यह तुम मजा देखो! मंदिर भी शूद्र हो जाता है, अगर शूद्र ने बनवाया! मंदिर भी ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, शूद्र होते हैं! वह भगवान भी जो मंदिर में विराजमान है, शूद्र हो गया! कोई ब्राह्मण उसकी पूजा करने को राजी नहीं।
मैं जबलपुर में बहुत वर्षों तक था। वहां गणेश-उत्सव पर बड़ी शोभायात्रा निकलती है, गणेश की झांकियां निकलती हैं। ब्राह्मणों के मोहल्ले का गणेश सबसे पहले होता है स्वभावतः। फिर क्रमशः होते हैं हर वर्णों के। भंगी, चमारों के बिल्कुल आखिर में होते हैं। एक बार ऐसा हुआ कि ठीक समय पर जब शोभायात्रा निकलनी थी, ब्राह्मणों के गणेश न पहुंच पाए, कुछ देर हो गई। और शूद्रों के गणेश पहले पहुंच गए। शोभायात्रा समय पर निकलनी थी, तो निकाल दी शूद्रों ने। उन्होंने भी सोचा कि मौका क्यों चूको! सो चमारों के गणेश आगे चल पड़े। जब ब्राह्मणों के गणेश पहुंचे, तो ब्राह्मणों ने बड़ा हो-हल्ला मचा दिया, शोभायात्रा रुकवा दी। और कहाः हटाओ चमारों के गणेश को पीछे! जब तक चमारों के गणेश पीछे नहीं हटेंगे, शोभायात्रा आगे नहीं बढ़ेगी। चमारों के गणेश और आगे! चमारों के गणेश को पीछे हटना पड़ा। चमारों के गणेश ही हो तो चमार, ऐसे कैसे आगे चले! ब्राह्मणों के गणेश आगे चलेंगे!
सो रासमणि ने बना तो दिया मंदिर, और सुंदर मंदिर बनाया दक्षिणेश्वर का, लेकिन कोई ब्राह्मण न आया पूजा करने, कोई राजी नहीं। जितनी तनख्वाह मांगो उतनी देने को राजी थी रासमणि, पैसे की कोई कमी न थी, मगर शूद्र थी। किसी ने रामकृष्ण को कहा कि एक मंदिर खाली पड़ा है, पूजा करने को ब्राह्मण नहीं मिलते। तो रामकृष्ण ने कहा कि तो मैं कर दूंगा। वे पहुंच

गए। तभी समझ लेना था रासमणि को और ट्रस्टियों को, कि यह आदमी कोई साधारण ब्राह्मण नहीं; साधारण ब्राह्मण तो आने को राजी ही नहीं थे, किसी कीमत पर राजी नहीं थे। यह आदमी कुछ असाधारण है, तभी समझ लेना था। मगर नहीं समझे। पूछा कि क्या लोगे? रामकृष्ण बहुत हैरान हुए। उन्होंने कहा कि पूजा भी करने को मिलेगी और कुछ ऊपर से भी मिलेगा? गजब करते हो! अरे पूजा बहुत! अब पूजा के पार और क्या? पूजा मिल गई, सब मिल गया। तब भी न समझे, मूढ़ मूढ़ ही थे। रहे होंगे पक्के शूद्र। तब भी न समझे कि यह ब्राह्मण कोई साधारण ब्राह्मण नहीं है, जो कह रहा है--पूजा भी और ऊपर से पैसा भी, क्या बातें कर रहे हो! सतयुग में भी ऐसा नहीं होता। यह कलियुग! अरे पूजा बहुत, मिल गया, सब पा लिया।
जब उन्होंने कुछ न मांगा तो भी सोलह रुपये महीने... उन दिनों सोलह रुपये बहुत थे। नगद चांदी के सोलह रुपये एक आदमी के लिए साल भर के लिए काफी थे। सोलह रुपये महीने उनको फिर भी रानी रासमणि ने कहा कि देने ही चाहिए। कुछ तो देना ही चाहिए।
मगर थोड़े दिन में ही पता चला कि भूल-चूक हो गई, यह आदमी ढंग का नहीं है। कुछ झक्की मालूम होता है। कभी पूजा चलती तो दिन भर चलती और कभी न चलती तो बिल्कुल न चलती। कभी दिन, दो दिन के लिए ताला ही मार देते वे मंदिर में; न खुद जाते, न किसी और को जाने देते।
लोगों ने पूछा कि यह मामला क्या है? दो दिन से पूजा नहीं हुई!
उन्होंने कहाः पड़ी रहने दो काली को भीतर! भुगतने दो। अब आती होगी मेरी याद। हम भी विरह में तड़फते हैं, उसको भी तड़फने दो। आग लगे तो दोनों तरफ से लगे। हम ही हम रोएं अकेले?
और जब पूजा करते, तो शुरू होती तो अंत ही न आता। पत्नी शारदा उनकी बार-बार जाती देखने कि अब खत्म हो, अब खत्म हो तो भोजन... । मगर वह पूजा सुबह शुरू हो रही है तो रात खत्म हो रही है, दिन भर चल रही है। भक्त आते और जाते रहते और पूजा है कि जारी रहती। लोग कहतेः यह कैसी पूजा है?
रामकृष्ण कहतेः जिस पूजा में याद रह जाए समय की, वह कोई पूजा है? अरे
जब डूब गए तो डूब गए! जब रुकेगी, रुक जाएगी; जब तक चल रही है, चलेगी। हम न अपनी तरफ से चलाते, न अपनी तरफ से रोकते। उसकी मर्जी!
चलो यहां तक भी ठीक था। रासमणि ने सोचा कि दो साल तक मंदिर में किसी ने पूजा नहीं की, यह कम से कम दिन दो दिन ही तो छोड़ता है, फिर करता है। फिर इतनी कर देता है कि दिन दो दिन को भर देता है पूरा। हिसाब से कुछ कम नहीं पड़ रही पूजा, ज्यादा ही हो रही है। करने दो। और इसको भगाना भी ठीक नहीं, क्योंकि दूसरा ब्राह्मण फिर मिले कि न मिले।
मगर बात बिगड़ती चली गई। फिर खबर आई रासमणि को कि अब मामला और बिगड़ रहा है। यह पूजा का जो थाल ले जाता है भोग लगाने, पहले खुद बैठ कर मंदिर में भोग लगाता है अपने को। सब चीजें चख कर जूठी कर देता है, फिर काली को चढ़ाता है जूठा भोजन!
तब तो रासमणि भी चिंतित हुई। बुलवाया रामकृष्ण को कि यह कैसी पूजा है? तुम्हें पूजा आती है कि नहीं? जूठा भोजन भोग लगाते हो!
रामकृष्ण ने कहा कि मेरी मां भी जब भोजन बनाती थी तो पहले खुद चख लेती
थी, तभी मुझे देती थी। तो मैं बिना चखे नहीं दे सकता। करवानी हो पूजा, करवा लो। नहीं तो कहीं और करेंगे। कोई एक ही मंदिर है? अरे मंदिर का क्या करना है! झाड़ के नीचे बैठ कर कर लेंगे। कोई भी पत्थर सामने रख कर कर लेंगे। यह तो भाव की बात है।
रामकृष्ण ने कहा कि मैं बिना चखे नहीं... पता नहीं, है भी देने लायक कि नहीं। शक्कर ज्यादा हो, फिर? कम हो, फिर? ठीक भोजन पका हो कि न पका हो। कच्चा-पक्का कुछ भी खिला दूं? यह मुझसे नहीं होगा। मेरी मां मुझे नहीं खिला सकी, तो मैं अपनी मां को कैसे खिला दूं?
तब जाकर रासमणि को और उनके ट्रस्टियों को समझ में आया कि भूल हो गई है। यह तो पागल है। यह होश में नहीं है। इसे न पूजा आती है, न वंदन आता है, न पूजा की रीति आती है।
और पूजा भी क्या होती थी, कैसे-कैसे दृश्य रामकृष्ण की पूजा में आ जाते थे! न तो बंधे-बंधाए मंत्रों का कुछ हिसाब था। कभी कुछ, कभी कुछ। एक

दिन तो तलवार निकाल ली। जो काली के पास तलवार रखी रहती है, वही उठा ली और कहेः आज या तो तू या मैं! भक्त जो खड़े थे, वे तो भाग गए एकदम। उन्होंने कहा, यह तो मामला बिगड़ा जा रहा है। यह कैसी पूजा हो रही है, तलवार से! और रामकृष्ण ने कहाः आज या तू या मैं। आज निपटारा हो ही जाए। रोज-रोज की क्या लगा रखी है! या तो दे दे दर्शन या काट लूंगा गर्दन!
मंदिर एकदम खाली हो गया। लोगों ने उनकी पत्नी को खबर दे दी। रासमणि को खबर पहुंच गई, वह भी भागी आई। और भी लोग भागे आए, मगर सब बाहर से ही देखें, क्योंकि यह आदमी पता नहीं किसी और की गर्दन काट दे! तलवार चमका रहा है अंदर!
और रामकृष्ण को उसी दिन परम ज्ञान हुआ। वह जो तलवार उठाई, उसी दिन। रामकृष्ण ने कहा बाद में कि जब तलवार मैंने उठाई और मैंने कहा कि बस, अब यह गर्दन गिरती है--एक, दो, तीन! और बस तीन पर बात हो गई। वह जो पत्थर की मूर्ति थी, विदा हो गई। उसकी जगह जीवंत, चिन्मय परमात्मा का आविर्भाव हो गया। मेरे हाथ से तलवार गिर गई। मैं एक ऐसे आनंद के सागर में खो गया कि घंटों डुबकियां मारता रहा। जी ही न भरे, भर-भर कर न भरे। प्यास ही न बुझे, पी-पी कर न बुझे। घंटों मस्ती छाई रही। जब होश आया तो पड़े थे फर्श पर, तलवार बगल में पड़ी थी। सब भक्त इत्यादि रानी रासमणि और ट्रस्टी-मंडल के लोग दरवाजों के बाहर खड़े खिड़कियों से झांक रहे थे कि अब करना क्या? अंदर जाना कि नहीं जाना? छह घंटे किसी और लोक में प्रवेश हो गया।
रामकृष्ण ने कहाः उस दिन जो होना था वह हो गया।
यह हुई पूजा की रीति! यूं गर्दन चढ़ाने का साहस! और यह पक्का समझ लेना
कि अगर तीन पर बात न हुई होती तो गर्दन कट गई होती। तुम यह मत सोचना कि चलो अपन भी करके देखें। अरे किसको काटना है, ऐसे ही तलवार रख कर चमकाएंगे! और असली तलवार की भी क्या जरूरत है? ऐसे ही नकली लकड़ी की तलवार--रामलीला वगैरह में काम आती है, बाजार में मिल जाती है--चमकाएंगे और कहेंगे कि एक, दो, तीन! और नहीं हुई प्रकट तो समझ लेंगे कि है ही नहीं, प्रकट क्या होना है! तलवार म्यान में रख कर अपने घर आ जाएंगे।
तो नहीं होगा। तो नहीं हो सकता है। रामकृष्ण ने गर्दन काट ही दी होती,
वे इतने पागल थे। ऐसे प्रेम का न तो कोई पूजा का बंधा-बंधाया ढांचा होता है, न आरती-वंदन, क्योंकि प्रेम पर्याप्त है अपने में। फिर तुम जो चढ़ा दो-- जो चढ़ा दो! दो आंसू। सिर झुका दो। दो शब्द बोल दो। जरूरत थोड़े ही है कि संस्कृत में बोलो, मराठी में भी बोलोगे तो समझ में आ जाएगा परमात्मा के। हालांकि बाहर से सुनने वालों को ऐसा लगेगा कि कोई झगड़ा-झांसा कर रहे हो। लेकिन परमात्मा समझ लेगा कि झगड़ा-झांसा नहीं है। आप से तुम, तुम से तू। मराठी में तो बात बड़ी गजब की होती है! प्रेम की भी बात हो रही हो तो ऐसा ही लगता है कि हुआ झगड़ा। यहां पास-पड़ोस में लोग हैं, जब उनकी काफी प्रेम-चर्चा छिड़ जाती है तो ऐसा ही लगता है कि अब हुआ, अब हुआ! कुछ कभी नहीं होता। मराठी में भी कहोगे तो भी परमात्मा समझेगा। कोई संस्कृत या अरबी या हिब्रू में ही कहने की जरूरत नहीं है। अपनी ही भाषा में कह दोगे... । बात भाव की है, भाषा की नहीं है। अंतर्तम की है। क्या कहते हो, कैसे कहते हो, व्याकरण सही है कि गलत--इस चिंता में मत पड़ना। परमात्मा कोई स्कूल का शिक्षक नहीं है कि पहले व्याकरण की शुद्धियां करेगा, पहले भाषा ठीक जमाने को कहेगा। परमात्मा तुम्हारा भाव समझ लेगा। न कहो तो भी चल जाएगा। चुपचाप मौन खड़े हो जाओ तो भी चल जाएगा।
ऐ री मैं तो प्रेम दीवानी, मेरा दरद न जाने कोय।
न मैं जानूं आरती-वंदन, न पूजा की रीत,
लिए री मैंने दो नयनों के दीपक लिए संजोय।
बात हो गई। ये दो आंखें अगर दीये बन जाएं तो और क्या चाहिए! बस ये दो आंखें उसकी प्रतीक्षा में, उसकी प्रार्थना में डूब जाएं तो दीये बन जाती हैं।
प्रेमतीर्थ, तुम्हें नाम मैंने दिया है प्रेमतीर्थ। तुम्हें प्रेम
का तीर्थ बनना है। इन आंखों को प्रतीक्षा बन जाने दो। आएगा अतिथि, निश्चित आएगा। राह देखने की अनंत क्षमता चाहिए। इंतजार की ऐसी क्षमता चाहिए जो

चुके ही न। अनंत प्रतीक्षा जो करने में सफल है, एक न एक दिन, जब भी तुम परिपक्व हो जाते हो, वह द्वार पर दस्तक देता है।

दूसरा प्रश्नः आपका युवकों के लिए क्या संदेश है?

कृष्णतीर्थ! पहली तो बात, युवक हैं कहां? इस देश में तो नहीं हैं। इस देश में तो बच्चे बूढ़े ही पैदा होते हैं; गायत्री मंत्र पढ़ते हुए ही पैदा होते हैं। कोई ऋग्वेद दबाए चले आ रहे हैं! कोई गीता का पाठ करते चले आ रहे हैं! कोई राम-नाम जपते चले आ रहे हैं! इस देश में युवक हैं कहां? शक्ल-सूरत से भला युवक मालूम पड़ते हों, मगर युवक होना शक्ल-सूरत की बात नहीं। युवक होना उम्र की बात नहीं। युवक होना एक बड़ी और ही, बड़ी अनूठी अनुभूति है--एक आध्यात्मिक प्रतीति है!
सभी युवक, युवक नहीं होते। सभी बूढ़े, बूढ़े नहीं होते। जिसे युवक होने
की कला आती है, वह बूढ़ा होकर भी युवक होता है। और जिसे युवक होने की कला नहीं आती, वह युवक होकर भी बूढ़ा ही होता है।
तो पहले तो इस सत्य को समझने की कोशिश करो कि युवा होना क्या है! तुम्हारी उम्र पच्चीस साल है, इसलिए तुम युवा हो, इस भ्रांति में मत पड़ना। उम्र से क्या वास्ता? पच्चीस साल के भला होओ, लेकिन तुम्हारी धारणाएं क्या हैं? तुम्हारी धारणाएं तो इतनी पिटी-पिटाई हैं, इतनी मुर्दा हैं, इतनी सड़ी-गली हैं, इतनी सदियों से तुम्हारे ऊपर लदी हैं--तुम्हें उन्हें उतारने का भी साहस नहीं है। तुम जंजीरों को आभूषण समझते हो। और तुम, जो बीत चुका, अतीत, उसमें जीते हो। और फिर भी अपने को युवा मानते हो? युवा हो--और पूजते हो जो मर गया उसको! जो बीत गया उसको! जो जा चुका उसको!
तुम्हारी धारणाओं का जो स्वर्ण-युग था वह अतीत में था, तो तुम युवा नहीं हो। राम-राज्य, सतयुग, सब बीत चुके। वहीं तुम्हारी श्रद्धा है। लेकिन न तुम विचार करते हो, न तुम श्रद्धा के कभी भीतर प्रवेश करते हो कि श्रद्धा है भी, या सिर्फ थोथा एक आवरण है? पक्षी तो कभी का उड़ गया, पींजड़ा पड़ा है। तुम कुछ भी मानते चले जाते हो! इतने अंधेपन में युवा नहीं हो सकते।
जैसे उदाहरण के लिए, कोई ईसाई कहे कि मैं युवा हूं और फिर भी मानता हो
कि जीसस का जन्म कुंवारी मरियम से हुआ था, तो मैं उसे युवा नहीं कह सकता। ऐसी मूढ़तापूर्ण बात, कुंवारी मरियम से कैसे जीसस का जन्म हो सकता है? अगर तुम मान सकते हो, तो तुम अंधे आदमी हो, तुम्हारे पास विवेक जैसी चीज ही नहीं है। और जिसके पास विवेक ही नहीं है, उसके पास श्रद्धा क्या खाक होगी! जिसके पास संदेह की क्षमता नहीं है, उसके पास श्रद्धा की भी संभावना नहीं होती।
लेकिन तुम्हारे पंडित-पुरोहित तुम्हें समझाते हैंः संदेह न करना। हम
जो कहें, मानना। और वे ऐसी-ऐसी बातें कहते हैं तुमसे कि तुम भी जरा सा सजग होओगे तो नहीं मान सकोगे। कुंवारी लड़की से कैसे जीसस का जन्म हो सकता है? हां, अगर तुम हिंदू हो तो तुम कहोगेः कभी नहीं हो सकता! यह सरासर बात झूठ है! अगर मुसलमान हो तो तुम राजी हो जाओगे कि यह बात सरासर झूठ है। मगर ईसाई, कैथलिक ईसाई, वह नहीं कह सकेगा कि सरासर झूठ है। उसके प्राण कंपेंगे। उसके हाथ-पैर भयभीत--ड़ोलने लगेंगे। वह डरेगा कि इसको मैं कैसे झूठ कह दूं! दो हजार साल की मान्यता है; मेरे पूर्वजों ने मानी, मेरे बाप-दादों ने मानी, उनके बाप-दादों ने मानी। दो हजार साल से लोग नासमझ थे, एक मैं ही समझदार हुआ हूं! वह छिपा लेगा अपने संदेह को; ओढ़ लेगा ऊपर से चदरिया श्रद्धा की, दबा देगा संदेह को। आसान है दूसरे के धर्म पर संदेह करना। युवा वह है जो अपनी मान्यताओं पर संदेह करता है।
अब जैसे हिंदू है कोई। हिंदू की मान्यता है कि गीता का जो प्रवचन हुआ,
वह महाभारत के युद्ध में हुआ। और महाभारत का युद्ध हुआ कुरुक्षेत्र के मैदान में।
कुरुक्षेत्र के मैदान में कितने लोग खड़े हो सकते हैं? महाभारत कहता हैः अठारह अक्षौहिणी सेना वहां खड़ी थी। और उस युद्ध में एक अरब पच्चीस करोड़ व्यक्ति मारे गए। जिस युद्ध में एक अरब और पच्चीस करोड़ व्यक्ति मारे गए हों, उस युद्ध में कम से कम चार अरब व्यक्ति तो लड़े ही होंगे। क्योंकि

इतने लोग मारे जाएंगे तो कोई मारने वाला भी चाहिए, कि यूं ही अपनी-अपनी छाती में छुरा मार लिया और मर गए!
बुद्ध के जमाने में भारत की कुल आबादी दो करोड़ थी। और कृष्ण के जमाने में तो एक करोड़ से ज्यादा नहीं थी। अभी भी भारत की कुल आबादी सत्तर करोड़ है। अगर पूरा भारत भी अभी कुरुक्षेत्र के मैदान में खड़ा हो तो भी पूरी अठारह अक्षौहिणी सेना नहीं बन सकती। अभी दुनिया की आबादी चार अरब है--पूरी दुनिया की, अभी! अगर पूरी दुनिया के लोगों को तुम कुरुक्षेत्र के मैदान में खड़ा करो, तब कहीं एक अरब पच्चीस करोड़ लोग मारे जा सकेंगे।
मगर कुरुक्षेत्र के मैदान में इतने लोग खड़े कैसे हो सकते हैं, यह भी तुमने कभी सोचा? हां, चींटा-चींटी रहे हों तो बात अलग; मच्छर-मक्खी रहे हों तो बात अलग। मगर आदमी अगर रहे हों तो इतने आदमी खड़े नहीं हो सकते। और फिर हाथी भी थे, और घोड़े भी थे, और रथ भी थे, फिर इनको चलाने वगैरह के लिए भी कोई जगह चाहिए, कि बस खड़े हैं! जो जहां अड़ गया सो अड़ गया, फंस गया सो फंस गया, न लौटने का उपाय, न जाने का उपाय, न चलने का उपाय! कुरुक्षेत्र के मैदान में एक अरब पच्चीस करोड़ लोगों की लाशें भी नहीं बन सकतीं। मैदान ही छोटा सा है। एक अरब की तो बात छोड़ दो, तुम एक करोड़ आदमियों को खड़ा नहीं कर सकते वहां।
मगर नहीं; मानते चले जाएंगे लोग, क्योंकि शास्त्र में जो लिखा है! कुछ
भी लिखा हो, उसको मानने में कोई अड़चन नहीं होती।
तुम अब भी द्रोणाचार्य जैसे व्यक्तियों को सम्मान दिए चले जाते हो!
और अब भी बड़े मनोभाव से एकलव्य की कथा पढ़ी जाती है और तुम बड़ी प्रशंसा करते हो एकलव्य की! लेकिन तुम निंदा द्रोण की नहीं करते। जब कि निंदा द्रोण की करनी चाहिए। यह आदमी क्या गुरु होने के योग्य है? इसने एकलव्य को इसलिए इनकार कर दिया कि वह शूद्र था, शिष्य बनाने से इनकार कर दिया! और ये सतयुग के गुरु, महागुरु! और इस आदमी की बेईमानी देखते हो! पहले तो उसे इनकार कर दिया और फिर जब वह जाकर जंगल में इसकी मूर्ति बना कर, मूर्ति के सामने ही अभ्यास कर-कर के धनुर्धर हो गया, तो यह दक्षिणा लेने पहुंच गया। शर्म भी न आई! जिसको तुमने शिष्य ही स्वीकार नहीं किया, उससे दक्षिणा लेने पहुंच गए! और दक्षिणा में भी क्या मांगा--दाएं हाथ का अंगूठा मांग लिया! क्योंकि इस आदमी को डर था कि एकलव्य इतना बड़ा धनुर्धर हो गया है कि कहीं मेरे शाही शिष्य अर्जुन को पीछे न छोड़ दे! कहीं शूद्र क्षत्रियों से आगे न निकल जाए! इस बेईमान, चालबाज आदमी को तुम अब भी गुरु कहे चले जाते हो! द्रोणाचार्य! अब भी आचार्य कहे चले जाते हो! जगह-जगह इसके, जैसे रावण को जलाते हो, ऐसे द्रोणाचार्य को जलाना चाहिए। रावण ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा? रावण ने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा।
और एकलव्य की भी मैं प्रशंसा नहीं कर सकता। जब गुरु द्रोण पहुंचे थे लेने अंगूठा, तब अंगूठा बता देना था, देने का तो सवाल ही नहीं है। यह भी क्या युवा था! पिटाई-कुटाई न करता, चलो ठीक है; इनकी नाक नहीं काटी, ठीक है। लेकिन कम से कम अंगूठा तो बता सकता था। अंगूठा दे दिया काट कर!
और सदियों से फिर इसकी प्रशंसा की जा रही है। अब भी स्कूलों में पाठ पढ़ाया जा रहा है कि अहा, एकलव्य जैसा शिष्य चाहिए! कौन पढ़ा रहे हैं? तुम्हारे शिक्षक, गुरु, अध्यापक, प्रोफेसर, वे सब पढ़ा रहे हैं--एकलव्य जैसा शिष्य चाहिए! ये सब तुम्हारा अंगूठा काटने के लिए उत्सुक हैं। इनको मौका मिले तो तुम्हारी गर्दन काट लें। जेब तो काटते ही हैं। और ये प्रशंसा कर रहे हैं! और तुम भी... और फिर तुम कहे जाते हो कि तुम युवा हो।
तुमने राम की निंदा की कभी? नहीं की तुमने राम की निंदा कभी। तुम कैसे युवा हो? इसने एक असहाय स्त्री को, सीता को, पहले तो अग्निपरीक्षा से गुजरवाया--जो कि अशोभन है। अगर गुजरना था तो दोनों को गुजरना था। जब सात चक्कर लगाए थे, विवाह के फेरे डाले, तब दोनों ने डाले; और जब अग्निपरीक्षा का समय आया तो सिर्फ सीता। क्यों? क्योंकि सीता लंका में रही, सो सीता अलग रही राम से। सो राम भी तो सीता से अलग रहे। अब कई इतिहासज्ञों को यह शक है कि शबरी बूढ़ी नहीं थी, जवान स्त्री थी। यह बूढ़ी होने की बात थोथी है। और शबरी के जूठे बेर राम खा गए, यह सिर्फ प्रेमी ही कर सकते हैं। नहीं तो कोई किसी का जूठा बेर नहीं खा सकता, पक्का समझो। हां, किसी स्त्री से प्रेम हो

तो चल सकता है, किसी पुरुष से प्रेम हो तो चल सकता है। प्रेम में आदमी जूठी चीजें खा लेते हैं, एक-दूसरे को जूठी चीजें खिलाने में मजा भी लेते हैं। लेकिन शबरी की रामलीला में जो तस्वीर बताई जाती है, वह ऐसी कि बिल्कुल बूढ़ी स्त्री है। मगर इतिहासज्ञों का कहना है कि शबरी बूढ़ी स्त्री नहीं थी। जिन्होंने शोध की है, वे कहते हैं, वह युवा स्त्री थी, सुंदर स्त्री थी।
तो अगर गुजरना ही था अग्निपरीक्षा में से तो आगे राम को होना चाहिए था, पीछे सीता को। लेकिन वहां उन्होंने लेडीज फर्स्ट का सिद्धांत स्वीकार किया कि पहले तू। जब सात चक्कर लगाते हो तब लेडीज फर्स्ट नहीं, तब भैया आगे हो जाते हैं और बाई को पीछे कर लेते हैं, कि जिंदगी भर के लिए पाठ पढ़ा दिया कि बस इसी तरह रहना--हम आगे, तुम पीछे। जहां हम जाएं, वहां तुम आना! हम इंजन, तुम डब्बा।
अग्निपरीक्षा में क्या हुआ था? उस वक्त न कहा कि ठीक, मैं आगे, तू पीछे। डर था कुछ, भय था कि कहीं जल-जला न जाएं? नहीं तो वैसे ही भद्द हो जाएगी।
सीता को अग्निपरीक्षा से गुजारा। और अग्निपरीक्षा के बाद भी एक धोबी
के कहने से गर्भवती सीता को जंगल में छुड़वा दिया। न स्त्रियां एतराज करती हैं। स्त्रियों को तो राम का नाम ही लेना बंद कर देना चाहिए। मगर वे ही रामचंद्रजी के मंदिर में बैठी रहती हैं। जैसा राम-राम वे जपती हैं, कोई नहीं जपता। पता नहीं इनको राम से क्या पड़ी है! राम ने इनके साथ कौन सा व्यवहार किया है?
राम जब सीता को लंका से लेकर आए तो उसको जो पहली बात कही, वह अभद्र है। उससे कहा कि ऐ स्त्री, तू यह मत सोचना कि मैंने तेरे लिए युद्ध लड़ा। युद्ध लड़ा मैंने वंश की प्रतिष्ठा के लिए! यह अभद्र बात कहने की क्या जरूरत थी? वे यह कह रहे थे कि स्त्री तो संपदा है, स्त्री के लिए कौन लड़ता है!
इससे तो रावण ने सीता के साथ ज्यादा सदव्यवहार किया। कोई दुर्व्यवहार नहीं किया, कोई बलात्कार नहीं किया। सम्मानपूर्वक सुंदरतम अशोक-वाटिका में उसे ठहराया। उसके साथ किसी तरह का दुर्व्यवहार नहीं किया गया। रावण ने जरा भी अशोभन कोई कृत्य नहीं किया। रावण को तुम जलाते हो और राम की पूजा चल रही है! और स्त्रियां ही पूजा में आगे हैं!
कहां युवक हैं?
वेदों को सिर पर ढो रहे हो, कभी वेदों में झांक कर देखते नहीं कि क्या कचरा भरा हुआ है! निन्यानबे प्रतिशत कचरा है। एक प्रतिशत जरूर हीरे- जवाहरात हैं, वे चुनो, लेकिन कचरे को तो आग लगा दो।
तुम्हारे शास्त्रों में इतना कचरा भरा है कि अगर तुम उनको उठा कर देखोगे तो तुम हैरान रह जाओगे कि इन शास्त्रों को क्या करें? इनको बचाएं या समुद्र में डुबा दें? अश्लील से अश्लील कहानियां हैं, बेहूदे से बेहूदे चरित्र हैं। और उनको भी सम्मान दिया जा रहा है! युधिष्ठिर हैं, जुआ खेलते हैं, मगर धर्मराज हैं! स्त्री को दांव पर लगा दिया, मगर धर्मराज हैं! और तुम फिर भी अपने को युवा माने जाते हो।
तुम जरा लौट कर अपने अतीत पर दृष्टि डालो। उस अतीत से तुम चिपके हो। कृष्णतीर्थ, युवा हैं कहां? युवा वह है जो अतीत से मुक्त है। यह मेरी परिभाषा। जिसको अतीत से कोई न्यस्त स्वार्थ नहीं है। युवा न तो हिंदू हो सकता है, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन, न बौद्ध--क्योंकि ये सब अतीत की सीमाएं हैं। युवा तो मुक्त होगा सभी सीमाओं से। सच्चा युवक न भारतीय होगा, न पाकिस्तानी होगा, न चीनी होगा, न जापानी होगा। सच्चा युवक पूरी पृथ्वी की एक घोषणा करेगा। यह सारी पृथ्वी हमारी है, हम इसके हैं। ये क्या छोटे-छोटे टुकड़े बना रखे हैं! और फिर टुकड़ों के भीतर टुकड़े, और उनके भी भीतर टुकड़े। युवक अखंड चैतन्य की घोषणा करेगा। युवक वर्तमान में जीएगा। आज उसके लिए सब कुछ है, पर्याप्त है।
कुछ हैं जो अतीत में जी रहे हैं; और कुछ, जिन्होंने अतीत से बगावत कर दी, वे भविष्य में जीने लगे हैं। जैसे रूस और चीन में लोग भविष्य में जी रहे हैं। उनका स्वर्णयुग आगे है। आएगा साम्यवाद एक दिन! कुछ हैं जिनका जा चुका स्वर्णयुग और कुछ का है जिनका आएगा कभी। मगर आज? आज दोनों दुख में जी

रहे हैं। युवा वह है जो आज को रूपांतरित करता है; जो आज जीता है; और जो कहता हैः दोनों कल बेमानी हैं। जो गया, गया। जो आया नहीं, आया नहीं। अभी जो मेरे सामने है, उसको बदलूं, उसको जीऊं--परिपूर्णता से, समग्रता से। उसी पर सोना बिखेरूं। उसी की मिट्टी को सोना बनाऊं। जो इस कीमिया की कला में निष्णात है, वही युवक है। वर्तमान में जीने की कला का नाम मैं ध्यान देता हूं।
तुम मुझसे पूछते होः "आपका युवकों के लिए क्या संदेश है?"
ध्यान मेरा संदेश है।

बदलो सदी, कि बांधो नदी
कि जोड़ो मन के तार-तार को
जागो, समय को पढ़ो।
जवानो! जागो, समय को पढ़ो।

धूल नया सिंगार किए है,
फूल-फूल अंगार पिए है,
धरती फिर से अंगड़ाई है,
बाजी फिर से शहनाई है,
यह शहनाई सुनवा दो तुम गांव-गांव के द्वार-द्वार को। जागो, समय को पढ़ो।
जवानो! जागो, समय को पढ़ो।

नये देश की नई कहानी,
नये पुजारी, नई भवानी,
मंदिर के त्योहार नये हैं,
मन के वंदनवार नये हैं,
देख रही अचरज से दुनिया, आज तुम्हारे नमस्कार को। जागो, समय को पढ़ो।
जवानो! जागो, समय को पढ़ो।

अमन-भरा है चमन तुम्हारा,
पवन भोर का देता नारा,
सूरज भेज रहा संदेशा,
इस मौसम में सोना कैसा!
निर्माणों के राजकुमारो, पतझर में लाओ बहार को।
जागो, समय को पढ़ो।
जवानो! जागो, समय को पढ़ो।

वही है जवान, जो जागा हुआ है। फिर उम्र से बूढ़ा हो कि बच्चा, भेद नहीं पड़ता। उम्र बिल्कुल ही अप्रासंगिक है। जो जागा है, वह जवान है।
और जागोगे तो वर्तमान के अतिरिक्त और कहां जागोगे? सोओ तो दो उपाय हैंः अतीत में सोओ, भविष्य में सोओ। जागो तो एक ही उपाय हैः वर्तमान में जागो। और उसकी प्रक्रिया भी एक ही हैः ध्यान, साक्षी-भाव।

तीसरा प्रश्नः शिष्य और अनुयायी में क्या फर्क है?

ओमप्रकाश! शिष्य और अनुयायी में बहुत फर्क है, जमीन-आसमान का फर्क है। अनुयायी वह है जो शिष्य होना चाहता है और फिर भी बच रहा है; जो शिष्य होने से बच रहा है, यद्यपि भीतर कहीं उसके खलबली मच गई है, कहीं तार उसकी हृदय-तंत्री के छू लिए गए हैं, कहीं स्वर जगने लगा है, मगर घबड़ा रहा है, बच रहा है।
अनुयायी कायर होता है। अनुयायी का अर्थ होता हैः मैं आपको मानता हूं, आपको आदर देता हूं, आपको सम्मानता हूं, मगर आपको जीऊंगा नहीं। नहीं, अभी मेरे जीने की घड़ी नहीं आई। आप जो कहते हैं, ठीक ही कहते हैं। आप कहते हैं तो गलत कैसे कहते होंगे! जरूर ठीक ही कहते होंगे। मैं संदेह नहीं करता, मैं

विश्वास करता हूं--अनुयायी कहता है--मगर अभी जी न सकूंगा, अभी चल न सकूंगा। आप जो राह सुझाते हैं, पहुंचाती होगी मंजिल को। मगर अभी मुझे उस राह पर जाना नहीं। अभी मुझे और दूसरे काम निपटाने हैं।
अनुयायी चालबाज है। वह अगर साफ-साफ कह दे कि वह राह गलत, तो भी ठीक; वह
कह दे कि आपकी बात गलत, तो भी ठीक। क्योंकि जो कहे आपकी बात गलत, उसको समझाया जा सकता है, उससे जूझा जा सकता है, उससे विचार-विनिमय किया जा सकता है। लेकिन वह होशियार है। वह कहता हैः नहीं, बात तो आपकी सही है। आप कहते हैं तो सही ही कहते होंगे। आप कैसे गलत कहेंगे? इस तरह वह विवाद में भी नहीं पड़ना चाहता, क्योंकि वह विवाद से भी डरता है। वह जानता है कि विवाद में मैं कहीं गोता न खा जाऊं; कहीं ऐसा न हो कि यह बात ठीक ही हो जाए; कहीं मुझे भी स्वीकार न करनी पड़े, हां न भरनी पड़े। इसलिए इसके पहले कि कोई झंझट ज्यादा बढ़े, वह हां भर देता है, झूठी हां भर देता है। अनुयायी सदा मिथ्या होता है। ईसाई हैं, हिंदू हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं--ये सब अनुयायी हैं। ये सब झूठे हैं।
शिष्य होना बड़ी और बात है। शिष्य होने का अर्थ हैः सोचा, समझा, विचारा, मनन किया--पाया कि ठीक है। जिस क्षण पाया कि ठीक है, उसके अनुसार जीने की फिर हिम्मत जुटाई। फिर चाहे दांव पर कुछ भी लगाना पड़े। फिर चाहे सब दांव पर लग जाए। फिर इस पार या उस पार। फिर बाजी हारें या जीतें।
अनुयायी दुकानदार होता है, शिष्य जुआरी होता है। अनुयायी बच-बच कर चलता है, सम्हल-सम्हल कर चलता है, झिझक-झिझक कर कदम उठाता है। एक-एक इंच सरकता है तो खूब देख लेता है कि फायदा है कि नहीं? फायदा हो तो ही! कहीं कोई नुकसान तो न हो जाएगा!
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैंः संन्यास तो हम लेना चाहते हैं, लेकिन अगर गैरिक वस्त्र और माला न पहनें तो कुछ हर्जा है?
तो मैंने कहाः फिर संन्यास ही काहे को लेना चाहते हो? संन्यासी हो ही तुम। गैरिक वस्त्र और माला से क्या घबड़ाहट है?
नहीं, वे कहते हैं कि लोगों को पता चल जाएगा और लोग अड़चन खड़ी करेंगे। सस्ता संन्यास चाहते हैं कि लोगों को पता भी न चले। लोगों का इतना भय है? किन लोगों का? बड़े मजे की दुनिया है यह। अक्सर इनमें वे ही लोग हैं जो तुम्हारे भय के कारण संन्यास नहीं ले रहे और तुम उनके भय के कारण संन्यास नहीं ले रहे।
मुल्ला नसरुद्दीन एक मरघट के करीब खड़ा था--कब्रिस्तान के करीब। सांझ
का वक्त। सूरज तो डूब चुका था, रात उतरने के करीब थी। और तभी उसने देखा कि उधर से कुछ लोग चले आ रहे हैं घोड़ों पर सवार, और तलवार, और बाजे! अभी-अभी घर से आ रहा था। खूनी पंजा नाम का एक उपन्यास पढ़ रहा था, सो अभी तक उसकी आंखों में खतरे की बातें डोल रही थीं। खूनी पंजा! सोचा कि हो न हो दुश्मन आ रहा है। पता नहीं कौन हों, क्या मामला है! अभी तक प्रभावित था खूनी पंजे से। सो सोचा कि भाग कर छिप जाना बेहतर है। दीवाल छलांग लगाई। एक कब्र नई-नई खुदी थी, खोद कर लोग गए थे आदमी को लेने जो मर गया था। सो उसने देखा, इसी में लेट जाना चाहिए। सो जल्दी से वह उस कब्र में लेट गया।
इधर जो बारात थी यह, जो आ रही थी, बरातियों ने देखा कि एक आदमी खड़ा था, एकदम से दीवाल चढ़ा, छलांग लगा कर उतर गया! कोई हो न हो दुश्मन है, कोई बदमाश है, कोई बम फेंक दे, कुछ भी शरारत करे। सो बारात रुक गई, बैंड-बाजा रुक गया। मुल्ला की तो सांस रुक गई। उसने कहा कि आ गए। मेरा सोचना ठीक था। वह खूनी पंजे की सारी कहानी उसको ख्याल में आने लगी कि अब क्या होगा, क्या नहीं होगा। मगर अब कोई उपाय भी न था।
वे लोग भी बड़े आहिस्ता से सम्हल कर दीवाल चढ़े। जब इसने देखा कि दीवाल
पर चढ़ रहे हैं, इसने कहा मारे गए! ये तो मेरे पीछे ही पड़े हुए हैं। उसने तो मन ही मन में अपनी पत्नी को, अपने बच्चों को नमस्कार कर लिया कि बस, अब आखिरी समझो। उन लोगों ने देखा कि जिंदा आदमी और सांस बंद किए कब्र में लेटा है। है शरारती, कुछ न कुछ गड़बड़ करने का इरादा रखता है। सो वे बहुत आहिस्ता-आहिस्ता आए। जितने आहिस्ता वे आए, उतना मुल्ला घबड़ाया। जितना मुल्ला घबड़ाया, उतना ही उसने सांस बंद कर ली कि बिल्कुल ऐसे रहो कि जैसे मर ही गए हो। अगर इन्होंने देखा कि जिंदा है तो मारेंगे। मरे को कौन मारता है!

देखा कि मरा है तो चले जाएंगे। सो वह बिल्कुल ही हाथ-पैर सम्हाल कर... मुर्दे कहीं ऐसा हाथ-पैर सम्हाल कर लेटते हैं! बिल्कुल जैसे अटेंशन में कोई खड़ा होता है, ऐसा अटेंशन में लेट गया। ऐसा अकड़ा! वे लोग आकर झुक कर देखे। कब तक सांस रोके रहेगा? आखिर सांस लेनी ही पड़ी। तो वे लोग भी घबड़ाए, एकदम चौंक गए, जब उसने सांस ली। पहले तो सोच रहे थे कि शायद मरा ही हो। जब उसने सांस ली तो वे भी घबड़ाए। उनमें से एक ने पूछा गुस्से में कि आप यहां क्या कर रहे हो?
तो मुल्ला ने पूछाः यही मैं आपसे पूछना चाहता हूं, आप यहां क्या कर रहे हो?
उन्होंने कहाः हम यहां क्या कर रहे हैं! अरे हम तुम्हारी वजह से यहां हैं।
मुल्ला ने कहाः हद्द हो गई, मैं तुम्हारी वजह से यहां हूं।
तुम डरे हो जिन लोगों से, वे तुम से डरे हुए हैं। मेरे पास पति आते हैं,
वे कहते हैंः संन्यास लेना है, मगर पत्नी! और पत्नियां आती हैं, वे कहती हैंः संन्यास लेना है, लेकिन पति!
एक-दूसरे से डरे हुए लोग जी रहे हैं। यह समाज क्या है? भय ही भय है। तो फिर लोग सोचते हैं कि अच्छा यह है कि अनुयायी हो जाओ। अनुयायी का मतलब यह होता हैः कुछ करना नहीं, कुछ बदलना नहीं, तुम जैसे हो वैसे ही रहोगे। सिर्फ समय-समय पर सिर हिला देना कि हां, जी हां।
अनुयायी होते हैं जी-हुजूर, जी-हुक्म; बस इससे ज्यादा कुछ भी नहीं। कुछ करेंगे नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक फकीर का अनुयायी हो गया। फकीर को इस पर शक तो था
ही, कि आदमी कुछ ढंग का मालूम पड़ता नहीं। लेकिन पीछे ही पड़ गया, तो उसने कहा कि ठीक है भई। पहली ही रात की बात, लेटने ही जा रहे थे दोनों, तो फकीर ने मुल्ला से कहा कि नसरुद्दीन, जरा बाहर तो जाकर देख, पानी तो नहीं गिर रहा है? वर्षा तो नहीं हो रही?
नसरुद्दीन लेटा रहा। उसने कहा कि कोई जरूरत नहीं बाहर जाने की। वह बिल्ली अभी बाहर होकर आई है, आपके पास ही तो खड़ी है, जरा टटोल कर देख लो। अगर भीगी हो तो समझो गिर रहा है; अगर न भीगी हो तो समझो नहीं गिर रहा है। गुरु ने कहा कि हद्द हो गई! खैर जो हुआ हुआ। फिर भी उसने कहा कि तू जाकर जरा यह तो देख आ कि बाहर का दरवाजा लगा है कि नहीं?
नसरुद्दीन ने कहाः आप भी क्या बातें कर रहे हैं! अरे हम फकीर आदमी, दरवाजा लगा हो तो ठीक और न लगा हो तो ठीक। अपने पास है ही क्या, कोई ले क्या जाएगा? कोई आ फंसेगा, तो कुछ छीना-झपटी में उसका ही कुछ छूट जाए तो छूट जाए, अपना क्या ले जाएगा? अपने पास है क्या?
गुरु फिर चुप हो गया। नसरुद्दीन नहीं हिला अपनी जगह से। आखिर उसने कहाः भई, अब सोने का वक्त हो गया, तू दीया तो बुझा दे।
नसरुद्दीन ने कहाः गुरुदेव, दो काम मैंने कर दिए, अब एक आप कर दो।
अनुयायी का मतलब होता हैः कुछ करना नहीं, बातचीत। बस बातचीत में ही लोग समझते हैं सत्संग। बातचीत से ज्यादा नहीं बढ़ना आगे। तो ब्रह्मचर्चा करो--संसार माया है, इत्यादि-इत्यादि सुबह-सुबह रोज चर्चा कर आए, अपने घर आ गए। वही माया, वही संसार, वही भवसागर चलने लगा। फिर रोज दूसरे दिन पहुंच गए, फिर सत्संग हुआ, फिर ऊंची-ऊंची बातें कीं, फिर घर आ गए। जिंदगी वही की वही रही, बातचीत ऊपर-ऊपर चलती रही।
यह बातचीत बेईमान है, यह बातचीत पाखंडी है। मंदिरों और मस्जिदों में जाने वाले लोगों को तुम जितना पाखंडी पाओगे, उतना और पाखंडी तुम्हें कहीं भी नहीं मिलेंगे। पाखंडी जाते ही वहां हैं, पाखंडी मिलते ही वहां हैं। वहीं पाखंडी पैदा होते हैं। पाखंड का सारा का सारा उपद्रव यही है कि लोग अच्छी-अच्छी बातें सीख लेते हैं और जीवन और उन बातों में कोई तालमेल नहीं होता।
शिष्य होने का अर्थ हैः मैं अपने जीवन में और अपने जीवन-दर्शन में तालमेल बिठाऊंगा। मैं एक संगीतपूर्ण जीवन जीऊंगा। मेरी जो दृष्टि है, वही मेरा जीवन होगा। मेरे जीवन में और मेरी दृष्टि में भेद नहीं होगा। मेरा अंतर और बाहर एक जैसा होगा। मेरे भीतर दोहरे रुख नहीं होंगे। मेरे भीतर

दोहरे आदमी नहीं होंगे, दोहरे मापदंड नहीं होंगे। मेरे भीतर कई तरह के मुखौटे नहीं होंगे। मेरा एक ही चेहरा होगा--मौलिक चेहरा होगा। मैं अपनी नग्नता में जीऊंगा। जैसा हूं वैसा ही जीऊंगा। उसके ऊपर राम-नाम की चदरिया नहीं ओढूंगा। न किसी को धोखा दूंगा, न धोखा खाऊंगा।
शिष्य होना दुर्गम है, कठिन है, तपश्चर्या है। शिष्य होने का अर्थ हैः सत्य को तुम सिर्फ बातचीत नहीं समझते, जीवन-मृत्यु का सवाल है। जैसे सब कुछ दांव पर लगा है। कुतूहल नहीं, कोरी जिज्ञासा नहीं। तात्विक चर्चा का अर्थ ही लोग यह समझते हैंः कोरी जिज्ञासा, कुतूहल।
मेरे पास लोग आ जाते हैं--ईश्वर है या नहीं?
मैं उनसे पूछता हूंः तुमको क्या पड़ी है? तुम्हें कुछ ईश्वर से लेना- देना है? कोई झगड़ा-झांसा है? कोई मुकदमा चलाओगे उस पर, मिल जाए तो क्या करोगे?
नहीं, वे कहते हैं कि ऐसे ही जानना चाहते थे कि है या नहीं।
क्यों परेशान हो रहे हो? तुम क्या करोगे अगर है तो फिर?
मैं एक गांव में ठहरा था। वहां दो बूढ़े मुझसे मिलने आए--एक जैन था, एक हिंदू। दोनों पड़ोसी। दोनों पुराने दोस्त। बचपन के लंगोटिया यार। अब तो बूढ़े भी हो गए। दोनों मुझसे बोले कि हमारा विवाद जिंदगी भर से चल रहा है। मैं कहता हूं कि ईश्वर है, उसी ने सृष्टि की। और यह जैन है, यह कहता हैः कोई सृष्टि करने वाला नहीं, सृष्टि अपने से चल रही है। यह विवाद खतम होता ही नहीं। अब हम मरने के भी करीब आ गए, मगर यह विवाद अपनी जगह खड़ा हुआ है। यह रोज बात छिड़ जाती है किसी न किसी बहाने। आप आए हैं तो हमने सोचा कि आपसे हम जाकर पूछें कि क्या मामला है, ईश्वर है या नहीं?
मैंने कहा कि अगर ईश्वर है तो फिर क्या करोगे?
उन्होंने कहाः करना क्या है!
नहीं है तो फिर क्या करोगे?
उन्होंने कहाः करना क्या है!
मैंने कहाः अच्छा यही है कि तुम विवाद तुम्हारा चलने दो। एक काम तो है बुढ़ापे में। अगर यह हल हो गया मामला तो फिर क्या करोगे? कोई दूसरा विवाद खड़ा करना पड़ेगा। तुम तो इसी को चलने दो। पुराना है। अभ्यासी भी हो इसके; तुम्हें भी सब तर्क मालूम हैं ईश्वर के पक्ष में, उनको भी सब तर्क मालूम हैं ईश्वर के विपक्ष में। और ईश्वर को कुछ प्रयोजन नहीं पड़ा है, नहीं तो तुम पचास साल से विवाद कर रहे हो, खुद ही आ जाता कि भैया, क्यों झंझट कर रहे हो, मैं हूं!
और तुम कहते हो कि कोई फर्क तो तुम्हें करना नहीं है। ईश्वर हो तो तुम ऐसे ही जीओगे। तुम्हारे मित्र में और तुम्हारी जिंदगी में कोई फर्क है? नहीं, उन्होंने कहा, फर्क क्या! हम दोनों साझीदार हैं, एक ही दुकान करते हैं। जैसा बेईमान यह है, वैसा ही बेईमान मैं हूं। फर्क क्या है!
जैन और हिंदू में क्या फर्क है? मुसलमान और ईसाई में क्या फर्क है? कोई फर्क नहीं है। सब एक से जी रहे हैं। हां, अलग-अलग मंदिर जाते हैं, अलग-अलग शास्त्र को सिर नवाते हैं। फर्क कुछ भी नहीं है। ये अनुयायी हैं। इनको फर्क वगैरह जीवन में लाना नहीं है। जीवन में क्रांति की इनकी कोई उत्सुकता नहीं है।
शिष्य का अर्थ होता हैः जो रूपांतरित होने के लिए आतुर हुआ है; जिसके जीवन में अब बौद्धिक खुजलाहट नहीं है, वरन सच में ही जो जानना चाहता है क्या है; और जो भी मूल्य चुकाना पड़े, वह चुकाने को राजी है। अगर जीवन भी गंवाना पड़े सत्य को पाने के लिए तो वह जीवन भी गंवाने को राजी है। तब कोई शिष्य होता है।
शिष्य होना बहुत थोड़े से सौभाग्यशाली लोगों की बात है--थोड़े से साहसी, थोड़े से हिम्मतवर लोग। कहना चाहिए दुस्साहसी। वे ही लोग शिष्य हो सकते हैं।
शिष्य का शाब्दिक अर्थ होता हैः जो सीखने में तत्पर है, जो सीखने को तत्पर है। पंडित नहीं सीख सकता; वह तो पहले से ही सीखा हुआ बैठा है। सीखने की तत्परता का अर्थ है, जिसने अपने सामने यह बात स्वीकार कर ली कि मुझे कुछ भी पता नहीं है, मैं अज्ञानी हूं! वही शिष्य हो सकता है। जिसने यह मान लिया

कि मैं अज्ञानी हूं, उसका अहंकार मर जाता है तत्क्षण! और अहंकार की मृत्यु पर ही शिष्यत्व का फूल खिलता है।

चौथा प्रश्नः क्या काव्य में भी उतना ही सत्य नहीं होता है जितना कि बुद्धपुरुषों के वचनों में?

सिद्धार्थ! काव्य में केवल झलक होती है, सत्य नहीं होता। कवि को सत्य
की कोई अनुभूति नहीं होती। कवि को सत्य का कोई साक्षात्कार नहीं होता। लेकिन झलक जरूर उसे मिली होती है। झलक--जैसे कि चांद झील में झलके और कोई झील में चांद को देख ले। चांद की ही झलक है, मगर झील में देखी गई है। एक कंकड़ी फेंक दोगे झील में, और तितर-बितर हो जाएगा प्रतिबिंब, छितर जाएगा, खंडित हो जाएगा। ऐसा ही काव्य है--सिर्फ झलक है।
इसलिए सुंदरतम काव्य को जन्म देने वाले लोग भी जीवन वैसा ही जीते हैं जैसे साधारण लोग। अक्सर तो साधारण लोगों से भी बदतर।
अगर तुम खलील जिब्रान को पढ़ो, तो कैसे प्यारे वचन हैं! कैसा अदभुत काव्य है! एक-एक शब्द जैसे शहद में डुबोया हुआ हो! एक-एक शब्द अमृत-कलश है, ऐसा मालूम पड़े। निश्चित प्रीतिकर हैं शब्द वे। वही रंग है, वही ढंग है, जो जीसस के वचनों का है बाइबिल में। मगर अगर खलील जिब्रान से तुम्हारा मिलना हो जाए तो तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे, तुम तालमेल न बिठा पाओगे--कि खलील जिब्रान का अदभुत ग्रंथ प्रोफेट और खलील जिब्रान, इन दोनों में कोई तालमेल नहीं है। खलील जिब्रान प्रेम पर इतनी अदभुत बातें कहता है, लेकिन उसके जीवन में वह बड़ा क्रुद्ध आदमी था, बड़ा क्रोधी, महाक्रोधी! छोटी-मोटी बात पर चीजें फेंकने लगे, किताबें फेंक कर मारे, कुर्सियां तोड़ दे। जो लोग उसके साथ रहे, जिन लोगों ने उसे निकट से जाना, वे बड़े हैरान थे कि ये दो अलग व्यक्ति हैं। जब लिखता है तो जैसे मोती झरते हैं! जब काव्य की किसी लहर में होता है, तो बातें इसकी फूलों से भी ज्यादा नाजुक, हीरों से ज्यादा कीमती! कोहिनूर फीके पड़ जाएं, ऐसी! और जीवन? जीवन बिल्कुल कूड़ा-कर्कट, बहुत साधारण, बहुत ईर्ष्यालु, बहुत दूसरे पर कब्जा करने की नीयत, बहुत अहंकारी। और यह कुछ खलील जिब्रान के संबंध में ही बात नहीं है, तुम्हारे अधिकतम कवियों के संबंध में, महाकवियों के संबंध में है। इसलिए मैं कहता हूंः अगर तुम्हें किसी कवि की कविताएं प्रीतिकर लगती हों तो उस कवि से न मिलना, नहीं तो उसकी कविताओं का रस चला जाएगा। उसकी कविताओं में तो हो सकता है उपनिषदों की गंध आए! और अगर कविराज से मिलना हो जाए, तो बैठे हैं किसी होटल के सामने, मक्खियां भिनभिना रही हैं उनके चेहरे पर, बीड़ी पी रहे हैं। तुम्हारा जी देख कर मितला जाए। तुम्हारी समझ में भी न आए कि यह बीड़ी पीते महाराज, यह मक्खियां भिनभिनाता रूप, यह सड़ी-सड़ाई होटल! वे उपनिषद जैसे प्यारे वचन, इस आदमी से पैदा हुए!
कवि कभी-कभी किसी-किसी क्षण में ऋषि होता है। बस किसी-किसी क्षण में।
और वह उसके बस की बात नहीं है। कोई सांयोगिक घटना उसे उड़ान दे देती है। आकाश में पूर्णिमा का चांद है--और उसको देख कर कवि के भीतर कुछ हो जाए-- जैसे कोई दीया जल जाए! या कि सूर्यास्त हो रहा है और नीड़ की तरफ लौटते हुए पक्षी और उनकी आवाजें और बादलों पर छा गए सुनहले रंग--और कवि के भीतर कुछ हो जाए--एक सिलसिला, एकशृंखला, गीत बनने लगें! मगर इसका वह मालिक नहीं है। यह कभी हो जाता है, कभी नहीं भी होता। जब हो जाता है, तब हो जाता है; जब नहीं होता, तब नहीं होता। जब नहीं होता, तब वह लाख उपाय करे, बैठा रहे टेबल पर सिर मारे, कलम हाथ में पकड़े बैठा रहे, कुछ भी न आएगा। और जब आता है तो ऐसा बहता है कि कलम पिछड़ जाती है। इतना आता है कि प्रकट नहीं कर पाता।
कवि के जीवन में यह घटना उसकी मालकियत से नहीं घटती; ऋषि के जीवन में उसकी मालकियत से घटती है। उसका कारण सूर्यास्त नहीं होता और न चांद होता है और न पक्षियों के गीत होते हैं। ऋषि के भीतर ध्यान के कारण घटना घटती है। ध्यान उसे निर्मल कर जाता है, शांत कर जाता है, मौन कर जाता है। वह चौबीस घंटे मौन है। इसलिए जहां उसकी आंख पड़ती है, वहीं परमात्मा का दर्शन, वहीं परमात्मा का प्रसाद। अगर ऋषि गाए तो उसके गीतों में झलक ही नहीं

होती, अनुभव होता है। अगर ऋषि बोले तो उसके वचन में प्रामाणिकता होती है, स्वतःसिद्ध प्रामाणिकता होती है, उसके वचन आप्त होते हैं।
कवि कभी-कभी उसी तरह के वचन बोल देता है। मगर कौन उससे बुलवा लेता है, इसका उसे भी पता नहीं होता। ऋषि जब बोलता है तो उसे पता होता है कि कौन उससे बोल रहा है। ऋषि परमात्मा के हाथों में अपने को छोड़ दिया होता है-- जागरूकतापूर्वक। परमात्मा उससे बहता है। कवि बेहोश है।
इसलिए अक्सर तुम पाओगे कि कवि शराब पीएंगे, अफीमची होंगे, गांजा-भांग-चरस सब तरह की नशीली चीजों में कवियों को सदियों से रस रहा है। उसका कारण? उसका सिर्फ एक कारण है कि कवि के भीतर से कविता उसकी बेहोशी में पैदा होती है। तो जब भी वह जितना ज्यादा बेहोश होता है, उतनी ही संभावना होती है काव्य के अभिव्यक्त होने की।
ऋषि की प्रक्रिया बिल्कुल उलटी है। वह जितना जागरूक होता है, उतना परमात्मा उससे बहता है। इसलिए सारे ऋषियों ने मादक द्रव्यों का विरोध किया है--कि मत अपने को बेहोश करो। होश जगाना है।
फर्क तुम समझ लो।
ऋषि से भी काव्य उतरता है--उपनिषद उतरा, गीता उतरी, धम्मपद उतरा--लेकिन
ये उतरे हैं उसके होश से। कवियों से भी बहुत से अदभुत वचन उतरे हैं, मगर वे उतरे उनकी बेहोशी में। एक होश की मस्ती है--तुम मस्त भी होते हो, मगर होश नहीं खोते। और एक बेहोशी की मस्ती है--तुम बेहोश होते हो, इसलिए मस्त होते हो। होश आते ही मस्ती खो जाती है। बेहोशी की मस्ती का कोई मूल्य नहीं है। होश की मस्ती का मूल्य है।

जितना जो कहा कभी
सुधियों ने--छवियों ने,
स्वप्न-भरी अंखियों ने,
मैंने वह दिया सभी
कविता को अपनी।

जितना जो मिला कभी
गंध-लुब्ध बादल से,
मौन-मुग्ध पायल से,
मैंने वह दिया सभी
कविता को अपनी।

जितना जो पिया कभी
रंग-रूप फूलों से,
गान-गंध कूलों से,
मैंने वह दिया सभी
कविता को अपनी।

लेकिन जो मिला नहीं
मुझको अंधियारे में,
खोज-खोज हारे में,
मैंने वह दिया नहीं
कविता को अपनी।

कवि वही दे सकता है जो उसे मिलता है। जो उसे खुद ही नहीं मिला है, वह कैसे दे सकता है? कवि ईश्वर को नहीं जानता। अपने को ही नहीं जानता! कवि का स्वयं से साक्षात्कार नहीं हुआ है। तो जो मिला उसे----

जितना जो कहा कभी
सुधियों ने--छवियों ने,
स्वप्न-भरी अंखियों ने,
मैंने वह दिया सभी

कविता को अपनी।

जितना जो मिला कभी
गंध-लुब्ध बादल से,
मौन-मुग्ध पायल से,
मैंने वह दिया सभी
कविता को अपनी।

जितना जो पिया कभी
रंग-रूप फूलों से,
गान-गंध कूलों से,
मैंने वह दिया सभी
कविता को अपनी।

लेकिन जो मिला नहीं
मुझको अंधियारे में,
खोज-खोज हारे में,
मैंने वह दिया नहीं
कविता को अपनी।

कैसे देगा कवि, जो मिला नहीं उसे स्वयं? पहले पाओ, फिर बंटता है। कवि बांट रहा है जो उसने पाया नहीं। इसलिए शब्द ही होते हैं। सुंदर शब्द बना सकता है, सुंदर शब्द संयोजित कर सकता है, शब्दों की मालाएं गूंथ सकता है-- प्यारी मालाएं! मगर बस निष्प्राण होंगी, निर्जीव होंगी। भाषा होगी, शैली होगी, छंद होगा; मगर जीवन नहीं होगा, रस नहीं होगा, परमात्मा की उपस्थिति नहीं हो सकती है।

पांचवां प्रश्नः आपने कहा था कि पूंछ भी जाएगी। आपके चरणों की कृपा
से वह भी गई। संतत्व कब घटेगा, मेरे मालिक! अब देरी क्यों?

संत महाराज! कम से कम आज मत घटाना--एक अप्रैल है! आज छोड़ कर जब मर्जी। तख्तियां देखीं न तुमने--आज नगद, कल उधार! उससे उलटा कर लेना--आज उधार,
कल नगद। आज भर बचना। आज तो संतत्व घटे भी तो तुम हाथ जोड़ कर खड़े हो जाना कि नहीं-नहीं। क्योंकि आज घटा भी तो कोई मानेगा नहीं।
तुमने कभी सुना कि एक अप्रैल को कोई बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ हो? अब तक
तो नहीं हुआ। अब तुम अपवाद ही सिद्ध करने को पड़े होओ तो बात अलग। अब घबड़ाओ न, पूंछ निकल ही गई; हाथी तो पहले ही निकल गया था, पूंछ ही रह गई थी, वह भी निकल गई--अब चिंता न करो। अब जब घटेगा, घटेगा। तुम फिकर-फांटा छोड़ो।
और आज के दिन तो तुम बिल्कुल ही चादर ओढ़ कर सो जाओ। दरवाजा लगा लेना भीतर से। कितना ही परमात्मा खटखटाए, कहनाः कल! आज नहीं भैया। आज हमें होना ही नहीं है बुद्ध। आज तो बुद्धू भले!

आखिरी प्रश्नः अप्रैल फूल के इस महान धार्मिक दिवस पर कुछ कहें।

सहजानंद! दो झूठे लतीफे।
पहला--
वेदांत सत्संग मंडल की सभा के पश्चात सामूहिक भोजन का आयोजन था। सभी बिना दांत के बूढ़े मौजूद थे। वही अर्थ होता है वेदांत सत्संग मंडल का। उन्हीं में थे श्री मुरदाजी भाई देसाई भी, जो कि सिर्फ भाई ही भाई रह गए हैं, जिनकी जान निकल गई है। अब भूल कर उनको भाईजान न कहना, बस भाई ही कहना, जान अब कहां!
इस एक घटना के कारण वे उस दिन विशेष आकर्षण का कारण बन गए। बात यह हुई
कि जब खाना परोसने वाले व्यक्ति ने उनसे पूछा कि क्या आप थोड़ी परमल की सब्जी और लेंगे? तब श्री मुरदाजी भाई यकायक जीवित हो उठे, अर्थात उन्हें

भयंकर क्रोध आ गया। आंखें लाल-पीली करके वे बोलेः शर्म नहीं आती बदमाश छोकरे? मुझसे ऐसी गंदी बातें करता है!
वह व्यक्ति तो हक्का-बक्का रह गया। समझा कि भूतपूर्व प्रधानमंत्री मजाक कर रहे हैं। एक अप्रैल का दिन है, शायद अप्रैल फूल बना रहे हैं। वह पुनः विनम्रतापूर्वक बोलाः जरा चख कर तो देखें श्रीमान! बड़े ही स्वादिष्ट परमल की सब्जी है।
इतना सुन कर तो मुरदाजी भाई का खून खौल उठा। उन्होंने थाली में लात मार दी। थाली की झनझनाहट से सभी चौंक पड़े। मुरदाजी भाई चिल्लाएः हरामजादे, बदतमीजी की भी एक हद होती है! भरी सभा में मेरी बेइज्जती कर रहा है! अपनी औकात भूल रहा है! जानता नहीं मैं कौन था?
सत्संग मंडल के सभी वेदांतियों ने आश्चर्य से मसूड़ों तले अंगुलियां दबा लीं। किसी के पल्ले न पड़े कि आखिर हुआ क्या! मुरदाजी भाई किस बात पर इतने आगबबूला हो रहे हैं! एक सज्जन द्वारा पूछे जाने पर मुरदाजी भाई ने बतायाः यह लफंगा मेरी खिल्ली उड़ा रहा है। मुझसे कहता है स्वादिष्ट परमल की सब्जी खा लो। कमीना कहीं का! क्या मेरे खुद के मल का स्वाद कड़वा है, जो मैं यहां-वहां हर किसी का ऐरे-गैरे-नत्थूखैरे का मल खाता फिरूं? अरे आत्म-मल खाता हूं, परमल क्यों खाऊं?
और दूसरा झूठा लतीफा--
मैंने सुना है कि बेचारे चरणसिंह जब से कुर्सी से उतरे हैं, तब से बात-बात पर नाराज होते रहते हैं। कुछ कहो, उन्हें कुछ सुनाई देता है। एक दिन की बात है, दोपहर के समय कुछ पत्रकार उनसे मिलने आए। जब पत्रकारों ने कमरे में प्रवेश किया, उस समय भूतपूर्व प्रधानमंत्री आराम-कुर्सी पर विश्राम कर रहे थे--उदास, आंखें बंद किए हुए। एक पत्रकार ने यह देख औपचारिकतावश पूछाः एक्सक्यूज मी सर, आर यू रिलैक्सिंग?
इतना सुनते ही वे गुस्से से तमतमा उठे और बोलेः नमकहरामो! चार दिन पहले मेरे आगे-पीछे चक्कर काटते थे, पैर दबाते थे और अब मुझे पहचानते तक नहीं हो! पूछते हो--आर यू रिलैक्सिंग? कमबख्तो, आई एम नॉट रिलैक्सिंग, आई एम चरणसिंग। हैव यू फारगॉटन ईवन माई नेम?
आज इतना ही।

रहिमन धागा प्रेम का
सातवां प्रवचन

मैं मधुशाला हूं

पहला प्रश्नः जार्ज गुरजिएफ अपने शिष्यों का अंतरतम जानने के लिए उन्हें भरपूर शराब पिलाया करता था। और जब वे मदहोश हो जाते थे तो उनकी बातों को ध्यान से सुनता था। आप भी ऐसा क्यों नहीं करते हैं?

कृष्णतीर्थ! तुम बुद्धू के बुद्धू रहे! और मैं क्या कर रहा हूं? रोज पिलाता हूं, सुबह पिलाता हूं, सांझ पिलाता हूं। गुरजिएफ जो पिलाता था, वह स्थूल है। मैं जो पिला रहा हूं, वह सूक्ष्म है। और सूक्ष्म का नशा ज्यादा गहरे तक जाता है। स्थूल का नशा तो स्थूल तक ही जाएगा।
अंगूर की शराब शरीर के पार नहीं जा सकती। लेकिन और भी शराबें हैं, जो देह के पार जाती हैं। वही तुम्हें पिला रहा हूं। संगीत की भी शराब है, मौन की भी शराब है, ध्यान की भी। और जो श्रेष्ठतम है, उसे वेदों ने सोमरस कहा है। सदियां हो गईं, न मालूम कितने लोग सोमरस की तलाश में रहे हैं! वैज्ञानिक हिमालय की खाइयों में, पहाड़ियों में, सोमरस किस पौधे से पैदा होता था, उसकी अनथक अन्वेषणा करते रहे हैं। अब तक कोई जान नहीं पाया कि सोमरस कैसे पैदा होता था? सोमरस क्या था?
वे जान भी नहीं पाएंगे। सोमरस स्थूल बात नहीं है। सोमरस तो ऋषियों के पास, उनकी सन्निधि में, उनके मौन में, उनके ध्यान में लयबद्ध हो जाने से मिलता था। वह किन्हीं पौधों से नहीं मिलता। वह किन्हीं फलों से नहीं मिलता। वह किन्हीं फूलों से नहीं मिलता। वह तो जिनकी चेतना का कमल खिला है, उनसे जो उठती है सुवास, उनसे जो गंध उठती है, उनसे जो आलोक बिखरता है, उससे मिलता है।
सोम चंद्रमा का नाम है। साधारणतः व्यक्ति सूर्य का अंश होता है। साधारणतः सभी सूर्यवंशी होते हैं, सिर्फ बुद्धपुरुषों को छोड़ कर। सूर्यवंशी होने का अर्थ है कि तुम्हारे भीतर ऊर्जा उत्तप्त है, जैसे बुखार में हो; विक्षिप्त है। इस सूर्य की उत्तप्त ऊर्जा को जब कोई व्यक्ति अपने भीतर शांत कर लेता है, जब काम राम में रूपांतरित होता है, तब तुम चंद्रवंशी हो जाते हो। तब तुम सूर्य से हटते हो, चंद्रमा की तरफ तुम्हारी यात्रा शुरू होती है। और एक ऐसी पूर्ण घड़ी भी आती है जीवन में, अपूर्व घड़ी भी आती है--रहस्य की, अनुपम अनुभव की--जब तुम चंद्र हो जाते हो।
इसी बात को बुद्ध के जीवन में प्रतीक रूप से कहा गया है। गौतम बुद्ध
का जन्म पूर्णिमा की रात को हुआ। उन्हें बुद्धत्व भी प्राप्त पूर्णिमा की रात्रि को हुआ--उसी पूर्णिमा की रात्रि को। वही महीना, वही पूर्णिमा की रात्रि। और उनका महापरिनिर्वाण, उनका देह-त्याग भी पूर्णिमा की रात्रि को ही हुआ--उसी माह की पूर्णिमा, वही पूर्णिमा। जैसे जन्म, जीवन और मृत्यु, सब एक बिंदु पर आकर मिल गए। सब पूर्णिमा पर आकर मिल गए। जैसे चंद्र पूर्ण हुआ। बुद्ध के पास बैठ कर जिन्होंने पीया, उन्होंने जाना कि सोमरस क्या है। बुद्ध के कमल से जो गंध उठी, उनके चंद्र से जो किरणें फैलीं, उसकी पीने की क्षमता जुटाने वालों को ही पता चलेगा।
और तुम पूछते हो, कृष्णतीर्थः "आप ऐसा क्यों नहीं करते?"
वही कर रहा हूं। गुरजिएफ को स्थूल करना पड़ा, क्योंकि गुरजिएफ, जीवन-दर्शन तो पूरब का था उसके पास, लेकिन प्रचारित कर रहा था उसे पश्चिम में। पश्चिम है नितांत भौतिक। पश्चिम की धारणा में शरीर के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है; शरीर के पार कुछ भी नहीं है; बस शरीर सब कुछ है। आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं है। पिछले तीन सौ वर्षों की वैज्ञानिक चिंतना का यह परिणाम हुआ है कि मनुष्य की अपने पर से ही आस्था हट गई है, अपने ही अंतर पर अविश्वास हो गया है। भयंकर संदेह का झंझावात उठा है, जो जीवन को जड़ों से झकझोरे दे रहा है। पश्चिम में काम करना हो तो गुरजिएफ को स्थूल शराब का उपयोग करना पड़ा। लेकिन वह उपयोग वह करता था केवल नवागंतुक शिष्यों के लिए, नये-नये आए शिष्यों के लिए। जो थोड़े दिन उसके पास रह जाते थे, टिक जाते थे,

उसके रस में पक जाते थे, उनके लिए नहीं। उनके लिए फिर धीरे-धीरे सूक्ष्म रसों की प्रक्रिया शुरू होती थी। वह भी सोमरस पिलाता था। लेकिन सोमरस तभी पिलाया जा सकता है जब पात्र तैयार हो। सोमरस केवल शिष्यों को पिलाया जा सकता है।
पश्चिम का एक दुर्भाग्य है, वहां गुरु और शिष्य की कोई परंपरा नहीं है। वहां शिक्षक और विद्यार्थी की परंपरा है, लेकिन गुरु और शिष्य की कोई परंपरा नहीं है। शिक्षक और विद्यार्थी के बीच जो आदान-प्रदान होता है, वह होता है--ज्ञान का, सूचना का, शास्त्रीय; हार्दिक नहीं, बौद्धिक। शिष्य और गुरु के बीच जो आदान-प्रदान होता है, वह बौद्धिक नहीं, हार्दिक--और अंततः आत्मिक।
गुरजिएफ को जो काम करना पड़ रहा था, वैसा काम बुद्ध को नहीं करना पड़ा, कृष्ण को नहीं करना पड़ा, कबीर को नहीं करना पड़ा। अलग तरह के लोग थे। अलग तरह की उनकी पात्रता थी। सदियों-सदियों ने एक वातावरण निर्मित किया था, एक मनो-आकाश निर्मित किया था। इसलिए मैंने पश्चिम जाना नहीं तय किया। जिनको आना है वे पश्चिम से मेरे पास आएं, मैं नहीं जाऊंगा। इस देश में यद्यपि वेद खो गए हैं, उपनिषद खो गए हैं--पंडितों के शोरगुल में सब खो गया है, पुरोहितों ने सभी चीजों को नष्ट कर दिया है--फिर भी, थोड़ी सी ही तलाश से छुपे हुए स्रोत पुनः खोजे जा सकते हैं। थोड़ी सी ही खुदाई से झरने फिर पाए जा सकते हैं। उन्हीं झरनों को खोद रहा हूं। जो भी शिष्य होने को तैयार हैं, वे उन झरनों से पीएंगे और पीकर अमृत को उपलब्ध होंगे।

योग शुक्ला ने भी पूछा हैः एकटक आपकी ओर देखते हुए, अपलक आपके रूप को निहारते हुए, जब आपके मुख से झरते हुए पुष्पों को आंचल में भरती हूं, तब एक प्रकार का नशा। जब नशे से बोझिल होती बंद आंखों में आपकी मधुर वाणी के स्वर कानों में गुंजित होते हैं, तो एक प्रकार का नशा। आप जो रस पिला रहे हैं, उसको क्या नाम दूं?

शुक्ला! सोमरस से सुंदर और कोई नाम नहीं है। सोमरस पिला रहा हूं। और मैंने जब कुछ दिनों पहले कहा कि शीला मेरी मधुबाला है, तो उसके पास बहुत लोग गए कि मधुशाला कहां है? मधुबाला है तो मधुशाला भी होगी। शीला ने भी पूछा है कि अब मैं क्या जवाब दूं?
जवाब--मेरी तरफ इशारा करो! मैं मधुशाला हूं। जो तुम्हें पिला रहा हूं, काश तुम पी सको, घूंट भर भी पी सको, तो तुम और ही हो जाओ, तुम्हारे जीवन में क्रांति घट जाए।
लेकिन कृष्णतीर्थ, अब तो भारतीयों की दृष्टि भी स्थूल हो गई है। अब तोशायद भारत की दृष्टि जितनी स्थूल है, उतनी किसी और की नहीं। भारत जिस तरह भौतिक हुआ है, शायद कोई और नहीं। अध्यात्म का तो नाम ही रह गया है। अध्यात्म की तो बस बातचीत है; पकड़ भौतिक की है। इसलिए तुम पूछ सकते हो कि आप ऐसा क्यों नहीं करते?
वही कर रहा हूं।
मुझसे पूछा जाता है कि जीसस ने अपने शिष्यों कोशराब पिलाई!
निश्चित पिलाई। और कोई रास्ता न था। जिन यहूदियों के बीच जीसस काम कर रहे थे, वे सोमरस को नहीं समझ सकते थे। यहूदी अति भौतिकवादी लोग हैं। तो जहां लोग हैं वहीं से तो सदगुरु को यात्रा शुरू करनी होगी। तुम जहां हो वहीं से तो तुम्हारा हाथ हाथ में लेना होगा। अगर तुम गड्ढे में गिर गए हो तो मुझे भी अपना हाथ तुम्हारे गड्ढे में ही उतारना होगा। अगर तुम कीचड़ में पड़े हो तोशायद यह भी जरूरी हो जाए कि मुझे भी दो कदम कीचड़ में उतरने पड़ें। जीसस ने न केवल शराब पिलाई अपने शिष्यों को, खुद भी उनके साथ पी। यह दो कदम कीचड़ में उतरना हुआ। मगर जब कीचड़ में जीसस उनके साथ दो कदम उतरे, तो मैत्री बनी, तो अंतर-संबंध हुआ। जब जीसस को उन्होंने अपने इतने निकट पाया, तब वे जीसस पर भरोसा कर सके, तब वे जीसस के हाथ में अपना हाथ दे सके। जीसस उन्हें अपने मालूम हुए, पराए नहीं, दूर नहीं; आकाश की बातें करने वाले नहीं, पार्थिव। हम जैसे ही।

जीसस खाने-पीने में मजा लेते थे और शराब पीने में। रात देर तक शिष्यों
के साथ बैठ कर भोज चलता था। यह हम सोच भी नहीं सकते बुद्ध के बाबत। जरूरत न थी। और ही तरह का भोज था। इतने स्थूल आहार को देने की जरूरत न थी। यहां शिष्य मौजूद थे।
जीसस को विद्यार्थियों को पहले शिष्य में परिवर्तित करना पड़ा। जीसस
को छोटी कक्षा से शुरू करना पड़ा। जीसस का काम ज्यादा कठिन है बुद्ध के काम से। जीसस की गरिमा भी इसलिए महत्वपूर्ण है। खींचा कीचड़ से लोगों को। और उनकी करुणा भी महान है कि अगर लोग कीचड़ में थे तो वे कीचड़ में भी गए; उनका हाथ हाथ में लिया। और जब लोगों ने देखा कि वे कीचड़ में हमारे साथ खड़े हैं, तो उन्हें इतना भरोसा आया कि वे भी जीसस के साथ हो लिए कीचड़ से बाहर जाने को। एक दिन जीसस उन्हें कीचड़ के बाहर भी ले गए। आवश्यक था यह।
एक झेन फकीर के संबंध में प्रसिद्ध कहानी है कि वह जीवन में बहुत बार जेल गया। बुद्ध की हैसियत का व्यक्ति, परम ज्ञान को उपलब्ध--और जेल जाए बार-बार! और कारण भी छोटे-छोटे--किसी का चाकू चुरा लिया, किसी के पैसे खीसे से निकाल लिए। उसके शिष्य कहतेः आप भी ये क्या काम करते हो! क्यों करते हो? हमारे लिए पहेली है।
मगर जिंदगी भर वह हंसता। सिर्फ मरते वक्त उसने राज खोला। उसने कहाः
ये छोटी-छोटी चोरियां मैं करता था, ताकि जेल चला जाऊं। क्योंकि जेल में जो लोग हैं, उनको बाहर कौन लाएगा? उन्हें बाहर लाने को मुझे जेल के भीतर जाना पड़ता है। ये भीतर जाने की विधियां हैं। थोड़ी सी चोरी कर ली, मजिस्ट्रेट को जेल भेजना पड़े।
और चोरी वह स्वीकार कर लेता था और सजा उसे देनी ही पड़ती। और जब बार-बार कोई चोरी करता ही जाए तो सजा बढ़ती जाए। छोटी चोरी हो, लेकिन फिर भी सजा बढ़ती जाए। और यह तो जिंदगी भर ही चोरी करता रहा। लेकिन जो लोग इसके साथ जेल में रहे, उनके जीवन में क्रांति हो गई। वे जब जेल के बाहर आए तो दुबारा भीतर नहीं गए।
गुरजिएफ को भी वैसा कुछ करना पड़ा जैसा जीसस को करना पड़ा, जैसा इस झेन फकीर को करना पड़ा। मुझे करने की जरूरत नहीं है। मेरे पास जो लोग आ रहे हैं, उनमें इस पृथ्वी के श्रेष्ठतम लोग हैं। अब तो धर्म केवल श्रेष्ठतम को ही आकर्षित कर सकता है। मेरे पास जो लोग आ रहे हैं, वे पृथ्वी के नमक हैं। उन्हें सीधा सोमरस पिलाया जा सकता है। छोटी-मोटी बातें हैं उनकी जिंदगी में, जो बदलनी हैं, कोई बहुत बड़ी-बड़ी बातें नहीं हैं। उनकी बदलाहट में मैं लगा हूं, वे बदल ली जाएंगी। वे बदली जा रही हैं। छोटी-मोटी अड़चनें हैं, वे गिरती जाती हैं। विद्यार्थी शिष्य में रूपांतरित हो रहे हैं। इसी रूपांतरण को मैंने संन्यास नाम दिया है। संन्यास है तुम्हारी तैयारी सोमरस पीने की।
मुझसे लोग पूछते हैं कि क्या बिना संन्यासी हुए हमें आपका आशीष न मिलेगा?
मेरा आशीष तो मिलेगा, मगर तुम तक पहुंचेगा नहीं। तुम उसे झेल न सकोगे। तुम उसे पी न सकोगे। मैं तो भर दूंगा तुम्हारा जाम, लेकिन तुम उसे ओंठों से लगा न सकोगे। तुम्हें वह दिखाई भी न पड़ेगा, ओंठों से लगाना तो बहुत दूर। मेरे आशीष में कोई अंतर नहीं पड़ेगा। तुम संन्यासी हो या नहीं, इससे क्या फर्क पड़ता है? लेकिन फर्क तुम्हें पड़ेगा। संन्यासी मेरे आशीष को लेने को तत्पर होगा, आतुर होगा, उन्मुख होगा। वह अपने हृदय के द्वार-दरवाजे खोल कर बैठा है। उसने निमंत्रण भेज दिया है। उसने पाती लिख दी है। उसका नेह-निमंत्रण मुझ तक आ गया है। उसने कहला भेजा है कि पलक-पांवड़े बिछाए बैठा हूं।
लेकिन जो संन्यासी नहीं है, वह बंद है। वह सुनने आता है विद्यार्थी की तरह, शायद कुछ सीखने को मिल जाए। यहां सीखने को कुछ भी नहीं है। यहां तो भूलने को है। यहां तो मिटना है। यहां तो खोना है। इसलिए जो भी मैं तुम्हें दे रहा हूं, वह शराब है। शराब इन अर्थों में जिन अर्थों में वेद सोमरस की चर्चा करते हैं।
योग प्रीतम ने मुझे ये दो गीत लिखे हैं। पहला गीत--

आपके पावन चरण में खिल उठी है बंदगी
आप हैं तो लग रही है जिंदगी यह जिंदगी आपकी आंधी बहा कर ले गई है गर्द सब
आपकी बरसात में भीगी खड़ी है जिंदगी
आप क्या हंसते, हजारों फूल खिल जाते यहां आप हैं तो हो गई फिर से हरी यह जिंदगी आप क्या आए, फिजां में घुल गया ऐसा नशा
आप हैं तो लग रही है मद भरी यह जिंदगी
आपने क्या गीत गाए, जल उठे दिल के दिए
आज तो फिर लग रही है रस भरी यह जिंदगी
आपसे मिल कर हमारी हर खुशी आबाद है
लग रही है फिर बहारों की झड़ी यह जिंदगी

पीओ तो तुम्हें भी लगे। पीओ, जी भर कर पीओ। इस सौभाग्य से वंचित मत रह जाना।
योग प्रीतम का दूसरा गीत--

हृदय से राग कोई गा रहा है
सुरों से प्रेम-रस बरसा रहा है
अरे, हर बोल में मस्ती घुली है
दिलों में वह उतरता जा रहा है

नई है तर्ज, नित नूतन तराने लगे सब गुनगुनाने साथ उसके सभी अलमस्त दीवाने हुए हैं वो कुछ ऐसे पिलाए जा रहा है

बड़ी रंगीन है उसकी तबीयत
बड़े ही खूबसूरत हैं इशारे
कि हम आकाश में उड़ने लगे हैं
हृदय आनंद से सरसा रहा है

बड़ा ही शोख अंदाजे-बयां है
बड़ी ही भाव-भीनी है तरन्नुम
न जाने खो गया हूं मैं कहां पर
नजर केवल वही अब आ रहा है

पीओ, जी भर कर पीओ। इसमें कंजूसी मत करना। लोग पीने तक में कंजूसी कर जाते हैं। लोग ऐसे कंजूस हो गए हैं, लेने तक में कंजूसी कर जाते हैं! लेने तक में झिझकते हैं! दूर-दूर खड़े रहते हैं। गंगा द्वार पर भी आ जाए तोशायद वे प्यासे ही रहेंगे। कितनों के द्वार पर मैंने दस्तक नहीं दी है! मगर सौ में से एकाध ने द्वार खोला है, निन्यानबे ने तो और जोर से द्वार के भीतर ताले डाल लिए हैं, कि कहीं मैं द्वार तोड़ कर ही भीतर न आ जाऊं। हां, जब तक बात डूबने की न थी, तब तक मुझे सुनते थे। जब बात डूबने की आई तब भाग खड़े हुए। और बिना डूबे नहीं पा सकोगे कुछ भी। यह बात दीवानों की है।

रंजन ने पूछा है कि आप क्या कर रहे हैं? क्या मुझे पागल बनाए दे रहे हैं? अकारण हंसती हूं, अकारण रोती हूं। हंसने में भी मजा है, रोने में भी मजा है। क्या मुझे कुक्कू ही बना कर छोड़ेंगे?

रंजन! अब तो बहुत देर हो गई। कुक्कू तो तू हो गई। अब तो लौटने का भी कोई उपाय न रहा। मैं तो सीढ़ियां गिरा देता हूं, इसलिए पीछे जाने की कोई जगह नहीं बचती।

अंग्रेजी में कुक्कू शब्द कोयल के लिए भी उपयोग होता है और झक्कियों
के लिए भी, पागलों के लिए भी। बड़ी प्यारी बात है। कोयल पागल ही है। नहीं तो ऐसे मदभरे गीत गाए? इस रसहीन जगत में, इस मरुस्थल जैसे जगत में, ऐसा रस बरसाए? पागल ही है। इस व्यर्थ के शोरगुल में ऐसी मधुवाणी!
कोयल के गीत निश्चित ही वैसे ही हैं, जैसे मीरा के, चैतन्य के, कबीर के। मगर ये सब पागल हैं।
हिंदी भाषा में तो कोयल शब्द का अर्थ पागल नहीं होता। वह हमारी भाषा
की कमी है। अंग्रेजी ने ठीक किया।
स्विटजरलैंड में संन्यासियों ने एक प्रतियोगिता की। स्विटजरलैंड की प्रतियोगिता, तो घड़ियों के बाबत हुई। तो लोगों ने बहुत तरह की घड़ियां बनाईं, अलग-अलग संन्यासी अलग-अलग घड़ियां बना कर लाए। प्रथम पुरस्कार, द्वितीय पुरस्कार और तृतीय पुरस्कार, तीन पुरस्कार घोषित किए गए। तीसरा पुरस्कार उस घड़ी को मिला--बड़ी घड़ी, जिसमें हर घंटे पर एक कोयल निकलती है और कहती हैः भगवान! भगवान! दूसरा पुरस्कार उसे मिला जिसमें हर आधा घंटे पर दो कोयलें निकलती हैं और कहती हैंः भगवान! भगवान! और दोनों कोयलें गैरिक वस्त्रों में, माला पहने हुए। और प्रथम पुरस्कार उस घड़ी को मिला जिसमें हर घंटे पर भगवान निकलते हैं और कहते हैंः कुक्कू! कुक्कू!
रंजन, तू तो कुक्कू है ही। अब होने को कुछ बचा नहीं। जो हो गया, हो गया। बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुध लेहु। अब तो बात हो गई, अब तो गाओ। अब तो कोयल के स्वर उठाओ। रोओ भी, हंसो भी। मस्ती में सब होगा--आंसू भी होंगे, गीत भी होंगे।

दूसरा प्रश्नः 21-3-80 कोशाम करीब आठ बजे, मैं बंबई में ही था। ध्यान
के समय शरीर गिर पड़ा, चश्मा और माला टूट गए, और जब होश आया तो नौ बज रहे थे। इस बीच क्या हुआ, कैसे हुआ, कुछ पता नहीं है। प्रभु, मेरे मार्ग-दर्शन के लिए कुछ कहने की अनुकंपा करें।

सुरेंद्र सरस्वती! शुभ हुआ, सुंदर हुआ। उस संबंध में विश्लेषण में न पड़ो कि क्या हुआ। कुछ बातें हैं जिनका विश्लेषण न करो तो अच्छा; जिनको बौद्धिक न बनाओ तो अच्छा। क्योंकि उन्हें बौद्धिक बनाने से, उनमें जो भी बहुमूल्य है, वह खो जाता है; उनमें जो भी रहस्यपूर्ण है, वह तिरोहित हो जाता है।
कुछ बातें भूल कर भी बुद्धि के विषय न बनाना। हालांकि बुद्धि खुजलाती है। जब भी कुछ अनूठा होगा, अज्ञात होगा, अभिनव होगा, अपरिचित होगा, तो बुद्धि पूछेगी, प्रश्न उठाएगीः क्या हुआ? क्यों हुआ? और जब तक बुद्धि को कोई उत्तर न मिल जाएं, तब तक वह पूछती ही रहेगी। जैसे कोई दांत गिर जाता है न, तो जीभ बार-बार उसी टूटे हुए दांत की तरफ जाती है। जब तक था, तब तक कभी न गई; अब जब से गिर गया है, तब से बार-बार वहीं जाती है, चौबीस घंटे। हालांकि तुम्हें मालूम है कि गिर गया, अब बार-बार जीभ ले जाने से क्या फायदा है! मगर जीभ भी एक दीवानी है; वह जो खाली जगह हो गई, फिर पहुंच जाती है वहीं, फिर पहुंच जाती है वहीं।
एक घटना घटी। एक अपूर्व घटना घटी। अब बुद्धि में एक बेचैनी है। बुद्धि नहीं चाहती कि कुछ ऐसा घटे जो उसकी क्षमता के बाहर है। वह हर चीज को अपनी क्षमता में ले आना चाहती है। और अगर क्षमता में न आ सके तो इनकारना चाहती है, कि नहीं, घटा ही नहीं, हुआ ही नहीं। अगर तुम बुद्धि से पूछोगे तो बुद्धि तो कहेगी कि कुछ नहीं हुआ, तुम बेहोश हो गए। वही बुद्धि कहना चाहती है। पूछ-पूछ कर जब तुम कोई उत्तर न पा सकोगे... और कोई उत्तर पाया नहीं जा सकता। कोई उत्तर नहीं है। ये बातें उत्तर की नहीं हैं। ये बातें ऐसी हैं जहां अनुत्तर भाव-दशा निर्मित होती है; जहां सब शून्य हो जाता है; जहां कुछ खोजे से नहीं मिलता, कुछ पता नहीं चलता, सब लापता हो जाता है। जब बुद्धि को कुछ पता नहीं चलेगा तो बुद्धि कहेगीः कुछ नहीं हुआ; जाहिर है कि तुम बेहोश हो गए, मूर्च्छित हो गए। बेहतर है किसी डाक्टर को दिखा लो। या बेहतर है कि ध्यान वगैरह बंद कर दो। यह खतरनाक बात है। आज चश्मा टूटा, माला टूटी, अरे

कल आंख फूट जाए, हड्डी-पसली टूट जाए! अभी बात यहीं ठहरा लेनी उचित है। और या फिर पता लगाओ कि यह क्यों हुआ।
इसलिए बुद्धि तुम्हें बेचैन कर रही है सुरेंद्र सरस्वती। मगर मेरी सलाह हैः बुद्धि को कहो कि बहुत कुछ है जो तेरी समझ के पार है। बहुत कुछ है। जैसे प्रेम! बुद्धि नहीं समझ पाती तो प्रेम को अंधा कह देती है, प्रेम को पागल कह देती है। जैसे सौंदर्य! बुद्धि नहीं समझ पाती तो कह देती है कल्पना। और यह तो प्रेम और सौंदर्य से भी आगे की बात है। यह तो समाधि की पहली झलक है। यह तोशून्य का पहला अवतरण है। यह तो देह-भान छूट गया। इस एक घंटे तुम पृथ्वी के वासी नहीं थे, तुम किसी और लोक में, किसी और आयाम में प्रवेश कर गए। घबड़ाओ मत। धीरे-धीरे जब दो-चार बार यह घटना घट चुकेगी, तो तुम चकित होओगेः घटना भी घटेगी, और धीरे-धीरे होश भी सम्हला रहेगा। पहली दफा घटा है, तो होश कैसे सम्हला रह सकता था? बात इतनी नई थी, राह इतनी नई थी, मस्ती ने तुम्हें पूरा का पूरा आच्छादित कर लिया होगा।
बस इतना ही करो अब, जब दुबारा ऐसा घटे तो इतना ही ख्याल रखना कि शांत भीतर थोड़ा सा जागरण बना रहे--एक किरण भी जागरण की बनी रहे। बनी रहेगी। दो- चार दफे जब घटना घट जाएगी तो तुम आश्वस्त हो जाओगे, तुम्हारा तालमेल बैठ जाएगा। तुम इस मार्ग से परिचित हो जाओगे। यह बात जानी-मानी हो जाएगी। तब तुम्हें धीरे-धीरे कुछ बातें दिखाई पड़नी शुरू हो जाएंगी। जैसे देह भूल जाएगी। जैसे देह है ही नहीं। मन कहीं बहुत पीछे छूट गया। थोड़ी देर तक शोरगुल सुनाई पड़ता रहेगा, लेकिन ऐसे ही जैसे दूर होता जाता, दूर होता जाता, दूर होता जाता। कोई ढोल बजता हो और दूर होता जाता है। और फिर एक क्षण आता है कि जैसे मन नहीं है। न देह है, न मन है। बस एक सन्नाटा रह गया। एक ऐसी अपूर्व शून्य की अवस्था, जहां कोई तरंग विचार की नहीं, कल्पना की नहीं, वासना की नहीं। यही तुम्हारा स्वभाव है। यही तुम्हारा स्वरूप है।
तो पहले तो तुम्हें अनुभव होगा शरीर के छूटने का, फिर धीरे-धीरे अनुभव होगा मन के छूटने का। फिर तीसरी अनुभूति होगी स्वरूप की। और फिर द्वार खुल जाएंगे रहस्य के। उस रहस्य को जिन्होंने जाना है, काम चलाने के लिए नाम दिया है--सच्चिदानंद। सत, चित और आनंद, इन तीन चीजों का अनुभव होगा।
जो है उस अवस्था में, वही एकमात्र सत्य है, शेष सब सपना है। जो है उस अवस्था में, वही एकमात्र चैतन्य है, बाकी सब मूर्च्छा है। जो है उस क्षण में, वही एकमात्र आनंद है, बाकी तुम्हारे सुख भी दुख के ही नाम हैं, बस दुख की ही लीपापोती है, दुख को ही अच्छे-अच्छे रंग-ढंग में पेश करना है। जैसे कांटों पर किसी ने रंग चढ़ा दिए हों। जैसे मछली को पकड़ते हैं तो कांटे पर आटा लगा देते हैं। मछली तो आटे को निगल जाती है, फंस जाती है कांटे में। ऐसे ही दुखों के कांटे पर सुखों का आटा लगा है, बस मछलियां निगल रही हैं और फंस रही हैं।
तुम सब भी ऐसे ही फंसे हो और तड़फ रहे हो।
मगर विश्लेषण में मत पड़ो। जागरण की चिंता करो, विचार की नहीं। विचार छोटी बात है, वहां तक नहीं जाएगी। होश जाएगा। होश अंत तक जाएगा। ऐसी कोई घटना नहीं जो होश के बाहर है। ऐसी बहुत सी घटनाएं हैं जो विचार के बाहर हैं।

ऊंची-नीची-संकरी
पथरीली राहों पर
चलना है बहुत कठिन, पिंडली भर आती है।
और धौंकनी सी बन-बन जाती छाती है।
बाहर आलोकित रवि है, शशि है, तारे हैं
हम अपने अंदर अंधियारे से हारे हैं! मन कितना भारी हो,
आंखें कितनी नम हों।
प्राणों में कांटों से
चुभते कितने भ्रम हों!
पर हमको चलना है, चलते ही रहना है दूर क्षितिज पर धुंधली

बन कर जो खो जातीं
अंतहीन, लक्ष्यहीन, अनजानी राहों पर! चलना है बहुत कठिन
लेकिन हम चलते हैं
ऊंची-नीची-संकरी
पथरीली राहों पर!

वैसे हम अक्सर इस सब पर हंस देते हैं, व्यंग्य से नहीं, हमको हंसने की आदत है! लोग फूट पड़ते हैं आंखों में, ओंठों पर; जाने क्यों हमको रो देने से नफरत है! लेकिन इतना सच है--
बन कर मिट जाना है।
फूलों का खिलना ही
उनका मुरझाना है।
मिट जाते दिन हैं औ" मिट जाती रातें हैं। मधुऋतु जल जाती, गल जाती बरसातें हैं। चलती हैं सांसें, चलता रहता काल-समय!
औ" चलती ही रहती सुख-दुख की बातें हैं! लेकिन हम कायम हैं
हमसे जग कायम है
बनती-मिटती बस कुछ इनी-गिनी राहों पर! चलना है बहुत कठिन
लेकिन हम चलते हैं
ऊंची-नीची-संकरी
पथरीली राहों पर!

हमको भी लगता, हम कुछ बहके-बहके हैं! अपना विश्वास शिथिल, अपना स्वर धीमा है! वरना प्रति पग पर जो हमसे टकरा जाती वह तो बस अपने ही सपनों की सीमा है! दिक्भ्रम है उसका ही
जिसको हो दिशा-ज्ञान!
गिरने का भय उसको
ऊंची जिसकी उड़ान!
अनजानी दुनिया का हर कण अनजाना है,
जीवन का हर क्षण उलझा सा अफसाना है,
इस ससीम संसृति में किसका अस्तित्व पृथक? अपने को खो देना अपने को पाना है।
हम उड़ते रहते हैं!
हम गिरते रहते हैं
प्रस्फुटित उमंगों पर,
घुटती आहों पर!

चलना है बहुत कठिन
लेकिन हम चलते हैं
ऊंची-नीची-संकरी
पथरीली राहों पर!

एक बात स्मरण रहे--
अपने को खो देना अपने को पाना है।
रास्ता तो कठिन है, संकरा है, पथरीला है, दुर्गम है, पर्वतीय है। और जैसे-जैसे ऊपर चढ़ोगे, वैसे-वैसे गिरने का डर है, गिरने का डर बढ़ता जाएगा।

क्योंकि जो ऊंचे चढ़ते हैं, वे ही गिर सकते हैं। जो समतल रास्तों पर जीते हैं, उनके गिरने का कोई सवाल नहीं।
भोग में कभी कोई भ्रष्ट नहीं होता। इसलिए भोग-भ्रष्ट जैसा कोई शब्द नहीं। योग-भ्रष्ट हो सकता है कोई। योगी ही भ्रष्ट हो सकता है, क्योंकि ऊंची उड़ान भरता है। उसके ही पंख कट सकते हैं, उसके ही पंख जल सकते हैं। सूरज के पार जाने की जिसकी आकांक्षा है, अभीप्सा है, वह किसी दिन जल सकता है।
लेकिन इतना साहस न हो तो सत्य को कोई पा नहीं सकता। सत्य कायरों के लिए नहीं है। और आश्चर्यों का आश्चर्य तो यह है कि हमारे मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे कायरों से भरे हैं। जो प्रार्थना कर रहे हैं घुटने टेक कर, वह कायरों की जमात है, वह भयभीत है। इसलिए भगवान की बात कर रहे हैं। उनका भगवान बस भय का ही एक विस्तार है। और भगवान--और भय का विस्तार? असंभव! भगवान तो साहस का अनुभव है--दुस्साहस का।
शुभ हुआ। सुरेंद्र सरस्वती, फिर-फिर होने देना। घबड़ाना मत। अरे टूट गया चश्मा तो टूट गया, फिर बना लेना। और आगे से चश्मा उतार कर ही ध्यान करो न! ऐसे ही तो रोज-रोज समझाता हूं कि सब चश्मे उतार दो, फिर भी तुम चश्मा लगा कर ही ध्यान कर रहे हो! भीतर देखना है, वहां चश्मे की क्या जरूरत है? मुल्ला नसरुद्दीन एक रात उठा और उसने अपनी पत्नी को धक्का मारा, हुद्दा मारा एकदम जोर से कि जल्दी चश्मा ला। वह तो कुछ समझी नहीं कि मामला क्या है! कोई चोर आ गया घर में या क्या हुआ! भागी गई, चश्मा ले आई। मुल्ला ने जल्दी से चश्मा चढ़ा लिया और लेट गया चित्त, आंख बंद करके। पत्नी ने कहाः मामला क्या है? माजरा क्या है? होश में हो? चश्मा किसलिए बुलाया आधी रात? अरे, उसने कहाः तू चुप रह, बीच में गड़बड़ न कर! एक बहुत सुंदर सपना देख रहा हूं। जरा धुंधला-धुंधला मालूम पड़ रहा था, सो सोचा कि चश्मा बुला लूं। मगर फिर धुंधला-धुंधला भी नहीं दिखाई पड़ा। बहुत आंखें भींचीं, करवट बदली। पत्नी पर नाराज होने लगा कि दुष्ट ने बीच में गड़बड़ डाल दी! चुपचाप रहती, तू बोली क्यों? सब खराब कर दिया।
पत्नी का कोई कसूर नहीं। किसी का कोई कसूर नहीं। इस दुनिया में हम सब दूसरों पर कसूर थोप देते हैं। सपने देखने के लिए चश्मों की जरूरत है? अंधे भी जी भर कर देखते हैं। आंखों तक की जरूरत नहीं है, चश्मों की तो बात ही छोड़ दो। चश्मा उतार कर रख दो। माला भी उतार कर रख दो। सच तो यह है, अगर संभव हो, द्वार-दरवाजे बंद करके बिल्कुल नग्न होकर ही ध्यान करो। वस्त्र भी हटा दो। कोई बाधा न रह जाए। क्योंकि ये सब बाधाएं हैं।
अब ऐसे लोग हैं, पैंट-पतलून कसे हुए हैं और ध्यान कर रहे हैं! प्राण निकले जा रहे हैं। पेट इतना जोर से कसा हुआ है! कुछ नालायक तो ऐसे हैं कि टाई तक बांध कर ध्यान करते हैं! जैसे भगवान के सामने भी बिना टाई के गए तोशायद जंचे नहीं, क्या सोचें कि अरे सज्जन पुरुष होकर और बिना टाई के चले आ रहे हैं!
डाक्टर रघुवीर ने और कुछ भी किया हो, और सब चीजों के लिए गलत-सलत अनुवाद किया हो, मगर टाई के लिए बिल्कुल ठीक किया--गलफांसी। और तो कोई उनका अनुवाद जंचता नहीं, उलटे-सीधे अनुवाद हैं। रेलगाड़ी के लिए लोहपथ-गामिनी। रेलगाड़ी ठीक-ठाक है। लोहपथ-गामिनी! मगर टाई का जंचता है--गलफांसी। टाई से भी सुंदर है गलफांसी। टाई का मतलब तो कुल गांठ। मगर गलगांठ, लगी है फांसी! पता नहीं क्यों?
और पश्चिम में जहां लोग सर्दी में जीते हैं, वहां गले को बांध लो, यह समझ में आता है, ताकि हवा अंदर न जाए। मगर यहां पूरब में, जहां पसीने से लथपथ हैं, मरे जा रहे हैं गर्मी में, हाय-तोबा कर रहे हैं--और गलफांसी लगाए हैं! इस गर्म देश में मोजे पहने हुए हैं दिन-दिन भर, जूते पहने हुए हैं। उतारते ही नहीं।
ध्यान के समय सब अलग कर दो। सब फांसियां अलग कर दो। न मोजों की जरूरत है, न पैंट-पतलून की जरूरत है, किसी चीज की कोई जरूरत नहीं। और जब नंग-धड़ंग होओ तो कृपा करके माला भी अलग कर देना, नहीं तो बड़ी अजीब सी लगेगी, नंग-धड़ंग खड़े हैं और माला पहने हुए हैं! अरे कोई देख ही ले! क्योंकि लोग ऐसे हैं कि तुम द्वार-दरवाजे बंद करो, तो उत्सुक हो जाते हैं कि मामला क्या है? तो कोई

चाबी के छेद में से ही झांक ले। तो तुम्हारे नंगेपन से उतना परेशान नहीं होगा, जितना माला से परेशान होगा। सब अलग कर दो।
और यह घटना बार-बार घटे, इसके लिए तैयारी करो। और बौद्धिक विश्लेषण में मत पड़ना, सिर्फ होश रखना। अब की बार जब गिरो तो जरा सा होश रखना। बस थोड़ी सी होश की फिक्र रखना। एक बार नहीं सधेगा, दो बार नहीं सधेगा, धीरे- धीरे सधेगा, निश्चित सधेगा। और जब होश सध जाएगा तो तुम बड़ी अदभुत अनुभूतियों में से गुजरोगे। देह गिर जाती है, तुम नहीं गिरते। मन गिर जाता है, तुम नहीं गिरते। और जब देह और मन गिर जाते हैं, तभी तो अनुभव होता है कि मैं कौन हूं।

तीसरा प्रश्नः आपको लोग कब समझेंगे? आप गीत देते हैं और लोग गालियां लौटाते हैं!

अनंत! जो जिसके पास है वही तो दे सकता है न! मैं गीत देता हूं, इसमें कुछ खूबी की बात नहीं है। हृदय गीतों से भरा है। मजबूरी है। विवश हूं। गीत देने ही पड़ेंगे। फूल खिलेगा तो गंध को उड़ना ही होगा। दीया जलेगा तो किरणें फूटेंगी ही। सूरज निकलेगा तो सुबह होगी ही। सुबह होगी तो पक्षी गीत भी गाएंगे, फूल भी खिलेंगे, हवाओं में ताजगी भी आएगी। यह सब होगा। यह कोई सूरज करता नहीं है।
तुम सब इतने अपूर्व प्रेम से मेरे पास इकट्ठे हो गए हो, कैसे? कोई सूरज तुम्हें दिखाई पड़ा, तुम्हारे भीतर भी कोई गीत गूंज उठा, तुम्हारे भीतर भी कोई गंध उठने लगी। तुम्हें किसी किरण ने छुआ। कोई रस तुम्हारे गले में आया। तुमने कुछ स्वाद पाया। तुम चले आए हो खिंचे। मेरी मजबूरी है कि जो मेरे पास है, दूंगा।
और लोग भी क्या करें? उनके पास गालियां हैं। उनकी गालियों पर नाराज मत होना। उनकी गालियों पर दया करना। वे कर भी क्या सकते हैं? उन्हीं शब्दों से गीत बनते हैं, उन्हीं शब्दों से गालियां बनती हैं। शब्द तो वही होते हैं। उनके भीतर कुछ इतना विषाद है, कुछ इतनी पीड़ा है। उनके भीतर कुछ इतने घाव हैं। जिंदगी उनकी इतनी हताशा-निराशा से भरी है कि वहां से गालियां ही उठ रही हैं। उनके भीतर गालियां उतनी ही स्वाभाविक हैं।
मेरे गांव में मेरे सामने ही एक सज्जन रहते थे। आए दिन उनका झगड़ा किसी
न किसी से हो ही जाए, किसी न किसी बात पर हो ही जाए। मैं बैठा-बैठा यह बरसों देखता रहा। धीरे-धीरे मुझे समझ में आया कि झगड़ा होना एक अनिवार्यता है, वे बच नहीं सकते झगड़े से। उनके भीतर झगड़ा उबलता रहता है। वे सिर्फ बहाने की तलाश में रहते हैं। तो कोई भी बहाना, कोई भी छोटी-मोटी बात--और पर्याप्त है उनके लिए--जो किसी के लिए भी पर्याप्त न हो, जो कोई सोच भी न सके कि यह कोई झगड़े की बात है! और भी एक मजा मैंने देखा कि वे इसकोझगड़ा नहीं मानते थे। वह तो एक दिन बीच में पुलिसवाला आ गया। उनकी और उनके सहयोगी की... सुनार का काम करते हैं... उनकी और उनके सहयोगी की बातचीत हो गई। बातचीत बढ़ी, एक-दूसरे के बाल एक-दूसरे ने पकड़ लिए, छीना-झपटी हो रही, मार-पीट हो रही, भीड़ इकट्ठी हो गई।
भीड़ तो ऐसी चीजें देखने में बड़ी उत्सुक होती है। अब मुफ्त में ही तमाशा देखने मिल रहा हो, तो कौन सरकस जाए! कौन सिनेमा जाए! हजार काम छोड़ कर आदमी खड़े हो जाते हैं, भूल ही जाते हैं। कितना ही जरूरी काम हो, पत्नी बीमार पड़ी हो, डाक्टर को बुलाने निकले थे, भूल ही गए। सब्जी लेने चले थे, भूल ही गए। घर में चाहे मेहमान बैठे हों, मगर ऐसा मौका कोई नहीं छोड़ता। और छोटे गांव में बस यही छोटी-मोटी घटनाएं तो घटती हैं मनोरंजन के लिए, और तो कुछ खास है नहीं। न टेलीविजन है, न बड़े-बड़े होटल हैं जहां कैबरे नृत्य होता हो, न मल्लयुद्ध होते हैं, न मोहम्मद अली आते हैं, कुछ भी तो नहीं होता। बस कभी-कभी ऐसी छोटी-मोटी बातें होती हैं, तो सारा मोहल्ला इकट्ठा था। रास्ते का ट्रैफिक, छोटा सा रास्ता कि दो बैलगाड़ी भी आ जाएं जो फंस जाएं, तो ट्रैफिक रुका हुआ है, तांगे वाले चिल्ला रहे हैं कि उनकी ट्रेन चूकी जा रही है, लोग रास्ता नहीं छोड़ रहे और वे दोनों बीच रास्ते पर एक-दूसरे की पिटाई कर रहे हैं, एक-दूसरे के बाल पकड़े हुए हैं।

पुलिसवाला बीच में आया और कहा कि लड़ क्यों रहे हो?
मैं अपने दरवाजे पर बैठा देख रहा हूं। उन सज्जन ने कहाः लड़ कौन रहा है? अरे यह तो बातचीत हो रही है। तब मैं समझा कि यह बातचीत है! पूछ लो इससे, उन्होंने अपने सहयोगी से कहा। उसने भी कहाः हां, बातचीत ही हो रही है। ऐसी बातचीत तो होती ही रहती है, इसमें झगड़ा क्या है!
एक दिन बस में मुल्ला नसरुद्दीन किसी व्यक्ति से गाली-गलौज पर उतर आया और फिर उसकी उससे हाथापाई भी होने लगी। लोगों ने बीच-बचाव करने की कोशिश की और कहाः यूं मत लड़ो। और कम से कम ऐसी गंदी गालियां तो न दो। कम से कम मां-बहन की गालियां तो मत दो। देखते नहीं, बस में महिलाएं बैठी हैं! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः महिलाएं बेशक उतर जाएं, लड़ाई बहुत जरूरी है। ऐसी की तैसी इन महिलाओं की! न घर में शांति से जीने देती हैं, न बाहर कोई काम शांति से करने देती हैं।
यह काम शांति से कर रहे थे वे--यह जो मारपीट की नौबत आ रही थी, ये जो मां-बहन की गालियां चल रही थीं!
लोगों की अपनी समझ है।
तुम पूछते होः "आपको लोग कब समझेंगे? आप गीत देते हैं और लोग गालियां लौटाते हैं!"
अनंत, यही उन्होंने सदा किया है। वे अगर गालियां न लौटाएं तो मैं चौंकूंगा कि क्या हो गया? मामला क्या है? क्या मेरे गीत उन्होंने सुने नहीं? क्या उनको मेरे गीत जंचे नहीं, रुचे नहीं, भाए नहीं? क्या मैं बहरों से बोल रहा हूं? क्योंकि गालियां क्यों नहीं आईं? गालियां आनी ही चाहिए! मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी, दोनों स्टेशन गए थे। तीर्थयात्रा पर
जा रहे थे। स्टेशन पर वजन नापने वाली मशीन लगी थी, जिस पर खड़े हो जाओ, दस पैसे का सिक्का डालो, टिकट निकल आए। मुल्ला जल्दी से खड़ा हुआ, टिकट निकली। इसके पहले कि वह उठाए, पत्नी ने झपट कर टिकट उठाई। टिकट में लिखा हुआ था कि आप महान वीर पुरुष हैं। जीवन में आपको कभी भय नहीं सताता। जीवन में आप टूट जाएं मगर झुकते नहीं। आप में महान आत्मबल है। संकल्प की संपदा परमात्मा ने आपको दी है।
पत्नी ने कहाः हुं! और दूसरी तरफ टिकट उलटी और उस तरफ आया थाः एक सौ अस्सी पौंड वजन। पत्नी ने कहाः और वजन भी गलत है। वह जो कहा है पहले, वह तो गलत है ही, और वजन भी गलत है।
कुछ लोग तो हर चीज में झगड़ा करने को तैयार हैं। अब पत्नी इस टिकट को भी बर्दाश्त नहीं कर सकी। इसमें भी उसने एतराज उठा ही दिया, कि दोनों बातें गलत हैं। और मुल्ला क्या कहे, पत्नी से कुछ कहे तो वहीं अभी झगड़ा खड़ा होता है। दस पैसे में महंगा पड़ जाए और बीच सड़क पर स्टेशन पर अभी भीड़-भाड़ इकट्ठी हो जाए। इसलिए तो बेचारा कह रहा है कि ये महिलाएं न घर में शांति से रहने देती हैं, न बाहर। अपनी हैं, वे भी सताती हैं; दूसरों की हैं, वे भी सताती हैं। जहां देखो वहीं डर है कि महिलाओं की वजह से गाली तक नहीं बक सकते। तो आदमी को स्वतंत्रता है या नहीं? वाणी का तो स्वातंष्य बिल्कुल विधान में लिखा हुआ है। तो गीत गाओ कि गाली बको, यह तो स्वतंत्रता है, जन्मसिद्ध अधिकार है आदमी का। इसमें कुछ नाराज होने की जरूरत नहीं है।
मैं जो कह रहा हूं, अगर तुमने उन्हें भाव से सुना तो गीत हैं, नहीं तो उनमें बड़ी चोटें हैं, क्योंकि मैं परंपरा के विपरीत बोल रहा हूं। मैं थोथे पांडित्य के विपरीत बोल रहा हूं।
चंदूलाल एक तोता खरीदने गए थे। बड़े फंस गए। इतना महंगा तोता पड़ेगा, ऐसा नहीं सोचा था। लेकिन नीलामी हो रही थी और बोली बढ़ती ही गई। तीन सौ रुपये पर बोली खत्म हुई। छाती बैठ गई चंदूलाल की। तीन सौ रुपये देने ही पड़े। देते समय नीलाम करने वाले से पूछा कि भई, एक बात तो और पूछ लूं, तीन सौ रुपये तो ठुंक ही गए, अब जो हुआ सो हुआ, जोश-खरोश में बोल गया बोली, क्योंकि बोली बढ़ती गई, मैं ऐसा कुछ हार जाने वाला नहीं, चाहे जान चली जाए। मगर यह तोता बोलता करता है कि नहीं?
उसने कहाः अरे आप भी क्या बातें कर रहे हो! बोली आपके खिलाफ कौन बोल रहा था? यही तोता! आप कहो पच्चीस, यह कहे तीस। आप कहो पैंतीस, यह कहे चालीस।

वह तो यह कहो कि इसको बस तीन सौ तक गिनती आती है, नहीं तो आज तुम्हारी फांसी लग जाती। इससे आगे इसको गिनती नहीं आती। अब तुम सिखा लेना।
मैं पंडितों को तोतों से ज्यादा नहीं समझता। उनको उतना ही आता है, जितना किताब में लिखा हुआ है। और किताब में क्या खाक लिखा हुआ है! किताब में उतना ही लिखा हुआ है, जितना बुद्धि पकड़ सकती है। और बुद्धि क्या पकड़ सकती है? जो असली है, वह तो छूट ही जाता है।
परंपरा के मैं विपरीत हूं, शास्त्रों के मैं विपरीत हूं, संस्कारों
के मैं विपरीत हूं, तुम्हारी सामाजिक अंध-रूढ़ियों के मैं विपरीत हूं। लोग नाराज न हों तो क्या हों? और जब नाराज हों तो उनसे गालियां निकलें, स्वभावतः। मुझे वे पचा नहीं पाते। मुझे पचाने के लिए भी थोड़ा उदार हृदय चाहिए, जरा छाती चाहिए।
पागलखाने गए थे चंदूलाल--देखने। जैसे ही चंदूलाल को पागलों ने देखा,
एक पागल ने कहाः आइए! आइए! कहिए कैसा लगा यहां आपको?
चंदूलाल ने कहाः बस कुछ न पूछिए, मुझे देख कर आप सभी पागल इतने प्रसन्न हैं कि क्या कहूं! ऐसा मेरा स्वागत जीवन में कभी कहीं हुआ ही नहीं। और बात बड़ी बेबूझ लगती है, क्योंकि मैंने तो सुना था कि यहां जो भी पागलों को देखने आता है, पागल उसे काटने दौड़ते हैं।
वे पागल हंसने लगे। चंदूलाल ने कहा कि समझाओ, क्या बात है? हंसते क्यों हो?
तो एक पागल ने कहा कि भई, बात यह है कि हम प्रसन्न क्यों न हों! आखिर हम
ही जैसे, अपने ही जैसे आदमी कभी-कभी देखने को मिलते हैं। आपको देख कर आत्मा को जोशांति मिली, आपको देखते से ही हम पहचान गए कि है अपनी जाति का, अपने वाला।
बहुत कम लोग मेरी बात को पचा पाएंगे। मैं किसी की भी जाति का नहीं हूं--न हिंदू की, न मुसलमान की, न जैन की, न ईसाई की, न बौद्ध की, न सिक्ख की, न पारसी की--मैं किसी की जाति का नहीं हूं। ये सब जातियां पागलों की हैं। मैं किसी तरह के पागलपन का सहयोगी नहीं हूं। मैं सब तरह के पागलपन के विरोध में हूं। इससे अड़चन है।
फिर मैं जो कह रहा हूं, वह जो लोग ध्यान कर रहे हैं, केवल वे ही समझ सकते हैं। क्योंकि यह बात सिर्फ ध्यान की भाषा में निष्णात लोगों को ही समझ में आ सकती है। मेरे गीत ध्यान के गीत हैं, ध्यान के फूल हैं। तुम भी ध्यान में उतरोगे, नाचोगे, गाओगे, तुम भी मस्त होओगे ध्यान में--तो ही मेरी बात तुम्हें तत्क्षण समझ में आ जाएगी, नहीं तो जमीन-आसमान का फासला रहेगा। चंदूलाल ने एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन से कहाः बड़े मियां, आपने जो नई भाषा सीखी, उसका कोई गीत सुनाइए। आप तो जानते ही हैं--नसरुद्दीन बोला--मुझे गाना-वाना नहीं आता। फिर भी आप मजबूर करते हैं तो सुना देता हूं।
गीत खत्म होने पर चंदूलाल ने प्रशंसा की, और लोगों ने भी बड़ी प्रशंसा की। लेकिन चंदूलाल आसानी से छोड़ने वाले नहीं थे। बड़ी जिज्ञासा से उन्होंने पूछाः बड़े मियां, गीत का अर्थ बताएंगे क्या?
नसरुद्दीन ने कहाः अर्थ आप न पूछें तो अच्छा।
नहीं-नहीं, इस करुण गीत के अर्थों से हमें वंचित न रखिए। हमारी तो आंखों में आंसू आ गए। ऐसी हार्दिकता से, ऐसे भाव से आपने गाया कि हमारे तो हृदय में हिंडोलें उठ गईं। इस करुण गीत का अर्थ तो आप बताओ ही। बिना ही अर्थ समझे हम पर इतना प्रभाव हुआ है! अर्थ समझ जाएं तो इस गीत की आत्मा भी हमारी समझ में आ जाए।
नसरुद्दीन ने कहाः फिर भी मैं कहता हूं भाई साहब, न पूछिए अर्थ तो अच्छा।
नहीं माने चंदूलाल, और भी लोग जिद पकड़ गए। तो नसरुद्दीन ने कहाः जैसी फिर आपकी मर्जी। तो फिर सुनिए। मैंने चीनी भाषा में एक से लेकर सौ तक गिनती पढ़ी थी।
मैं जो भाषा बोल रहा हूं, वह ध्यान की भाषा है। जब तक तुम्हें भी ध्यान
की थोड़ी सी अनुभूति न हो, तब तक बहुत असंभव है कि तुम्हारा मेरे साथ तालमेल बैठ सके। तुम मेरे साथ असुविधा अनुभव करोगे, बेचैनी अनुभव करोगे, अशांति अनुभव करोगे। मेरी भाषा शिष्यों के लिए है, विद्यार्थियों के लिए नहीं।

संन्यासियों के लिए है, पृथक जनों के लिए नहीं, सामान्य के लिए नहीं। और यह बड़ी मुश्किल बात है।
लोग कहते हैंः हम आपकी बात समझ लें तो फिर संन्यास लें। हम आपकी बात समझ लें तो ध्यान भी करें। जब तक समझ में न आए, हम कैसे ध्यान करें और कैसे संन्यास लें? और वे भी ठीक ही कहते हैं। तर्क दुरुस्त है। बात पते की है। और मेरी मुश्किल भी समझो। मैं कहता हूंः मेरी बात समझ में ही तब आए जब तुम ध्यान करो। मेरी बात गले ही तब उतरे जब तुम संन्यस्त हो जाओ।
मेरी भी मजबूरी है, उनकी भी मजबूरी है। उनका कहना ऐसा ही है, जैसे कोई कहे कि जब तक मैं तैरना न सीख लूं, तब तक पानी में न उतरूंगा। तैरना सिखाने वाला कहेगाः पानी में तो उतरना ही होगा। तैरना सीखने के लिए भी पानी में उतरना ही होगा। उथले में सही, आज कोई तुम्हें सागर में नहीं ले जाता हूं, उथले में उतरो। आहिस्ता-आहिस्ता उतरो, किनारे-किनारे रहो, रस्सी बांध कर उतरो, तुंबियां बांध लो, मगर उतरो तो! और फिर मैं हूं, डूबने लगोगे तो बचाऊंगा। घाट के पास ही रहो, चिल्ला सको, भीड़-भाड़ है, कोई न कोई बचा लेगा। बहुत दूर न जाओ। मगर उतरना तो पड़ेगा ही।
लेकिन तुम कहो कि नहीं, मैं जब तक तैरना न सीख लूं, मैं पानी में उतरने वाला नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन सीखने गया था तैरना। संयोग की बात... और अक्सर ऐसा
हो जाता है सिक्खड़ों के लिए। सिक्खड़ों को बड़ी दिक्कतें आती हैं। साइकिल सीखी चलानी कभी? गिरोगे। और बड़ी हैरानी होती है कि दूसरे लोग चले जा रहे हैं बैठे हुए--औरतें, बच्चे, बूढ़े। दो चकों पर चले जा रहे हैं, चमत्कार कर रहे हैं बिल्कुल। न कोई गिरता, न कुछ। मजे से गपशप करते हुए, गाना गाते हुए, फिल्मी धुन... और क्या मजे से चले जा रहे हैं! न कोई रास्ते का नियम मानते कि बाएं चलें, कि दाएं चलें, कि बीच में चलें। साइकिल वाले तो कोई नियम मानते ही नहीं। वे तो कहीं से भी निकल जाएं।
मगर तुम जब चलाना सीखोगे तब पता चलेगा। गिरोगे। हड्डी-पसली टूटेगी।
कम से कम घुटने तो छिलेंगे ही, कपड़े तो फटेंगे ही। और तुम बड़े हैरान होओगे कि बात क्या है, लोग क्यों सधे चले जा रहे हैं?
और एक दिन तुम भी सध जाओगे। एक-दो-चार दफे गिरोगे। मगर शुरू-शुरू में गिरना जैसे जरूरी है, आवश्यक है। आदमी इसलिए नहीं गिरता कि साइकिल चलाना कोई कठिन कला है। आदमी इसलिए गिरता है कि जो चलाना नहीं जानता वह घबड़ाया हुआ होता है। घबड़ाहट से गिरता है, साइकिल चलाने से कोई गिरता है? साइकिल चलाने में कोई राज नहीं है बड़ा। अगर बिना घबड़ाए तुम बैठ जाओ और चल पड़ो एकदम...
मैंने ऐसे ही साइकिल चलाई। जो मित्र मुझे सिखाने आए थे उन्होंने कहा
कि मैं पकडूं? मैंने कहा कि नहीं। गिरना होगा तो भी मैं जिम्मेवारी अपनी ही रखूंगा। जब इतने लोग चले जा रहे हैं तो मैं भी बैठ कर चला ही जाऊंगा। उन्होंने कहाः क्या कह रहे हो! बैठोगे तो बहुत बुरी तरह गिरोगे।
मैंने कहाः अगर गिरे भी तो कम से कम यह तो सांत्वना रहेगी कि अपना ही चुनाव था, अपने ही हाथ से गिरे। तुम पर तो कोई कसूर न आएगा।
और वे बड़े चौंके, क्योंकि मैं बैठा सो बैठा ही। उतरते वक्त मुझे जरूर थोड़ी दिक्कत हुई, सो एक झाड़ से मुझे साइकिल टकरानी पड़ी। क्योंकि मेरे गांव में जो साइकिल मिलती थीं चलाने के लिए, उनमें न ब्रेक, कुछ ठिकाना नहीं, न मडगार्ड, न चेन के ऊपर कोई कवर। सीखे-सिखाओं के लिए भी बड़ी मुश्किल की चीजें थीं वे, तो नये सिक्खड़ों के लिए तो कहना ही क्या! जो सज्जन मुझे सिखाने गए थे, वे तो बिल्कुल सिर ठोंक कर रह गए। उन्होंने कहाः गजब कर दिया तुमने!
मैंने कहाः गजब की क्या बात? जब मैं इतने लोगों को चलते हुए देखता हूं
तो मैंने सोचा कि हिम्मत करके... गिरेंगे ही न बहुत से बहुत, और क्या होगा? तो धीरे मैंने नहीं चलाई।
उन्होंने कहाः वही मैं देख रहा हूं कि तुम इतनी तेजी से गए, जैसे जन्मों-जन्मों से साइकिल आती हो!
मैंने कहाः एक बात मेरी समझ में आ गई लोगों को चलाते देख कर।

वही मैंने तैरने के मामले में किया। मेरे गांव में एक प्यारे आदमी हैं। उनका काम ही है सारे गांव के लोगों को तैरना सिखाना। नदी से उनको प्रेम है। शायद ही गांव में कोई ऐसा आदमी हो जिसको उन्होंने तैरना नहीं सिखाया हो। जब मेरा भी वक्त आया उनसे तैरना सीखने का, मैं रहा होऊंगा मुश्किल से कोई सात-आठ साल का, जब घर के लोगों ने आज्ञा दे दी कि अब तैरना सीख सकते हो, तो मैं उनके पास गया। उन्होंने कहा कि ठीक है। मैंने उनसे पूछा कि कोई खतरा है अगर मैं खुद ही तैरना सीखूं?
उन्होंने कहाः खतरा तो है ही, डुबकी खा जाओ!
मैंने कहाः वह तो आप भी सिखाएं तो भी खा सकता हूं। थोड़ी डुबकी तो खानी
ही पड़ती है।
तो मैंने कहाः ज्यादा से ज्यादा जान जा सकती है न?
उन्होंने कहाः अगर इतने तक के लिए राजी हो तो तुम्हारी मर्जी।
मैंने कहाः आप तो सिर्फ किनारे पर बैठ कर देखें। मुझे जाने दें। जब इतने लोग चले जा रहे हैं और कुछ खास दिक्कत नहीं मालूम हो रही, और मछलियां तक चल रही हैं जिनको कोई तैरना सिखाने वाला नहीं है, तो मैं तो आदमी हूं! सात साल का ही सही, मगर आदमी हूं। ये मछलियां तो सात साल की भी नहीं हैं। मैं तो उतर ही पड़ा। थोड़ी झंझट हुई। मुंह में पानी चला गया, नाक में पानी भर गया, बहुत बेतहाशा मुझे हाथ मारने पड़े। लगा कि अब डूबा, तब डूबा। उन्होंने कहा भी कि बचाने आऊं? मैंने कहाः रुको। आखिरी दम तक मुझे कोशिश कर लेने दो। कोई जरूरत न पड़ी उनके आने की। मैं खुद ही आ गया किनारे। और एक दफा मैं किनारे आ गया, तो फिर अड़चन खत्म हो गई। उन्होंने कहा कि तुम्हें सिखाने की कोई जरूरत नहीं। असल में सिखाने की जरूरत इसलिए पड़ती है कि लोग डरते हैं।
यह मुल्ला नसरुद्दीन सीखने गया तो डरा हुआ होगा, सो पैर फिसल गया सीढ़ी
पर ही। काई जमी होगी। भड़ाम से गिरा और उठ कर एकदम घर की तरफ भागा। उस्ताद ने, जो सिखाने ले गए थे, कहा कि कहां जा रहे हो?
मुल्ला ने कहा कि अब तो सीख लें तैरना, तब आएंगे।
मगर तैरना कहां सीखोगे? उस्ताद ने पूछा।
उसने कहाः अपने कमरे में ही गद्दी बिछा कर। उसी पर हाथ-पैर पटकेंगे।
जब तैरना सीख लेंगे, तब आ जाएंगे।
अब गद्दियों पर कोई हाथ-पैर पटक कर तैरना सीख सकता है? कितना ही हाथ-पैर पटके, अगर थोड़ा-बहुत आता हो तो वह भी भूल जाएगा।
ध्यान भी बस ऐसा ही है कि तुम करोगे तो जानोगे। कुछ बातें हैं जो करके
ही जानी जाती हैं, और कोई उपाय ही नहीं है। हां, नहीं कहता कि तुम एकदम से समाधि में चले जाओ। इसलिए तो ध्यान के सरलतम प्रयोग खोजे हैं तुम्हारे लिए। आहिस्ता-आहिस्ता चलो। एक-एक कदम उठाओ। धीरे-धीरे भय छूट जाएगा। बस भय ही छूटने की बात है। अपने ही भीतर जाना है, भय क्या? तुम तो वहां हो ही। नाहक भयभीत हो, इसलिए बाहर-बाहर घूम रहे हो। अपने से ही भयभीत बाहर-बाहर घूम रहे हो।
लेकिन आदमी यह भी मानने को राजी नहीं होना चाहता कि मैं अपने से भयभीत हूं। और सीखने में लोग थोड़ी सी कठिनाई अनुभव करते हैं, उनके अहंकार को चोट लगती है। तो वे चाहते हैं कि ऐसे ही किताब से सीख लें। न मालूम कितने लोग ध्यान करते हैं किताबों से पढ़ कर! न मालूम कितने लोग आसन इत्यादि सीखते हैं इस आशा में कि फिर ध्यान करेंगे। आसन वगैरह से ध्यान का कोई लेना-देना नहीं है। ये सब बाह्य औपचारिकताएं हैं। ध्यान का संबंध तो भीतर साक्षी होने से है।
तुम भीतर साक्षी-भाव को जगाने लगो तो मेरी बातें तुम्हें समझ में आएं, मेरे गीत तुम्हें समझ में आएं। और मेरे गीत तुम सुनो तो तुम्हारे भीतर से भी मेरे प्रति गीत उठें। उठ रहे हैं! मेरे संन्यासियों के भीतर से गीत उठ रहे हैं। रोज-रोज उठ रहे हैं। लेकिन जो नहीं हैं मेरे निकट, जो कभी यहां आए भी नहीं हैं, जिन्होंने कभी मुझे जाना नहीं, समझा नहीं, पहचाना नहीं--उनके भीतर से गालियां न उठें तो और क्या हो?

एक गांव में यह घटना घटी। गांव के लोहार ने अपने नये शिष्य को समझायाः देखो, यह गरम लोहा है। यह धौंकनी है। और यह रहा हथौड़ा। जैसे ही मैं सिर हिलाऊं, निशाना साध कर हथौड़ा पूरी तेजी से चलाना! समझे?
आज्ञाकारी शिष्य ने सब कुछ ध्यान से सुना और लोहार ने जैसे ही सिर हिलाया, हथौड़ा उसके सिर पर चला दिया। अब शिष्य गांव का नया लोहार है। कहां हथौड़ा चलाना था, कहां हथौड़ा चला दिया!
मेरी बातें लोग समझ नहीं रहे हैं। मैं कुछ कह रहा हूं, वे कुछ समझ रहे हैं। कुछ का कुछ समझ रहे हैं!
एक मिश्री ममी को मुल्ला नसरुद्दीन और चंदूलाल बड़े आश्चर्य से देख रहे थे। अजायबघर में रखी थी बड़ी सुंदर पेटी में सजी हुई लाश। पेटी के ऊपर लिखा था, तख्ती लगी थीः बी सी ग्यारह सौ सत्तासी। चंदूलाल ने काफी सिर खुजलाया, काफी सोचा और कहा कि यह शायद उस मकान का नंबर है, जिसमें यह व्यक्ति रहता रहा।
मुल्ला ने कहाः अरे चंदूलाल, अरे उल्लू के पट्ठे! उस जमाने में कहीं मकानों के नंबर हुआ करते थे? न म्युनिसिपल कमेटी होती थी, न मकान के नंबर होते थे। मैं तो समझता हूं यह उस मोटर का नंबर है जिसके नीचे आकर इस बेचारे ने अपनी जान गंवाई।
लोगों का कोई कसूर नहीं है। लोग मेरी बातों का अनुमान लगा रहे हैं कि मैं क्या कह रहा हूं। और अनुमान में उनकी अपनी धारणाएं समाविष्ट हो जाती हैं। अनुमान वे अपने ही अनुसार लगाते हैं। इसलिए उनके मन से गालियां उठती हैं। उनको लगता है मैं नष्ट कर रहा हूं उनके धर्म को। जब कि मैं संभवतः धर्म को बचाने का एकमात्र उपाय कर रहा हूं। नष्ट तो उन्होंने कर दिया है। नष्ट करने का काम तो वे कर चुके हैं। मगर उसको वे धर्म समझ रहे हैं।
मैं एक नई तरह की धार्मिकता को जगत में लाना चाहता हूं, जिसको पंडित
और पुजारी नष्ट न कर सकें। धर्मों को तो नष्ट कर दिया, अब धार्मिकता चाहिए। मेरी इसकी चिंता नहीं है कि तुम ईसाई बनो, हिंदू बनो, बौद्ध बनो। उनकी यही चिंता है। मेरी चिंता यही है कि तुम धार्मिक बनो। और धार्मिक होना बड़ी और बात है। क्या लेना है ईसाई से? और क्या लेना है बौद्ध से? धार्मिक व्यक्ति ध्यान सीखेगा, प्रार्थना में डूबेगा, इस जगत के सौंदर्य में नहाएगा, इस जगत के संगीत को अनुभव करेगा, इस जगत में जगह-जगह खोजेगा--और पाएगा अदृश्य परमात्मा की उपस्थिति और अपने भीतर अनुग्रह का भाव!

चौथा प्रश्नः आप संन्यास में दीक्षित हो रहे व्यक्तियों को बस एक नजर देख कर उनका नाम कैसे चुन लेते हैं?

श्रद्धानंद! एक पुराना हिप्पी नाई से बाल कटवा रहा था। नाई ने पूछाः क्या आप किसी समय नौसेना में थे?
हिप्पी ने आश्चर्य से पूछाः तुमने कैसे जाना? क्या तुम भी... !
नहीं साहब, नाई ने कहा, अभी-अभी मुझे आपके बालों के बीच यह टोपी मिली।
कुछ ज्यादा खोज-बीन थोड़े ही करनी पड़ती है। अब जैसे, श्रद्धानंद, तुम्हारी तरफ देखा--न श्रद्धा, न आनंद--मैंने कहा कि ठीक, श्रद्धानंद! दो चीजों की तुम्हें जरूरत हैः श्रद्धा की और आनंद की। यह प्रिस्क्रिप्शन है भैया। यह तुम्हारा नाम नहीं। यह तुम्हारे लिए दवाई का नुस्खा है कि ये दो चीजें तुम्हें चाहिए। तुम्हारे चेहरे पर दिखा संदेह, तुम्हारी शक्ल मातमी, कि अब रोए, तब रोए, कि अब रोते ही हो, सो मैंने जल्दी से कहाः श्रद्धानंद! कि भैया, रोना मत! अब जो हुआ, हुआ।
श्रद्धानंद सुन कर तुम जरा प्रसन्न हुए थे, तुम्हें धीरज आया था, ढाढस बंधा था। आनंद शब्द ने ही तुम्हें प्रफुल्लित कर दिया था, कि अरे, मैं भी और आनंद! वाह!
अभी होना है, अभी हो नहीं। और नाम इसलिए दे दिया कि जब भी तुम्हें देखूंगा और तुम्हारा नाम, तो ख्याल रखूंगा कि अभी हुआ मामला कि नहीं? जिस दिन हो जाएगा, उस दिन भी मैं समझ लूंगा कि बस अब बात हो गई।

छठवां प्रश्नः आपका मंत्र-शक्ति के संबंध में क्या कहना है?

गीता! मंत्रों इत्यादि में कोई शक्ति नहीं होती। शक्ति तो तुम्हारी श्रद्धा में होती है। श्रद्धा तुम्हारी कुरान पर है तो कुरान में शक्ति आ जाएगी। और श्रद्धा तुम्हारी गीता पर है तो गीता में शक्ति आ जाएगी। श्रद्धा गायत्री पर तो गायत्री में और श्रद्धा नमोकार पर तो नमोकार में।
मगर ध्यान रखना, शक्ति है श्रद्धा में। न तो नमोकार में कोई शक्ति है। किसी हिंदू को तो कहो कि दोहराओ नमोकार! वह दोहरा देगा, उसे कुछ अनुभव नहीं होगा। मगर जैन जब दोहराता है तो गदगद हो जाता है। यह नमोकार नहीं है जो गदगद कर रहा है, नहीं तो सारी दुनिया को गदगद कर देता। यह उसका भाव है। नास्तिक को कहो कि गायत्री में बड़ी शक्ति है और तुम गायत्री उसके सामने कहो, कुछ असर न होगा। तुम बजाते रहो बीन, भैंस पड़ी पगुराय!
गायत्री में कोई शक्ति नहीं है। शब्दों में कहीं शक्ति हो सकती है? शक्ति होती है तुम्हारे भाव में। तुम जहां अपना भाव उड़ेल देते हो, बस वहीं शक्ति पैदा हो जाती है। मंत्रों में उड़ेल दोगे, मंत्रों में पैदा हो जाएगी।
प्रसिद्ध आंग्ल कवि टेनिसन ने लिखा है कि बचपन से ही उसे न मालूम किस आकस्मिक रूप से यह बात पता चल गई। जब भी उसको नींद नहीं आती थी तो वह पड़ा- पड़ा करे क्या! छोटा बच्चा, नींद न आए। और अंग्रेज तो अपने बच्चों को भी अलग सुलाते हैं, अलग कमरे में सुलाते हैं। सो अंधेरा हो जाए कमरे में, मां बत्ती बुझा कर चली जाए। और अकेले में डर भी लगे और कुछ सूझे भी नहीं। क्या करे क्या न करे! तो अपना नाम ही दोहराए--टेनिसन, टेनिसन, टेनिसन। इससे थोड़ी हिम्मत आए, थोड़ी गर्मी आए। जैसे कोई और भी है, जो टेनिसन-टेनिसन कह कर पुकार रहा है। धीरे-धीरे उसे एक बात अनुभव में आई कि पंद्रह मिनट तक टेनिसन-टेनिसन कहते हुए बड़ी गहरी नींद आ जाती है। उसे तो आविष्कार हो गया। ट्रांसेनडेंटल मेडिटेशन! महर्षि महेश योगी को बहुत बाद में पता चला, यह तो महर्षि टेनिसन पहले ही खोज गया। अपना ही नाम! फिर तो धीरे-धीरे उसका अभ्यास इतना गहन हो गया कि दस-पंद्रह मिनट की भी जरूरत न रहे, बस तीन दफा कहे--टेनिसन, टेनिसन, टेनिसन--और गहरी निद्रा में खो जाए। फिर तो उसे यह भी राज हाथ लग गया कि बस में बैठा है या ट्रेन में सफर कर रहा है, कोई काम नहीं है, तो वह बैठा-बैठा टेनिसन का पाठ करे। उसका पाठ करते ही चित्त शांत होने लगे। जैसे जागे-जागे सो जाए! आंख खुली रहे और भीतर सन्नाटा हो जाए। यह टेनिसन शब्द में हो गया।
अब टेनिसन शब्द कोई न तो संस्कृत भाषा का है, न अरबी का, न किसी भगवान
का नाम है। विष्णु सहस्र नाम में यह नाम ही नहीं है टेनिसन। हजार नाम हैं भगवान के, मगर टेनिसन नहीं है उसमें। अब देखते हो कितनी कमी रह गई! नये संस्करण में एक हजार एक कर देना चाहिए। टेनिसन तो जोड़ ही देना चाहिए। क्योंकि इसने जिंदगी भर इसका उपयोग किया। यह इसके लिए मंत्र बन गया। मंत्र शब्द को समझो। मंत्र का अर्थ होता हैः जो मन को रुझा ले। मंत्र
का अर्थ होता हैः जो मन को भा जाए, जो मन को रंग ले, जो मन के लिए सूत्र बन जाए। तो कोई भी चीज मंत्र हो सकती है। इसलिए मां अपने छोटे बच्चे को सुलाने के लिए लोरी गाती है; वह भी मंत्र है। वह छोटे बच्चे को मंत्र की तरह काम करता है। राजा बेटा सो जा! राजा बेटा सो जा! राजा बेटा सो जा! कोई ज्यादा बड़ा मंत्र नहीं है, छोटा सा मंत्र है। गायत्री शायद पढ़ो तो राजा बेटा न भी सोए, उठ कर बैठ जाए, कि यह क्या कर रही है तू? उसकी समझ में न आए। नमोकार पढ़ो तो उलटे-सीधे प्रश्न पूछने लगे कि इसका क्या अर्थ? उसका क्या अर्थ? पाली, प्राकृत, संस्कृत, अरबी तुम बच्चे को पढ़ोगे तो बैठ जाएगा एकदम उठ कर और हजार तरह के प्रश्न खड़े करने लगेगा। लेकिन राजा बेटा सो जा वह भी समझता है। राजा बेटा का भी मतलब समझता है और सो जाने का मतलब भी समझता है। और सो जा शब्द में, अगर इसे बार-बार दोहराया जाए--सो जा, सो जा, सो जा--तो नींद अपने आप आनी शुरू हो जाए। इस शब्द में भी थोड़ा नींद का नशा है। यही मंत्र हो गया।
मंत्र में कोई शक्ति नहीं होती। किसी मंत्र में कोई शक्ति नहीं होती।
इसलिए तो एक धर्म का मंत्र दूसरे धर्म के काम नहीं पड़ता। इसलिए तो एक धर्म के लोग दूसरे धर्म के मंत्रों पर हंसते हैं, कि यह सब मूर्खतापूर्ण है।

मगर अपने धर्म के मंत्र पर उनको बड़ी श्रद्धा होती है। मतलब भी पता न हो, तब भी श्रद्धा होती है। तुम्हें जो समझ में आ जाए, उससे तुम प्रभावित होओ, तब भी समझ में आ सकता है। लेकिन जो तुम्हें समझ में ही नहीं आता, उससे तुम क्या प्रभावित होते होओगे!
लेकिन करीब-करीब दुनिया के पुरोहितों ने यह व्यवस्था कर रखी है कि पुरानी मुर्दा भाषाओं को मरने नहीं देते। कम से कम मंदिरों में जिलाए रखते हैं। पुरानी मुर्दा भाषाओं की एक खूबी हैः तुम्हारी समझ में आती नहीं, तुम सोचते हो कि गजब की चीजें होंगी!
तुम कभी वेदों को उठा कर देखो, बड़े हैरान होओगे। निन्यानबे प्रतिशत कूड़ा-कर्कट! जो होना ही नहीं चाहिए वेद में, जिसको वेद कहना एकदम व्यर्थ की बात है! मगर कौन पढ़ता है? किसको देखना है? बाइबिल को उठा कर देखो, कचरा ही कचरा! जिसकी कोई जरूरत नहीं है। मगर कौन ईसाई पढ़ता है बाइबिल को?
एक डिक्शनरी बेचने वाला एक दरवाजे पर खड़ा था और कह रहा था कि नई डिक्शनरी निकली है और हर बच्चे के काम की है। डिक्शनरी पर नीले रंग का पुट्ठा था। महिला टालना चाहती थी इसको। उसने दूर रखी टेबल पर कहा कि देखो, हमारे पास तो यह डिक्शनरी है ही। नीले रंग की, उतनी ही मोटी पुस्तक रखी थी। वह विक्रेता मुस्कुराया और उसने कहा कि देवी जी, आप किसी और को बुद्धू बनाना! वह डिक्शनरी नहीं है, वह बाइबिल है।
इतने दूर से उसने कैसे पहचाना? उस महिला ने कहाः गजब कर दिया तुमने! इतने दूर से तुमने पहचाना कैसे कि वह बाइबिल है?
उसने कहाः जमी हुई धूल बता रही है कि कभी कोई उलटता भी नहीं, कभी कोई छूता भी नहीं, सफाई भी कोई नहीं करता। डिक्शनरी को तो आदमी उलटता है रोज, देखना पड़ता है आज इस शब्द का अर्थ, कल उस शब्द का अर्थ। इतनी धूल नहीं जम सकती। किसी और को आप बुद्धू बनाना।
और वह बाइबिल ही थी। शास्त्रों पर तो धूल जम रही है। मगर वे ऐसी भाषाओं में लिखे हैं कि पूजा के योग्य हैं। फूल चढ़ा दिए, चंदन लगा दिया, सिर झुका लिया, झंझट मिटाई। काश तुम्हें उनके अर्थ समझ में आ जाएं तोशायद तुम सिर भी झुकाने में संकोच करो, कि मैं किसको सिर झुका रहा हूं! क्या प्रयोजन है? क्या अर्थ है?
जो तुम्हारे अर्थ समझ में आते हों और उनसे भाव पैदा होता हो, तो निश्चित ही शक्ति आ जाती है मंत्र में। लेकिन वह शक्ति तुम्हीं डालते हो, तुम्हीं उसके डालने वाले हो। और यह अगर तुम्हारी समझ में आ जाए तो डालने की जरूरत क्या है मंत्र में? वह शक्ति तो तुम्हारी ही है। तुम उस शक्ति को बिना मंत्र के भी उपयोग में ला सकते हो--और वही ध्यान है। बिना मंत्र के अपनी शक्तियों के प्रति सजग हो जाना ध्यान है।
मंत्र तो बहाना है। जैसे कि कोई आईने में अपने चेहरे को देखे। आईने में थोड़े ही चेहरा होता है। चेहरा तो तुम्हारे पास है। आईने में तो केवल तस्वीर होती है। और आईना अगर इरछा-तिरछा होगा, तस्वीर इरछी-तिरछी होगी। तुमने कई तरह के आईने देखे होंगे। किसी आईने में बड़े दिखाई पड़ोगे, किसी आईने में पतले दिखाई पड़ोगे, किसी में मोटे दिखाई पड़ोगे। किसी आईने में बिल्कुल सींकिया पहलवान। किसी आईने में भारी-भरकम। किसी आईने में बड़े कुरूप, कि खुद को देख कर हंसी आ जाए। किसी आईने में बड़े सुंदर। ये आईने हैं, यह तुम नहीं हो। मंत्र तो आईने हैं, तुम नहीं हो।
पहले कभी शब्द-ध्वनि का प्रभाव हुआ करता था। इस युग में मंत्रों और शब्दों का कोई प्रभाव नहीं होता। चंदूलाल ने एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन से कहा।
यदि मैं कोई शब्द बोलूं और उस शब्द के प्रभाव से आप उठ कर खड़े हो जाएं, जोश आ जाए, तब तो आप शब्दों का प्रभाव मानोगे? मुल्ला ने पूछा।
फिर तोशब्दों का प्रभाव मानना पड़ेगा। चंदूलाल ने स्वीकृति दी।
जोशब्द-ध्वनि का प्रभाव नहीं समझते, वे बेअकल होते हैं, निरे गधे! नसरुद्दीन बोला।
गाली मत देना, नहीं तो देख लूंगा। चंदूलाल ने खड़े होते हुए कहा।
मुल्ला ने कहाः देखा शब्द-शक्ति का प्रभाव! खड़े हो गए बैठे से। और मैंने कुल इतना ही कहा है--निरे गधे!

समझ में आए, तो निरे गधे कोई कह दे, तो बैठे होओगे तो खड़े हो जाओगे।
इसको क्या तुम समझते हो कि शब्द-शक्ति का प्रभाव है? अगर तुम्हें भाषा हिंदी न आती हो और कोई तुमसे गधा कह दे, तो तुम बिल्कुल परेशान न होओगे। तुम मुस्कुराते ही रहोगे। तुम्हें पता ही नहीं चलेगा कि कोई अड़चन की बात हो रही है। कोई दूसरी भाषा में तुम्हें गाली देता रहे... ।
मेरी इटैलियन संन्यासी है--काव्या। दो साल यहां थी। अब काव्या तो हमारी भाषा में सुंदरतम शब्दों में एक है--कविता। कविता का शास्त्र। जब मैंने उसे काव्या नाम दिया था, तब भी मैंने थोड़ी सी झिझक उसके चेहरे पर देखी थी। मगर मैं भी कुछ बोला नहीं, वह भी कुछ बोली नहीं। बात आई-गई हो गई। दो साल यह यहां थी, उसने कभी कुछ कहा नहीं। अभी इटली गई। वहां भी छह महीने से है, छह महीने बाद अभी पत्र उसका चार दिन पहले आया। लिखाः अब कहना ही पड़ेगा। पहले ही दिन कहना चाहती थी, लेकिन आपने इतने प्रेम से नाम दिया, सो मैंने कुछ कहा नहीं। फिर मैंने सोचा कि यहां किसको पता है! लेकिन जब से इटली में आई हूं तो बड़ी मुसीबत खड़ी हो गई, जिसको भी मैं नाम बताती हूं वही हंस देता है एकदम से।
इटैलियन भाषा में काव्या का अर्थ होता है--सुअर का बच्चा। तो उसने मुझे लिखाः मैं घर से नहीं निकलती, क्योंकि किसी ने पूछा कि तेरा नाम क्या है, तो मैं अपना पुराना नाम बताना नहीं चाहती; क्योंकि वह तो बात खत्म हो गई, मेरा नया नाम तो काव्या है। और मैं किसी को अपना नया नाम बताऊं कि बस फौरन लोग हंसने लगते हैं। वे कहते हैं, हद हो गई! अरे मूरख तो तूने कहा क्यों नहीं? तो अब मैं हिम्मत जुटा रही हूं ढाई साल के बाद कि कृपा करके मेरा नाम बदल दो।
यहां तो हम सोच भी नहीं सकते थे कि काव्या, सुअर का बच्चा, इनका कोई संबंध हो सकता है। अगर मुझे जरा भी अंदाज होता तो मैंने कभी भूल कर उसे यह नाम नहीं दिया होता।
समझ में आ जाए तो तुम प्रभावित होते हो, नहीं समझ में आए तो तुम कैसे प्रभावित होओगे? तुम्हारा प्रभाव तुम्हारे ही भीतर से आता है। तुम शक्ति डालते हो।
मंत्रों इत्यादि में कोई शक्ति नहीं होती। शब्दों में कोई शक्ति नहीं होती। दुनिया में कोई तीन हजार भाषाएं हैं, शब्दों में क्या शक्ति होगी? गुलाब के फूल के लिए तीन हजार नाम हैं दुनिया में। और गुलाब का फूल तो गुलाब का फूल है--चाहे इस नाम से पुकारो, चाहे उस नाम से पुकारो। और परमात्मा के हजारों नाम हैं, चाहे इस नाम से पुकारो, चाहे उस नाम से पुकारो। कुछ फर्क नहीं पड़ता। लेकिन जिस नाम को तुम परमात्मा का नाम मान लेते हो, उसमें अर्थ आ जाता है, उसमें गहराई आ जाती है। वह गहराई तुम्हारी है, वह अर्थ तुम्हारा है।
सदा ध्यान रखो, श्रद्धा में शक्ति है। वह शक्ति तुम्हारी है। तुम शक्ति के अजस्र स्रोत हो। अपनी शक्ति का स्मरण करो!

आखिरी प्रश्नः आप मरे हुओं को इतना क्यों मारते हैं? आप क्या मोरारजी भाई, जग्गू भैया और चरणसिंह में फिर से प्राण फूंकने का चमत्कार करना चाहते हैं, जैसे जीसस ने मुर्दों को फिर से जिला दिया था?

चैतन्य कीर्ति! जीसस भी यह चमत्कार नहीं दिखा सकते थे। लजारस बेचारा सीधा-सादा आदमी था, उसको जीसस ने उठा दिया। लजारस अगर मोरारजी देसाई होते या चरणसिंह होते या जग्गू भैया होते, जीसस ऐसे भागते उस जगह से कि लौट कर ही न देखते।
और तुम पूछते हो कि आप मरे हुओं को इतना क्या मारते हैं?
मैं इसलिए मारता हूं कि कहीं कुछ बची-खुची जान न हो! बिल्कुल ही निपटारा कर देना है। क्योंकि राजनीतिज्ञ बड़ी मुश्किल से मरते हैं। और जरा सा बहाना मिल जाए तो जिंदा हो जाते हैं। जरा ही बहाना मिल जाए, किसी को जरा सा पद दे दो, बस मुर्दे को बिठाल दो, वह फौरन अपनी शेरवानी वगैरह ठीक-ठाक करके, गांधी टोपी लगा कर और बैठ जाएगा एकदम!

जब कोई राजनेता मरे तो एकदम से उसको जलाया मत करना। पहले पूछना कि भैया, सुनते हो? नेताजी, सुनते हो? आप राष्ट्रपति हो गए! अगर वह कुछ न बोले तो समझना कि मर गया। अगर उठ कर बैठ जाए तो समझना कि नहीं मरा। राजनेता की पहचान ही यह है कि वह मर गया कि नहीं मर गया, इसकी जांच करने के लिए डाक्टरों के पास और कोई उपाय नहीं है--उसके कान में इतना ही कह देना कि राष्ट्रपति हो गए, अब देर न करो, उठ आओ! जहां तक तो उसकी आत्मा वापस आ जाएगी। इधर ही थोड़ी-बहुत दूर गई होगी, लौट आएगी, कि अरे, देर से हुए, मगर हो तो गए! देर है, अंधेर नहीं!
एक झूठा लतीफा--चंगू-मंगू का नहीं, जग्गू भैया का।
जब से जग्गू भैया का पद छिना है, उनके कुत्ते ने पूंछ हिलाना बंद कर दिया है। ऊंची नस्ल का समझदार कुत्ता है। उसने देखा कि जब आदमी तक पूंछ नहीं हिलाते तो भला मैं क्यों हिलाऊं? जग्गू भैया मन ही मन कुत्ते पर बड़े क्रोधित होते हैं, पर क्या करें, अब किसी और पर तो क्रोधित हो भी नहीं सकते बेचारे! लेकिन कुत्ते से उन्हें प्रेम भी बहुत है। पुराना कुत्ता है, सुख-दुख में उसने साथ दिया है। अब पूंछ नहीं हिलाता, यह बात अलग है; मगर भौंकता नहीं है, काटने नहीं दौड़ता, यही क्या कम है!
अभी जब जग्गू भैया ने गरमी में काश्मीर जाने का प्रोग्राम बनाया तो सोचा अपने कुत्ते को भी साथ ले चलें। जाने के पहले उन्होंने श्रीनगर की होटल में एक कमरा बुक करा लेना चाहा। पत्र डाल कर उन्होंने होटल मैनेजर से पूछाः मेरे साथ एक कुत्ता भी आएगा, क्या आप इसे भी होटल में ठहरने की इजाजत देंगे?
होटल मैनेजर का जवाब आयाः महोदय जी, हमारी होटल में अब तक, आज तक कई कुत्ते ठहर चुके हैं। हमें उनसे कोई शिकायत नहीं हुई, क्योंकि न तो वे होटल के कप तोड़ते हैं, न फूटे हुए ग्लास पलंग के नीचे छिपाते हैं, न तौलिया चुरा कर ले जाते हैं, न तकियों को रेजर से काटते हैं, न वेटर को गालियां बकते हैं और न ही बिना बिल चुकाए भाग जाते हैं। इसके अलावा कुत्तों के ऊपर कोई पथराव करने नहीं आता, कोई उनका घिराव नहीं करता। अतः हमारी खिड़कियों के कांच नहीं टूटते और न अखबारों में होटल की बदनामी होती है। तात्पर्य यह है कि आप मजे से अपने कुत्ते को होटल में ठहरा सकते हैं, हमें कतई आपत्ति नहीं होगी।
पुनश्चः यदि कुत्ता आपकी सिफारिश करे तो आपकी भी हमारी होटल में ठहरने की सुविधा हो सकती है।
जब जग्गू भैया श्रीनगर पहुंचे तो होटल मैनेजर ने अभिवादन में मुस्कुरा कर हाथ जोड़ कर कहाः बड़ा अच्छा हुआ जो आप इस हाथी के पिल्ले को भी साथ ले आए! मेरे बच्चों को बड़ी उत्सुकता थी इस हाथी के पिल्ले को देखने की। जग्गू भैया तो पहले से ही खफा थे, अब एकदम उबल पड़ेः क्यों रे मैनेजर, तेरा दिमाग खराब है क्या, जो बेतुकी बातें करता है? तेरी आंखें हैं या बटन के छेद? दिखता नहीं यह अलशेसियन कुत्ता है, हाथी का पिल्ला नहीं!
मैनेजर बोलाः मेरा दिमाग तो ठीक है, आपके दिमाग में जंग लग गई है श्री जग्गू भैया जी, तभी तो आप सीधी-सच्ची बात नहीं समझ पाते। आप इतने नाराज क्यों हो रहे हैं? मैंने वह बात आपसे नहीं, इस कुत्ते से पूछी थी।
आज इतना ही।

रहिमन धागा प्रेम का
आठवां प्रवचन

स्वानुभव ही मुक्ति का द्वार है

पहला प्रश्नः आप अतीत-विरोधी हैं। क्या इससे युवकों में अराजकता पैदा होने का डर नहीं है?

महेश! मैं अतीत-विरोधी नहीं हूं, न ही अतीत का पक्षपाती हूं। इस बात को ठीक से समझ लेना जरूरी है।
अतीत का अतिक्रमण होना चाहिए, यह मेरी देशना है। जो जा चुका, जा चुका। उसके विरोध में भी कुछ अर्थ नहीं है। उसका विरोध भी उससे बंधे होने का ही एक रूप है। जिसका हम विरोध करते हैं, उससे भी हमारा नाता हो जाता है। मित्र से ही नाता नहीं होता, शत्रु से भी नाता होता है। और कभी-कभी तो मित्र से भी ज्यादा गहरा नाता शत्रु से होता है। मित्र के बिना तो शायद तुम जी भी लो, शत्रु के बिना तुम जी भी न सकोगे। शत्रुओं में तुम्हारा बड़ा न्यस्त स्वार्थ होता है।
जरा सोचो, तुम्हारे सब शत्रु मर जाएं, तुम्हें करने को कुछ न बचेगा--न अदालत, न मुकदमा, न झगड़ा, न झांसा। तुम्हारे सब शत्रु मर जाएं तो आत्मघात के अतिरिक्त और करने को क्या बचेगा?
मैंने सुना है, मोहम्मद अली जिन्ना के जीवन में, उसके बहुत से मित्र संसार से विदा हुए, लेकिन सर्वाधिक दुखी हुआ वह महात्मा गांधी की मृत्यु से। और जब उसे खबर मिली कि महात्मा गांधी की मृत्यु हो गई, वह अपने बगीचे में बैठा था, एकदम उदास हो गया। उसकी आंखें गीली हो आईं। वह उठ कर भवन के भीतर चला गया। उसके सेक्रेटरी ने पूछा भी कि आपको इतना दुखी होने का क्या कारण है? आपकी तो शत्रुता थी। आप तो प्रसन्न होते तो ज्यादा तर्कसंगत होता।
लेकिन जीवन तर्क थोड़े ही है। जीवन गणित थोड़े ही है। जीवन बड़ी पहेली है। काश, जीवन तर्क और गणित ही होता तो सब समस्याएं कभी की हल हो गई होतीं! जीवन के उलझाव तर्क और गणित से बहुत गहरे जाते हैं। तर्क और गणित तो आदमी की ईजाद हैं, जीवन नहीं है। तर्क और गणित तो जीवन की ही सतह पर उठी हुई थोड़ी सी तरंगें हैं। जीवन की गहराइयों को कहां तर्क छूता! कहां गणित छूता! तर्कयुक्त तो यही है कि जिन्ना को नाच उठना था, आह्लादित हो जाना था, प्रसाद बांटना था। लेकिन वह दुखी हो गया। और उस दिन के बाद जिन्ना प्रसन्न नहीं रहा और ज्यादा दिन जीया भी नहीं। जैसे कुछ जड़ कट गई। महात्मा गांधी के साथ उसके संघर्ष में ही उसके प्राण थे; उस चुनौती में ही, उस तनाव में ही उसका बल था।
जैसे ऋण और धन विद्युत साथ-साथ हों तो ही बिजली पैदा होती है, वैसे ही मित्र और शत्रु के बीच एक तनाव होता है, जो तनाव उन दोनों के लिए जरूरी है। मैं अतीत का दुश्मन नहीं हूं, अतीत-विरोधी नहीं हूं, अतीत-मुक्त हूं! अतीत का जो विरोधी होता है, वह अनिवार्यरूपेण भविष्य का पक्षपाती हो जाता है। यह दूसरा सत्य ख्याल में लेना। कम्युनिस्ट अतीत-विरोधी हैं। वे कहते हैंः राम-राज्य पीछे नहीं हुआ, आगे होगा; स्वर्ण-युग पीछे नहीं हुआ, पीछे तो सब अंधेरे युग थे, पाशविक। स्वर्ण-युग आगे है। सतयुग पीछे नहीं था, सतयुग आगे है। वे अतीत-विरोधी हैं और भविष्य के प्रेमी हैं।
मैं न तो अतीत-विरोधी हूं और न भविष्य का प्रेमी हूं। मेरी शिक्षा तो बहुत छोटी सी है, सरल है, सीधी है। वर्तमान का ही अस्तित्व है केवल। अतीत वह, जो जा चुका। भविष्य वह, जो अभी हुआ नहीं। दोनों ही अनस्तित्व हैं। इसलिए अतीत का प्रेमी और भविष्य का प्रेमी, इनमें मैं भेद नहीं मानता; ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों ही, जो नहीं है, उसके लगाव में पड़े हैं। और यही तो मन की जालसाजी है, मन का शड्यंत्र है। तुम्हें उससे उलझा रखता है, जो नहीं है। तुम उलझे रहते हो उससे जो नहीं है और वह बीत जाता है जो है।
मेरा कहना हैः न तो अतीत से उलझो, न भविष्य से। जो जा चुका, जा चुका। जो नहीं आया, अभी आया नहीं। जो है, उसमें जीओ।

परमात्मा का न तो कोई अतीत है और न कोई भविष्य। परमात्मा का तो केवल वर्तमान है। तुम परमात्मा के संबंध में अतीत और भविष्य का प्रयोग नहीं कर सकते। तुम यह नहीं कह सकते कि परमात्मा था; तुम यह भी नहीं कह सकते कि परमात्मा होगा। तुम यही कह सकते हो केवल कि परमात्मा है। असल में है का ही दूसरा नाम परमात्मा है। जो है, वही परमात्मा है। इस क्षण जो है, उसके अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं है। यही तीर्थ है--यह क्षण। और इस क्षण में समग्र रूप से लीन हो जाना ध्यान है, समाधि है। इस क्षण को पूर्णरूपेण जी लेना प्रभु-साक्षात है, आत्मबोध है, बुद्धत्व है, निर्वाण है।
इसलिए महेश, तुम्हारी यह धारणा कि मैं अतीत-विरोधी हूं, गलत है। न मैं अतीत-विरोधी हूं, न भविष्य का पक्षपाती हूं। न अतीत का पक्षपाती हूं, न भविष्य का विरोधी हूं। सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूं तुमसे कि जो बीत गया, क्यों उसके साथ समय खराब कर रहे हो? कब तक रामायण देखते रहोगे? और कब तक? और खतरा यह है कि जिस दिन रामायण से मुक्त होओगे, उस दिन कार्ल मार्क्स की दास कैपिटल तुम्हारे हाथ में पकड़ में आ जाएगी।
चीन अतीतवादी था; लाओत्सु, कनफ्यूशियस, बुद्ध, इनमें उलझा था। और अब?
अब मार्क्स, लेनिन, एंजिल्स, इनमें उलझा है। पहले सोचता थाः बीत गए स्वर्णकाल। अब सोचता हैः आने वाले हैं।
रूस भी अतीत-उन्मुख देश था। बहुत धार्मिक देश था, जैसे तुम हो। मगर वह धार्मिकता कहां गई? जरा में बदल गई। अब रूस की आंखें भविष्य पर टिकी हैं। एक अति से दूसरी अति पर मन बड़ी आसानी से चला जाता है; जैसे घड़ी का पेंडुलम दाएं से बाएं, बाएं से दाएं घूमता रहता है। मनुष्य के मन का स्वभाव हैः अतियों में जीना। जो अति में जीएगा, वह मन में उलझा रहेगा। अति यानी मन। अति भोग से त्याग पर चली जाती है। तो या तो मन कहता हैः खूब भोगो! और या मन कहता हैः खूब त्यागो! मगर सम्यक कभी नहीं होने देता। मध्य में कभी नहीं होने देता। समतुलता नहीं आने देता। समता नहीं आने देता। सम्यकत्व पैदा नहीं होने देता। मन कहता हैः या तो स्त्रियों के पीछे भागो या स्त्रियों से भागो, मगर भागो। ठहरना मत! मन कहता हैः या तो धन पकड़ो; या कहता हैः धन को गालियां दो। छूना मत। छूने में पाप हो जाएगा!
यह मन का तुम मजा देखते हो? धन में न तो कुछ ऐसा महत्वपूर्ण है कि उसी
को छाती से लगाए बैठे रहो, न इतना कुछ महत्वपूर्ण है कि छूने से डरो। यह मेरी समझ के बाहर है। एक है दीवाना, जिसके हाथ में नोट आ जाए तो उसे ऐसा लगता है जैसे सब मिल गया। वह नोट को ऐसे छूता है जैसे क्या कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी को छूता होगा! क्या कोई कवि किसी गुलाब के फूल को देख कर प्रफुल्लित होता होगा! क्या किसी सौंदर्य के पारखी ने पूर्णिमा के चांद में देखा होगा, जो उसे सौ के नोट में दिखाई पड़ता है! और फिर यही आदमी एक दिन नोटों का विरोधी हो जाता है--यही आदमी हो सकता है विरोधी। क्योंकि थकेगा; आज नहीं कल इसे दिखाई पड़ेगा--यह मैं क्या कर रहा हूं! यह क्या पागलपन है! तब दूसरा पागलपन करेगा। तब छूने से डरेगा। तब नोट छू जाएगा तो हाथ धोएगा। मल-मल कर हाथ धोएगा। घबड़ाएगा कि कहीं नोट पड़ा न मिल जाए! बचेगा नोटों से। दूर-दूर चलेगा। ऐसी जगह छिपेगा जहां नोटों का कोई आवागमन न हो। हिमालय की गुफाएं खोजेगा।
नोट में इतना डरने जैसा भी नहीं है कुछ। नोट की एक उपयोगिता है। न तो इधर पागल होने की जरूरत है, न उधर पागल होने की। उपादेयता है। न तो नोट में कुछ ऐसा रस है कि उसे छाती से लगा कर बैठे रहो, और न कुछ इतने विरस होने की जरूरत है। जिसमें रस ही नहीं है, उससे विरस क्या होना? संसार में न तो उलझने की कोई बहुत आवश्यकता है, न भगोड़ेपन की कोई जरूरत है। मेरी शिक्षा सदा मध्य की है, क्योंकि मध्य में ही मन मरता है। अतियों में मन जीता है। तुम जहां भी मध्य में आ जाओगे, वहीं मन मर जाएगा।
कभी तुमने घड़ी के पेंडुलम को मध्य में रोक कर देखा? घड़ी बंद हो जाएगी। टिक-टिक समाप्त! ऐसे ही जैसे तुमने अति छोड़ी कि मन गया। और मन के साथ ही समय भी गया, भीतर की घड़ी भी बंद हो जाएगी। तुम कालातीत हो जाओगे।
मेरी शिक्षा है कालातीत होने की। मैं चाहता हूं कि तुम समझो कि अतीत
अब नहीं है। क्यों पिटी हुई लकीरों को और पीट रहे हो? क्यों समय गंवा रहे हो? सांप जा चुका, अब तो केवल रेत पर पड़ा हुआ चिह्न रह गया है; तुम उसी की

पिटाई कर रहे हो! क्यों समय खराब कर रहे हो? या जो सांप अभी आए नहीं, उनसे बचने के उपाय कर रहे हो! वे कभी आएंगे भी, इसका भी कुछ पक्का नहीं है। तुमने जितनी चीजें सोची थीं अपने जीवन में, वे हुईं? क्या हुआ? कितना हुआ? सौ बातें सोचो, एक भी तो नहीं होती। होता कुछ और है। जीवन विराट है। इतना विराट है कि तुम्हारी पकड़ में कुछ आता तो नहीं। मगर लोग भविष्य को पकड़ने की कोशिश में लगे रहते हैं; हाथ की रेखाएं दिखाते हैं कि भविष्य में क्या होने वाला है!
मेरे पास एक बड़े ज्योतिषी को लाया गया। उनकी फीस ही एक हजार रुपया थी। उन्होंने कहा कि मेरी फीस एक हजार रुपया है, इससे कम में मैं हाथ नहीं देखता।
मैंने कहाः एक हजार एक! इससे कम मैं देता नहीं।
उन्होंने जरा चौंक कर मुझे देखा। मेरे आस-पास जो लोग बैठे थे, उनको देख कर उन्हें भरोसा आ गया कि मिल जाएगा एक हजार एक, कोई चिंता की बात नहीं। मेरा हाथ देखा। और ज्योतिषियों के पास तो कुछ सुनिश्चित बातें हैं कहने की, जो सभी के लिए लागू होती हैं। वही तो कला है सारी ज्योतिष की। वही बातें उन्होंने कहीं। फिर वे राह देखने लगे उनकी फीस की। मैंने कहाः अब आप जाइए।
उन्होंने कहाः और मेरी फीस?
मैंने कहाः यह तो आपको घर से अपना हाथ देख कर चलना था कि आज फीस नहीं मिलेगी। और मेरा हाथ देख कर आपको समझ में नहीं आया कि यह आदमी फीस देने वाला नहीं है? तुम अपना हाथ तो देख लिया करो! अपनी जन्म-कुंडली तो ठीक से देख कर चला करो! तुम्हें जब अपने ही हाथ का कोई पक्का नहीं है, हाथ की अपनी ही रेखाओं को तुम नहीं पढ़ पाते, तुम मेरे हाथ की रेखाएं क्या खाक पढ़ोगे! मैं तो जब तुम मेरा हाथ देख रहे थे, तभी तुम्हारा हाथ देखा, तो मैंने कहा कि नहीं, इसको मिलने वाली नहीं है फीस। यह बात इतनी साफ हो गई कि मैं तुम्हारी हाथ की रेखाओं के खिलाफ जा नहीं सकता, तुम लाख सिर पटको, मैं तुम्हें फीस देने वाला नहीं हूं।
वे बहुत गिड़गिड़ाए। हजार से पांच सौ पर आ गए, दो सौ पर आ गए, सौ पर आ गए। मैंने कहाः मैं एक रुपया देने वाला नहीं। इसीलिए तो इतनी मौज से मैंने कह दिया था तुम्हारा हाथ देख कर कि एक हजार एक दूंगा। देना ही होता तो पहले ही मोल-तोल होता। देना ही नहीं था तो मोल-तोल की जरूरत क्या थी! कोई मेरी तुमसे इतनी मैत्री भी नहीं है, परिचय भी नहीं है।
उन्होंने कहाः आपका मतलब?
मैंने कहा कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दरजी के यहां कोट बनवाने गया था और उससे ठहराव कर रहा था। वह कह रहा था कि पचास रुपये लगेंगे। वह कह रहा था कि पच्चीस से ज्यादा नहीं दूंगा। बड़ी खींचतान हुई--तीस, पैंतीस... पैंतीस पर जाकर बात ठहरने के करीब हुई। चंदूलाल भी उसके साथ थे। उन्होंने नसरुद्दीन को कान में कहा कि नसरुद्दीन, मुझे मालूम है कि तुम जिसका लिए, कभी नहीं दिए। और तुम इस दरजी को भी एक पैसा देने वाले नहीं हो।
उसने कहाः वह तो मुझे भी मालूम है।
चंदूलाल ने कहाः फिर इतना मोल-तोल किसलिए?
तो उसने कहा कि यह अपना जाना-पहचाना परिचित है, इसको ज्यादा नुकसान नहीं पहुंचाना चाहता। पचास पर राजी होऊंगा तो बहुत दुखी होगा। पैंतीस ही गए, पंद्रह तो बचाए। अरे मित्र के साथ इतना तो करना ही चाहिए! अपना वाला है, परिचित है। जितना दुख कम कर सकूं, उतना कम मैं करने की कोशिश कर रहा हूं। और यह मूरख अपना दुख बढ़ाने की कोशिश में लगा हुआ है! मैं तो बीस से शुरू किया था।
तो मैंने उनसे कहा कि मेरा कोई तुमसे परिचय भी नहीं है कि तुम्हें कम दुख दूं। तुमने हजार कहा, मैंने एक हजार एक कहा। तुम दो हजार कहते, मैं दो हजार एक कहता। तुम जितना कहते, मैं राजी होता, क्योंकि मैंने तुम्हारा हाथ जो देखा, मैंने समझ ही लिया कि इस आदमी को कुछ मिलने वाला है नहीं आज। आज तुम फोकट मेहनत कर रहे हो, घर जाकर सो रहो।
लेकिन लोग क्यों ज्योतिषियों के पास जा रहे हैं? क्या कारण है?

चाहते हैं कि भविष्य पर कुछ कब्जा हो जाए। भविष्य के संबंध में कुछ योजना बना लें। ये वे ही लोग हैं जिन्होंने अतीत गंवाया और अब वर्तमान गंवा रहे हैं। और क्या तुम्हें पता है, भविष्य कभी आता नहीं! जब आता है तब वर्तमान आता है। और वर्तमान के संबंध में कोई ज्योतिषी कुछ नहीं कह सकता। वर्तमान की कोई बात ही नहीं है ज्योतिष में। आज तो आता ही नहीं ज्योतिष में। ज्योतिषी या तो बीते कल की बात करते हैं या आने वाले कल की; दोनों ही नहीं हैं। आज की तो बात ही नहीं होती।
आज की बात ही धर्म है। इसलिए ज्योतिष धर्म नहीं है। ज्योतिष धर्म से बचने का उपाय है। ज्योतिष परमात्मा से बचने का उपाय है। यह तुम्हारे अहंकार की तलाश है। कल तो गया, एक तो चूक गए तुम; अब आने वाले कल में कुछ इंतजाम कर लो। वह भी चूकोगे।
तुमने देखा नहीं, दुकानों पर तख्ती लगी रहती हैः आज नगद, कल उधार! उस तख्ती का मतलब समझे? कल तो कभी आता नहीं। वह तख्ती बड़ी गूढ़ार्थ वाली है, वेद-वचन है वह। आज नगद, कल उधार! तुम यह सोच कर मत चले आना कि ठीक है, तो कल आएंगे। कल तो कभी आएगा नहीं; जब भी तुम आओगे तब यह तख्ती कहेगीः आज नगद, कल उधार। यह तख्ती बड़ी काम की है।
कल के सोचने में आज को मत गंवाओ।
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक दिन चंदूलाल को बताया कि मैं पिछले पचास वर्षों से दुनिया का एटलस खरीदने का विचार कर रहा हूं।
चंदूलाल ने पूछाः फिर इतनी देर क्यों? पचास वर्ष! पूरी जिंदगी सोचते रहे एटलस खरीदना है दुनिया का! तो कब खरीदोगे? मर कर खरीदोगे? सत्तर साल तुम्हारी उम्र हो गई, अब खरीद ही क्यों नहीं लेते? कम से कम एक इच्छा तो पूरी हो जाए।
नसरुद्दीन ने कहाः बात यह है कि दरअसल मैं सोचता हूं कि दुनिया में थोड़ा-बहुत सुधार हो जाए, फिर खरीदूंगा। अरे संसार का कोई भरोसा है, बदल-बदल जाता है। पहले बर्मा भारत में था; अगर तब खरीद लिया होता तो खराब हो जाता एटलस। फिर पाकिस्तान भारत में था, तब खरीद लिया होता--मुफ्त गया! फिर अभी- अभी पांच साल पहले बंगलादेश पैदा हो गया। सब निपट जाए एक दफा, तो मैं एटलस खरीदूं।
यह आदमी कभी एटलस खरीद नहीं पाएगा, यह खुद ही निपट जाएगा। यह बड़ा होशियार आदमी है। यह तुम जैसा आदमी है। तुम भी यही कर रहे हो।
तुम मुझसे पूछ रहे होः "आप अतीत-विरोधी हैं। क्या इससे युवकों में अराजकता पैदा होने का डर नहीं है?"
पहली तो बातः क्या तुम सोचते हो दुनिया में जो है आज, वह अराजकता नहीं है? और अराजकता कैसी होती है? इससे ज्यादा और अराजकता क्या होगी? इससे भी बदतर हालतों का इरादा रखते हो? सब तो टूटा-फूटा है। सब तो विकृत है, कुरूप है। सब तो गंदा है, दुर्गंधयुक्त है। सब तो सड़ रहा है। तुम्हारी राजनीति सड़ी हुई है, जिसके केंद्र पर सब घूमता है। तुम्हारी राजनीति में सिवाय बेईमानों के, लुटेरों के, किन्हीं और की कोई गति नहीं है। वे तुम्हारे मार्गदर्शक हैं। राहजन रहबर बने हुए हैं। जो तुम्हारी जेबें काटेंगे, गर्दनें काटेंगे, वही तुम्हारे रक्षक हैं। भक्षक रक्षक बने हुए हैं। तुम किस अराजकता की बात कर रहे हो? तुम्हारी राजधानियां पागलखानों में बदल गई हैं। तुम्हारी संसदों में क्या होता है? जूते फेंके जाते हैं, गालियां बकी जाती हैं, कुश्तमकुश्ती हो जाती है। संसद--जो तुम्हारी संस्कृति का आधार है; जो कि तुम्हारी सभ्यता का शिखर है। सभ्यता शब्द का अर्थ समझते हो? सभ्यता का अर्थ होता हैः सभा में बैठने की योग्यता। सभ्य उसको कहते हैं जिसमें सभा में बैठने की योग्यता हो। तुम यहां बैठे हो, यह सभ्यता है। लेकिन संसद में जो घटता है, वह तो असभ्यता है, निपट असभ्यता है! संसद में तो बिल्कुल ही, जो घट रहा है, असांसदिक है; उसमें बिल्कुल ही संस्कृति नहीं है, न सभ्यता है। एकदम अराजकता है। हरेक हर दूसरे की टांग खींचने में लगा हुआ है, उठा-पटक मची हुई है। दंगल जारी रहता है--अखंड दंगल चलता रहता है! कौन ऊपर है, कौन नीचे है, कुछ पक्का पता भी नहीं चलता। किसकी टांग किसके हाथ में है, कुछ पता नहीं चलता। कौन किसके पक्ष में है, कुछ पता नहीं चलता। सुबह कुछ, सांझ कुछ। अराजकता और किसको कहते हो?

तुम्हारे विश्वविद्यालय, जहां तुम सोचते हो शिक्षा मिल रही है, वहां सिवाय उपद्रव के और क्या पल रहा है? वहां आगजनी, गुंडागर्दी, इसके सिवाय और किस चीज का जन्म हो रहा है? और तुम भयभीत हो कि मेरी बात से कहीं अराजकता पैदा न हो जाए! यह अराजकता इसलिए पैदा हुई है कि हमने आदमी को वर्तमान में जीना नहीं सिखाया। हम उसे अतीत-उन्मुख बनाए हुए हैं या भविष्य-उन्मुख। और वर्तमान में जीना उसे आता ही नहीं। और वही एकमात्र है समय जीने का; और तो कोई समय जीने का होता नहीं। तो जीने की कला ही आदमी को नहीं आती।
शिक्षा महत्वाकांक्षा सिखाती है--भविष्य! यह बनो! वह बनो! शिक्षा सिखाती है दौड़ महत्वाकांक्षा की--ज्वरग्रस्त दौड़! फिर चाहे किसी भी कीमत पर हो, फिर शुभ-अशुभ का भी सवाल नहीं। जिंदगी छोटी है, शुभ-अशुभ का विचार करते रहे तो पिछड़ ही जाओगे। यहां तो धक्कमधुक्की करो। यहां तो शोरगुल मचाओ। जितनी गुंडागर्दी कर सकते हो, करो, उतने आगे निकल जाओगे। सभ्य तो रास्ते के किनारे खड़े हो जाते हैं, निकल जाने देते हैं उपद्रवियों को पहले। शोरगुल मचाने वाले, नारेबाजी लगाने वाले, घेराव-हड़ताल, मोर्चा निकालने वाले नेता हो जाते हैं। प्रधानमंत्री बनो! राष्ट्रपति बनो! शिक्षा महत्वाकांक्षा देती हैः खूब धन अर्जित करो! शिक्षा अहंकार को पोषित करती है। और अहंकार जहां है वहां अराजकता होगी। अहंकार अराजकता का आधार है, उसकी आत्मा है। और मैं सिखा रहा हूं निर-अहंकारिता और तुम कहते हो कि मेरी बातों से अराजकता पैदा हो जाएगी!
अराजकता, जो बातें चल रही हैं, उनसे पैदा हो गई है। रोज बढ़ती जा रही है। तीन हजार साल में पांच हजार युद्ध लड़े गए हैं, और क्या अराजकता चाहते हो? युद्ध ही युद्ध! सारी दुनिया की सत्तर प्रतिशत ऊर्जा, शक्ति युद्ध की तैयारी में लगती है। आदमी जैसे पागल है! जैसे कुछ और करने को है नहीं, बस मारना है और मरना है। बातें हम करते हैं कि जीओ और जीने दो! और तैयारी करते हैं कि मारो और मरो! गरीब से गरीब देश भी आतुर है--अणुबम बना ले, हाइड्रोजन बम बना ले। भूखे मर रहे हैं, पेट भरे हुए नहीं हैं, कपड़े तन पर नहीं हैं, भयंकर भुखमरी काली छाया की तरह डोल रही है, आधे आदमी अधनंगे हैं, आधे से ज्यादा भूखे हैं! बच्चे पैदा होते से ही भिखमंगे हैं, अनाथ हैं। लेकिन अणुबम बनाना है! एटम बम बनाना है! हाइड्रोजन बम बनाना है! युद्ध की तैयारी करनी है, क्योंकि पाकिस्तान युद्ध की तैयारी कर रहा है। और पाकिस्तान को युद्ध की तैयारी करनी है, क्योंकि तुम युद्ध की तैयारी कर रहे हो। यह बड़े मजे का खेल है। चीन को युद्ध की तैयारी करनी है, क्योंकि भारत कर रहा है; और भारत को करनी है, क्योंकि चीन कर रहा है। यह बड़ी मुश्किल का मामला है।
तुम देख लेते हो कि पड़ोसी दंड-बैठक लगा रहा है, तुम लगाने लगे। और पड़ोसी इसलिए लगा रहा है कि उसने देखा कि तुम लंगोट खरीद कर बाजार से लाए हो। उसने पहले से ही तैयारी शुरू कर दी। और तुम लंगोट इसलिए खरीद लाए कि तुमने दुखा कि पड़ोसी तेल की मालिश करवा रहा था। कहां से बातें शुरू हो रही हैं, कुछ समझ में नहीं आ रहा! और पड़ोसी इसलिए तेल की मालिश करवा रहा था कि तुम बैठे-बैठे सुबह मूंछें मरोड़ रहे थे। बस एक-दूसरे की देखा-देखी बात बढ़ती जाती है, बात चलती जाती है कि तुमने मूंछ क्यों मरोड़ी! तुम मूंछ पर ताव दे रहे हो, कुछ मतलब है। तैयारी करो!
घर में खाने को न हो, चूहे दंड पेलते हों--तुम भी पेलो! मगर दंड-बैठक लगाओ! लड़ना तो पड़ेगा ही!
सदियों ने तुम्हें यही सिखाया है कि मरने में बड़ी कला है। कि मरो--देश
के लिए; मरो--जाति के लिए; मरो--धर्म के लिए!
कल ही किसी ने मुझसे एक प्रश्न पूछा था कि आप देश-भक्ति के संबंध में क्यों कुछ नहीं कहते?
भैया, और कुछ कहने को बाकी है? इसी तरह की मूर्खतापूर्ण बातों ने तो तुम्हारी यह गति कर दी है। देश-भक्ति!
जमीन कहीं बंटी है? किस चीज को देश कहते हो? उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले अगर लाहौर पर बम गिरता तो तुम मरने को राजी होते--देश-भक्ति के लिए! और अब गिरे तो तुम फुलझड़ी-फटाके छोड़ोगे कि अच्छा हुआ। और देश! अब क्या हुआ देश? वही देश है। कुछ फर्क पड़ गया? लाहौर जहां था वहीं का वहीं है। जैसे

लोग लाहौर में रह रहे थे, वैसे ही लोग लाहौर में रह रहे हैं। अब भी वहां बच्चे, अब भी वहां पत्नियां, अब भी वहां पति, अब भी वहां बूढ़े मां और बाप, अब भी सब वैसा का वैसा है। मगर एक रेखा खींच दी गई नक्शे पर; जमीन पर तो कोई रेखाएं खींची नहीं जा सकतीं। जमीन तो अविभाज्य है। नक्शे पर एक रेखा खींच दी गई। अब वह पाकिस्तान हो गया। अब मिट जाए दुनिया से, तो तुम राजी। अब तुम्हारे भीतर कोई देश-भक्ति पैदा नहीं होती लाहौर के लिए।
पहले लाहौर और कराची और ढाका, ये सब पुण्यभूमि भारत हुआ करते थे। अब नहीं। पुण्यभूमि भी खूब बदलती है! पहले वहां भी देवता पैदा होने को तरसते थे। अब? अब लाहौर में देवता पैदा होने को नहीं तरसते? अब नहीं तरसते। देवताओं को भी पता चल गया कि यह पाकिस्तान है।
अरे पाकिस्तान है तो और भी तरसना चाहिए--पाकिस्तान यानी पवित्र भूमि! तुम अगर कहते हो कि भारत पुण्यभूमि है, तो वे कोई पीछे रहने वाले हैं! वे भी भारतीय ही हैं; उन्होंने नाम ही रख लियाः पाकिस्तान। तुमको तो कहना पड़ता है कि भारत पुण्यभूमि है; वह तो पाकिस्तान शब्द में ही डाल दिया उन्होंने-- पुण्यभूमि। अलग से कहने की कोई जरूरत नहीं; जब भी पाकिस्तान नाम लो, तुम पुण्यभूमि ही दोहरा रहे हो। पवित्र भूमि!
और देवता भी कम पड़ गए होंगे। क्योंकि जब भारत की आबादी दो करोड़ थी, बुद्ध के जमाने में, तब तैंतीस करोड़ देवता थे, वे तरसते थे भारत में पैदा होने को। अब मैं जरा मुश्किल में पड़ा हुआ हूं कि अगर कोई किसी दिन भूल-चूक से मुझसे यह प्रश्न पूछ ले तो मैं मुश्किल में पड़ जाऊंगा, क्या जवाब दूंगा! तैंतीस करोड़ कुल देवता हैं, सत्तर करोड़ तो पैदा ही हो चुके! अब ये और देवता कहां से आ रहे हैं? एक तो तैंतीस में से सत्तर कैसे हो गए, यह भी एक चमत्कार है! कि देवता भी खंड-खंड में पैदा हो रहे हैं, क्या मामला है! कि कहीं देवता की टांग पैदा हो गई, कहीं हाथ पैदा हो गया, कहीं सिर पैदा हो गया। और चले ही आ रहे हैं! और अभी भी तरस ही रहे हैं! अब पाकिस्तान में पैदा होने को नहीं तरसते!
ये देश-भक्ति की बातें सिखाई गई हैं तुम्हें, कि मर जाओ देश के लिए। तुम्हें धर्म की बातें सिखाई गई हैं, कि धर्म के लिए मर जाओ। इस्लाम खतरे में है, तो मुसलमान मरने को तैयार है। हिंदू धर्म खतरे में है, तो हिंदू मरने को तैयार है।
रहने दो! खतरे में है तो तुम्हारा क्या बिगड़ता है? हिंदू धर्म खतरे में है, इस्लाम धर्म खतरे में है--रहने दो। देखें, कैसे दिन और कितने दिन खतरे में गुजारता है! मगर नहीं; न इस्लाम खतरे में है, न हिंदू धर्म खतरे में है--तुम खतरे में पड़ जाते हो। ये नारे सब राजनीति के हैं। ये सब नारे उपद्रव के हैं। और तुम्हें हर चीज पर मरना सिखाया जाता है। कोई तुमसे यह तो कहता ही नहीं कि जीओ।
मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं कि हम तैयार हैं संन्यास के लिए। अगर आप हम से मरने को भी कहें तो हम तैयार हैं।
मैं उनसे कहता हूंः मैं मरने को कहता ही नहीं। मैं कहता हूं कि जीओ!
यह सुन कर उनका मुंह उदास हो जाता है, क्योंकि जीना जरा कठिन मामला है। मरना तो सरल बात है। चले गए नदी पर, कूद गए, कुएं में कूद गए, रस्सी में गला लटका लिया, जहर खा लिया, ट्रेन के नीचे लेट गए--मरने के तो हजार उपाय हैं। और एक क्षण में बात हो जाती है, कोई ज्यादा देर लगती नहीं। जीना लंबा सिलसिला है। हजार चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। मैं उनसे कहता हूंः संन्यास इसलिए लो कि तुम्हें एक नये ढंग का जीवन जीना है। मरने की क्या बात है? मौत तो आएगी, अपने आप आ जाएगी, तुम्हें इतनी क्या जल्दी पड़ी है? लेकिन लोगों का जीवन इतना दुखपूर्ण है कि वे किसी भी बहाने मरने को राजी हैं। और अच्छा सा कोई बहाना मिल जाए तो फिर कहना ही क्या--देश-भक्ति! धर्म-भक्ति! अच्छा सा कोई बहाना मिल जाए। और फिर यह भी उसमें भीतर तृप्ति होती है कि शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले! यह भी भीतर लगा रहता है कि अहा, एक दफे ही मरना है, फिर तो हजारों वर्ष तक मेले ही जुड़ते रहेंगे। अपनी कब्र में लेटे-लेटे मजा लेंगे मेलों का।
जिंदगी में तो कोई मेला जुड़ता नहीं और तुम सोचते हो मरने पर तुम्हारे मेला जुड़ जाएगा! कितने शहीदों की चिताओं पर मेले जुड़ रहे हैं? और ऐसे

शहीदों की चिताओं पर मेले जुड़ने लगें तो जिंदगी में और काम करने को ही न बचे। इतने शहीद हो चुके हैं कि सुबह से शाम तक मेले ही मेले जोड़ने पड़ें। शहीदों वगैरह की चिताओं पर मेले नहीं जुड़ते। हां, चिताओं पर मेले जुड़ते हैं--उन लोगों की, जो चालबाज हैं, बेईमान हैं, धूर्त हैं, पाखंडी हैं; जो जिंदगी भर भी तुम्हें सताते हैं और मर कर भी पीछा नहीं छोड़ते--उनकी चिताओं पर मेले जुड़ते हैं। शहीदों वगैरह के नाम पर कहां चिताओं पर मेले! शहीदों के नाम पर तो एक चिता बना देते हैं--अज्ञात शहीद की स्मृति में। अज्ञात शहीद की स्मृति में! अलग-अलग कहां बनानी! और एक दिन मना लेते हैंः शहीद दिवस। सब शहीदों के लिए निपटा दिया एक दिन में। और जुड़ते भी रहे मेले समझ लो, तो भी क्या होगा? तुम्हारी कब्र पर लोग फूल भी चढ़ाते रहे तो क्या होगा? जिंदगी में तो कोई गंध न मिली, कोई संगीत न मिला।
नहीं, मैं इस तरह की आत्मघाती प्रवृत्तियों को कोई बल नहीं देना चाहता। तुम्हारा अतीत आत्मघाती प्रवृत्तियों से भरा हुआ रहा है। मुसलमानों को समझाया गया कि तुम अगर मर जाओगे धर्म के युद्ध में तो स्वर्ग निश्चित है। इसलिए जेहाद परम पुण्य है। फिर तुमने कितने ही पाप किए हों, सब क्षमा। पापी से पापी व्यक्ति अगर धर्मयुद्ध में मरेगा तो वह सीधा स्वर्ग जाता है। उसे नरक वगैरह नहीं जाना पड़ता। स्वभावतः, भोले-भाले लोग राजी हो गए।
लेकिन अब मजा यह है कि धर्मयुद्ध हिंदू और मुसलमान लड़ रहे हैं, इसमें कौन धार्मिक है और कौन अधार्मिक है? हिंदू कह रहे हैं कि जो धर्मयुद्ध में मरेगा वह स्वर्ग जाएगा; मुसलमान कह रहे हैं कि जो धर्मयुद्ध में मरेगा वह स्वर्ग जाएगा। कौन धार्मिक है? कैसे तय होगा? कौन निर्णय करेगा?
अक्सर तो निर्णय बड़े अजीब ढंग से होता हैः जो जीत जाता है, वह निर्णायक हो जाता है। तुम कहते तो हो--सत्यमेव जयते! तुमने इस देश का महामंत्र बना लिया है--सत्यमेव जयते। कि सत्य की सदा विजय होती है। मगर मामला कुछ उलटा ही है। जिसकी विजय हो जाती है, लोग उसी को सत्य मानते हैं। जो हार जाता है, वह असत्य हो जाता है।
अगर कौरव जीत गए होते, तो तुम सोचते हो कि इतिहास यही होता जैसा अब है?
तब कौरवों के चापलूसों ने इतिहास लिखा होता। अभी पांडवों के चापलूसों ने इतिहास लिखा है। जो जीतेगा, उसके चमचे इतिहास लिखेंगे। जो हार ही गया, उसका तो इतिहास कौन लिखेगा! और अपनी पिटाई करवाएगा? मुर्दों का, हारों का कौन साथ देता है? कौरव हार गए तो वे अधार्मिक हो गए, दुष्ट हो गए। और पांडव जीत गए तो वे धार्मिक हो गए, वे पुण्यवान हो गए। वे धर्म के लिए लड़ रहे थे। मगर कौन निर्णय करे? कैसे निर्णय करे? किस तरह का धर्म है? युधिष्ठिर जुआ खेलते हैं--और धर्मराज हैं! और जुआ ही नहीं खेलते, अपनी पत्नी को दांव पर लगा देते हैं--और धर्मराज हैं! तुम तो जरा अपनी पत्नी को दांव पर लगा कर आओ, तब तुम्हें कोई धर्मराज कहे! फौरन पुलिस थाने में पहुंचाए जाओगे। कौन अपनी पत्नी को दांव पर लगा सकता है? पत्नी कोई वस्तु है? लेकिन उन दिनों धर्मराज भी यही सोचते थे कि स्त्री भी संपदा है। अभी भी हमारे पास ये शब्द, गंदे शब्द बचे हैंः स्त्री-संपदा। अब भी बाप अपनी बेटी का विवाह करता है तो कहता हैः कन्यादान!
जीवंत व्यक्तियों का दान कर रहे हो? गऊ-दान करते-करते कन्यादान करने लगे? एक तो गऊ का भी नहीं करना चाहिए, क्योंकि गऊ को माता कहते हो, माता का दान कर रहे हो, कुछ शर्म नहीं आती? कुछ संकोच नहीं होता? दान चीजों का होता है।
पत्नी को दांव पर लगा दिया! और पत्नी को पांचों भाइयों ने बांट लिया था। मगर जो जीत गया, उसकी पताका है। तो द्रौपदी का नाम महासतियों में है; साधारण सती नहीं है द्रौपदी, महासती! प्रातः-स्मरणीय! और पांच पति थे। और पतियों ने बांट लिया था सिर्फ इसलिए कि द्रौपदी इतनी सुंदर थी कि पांचों में कलह होने का डर था। उस कलह को बचाने के लिए यही एक उपाय दिखा, यही एक समझौता दिखाई पड़ा कि दिन बांट लो। स्त्री तो वस्तु थी, बांटी जा सकती है; आज तुम उपयोग कर लो, कल तुम उपयोग कर लेना। जैसे कोई साइकिल हुई कि कार हुई, कि दिन बांट लिए! और ये धर्मराज हैं!

लेकिन जीत गए तो उनके चापलूसों ने, उनके खुशामदियों ने इतिहास लिखा।
जो जीत जाए उसका इतिहास लिखा जाता है।
तुम जरा सोचो, दूसरे महायुद्ध में अगर हिटलर जीत गया होता तो चर्चिल, रूजवेल्ट, स्टैलिन, ये सब राक्षस-पुरुष सिद्ध किए जाते। मुकदमे चलते अंग्रेज जनरलों पर, अमरीकन जनरलों पर। और दुनिया में प्रतिष्ठा होती अडोल्फ हिटलर की, मुसोलिनी की, तोजो की। जापान, इटली और जर्मनी, इन तीन की उदघोषणा होती कि ये हैं धर्मराज्य! स्वभावतः, जो जीतेगा उसकी स्तुति करने वाले लोग मिल जाएंगे। कौन निर्णायक है?
पंडित-पुरोहित निर्णय कर रहे हैं और तुम उनके निर्णयों के अनुसार अब
तक जीते रहे हो। तुम अपने निर्णायक कब बनोगे? मेरा इतना ही निवेदन हैः अपने निर्णायक बनो। अपने जीवन पर पुनर्विचार करो। अतीत की बंधी हुई धारणाओं से मत जीओ। काफी जी लिए, पाया क्या? गंवाया बहुत। चुनौतियां तो आएंगी--अगर तुम लकीरों को अतीत की छोड़ोगे, रूढ़ियों को छोड़ोगे, बंधी-बंधाई लीकों को छोड़ोगे। चुनौतियां आएंगी, चुनौतियां शुभ हैं। क्योंकि चुनौतियों का सामना करने से ही विकास होता है, आत्मबल पैदा होता है, संकल्प का जागरण होता है। मैं इसको अराजकता नहीं कहता, इसे चुनौती कहता हूं।

अस्त होते सूरज को
पश्चिम क्षितिज पर
रोक रखने का
करो मत यत्न-साहस,
रुक न पाएगा,
तुम्हारा जोर, हठ, संघर्ष सारा व्यर्थ जाएगा।

मोह, पूर्व प्रकाश का
मैं समझता हूं
भय, चली आती निशा के
अंधकार-प्रसार का,
जिसमें दिशाएं डूब जाएंगी
न देंगी काम आंखें,
और फैले हाथ की फैली अंगुलियां यह तिमिर का सिंधु
कितना थाह पाएंगी।
और सबसे बड़ी,
मैं हूं जानता, चिंता तुम्हारी नई उम्रों के लिए
जिनको उजाला चाहिए
वे हंसें-खेलें,
बढ़ें, विकसें!

आंख ऊपर तो उठाओ
और कुछ समझो
सितारों के इशारे,
समय का यह चक्र चलता जा रहा है जो गया, फिर आ रहा है।

पूर्व-मुख हो
ध्यान से अंको
सुनाई पड़ रही हैं
पायलें नूतन उषा किरणावली की, और अब टापें तुरंगों की
नया रथ नये रवि का खींचते जो

सतत बढ़ते आ रहे हैं
उधर देखो,
रात के खेमे उखड़ते जा रहे हैं।

ज्योति केवल चाहते?
यह ताप का गोला उठा सा।
मैं समझता हूं
नये से जो पुरानों की निराशा विगत सुरुजों की विगत गाथा संजोए रहो मत खोए हुए से
आग से जो काम चलता है
नहीं होगा धुएं से।

नई उम्रों को न रोको
नई ज्वाला से
अभय हो
खेलने दो,
जूझने दो।
आग ने उनको बुझाई है पहेली जो
उन्हीं को बूझने दो!

इतना क्या घबड़ाना? इतनी क्या नपुंसकता कि कहीं युवकों के जीवन में अराजकता न फैल जाए? युवकों को जूझने दो, जीवन की समस्याओं को सुलझाने दो। तुम बंधे-बंधाए समाधान मत पकड़ाओ। तुम्हारे समाधानों का समय गया। कभी सही रहे होंगे। और कौन जाने कभी सही थे भी कि नहीं! मगर रहे भी हों कभी सही तो आज तो सही नहीं हैं। कल के गणित आज व्यर्थ हो गए हैं। और तुम उन्हीं को पीटे चले जा रहे हो। और तुम कहते होः यह तो बाप-दादाओं की परंपरा है! यह तो हमारे बाप-दादों ने भी ऐसा किया था, वैसा ही हम करेंगे। हम उनकी लीक कैसे छोड़ दें? अराजकता न हो जाए! तो तुम मुर्दे ही ढोते रहोगे?
जब तुम्हारे पिता मर जाते हैं या तुम्हारी मां चल बसती है, माना कि तुमने उन्हें प्रेम किया था और तुम्हारी आंखें गीली हैं, फिर भी तो तुम उन्हें मरघट पहुंचा आते हो, फिर भी तो तुम उन्हें चिता पर जला देते हो। कोई लाश को घर में तो नहीं रख लेते। अगर लोग लाशों को घरों में रखने लगें तो जिंदा रहना मुश्किल हो जाएगा। एक-एक घर में कितने लोग मर चुके हैं! अगर इतनी लाशें घर में सड़ी हुई पड़ी हों, तो जिंदों का क्या होगा? बच्चों का क्या होगा? वे तो जी ही न सकेंगे। वे तो सड़ जाएंगे। वे तो दुर्गंध में दब जाएंगे और मर जाएंगे। लाशों में कीड़े पड़ जाएंगे। और लाशों को खाते-खाते कीड़े, जो जिंदा हैं, उनको खाने लगेंगे।
और यही हुआ है विचार के तल पर। मरी-मराई लाशों को तुम ढो रहे हो। पिटी- पिटाई धारणाओं को तुम ढो रहे हो। और तुम डरते हो कि कहीं इनको छोड़ा तो कहीं मार्गच्युत न हो जाएं!
उनको पकड़े हो इसलिए मार्गच्युत हो। उनको छोड़ो तो तुम्हारी आंखें धुएं
से मुक्त हों। तुम साफ-साफ देखो। तुम्हें भी जीवन दिया है परमात्मा ने। तुम्हें भी चेतना दी है। तुम्हें भी बोध दिया, बुद्धि दी है। तुम समस्याओं से जूझो। अपनी बुद्धि की तलवार को समस्याओं की शिला पर धार दो। अपने चैतन्य को चमकाओ समस्याओं से जूझ कर। उलझो तूफानों से। क्योंकि उसी उलझने में, तूफानों से लड़ने में ही, तुम्हारे जीवन में जो छिपे हुए बीज पड़े हैं, वे फूटेंगे। तुम्हारी जो संभावना है, वह वास्तविक बनेगी।
डरो मत। भयातुर मत जीओ। हम बड़े भयभीत लोग हैं। हम बहुत कायर हो गए हैं। हम तो बस जहां हैं, जैसे हैं, किसी तरह गुजार लें, सीमा के बाहर न जाएं। लक्ष्मण-रेखाएं खींची हुई हैं! चारों तरफ लक्ष्मण-रेखाएं, लक्ष्मण-रेखाएं हैं। इस रेखा के पार मत जाना, उस रेखा के पार मत जाना--उससे ही हम मारे गए, बुरी तरह मारे गए!

सदियों तक इस देश को समझाया गयाः समुद्रों को मत लांघना, समुद्रों को लांघने में पाप है। सो इस देश ने समुद्र न लांघे। हालांकि सबसे पहले नावें हमने बनाईं, लेकिन हम समुद्र न लांघे। क्योंकि कौन जाए परदेश! परदेश जो जाए वह भ्रष्ट हो जाए। म्लेच्छों से मिले कौन! म्लेच्छों के देश जाओगे, उनका भोजन करोगे, उनके साथ रहोगे, उनकी भाषा सीखोगे, म्लेच्छ हो जाओगे। तो यह पुण्यभूमि को छोड़ कर जाए कौन! तो हम कहीं न गए। हम यहीं सड़ते रहे। सारी दुनिया ने यात्राएं कीं। स्वभावतः वे जूझे संघर्षों से, तूफानों से। वे मालिक बने और हम गुलाम बने। जब कि सबसे पहले हमने नावें खोजीं; सबसे पहले जहाज हमने बनाए थे; सबसे पहले गणित हमने खोजा। हम इस जमीन की सबसे पुरानी जाति हैं और सबसे दीन-हीन! यह बड़ी हैरानी की बात है। यह किस तरह की दुकान हम कर रहे हैं, जहां घाटा ही घाटा लगता है, जब देखो तब दिवाला! दीवाली कभी होती ही नहीं। दीये कभी जलते नहीं। कुछ भी करो, दिवाला।
कुछ मौलिक भूलें हो रही हैं। हम लकीर के फकीर हो गए हैं। जो लोग इस तरह लकीर के फकीर होकर जीएंगे, उनका संबंध अस्तित्व से टूट जाता है। अस्तित्व से संबंध बनाए रखना हो तो तुम्हें रोज-रोज अतीत के प्रति मरना ही होगा। अगर जिंदा रहना है तो अतीत के प्रति मरो, ताकि वर्तमान में जी सको। रोज-रोज अतीत को छोड़ते चलो। रोज-रोज अतीत की धूल को झाड़ते चलो। जैसे रोज स्नान कर लेते हो न, ताकि धूल न जम जाए, ऐसे ही रोज-रोज अपनी प्रतिभा को भी स्नान करा लेना चाहिए, ताकि उस पर भी धूल न जमे, ताकि तुम ताजे रहो दर्पण की तरह। और जो तुम्हारे सामने मौजूद है, उसका प्रतिफलन तुम्हारे भीतर बने। और तुम उसके साथ जो है, कुछ करने में समर्थ हो पाओ।
इस देश ने बहुत कुछ खोजा, लेकिन हमारी परंपरागत, रूढ़िगत चेतना के कारण
हम गंवाते आए। हमने बुद्ध को खोजा, लेकिन बुद्ध को गंवा दिया। क्योंकि बुद्ध ने जो बातें कहीं, वे हमारी रूढ़ि के अनुकूल नहीं पड़ती थीं। सारा एशिया बुद्ध से आंदोलित हो उठा, सिर्फ भारत ने बुद्ध को गंवाया। यह जरा हैरानी की बात है! हमने बुद्ध को जन्माया। बुद्ध हमारी चेतना के शिखर थे, हमारे बीच खिले सबसे बड़े कमल थे। जिस सहस्रदल-कमल की हम बात करते हैं, समाधि की, उसको पाने वाला सबसे बड़ा व्यक्ति हमारे भीतर पैदा हुआ। सारे एशिया ने रस लूटा। और हम प्यासे के प्यासे बैठे रहे। क्योंकि बुद्ध ने एक बात कह दी, जो हमें अखर गई। बुद्ध ने कहाः वेदों से मुक्त हो जाओ। और वेद तो हमारा अतीत हैं, उनसे हम मुक्त नहीं हो सकते। हमने बुद्ध को छोड़ दिया, हम वेदों से मुक्त न हुए। बुद्ध ने कहाः परंपरा से मत जीओ। बुद्ध ने तो यह भी कहा कि मुझे भी परंपरा मत बना लेना। अप्प दीपो भव! अपने दीये खुद बनो। कुछ मैं कहूं, वैसा ही मत जीओ। खुद खोजो जीना। जीवन तुम्हारा है, जीना तुम्हें है, हारना तुम्हें है, जीतना तुम्हें है, गंवाना तुम्हें है, पाना तुम्हें है--कोई दूसरा तुम्हारा निर्णायक कैसे हो सकता है?
लेकिन हम तोतों की तरह हो गए हैं। हम दोहरा रहे हैं। बुद्ध ने हम से कहाः तोता होना छोड़ो। हम नाराज हो गए। हमने बुद्ध की जड़ें उखाड़ कर फेंक दीं।
भारत से बुद्ध धर्म विलुप्त हो गया। सारे एशिया ने सुगंध पाई। सारे एशिया ने प्रकाश पाया। न मालूम कितने दीये जले! लेकिन हम अमावस की रात में ही घिरे रहे। जो हमने बुद्ध के साथ किया, वही हम औरों के साथ भी करते रहे हैं।
मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि तुम अतीत के दुश्मन हो जाओ। मैं सिर्फ इतना ही कह रहा हूं--एक तथ्य--कि जो जा चुका, जा चुका। बीती ताहि बिसार दे! उससे अटके मत रहो। आज जीना है, अभी जीना है। इसलिए धूल नहीं होनी चाहिए चित्त पर। फिर धूल चाहे स्वर्ण-धूल क्यों न हो, कितनी ही कीमती क्यों न हो, उसे हटाना ही होगा। और तभी तुम योग्य बन सकोगे इस पृथ्वी पर रहने के।
और जगत इतने जोर से बदल रहा है, क्रांति इतनी त्वरा से हो रही है, नई-नई जीवन-दृष्टियां इतनी तीव्रता से पैदा हो रही हैं कि अगर तुम उन सबका स्वीकार न कर सको, उन्हें अंगीकार न कर सको, तो तुम पिछड़ जाओगे। किसी और की हानि नहीं है, सिर्फ तुम पिछड़े रह जाओगे।

भारत में बहुत कम लोग हैं, जो समसामयिक हैं। और इसलिए हमें सड़ी-गली बातें बहुत जमती हैं। महात्मा गांधी रेलगाड़ी के विरोध में थे, टेलीग्राफ के विरोध में थे, बिजली के विरोध में थे, रेडियो के विरोध में थे। हमें खूब जमे! हमने कहाः महात्मा हैं! महात्मा ऐसा होना चाहिए! हमें बात जमी, क्योंकि पुराने से मेल खाई। पुराने से तालमेल पड़ा हमारा। ऋषि-मुनि भी कहीं रेलगाड़ी में चलते थे! महावीर स्वामी पैदल चलते थे। साइकिल तक पर नहीं चलते थे, रेलगाड़ी की तो बात दूसरी। ऋषि-मुनियों की संतान क्यों रेलगाड़ी में चले? अरे अपने बाप-दादों की कुछ प्रतिष्ठा रखो! तो हमें महात्मा गांधी की बात जमी।
लेकिन यह बात अत्यंत घातक है। इससे तुम पिछड़ जाओगे। इससे तुम बिछुड़ जाओगे जगत के विकास से। इससे तुम घसिट जाओगे पीछे, घसिट ही रहे हो।
नये का स्वागत करने की सामर्थ्य जुटाओ। नये ऊगते सूरज को नमस्कार करो, क्योंकि उसी से होगा जीवन का वर्षण; उसी से फूल खिलेंगे, पक्षी गीत गाएंगे; उसी से वृक्ष हरे होंगे, उसी से जीवन चलेगा। तुम अटके हो, तस्वीरें लिए बैठे हो--अतीत के सूरजों की तस्वीरें! उनकी पूजा कर रहे हो। और असली सूरज द्वार पर खड़ा है; उसकी पूजा नहीं, उसका स्वीकार नहीं; उसके प्रति आंख बंद किए हो। कैसा मजा है!
और तुम पूछते हो महेश कि मेरी बातों से कहीं अराजकता तो न फैल जाएगी?
अगर फैलती हो अराजकता तो फैल ही जाए। एक बार यह भी अच्छा होगा। एक बार अराजकता ही हो जाए। एक बार सब टूट-फूट ही जाए। ये खंडहर गिर ही जाएं। ये इतने गिर जाएं, ताकि तुम इनमें बिल्कुल न रह सको। क्योंकि जब तक ये बिल्कुल भूमिसात न हो जाएंगे, तब तक तुम इन्हीं में किसी न किसी तरह के टेके लगाते रहोगे।
आदमी बड़ी मुश्किल से पुराने को छोड़ता है। छाती फटती है।
मैंने सुना, एक चर्च था एक गांव में--बहुत पुराना, बहुत जीर्ण-शीर्ण। इतना जीर्ण-शीर्ण, कि उसके भीतर कोई जाकर प्रार्थना करने से डरता था। कब गिर जाए, पता नहीं! हवा जोर से चलती थी, वह कंपता था। बादल गरजते थे तो गांव के लोग समझते थे, अब गिरा, तब गिरा। औरों की तो बात छोड़ दो, उस चर्च का जो पादरी था, वह भी बाहर से ही नमस्कार करके लौट जाता था। आखिर पादरी और चर्च के संस्थापक मंडल की बैठक हुई! वह बैठक भी बाहर ही हुई, कि अब कुछ करना होगा। इस चर्च में कोई आता नहीं। तो उन्होंने कहा कि करना तो जरूर होगा, लेकिन चर्च प्राचीन है, बहुत प्राचीन है, अति प्राचीन है। बाप-दादों की वसीयत है। इसे सम्हाल कर रखना चाहिए। कहा कि वह तो ठीक है, मगर अब कौन सम्हालेगा, कैसे सम्हालोगे! अब तो कोई आता भी नहीं। अब तो किसी से कहो तो वह कहता है, हमें मरना है क्या? तुम जाओ तुम्हें मरना हो तो। हां, कभी-कभी किसी को आत्महत्या करनी होती है तो वह आकर भीतर बैठ जाता है कि शायद गिर जाए मौके पर तो अच्छा, और तो कोई कभी नहीं आता।
मजबूरी में उन्हें निर्णय लेना पड़ा कि इसे गिराएंगे। तो उन्होंने प्रस्ताव पास किए। पहला प्रस्ताव, कि हम अत्यंत दुखी हृदय से, बोझिल हृदय से, छाती फटती है, मगर फिर भी यह निर्णय लेते हैं कि पुराने चर्च को गिराएंगे। दूसरा प्रस्ताव कियाः लेकिन नया चर्च हम बिल्कुल पुराने जैसा ही बनाएंगे; उसी जगह पर जहां पुराना चर्च है। इसी तरह की दीवालें, यही नक्शा, यही द्वार, यही दरवाजे। तीसरा प्रस्ताव किया कि नये चर्च में कोई भी नई चीज नहीं लगाई जाएगी, पुराने चर्च की ही चीजों का उपयोग करेंगे--यही ईंटें फिर से जोड़ेंगे, और यही खिड़कियां, यही दरवाजे, यही पत्थर, यही सीढ़ियां, यही छप्पर फिर से चढ़ाएंगे। एक दफा उतार कर साफ-सुथरा करके फिर से मजबूती देकर इसको खड़ा करेंगे। और चौथा अंतिम प्रस्ताव उन्होंने पास किया कि जब तक नया बन कर तैयार न हो जाए, तब तक पुराने को गिराएंगे नहीं।
तो मैं कहता हूं, एक दफा अराजकता हो ही जाए। तुमसे तो गिरेगा नहीं पुराना, तुम तो गिरा न सकोगे, यह अपने से ही गिर जाए। मगर मैं कोई अराजकतावादी नहीं हूं। सच पूछो तो मैं जीवन को एक गहरा अनुशासन देना चाहता हूं। लेकिन वह अनुशासन ऊपर से आरोपित नहीं होना चाहिए; वह अनुशासन भीतर के बोध से आविर्भूत होना चाहिए। वह अतीत से संचालित नहीं होना चाहिए; वर्तमान से स्फूर्त होना चाहिए। वह कणाद, कपिल, पतंजलि, इनसे नियामित नहीं

होना चाहिए। वह प्रत्येक व्यक्ति की अपनी चैतन्य की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। जब अनुशासन तुम्हारे भीतर से, तुम्हारे बोध से पैदा होता है, तो उस अनुशासन में एक सौंदर्य होता है, एक सत्य होता है, एक प्रामाणिकता होती है। वह अनुशासन तुम्हें पाखंडी नहीं बनाता।
अभी तो तुम्हारा जो अनुशासन है, वह पाखंड है। मंदिर में तुम कुछ और, मंदिर के बाहर तुम कुछ और। दुकान पर तुम कुछ और, घर में तुम कुछ और। तुम्हारे कितने चेहरे हैं! तुम्हारे इतने चेहरे हैं कि शायद तुम्हें भी ठीक-ठीक पता नहीं कि कौन सा असली है और कौन सा नकली है। तुम गिरगिट हो गए हो। तुम रंग बदल लेते हो। मंदिर गए तो एक रंग बदल लिया। मंदिर जाते हैं लोग तो कैसे बिल्कुल भक्तिभाव से चले जाते हैं! टीका-तिलक लगा लिया, राम-राम जपने लगे, हाथ में माला ले ली। उनको देखो जरा, तो ऐसे लगते हैं कि अहा, कैसे पावन! कैसे पवित्र! मगर बस यह मंदिर जाते समय चेहरा होता है उनका। इन्हीं सज्जन को दुकान पर मिलो, तो तुम बिल्कुल और ही आदमी पाओगे। शायद चंदन वगैरह अब भी लगा हो, मगर सूख चुका होगा। माला शायद अब भी हाथ में लिए हों, मगर वह औपचारिक होगी। चेहरे पर अब तुम कोई वह भाव न पाओगे।
एक धार्मिक आदमी के पास मुल्ला नसरुद्दीन चंदा मांगने गया--सोच कर कि धार्मिक आदमी है और काम ऐसा शुभ है कि जरूर चंदा देगा। रोज-रोज देखता था इसे मंदिर जाते--सिर्फ अंगोछा लगाए, गंगा मैया में नहा कर, तिलक-चंदन लगाए, माला हाथ में लिए, राम-राम जपता हुआ। मुल्ला बहुत प्रभावित हुआ था। एक विधवा स्त्री मर रही थी, उसके लिए दवा-दारू की जरूरत थी। सोचा कि किसके पास जाएं? इसी धार्मिक आदमी की याद आई। पहुंचा उस आदमी के दफ्तर में। वहां तो रंग-ढंग और थे। आदमी तो वही था, मगर वही नहीं भी था। चेहरे में वह बात ही नहीं थी। वह भक्ति-भाव बिल्कुल नहीं था। अचानक जैसे, सुबह जो फूल खिलते थे चेहरे पर, वे नहीं खिल रहे थे, बिल्कुल मरुस्थल था, चेहरा बिल्कुल सूखा हुआ था। नसरुद्दीन पहले तो डरा भी कि इससे कुछ कहना कि नहीं! फिर उसने पूछा कि आप वही हैं न जो रोज सुबह गंगा मैया में स्नान करके आते हैं?
उसने कहाः हां, मैं वही हूं। क्या चाहते हो?
उसने ऐसी कड़की से पूछा कि मुल्ला की हैसियत कुछ थोड़ी-बहुत बची थी, वह
भी खो गई। मुल्ला ने कहा कि अब तो मेरी कहने तक की हिम्मत नहीं हो रही, लेकिन आ गया हूं सो कहे देता हूं। मगर क्षमा करें, मैं तो उसी सुबह के भबके में आ गया।
उस आदमी ने कहाः सुबह के भबके में कई आ जाते हैं। और मैं देख कर ही समझ गया कि तुम चंदा मांगने आए हो। चंदा मांगने वालों की शक्लों से मैं परिचित हूं। वह तो अच्छा हुआ कि बाहर ही तुम्हें धक्के देकर नहीं निकाल दिया, नहीं तो चंदा मांगने वालों को हम बाहर ही निकलवा देते हैं। तुम पहली दफा आए हो, इसलिए मेरे चपरासी को पता नहीं कि किसलिए आए हो। बोलो क्या है?
तो मुल्ला ने कहा कि एक विधवा स्त्री मर रही है, उसकी हालत बिल्कुल खराब है, दवा-दारू की जरूरत है।
उस आदमी ने कहा कि खैर तुम आ गए, तो एक पहेली बुझाओ। अगर बुझा दोगे तो दवा-दारू का खर्चा मैं उठा लूंगा। मेरी दो आंखों में एक आंख नकली है। कौर सी नकली है और कौन सी असली है, यह बताओ।
मुल्ला ने एक क्षण गौर से देखा और कहा कि आपकी बाईं आंख नकली है।
वह आदमी तो बड़ा हैरान हुआ। उसने कहाः तुमने कैसे पहचाना?
मुल्ला ने कहाः बात साफ है। आपकी बाईं आंख नकली ही होनी चाहिए। उसमें थोड़ा दया-भाव मालूम पड़ता है। आपकी असली आंख देख कर तो मेरे प्राण सूखे जा रहे हैं। और भूल हो गई। अब कभी न आऊंगा। कोई मुझे अपनी पत्नी को थोड़े ही विधवा करवाना है। अब कभी नहीं। जो गलती हो गई, क्षमा करना।
दुकानों पर और चेहरे हैं लोगों के, बाजार में और चेहरे हैं, मंदिरों में और चेहरे हैं। चेहरे ही चेहरे हैं। और तुम कितने चेहरे दिन में बदलते हो, कहना मुश्किल है।
जार्ज गुरजिएफ, पश्चिम का एक बहुत अदभुत सदगुरु हुआ। वह अक्सर अपने शिष्यों को यह समझाने के लिए कि आदमी के पास कितने चेहरे हैं, एक प्रयोग किया करता था। दो शिष्य बैठे हों--एक बाएं, एक दाएं; वह एक की तरफ इस तरह देखेगा जैसे मार ही डालेगा और दूसरे की तरफ ऐसे देखेगा जैसे अमृत की वर्षा

कर रहा है! दोनों में बाद में कलह हो जाएगी। एक कहेगा कि बहुत दुष्ट आदमी है, इसके पास अब तो मैं जाने से भी डरूंगा। दूसरा कहेगा कि तुम कह क्या रहे हो! इससे ज्यादा प्यारा आदमी मैंने नहीं देखा। उसकी आंखें देखते थे, कैसी अमृत बरसा रही थीं!
उनका विवाद हल न होता तो वे गुरजिएफ के पास आते। गुरजिएफ कहतेः तुम दोनों ठीक कह रहे हो। मैं अलग-अलग चेहरे दिखा रहा था। एक चेहरा इसको दिखला रहा था, एक तुमको। मैं तुमसे यह कह रहा था कि यही हालत तुम्हारी है, लेकिन तुम होशपूर्वक नहीं कर रहे हो, मैं होशपूर्वक कर रहा हूं।
पत्नी के पास तुम्हारा एक चेहरा होता है, प्रेयसी के पास तुम्हारा दूसरा चेहरा होता है। प्रेयसी के पास तुम कैसे गदगद दिखाई पड़ते हो! पत्नी के पास तुम कैसे उजड़े-उजड़े मालूम होते हो, उखड़े-उखड़े, भागे-भागे!
दो आदमी बैठे देर तक शराबखाने में शराब पीते रहे। पहले ने दूसरे से पूछा कि भाईजान, आप इतनी देर-देर तक यहां क्यों बैठे रहते हैं?
उसने कहा कि जाऊं तो कहां जाऊं? घर में कोई है ही नहीं। अविवाहित हूं। पहले को तो नशा चढ़ रहा था, एकदम उतर गया। उसने कहाः कहते क्या हो! अविवाहित होकर और आधी-आधी रात तक यहां बैठते हो! अरे मैं तो यहां इसलिए बैठा हूं कि जाऊं तो कहां जाऊं, घर में पत्नी है! जब बिल्कुल नशे से भर जाता हूं, जब ऐसी हालत आ जाती है कि अगर सिंहनी की मांद में भी मुझे जाना पड़े तो भी जा सकता हूं, क्योंकि होश ही नहीं रहता--तब घर जाता हूं। फिर मुझे पता नहीं क्या गुजरती है।
पाखंड पैदा हुआ है तुम्हारे अनुशासन से, तुम्हारे धर्म से। इस पाखंड
का मैं निश्चित विरोधी हूं। इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं चाहता हूं कि लोग अराजक हो जाएं, स्वच्छंद हो जाएं। इसका सिर्फ इतना ही अर्थ है कि मैं चाहता हूं लोग स्वतंत्र हो जाएं।
स्वच्छंद शब्द भी हमने खराब कर लिया है, नहीं तो बहुत प्यारा है। उसका अर्थ उच्छृंखल कर लिया, करना नहीं चाहिए। स्वच्छंद का अर्थ होता हैः स्वयं के छंद में आबद्ध। एक भीतरी संगीत में लयबद्ध।
स्वच्छंद बड़ा प्यारा शब्द है। स्वतंत्र से भी प्यारा शब्द है। स्वतंत्र में भी थोड़ी सी तांत्रिकता रहती है, थोड़ी यांत्रिकता रहती है, थोड़ी औपचारिकता रहती है। स्वच्छंदता में तो सिर्फ एक गीतमयता है, एक लयबद्धता है--स्वयं के छंद में जो आबद्ध है।
बुद्ध स्वच्छंद हैं। और ऐसे ही व्यक्ति वस्तुतः अनुशासित भी; लेकिन अनुशासन भीतर से आता है। यह ऊपर से थोपा गया आचरण नहीं है।
मैं आचरण-विरोधी हूं, अंतस का पक्षपाती हूं। अंतस से आचरण आए तो शुभ।
और जबरदस्ती तुम ऊपर से थोप लो--क्योंकि लोग कहते हैं, क्योंकि परिवार कहता है, क्योंकि परंपरा कहती है--तो तुम दो हिस्सों में बंट जाओगे। भीतर तुम कुछ और, बाहर तुम कुछ और। तुम्हारी जिंदगी में तब दो दरवाजे हो जाएंगे--एक तो बैठकखाना, जहां तुम मिलते हो एक ढंग से; और एक भीतर का दरवाजा, पीछे का दरवाजा, जहां तुम्हारी असली शक्लें देखी जाती हैं। बाहर तो तुम मुस्कुराते हुए मिलते हो। वह मुस्कुराहट कूटनीतिक है, राजनैतिक है।
राजनेता तो मुस्कुराते ही रहते हैं। कहीं कोई उनके हृदय में मुस्कुराहट नहीं होती। और जब चुनाव आता है, तब तो मुस्कुराहट का एकदम मौसम आता है! जो देखो वही मुस्कुरा रहा है। जैसे वसंत में फूल खिलते हैं न, ऐसे चुनाव में मुस्कुराहटें खिलती हैं। जिनकी शक्ल पर मुस्कुराहट जैसी चीज बिल्कुल ही असंभव मालूम हो--जैसे मोरारजी देसाई, जिनकी शक्ल और मुस्कुराहट में कोई संबंध नहीं मालूम होता--वहां भी मुस्कुराहट आ जाती है! पद पर पहुंचते ही मुस्कुराहट खो जाती है। क्या जरूरत रही! वह तो खुशामद थी लोगों की।
तुम देखते हो, कार्टर जब चुनाव लड़ा, तब उसके बत्तीसों दांत गिन सकते थे। अब कितने गिन सकते हो? धीरे-धीरे कम होते गए दांत। अब तो दांत वगैरह दिखाई नहीं पड़ते। अब तो कार्टर वेदांती हो गए हैं। अब गई वह बत्तीसा- मुसकान। अब तो भूल-भाल गए, चौकड़ी भूल गई। मगर अभी चुनाव फिर आ रहा है, फिर मुस्कुराहट आ जाएगी। वसंत आ रहा है फिर, फिर मुस्कुराहटें लगेंगी।

लेकिन तुम भी छोटे-मोटे तल पर यही कर रहे हो। जब किसी से काम होता है
तो तुम मुस्कुराहट से मिलते हो; और जब किसी से काम नहीं होता तो तुम यूं गुजर जाते हो जैसे पहचानते भी नहीं। अपने भी अजनबी हो जाते हैं जब काम नहीं। और जब काम होता है तब अजनबी भी अपने हो जाते हैं। इसको मैं आचरण नहीं कहता। इसको मैं कोई व्यवस्था नहीं कहता। यह तो थोथा पाखंड है।
महेश, इस पाखंड से मुक्त होना आवश्यक है, तभी कोई व्यक्ति जीवन में वस्तुतः धार्मिक हो पाता है। धार्मिक होना एक क्रांति है। और धार्मिक होने के लिए निश्चित एक तरह की अराजकता से गुजरना पड़ता है। क्योंकि सब पुराना कूड़ा-कर्कट निकाल कर बाहर करना होता है। पुराने खंडहर गिराने पड़ते हैं, तभी नये भवन खड़े हो सकते हैं।

दूसरा प्रश्नः
रहिमन बिआह व्याधि है, सकहु तो लेहु बचाय।
पांयन बेड़ी परत है, ढोल बजाय-बजाय।।
रहीम के इस दोहे से क्या आप सहमत हैं?

चैतन्य कीर्ति! रहीम जैसे व्यक्ति बात तो सदा पते की कहते हैं, अनुभव
की कहते हैं। रहीम कोई बुद्धपुरुष नहीं हैं, लेकिन बड़े अनुभवी व्यक्ति हैं। जीवन को जीया है, उसके मीठे-कड़वे अनुभव लिए हैं। सार की बात कह रहे हैं। ठीक कह रहे हैंः रहिमन बिआह व्याधि है! एक बीमारी है।
विवाह का क्या अर्थ? जब तक तुम्हें दूसरे की आवश्यकता है, तब तक तुम बीमार हो। जब तक तुम स्वयं होने में समर्थ नहीं हो, तब तक तुम बीमार हो। जब तक तुम अपने एकांत में आनंदित नहीं हो सकते, तब तक तुम बीमार हो। ये दो शब्द याद रखो--व्याधि और समाधि। व्याधि का अर्थ हैः हम अपने भीतर रुग्ण हैं, सो दूसरे में अपने को भुलाते हैं, भटकाते हैं, भरमाते हैं। तरह-तरह के भरम खाते हैं। जानते हुए खाते हैं, न खाएं तो क्या करें! क्योंकि अपने भीतर झांकते हैं तो अंधकार ही अंधकार। अपने भीतर देखते हैं तो कुछ दिखाई पड़ता नहीं। अपने भीतर देखते हैं तो व्यर्थता ही व्यर्थता मालूम होती है, असार ही असार, रेगिस्तान दूर-दूर तक--जहां न कोई फूल खिलता दिखाई पड़ता, न कोई फल लगते दिखाई पड़ते; जहां कहीं दूर भी एक मरूद्यान के दर्शन नहीं होते। डर कर बाहर निकल आते हैं। मगर बाहर क्या करें? कोई उलझाव चाहिए, कोई भरमाव चाहिए, किसी चीज के साथ अटकाव चाहिए। और सबसे ज्यादा भरमाने वाली बात विवाह है।
विवाह का अर्थ हैः पुरुष के लिए स्त्री, स्त्री के लिए पुरुष। वह प्राकृतिक व्यवस्था है--भटकने की, भरमने की। आशाएं बंध जाती हैं, सपने सज जाते हैं। लगता है बस अब आ गई सुख की घड़ी। आती कभी नहीं; बस लगता ही है कि आ गई, आ गई, आ गई।
इस शब्द "आ गई" को ठीक से समझना। तुम इसको इकट्ठा करके पढ़ते हो--आ गई। आ
को और गई को तोड़ कर पढ़ना हमेशा--आ, गई! आई ही नहीं और गई। यह बड़ा प्यारा शब्द है। इस शब्द में बड़ा राज है। इसमें हाइफन लगा कर पढ़ना। कभी इसको इकट्ठा मत करना; इकट्ठा करने में--पांयन बेड़ी परत है। आता-करता कुछ नहीं, आता हुआ बस मालूम पड़ता है। आएगा भी कैसे? वह स्त्री जो तुम्हारे प्रेम में पड़ी है, वह भी अपने से भागी है; तुम उसके प्रेम में पड़े हो, तुम भी अपने से भागे हो। दो भिखारी एक-दूसरे से आशा रख रहे हैं, भिक्षापात्र फैलाए हुए हैं कि हे देवी, कि हे देवता! वह भी आशा में कह रही है कि तुम राज-राजेश्वर हो। और तुम भी आशा में कह रहे हो, आशाएं बांधे हो, कि नहीं तुझ जैसा कोई और! तू तो हृदय की रानी है! हृदय-साम्राज्ञी है! ये सब आशाएं हैं। वह भी सिर हिला रही है, तुम भी सिर हिला रहे हो; दोनों को अपनी असलियत पता है, मगर दोनों सोच रहे हैं कि शायद दूसरा भर दे मेरे भीतर की खाली जगह।
मगर यह भ्रम कितनी देर रहेगा? जब तक चौपाटी पर मिलते रहोगे, जब तक चौपट नहीं हो जाओगे, तब तक रहेगा। चौपाटी भी लोगों ने नाम गजब का रखा है! यह चौपट होने के पहले मिलने का स्थान है। हालांकि जिन्होंने रखा है... किसी ऋषि- मुनि ने रखा होगा... कि भैया सावधान, चौपाटी है! मगर फिर भी नहीं लोग चौंकते। चले चौपाटी! कहां जा रहे? चौपाटी जा रहे हैं! जब तक होश आता है, तब

तक बहुत देर हो जाती है। विवाह के बाद ही पता चलता है कि हम दोनों भ्रांति में थे। तब कलह शुरू होती है।
इसलिए हर विवाह कलह में ले जाता है। कलह किस बात की? कलह इस बात की है
कि प्रत्येक सोचता है कि मुझे धोखा दिया गया। हालांकि किसी ने किसी को धोखा नहीं दिया है। प्रत्येक ने धोखा खाया है जरूर, दिया किसी ने भी नहीं है। इसलिए पुरुष निंदा करते रहते हैं स्त्रियों की, कि स्त्री नरक का द्वार है! साधु-महात्मा चिल्लाते फिरते हैं--स्त्री नरक का द्वार है! एक बात समझ लेना, ये सब चौपाटी को याद कर रहे हैं। ये अभी भी दोष स्त्री को दे रहे हैं, जरा ख्याल करना। इस भ्रांति पर ख्याल करना। पहले सोचते थे कि स्त्री साम्राज्ञी है; आ जाएगी मेरे हृदय में तो जल जाएंगे बुझे दीये, खिल जाएंगे कुम्हलाए फूल, हो जाएगी बरखा अमृत की! पहले भी भरोसा था स्त्री पर; अब भी भरोसा है कि नरक भेजेगी। अभी भी भरोसा नहीं गया। मगर स्त्री बलशाली है! पहले स्वर्ग देती थी; अब नरक भेज रही है।
तुम्हारे महात्माओं में मैं कोई क्रांति नहीं देखता--वही की वही भ्रांति है। पहले स्त्री को जिम्मेवार सोचते थे--स्वर्ग की सीढ़ी की तरह; अब सोचते हैं--नरक की सीढ़ी की तरह। सीढ़ियां तो सीढ़ियां हैं। सीढ़ियों का तुम दोनों तरह से उपयोग कर सकते हो; ऊपर चाहो ऊपर चले जाओ, नीचे चाहो नीचे चले जाओ। सीढ़ी तो निष्पक्ष होती है। सीढ़ी कोई यह थोड़े ही कहती है कि ऊपर ही जाओ, नीचे जाना मना है, कि नीचे जाना मना है, ऊपर ही जाओ। सीढ़ी पर कोई तख्ती नहीं लगी होती। सीढ़ी दोनों दिशाओं में जाती है। लेकिन पुरुष गालियां देते हैं फिर स्त्रियों को। जिंदगी भर! और अगर भोगी देते हों गालियां, तो भी ठीक है; जिनको तुम त्यागी कहते हो, वे और भी ज्यादा गालियां देते हैं। स्त्रियां इतनी मुंहफट नहीं हैं, इसलिए स्त्रियों में महात्मा नहीं
हो सके। महात्मा होने के लिए पहले मुंहफट होना जरूरी है। महात्मा होने के लिए पहले असंस्कृत, असभ्य होना जरूरी है। महात्मा होने के लिए पहले दूसरे को दोषी ठहराना जरूरी है। स्त्रियां इतना नहीं कर सकीं कभी। स्त्रियां जल्दी धोखे में भी नहीं आतीं, सच बात यह है। तुम लाख स्त्रियों से कहो, लेकिन वे काफी सोच-विचार करती हैं। कोई स्त्री कभी अपनी तरफ से नहीं कहती कि मुझे तुमसे प्रेम है; तुम्हीं से कहलवाती है हजार दफा। कोई स्त्री कभी तुम्हारे आसपास पूंछ नहीं हिलाती; तुम्हीं से हिलवाती है।
मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी एक दिन सुबह ही सुबह विवाद कर रहे थे,
जो कि हर घर का रिवाज है। जिस घर में सुबह से विवाद न हो, उस घर में विवाह हुआ ही नहीं। इसलिए मैं तो कहता हूं फलां का विवाह हो रहा है, मतलब फलां का अब विवाद शुरू हो रहा है। विवाह अर्थात विवाद--पर्यायवाची हैं।
चाय की टेबल पर बकवास शुरू हो गई। मुल्ला की पत्नी ने कहा कि सुनो जी, कोई मैं तुम्हारे पीछे नहीं पड़ी थी, तुम्हीं पूंछ हिलाते फिरते थे। तुम्हीं चिट्ठियां लिखते थे कि मैं मर जाऊंगा, कि हाय मैं मरा, कि अगर तुम न मिलीं तो मैं मर जाऊंगा, कि तुम्हारे बिना मैं नहीं जी सकता। कोई मैं तुम्हारे पीछे नहीं पड़ी थी।
मुल्ला ने कहाः यह बात सच है, इसे मैं स्वीकार करूंगा ही। यह मेरी गलत आदत है। यह मैं हर स्त्री को लिखता रहा। यह मेरी पुरानी आदत है। यह मेरी अभी भी नहीं छूटी। तू है, तेरा अनुभव है; मगर फिर भी, अभी भी मौका मिल जाता है तो मैं लिख देता हूं, कह देता हूं इस तरह की बातें। मूढ़ हूं, मतिमंद हूं! और यह बात सच है कि मैं ही तेरे पीछे फिरता रहा, कोई तू मेरे पीछे फिरी नहीं। और हो भी क्यों न! कोई चूहेदानी चूहे के पीछे नहीं फिरती, चूहा खुद ही मूरख चूहेदानी में चला जाता है!
इसलिए चूहेदानियां कभी महात्मा नहीं होतीं, चूहे महात्मा हो जाते हैं। और स्वभावतः, जब चूहे महात्मा होंगे तो चूहेदानी को गाली देंगे, और किसको गाली देंगे? कि यह नरक का द्वार है, सावधान!
मगर तुम लाख करो सावधान, लोग अपने अनुभव से ही नहीं सीखते तो दूसरे के अनुभव से क्या खाक सीखेंगे! अभी महात्मा को भी मौका मिल जाए फिर से, जरा चूहेदानी ढंग की मिल जाए, जरा रंग-ढंग और हो, न हो लोहे की, हो सोने-चांदी की, हीरे-जवाहरात जड़े हों--तो महात्मा भी सोचेंगे कि एक प्रयोग और कर लेना ठीक है। अरे कौन जाने, एक स्त्री गलत हुई, सभी स्त्रियां थोड़े ही गलत

होंगी! एक स्त्री के कारण सारी स्त्रियों को गलत मान लेना ठीक भी तो नहीं मालूम होता, तर्कयुक्त भी मालूम नहीं होता।
रहीम तो पते की कह रहे हैं, मगर चैतन्य कीर्ति, तुम रहीम की मान कर मत रुक जाना। अपना अनुभव भैया! कोई न कोई चूहादानी का अनुभव चाहिए ही। फंसो! ऐसे रहीम वगैरह की मान कर रह गए तो बहुत पछताओगे।
और अक्सर ऐसा हो जाता है कि जवानी में तो आदमी अपने को रोक लेता है। जवानी में ताकत होती है रोकने की। जवानी में ताकत होती है, जो भी उपयोग करना हो। अगर जवान चूहा हो और जिद कर ले कि नहीं घुसेंगे चूहेदानी में, तो नहीं घुसे। लेकिन जैसे-जैसे जवानी जाएगी और बुढ़ापा करीब आएगा, वैसे-वैसे मन की ताकत कम होने लगेगी, संकल्प टूटने लगेगा और मन डांवाडोल होने लगेगा, चूहेदानी के तुम चक्कर लगाने लगोगे।
एक सज्जन मुझे मिले। चालीस वर्ष उनकी उम्र थी। बालब्रह्मचारी थे। उन्होंने मुझसे कहा कि चालीस वर्ष तो मैंने गुजार दिए, अब क्या डर है? मैंने कहाः तुम ठहरो, अभी असली डर आ रहा है।
उन्होंने कहाः मतलब?
मैंने कहा कि तुम पैंतालीस साल के बाद फिर मुझे मिलना।
उन्होंने कहाः मैं समझा नहीं आपकी बात।
मैंने कहाः ऐसे तुम समझोगे भी नहीं। समय समझा देगा। पैंतालीस साल के बाद मुझे मिलना।
मगर वे थोड़े डर गए, शाम को ही आ गए। कहने लगे कि नहीं, मैं दिन भर आज बेचैन रहा। आपका मतलब क्या है?
मैंने कहाः मतलब यह है कि जब आदमी जवान होता है तो कुछ भी करने की ऊर्जा होती है। जैसे-जैसे तुम पैंतालीस के करीब पहुंचोगे और जवानी खिसकनी शुरू होने लगेगी, वैसे-वैसे मन में संदेह उठने शुरू होंगे--कि कहीं दुनिया सच में ही मजा न लूट रही हो! आखिर महात्मा कितने हैं? इने-गिने, जो कहते हैं कि स्त्री नरक का द्वार है। और ये कहते रहे हैं कि स्त्री नरक का द्वार है, फिर भी कौन इनकी सुनता है? और इन्हें भी मौका मिल जाए तो ये अपनी ही कहां सुनते हैं? तो कुछ न कुछ राज तो होगा। और जब जिंदगी हाथ से जाने लगेगी, तब तुम घबड़ाओगे।
उन्होंने नहीं मानी मेरी बात। पैंतालीस साल बाद वे मुझे मिले और उनकी आंखों में आंसू थे, उन्होंने कहाः आप ठीक कहते थे। सच में मैं डगमगाने लगा। अब घबड़ाहट मेरी शुरू हुई है। अब जिंदगी हाथ से जा रही है। अब यह आखिरी समय है। अगर दो-चार-पांच साल और मैं गुजार देता हूं तो मैं गया काम से, फिर पता नहीं, पता नहीं स्त्री का अनुभव कैसा था! मैंने तो लिया नहीं। अब मेरे मन में बस एक ही धुन चलती है--न कोई राम, न कोई कृष्ण, कोई नहीं--बस एकदम गोपिएं ही गोपिएं दिखाई पड़ती हैं। मंदिर भी जाता हूं... राम के भक्त हैं... मगर सीता मैया दिखाई पड़ती हैं, रामचंद्रजी नहीं दिखाई पड़ते। आंखें अटकी रहती हैं सीता मैया पर।
स्वाभाविक है।
चैतन्य कीर्ति, रहीम तो ठीक कहते हैं कि विवाह व्याधि है। मगर रहीम अनुभव से कहते हैं। रहीम कोई महात्मा नहीं हैं। रहीम तो एक महाकवि हैं। जीवन को जीए हैं। और जीने से जो सार निकाला है, इस पद में रख दिया है। कहते हैंः "सकहु तो लेहु बचाय!"
बचा सको तो बचा लो। मगर कैसे बचाओगे? अनुभव के बिना कोई नहीं बचा सकता। अनुभव के बिना कोई भी बचाएगा तो बहुत झंझट में पड़ेगा। इसलिए मैं यह नहीं कहूंगा कि सकहु तो लेहु बचाय। मैं तो कहूंगाः बचा भी सको तो भी बचाना मत! इस अनुभव से गुजर जाना जरूरी है--इससे मुक्त होने के लिए।
"पांयन बेड़ी परत है... "
यह तो सच है कि बेड़ी पड़ जाती है। और इसीलिए तो ढोल बजाते हैं।
"--ढ़ोल बजाय-बजाय।"
इसलिए तुम्हें घोड़े पर बिठालते हैं। दूल्हाराजा बनाते हैं। क्योंकि फिर जिंदगी भर के लिए बन रहे हो जोरू के गुलाम। अब एक दिन तो बना लें दूल्हाराजा, कि बेटा फिर तुम जानो तुम्हारा काम। तलवार वगैरह लटका देते हैं। देखते हो मजा! जिन्हें तलवार पकड़ना भी न आता हो; तलवार दूर, जिन्होंने

कभी छुरी भी न पकड़ी हो; सब्जी काटने की छुरी से भी हाथ काट लें--उनको तलवार लटका दी। वह भी उधार! मांग लाए किसी की। हर गांव में ऐसी तलवारें होती हैं, जिनका कुल काम इतना है कि जब कोई दूल्हाराजा बनता है, तब वे तलवारें आ जाती हैं और लटका दी जाती हैं। और हर गांव में घोड़े होते हैं, घोड़ियां होती हैं, उनका काम ही यही है कि जब कोई दूल्हाराजा बने, उनको बिठा दिया। अनुभव में गधे पर भी नहीं बैठे हैं। अभी गधा भी इनको ऐसा पटके कि छठी का दूध याद आ जाए। गधा भी ऐसी दुलत्ती मारे! मगर बैठे हैं अकड़ कर घोड़े पर। और चारों तरफ बराती चल रहे हैं और बैंड-बाजे बज रहे हैं। यह भ्रम पैदा किया जा रहा है--कि कुछ गजब का काम हो रहा है! कुछ महान कार्य हो रहा है!
यह एक दिन का राजपाट है। यह एक दिन का स्वागत-सत्कार है। फिर जिंदगी
भर फल भोगो।
कहते तो ठीक हैंः "पांयन बेड़ी परत है, ढोल बजाय-बजाय।"
ढोल बजा-बजा कर लोग बेड़ी पहना देते हैं। क्योंकि तुम ढोल में उलझे रहते हो, सो तुम्हें ख्याल ही नहीं रहता कि पैरों की क्या गति हो रही है। इधर ढोल में तुम उलझे हो, तुम सुन रहे हो शहनाई, उधर पैर में बेड़ियां डाली जा रही हैं। मंतर-तंतर पढ़े जा रहे हैं। पंडित-पुजारी चक्कर लगवा रहे हैं वेदी के, सात फेरे डाले जा रहे हैं।
एक राजनेता को एक विवाह में निमंत्रित किया गया। राजनेता थे। राजनेता
और शराब न पीएं, यह जरा मुश्किल है। हां, जीवन-जल पीने लगें तो बात दूसरी। उससे शराब ही बेहतर है, कम से कम अंगूर का जल है। गए थे विवाह में, ज्यादा पीकर पहुंच गए। कुछ ठीक-ठाक समझ में आ नहीं रहा था कि हो क्या रहा है। वे तो अपनी पुरानी धुन में थे। दूल्हा-दुल्हन यज्ञ-कुंड का चक्कर लगा रहे थे, सात फेरे लगाए जा रहे थे। उन्होंने आव देखा न ताव, जल्दी से पहुंचे, कैंची खीसे से निकाली और काट दिया। वे समझे कि उदघाटन कर रहे हैं।
मगर दूसरों के काटे से बात कटती नहीं। अरे, लोगों ने कहा, यह क्या करते हो? जल्दी से फिर लोगों ने दूसरी गांठ बांध दी। एक गांठ की जगह दो गांठें हो गईं और। और नेता को पकड़ कर लोगों ने बिठाया कि भैया, तुम्हें यह क्या हो गया? वे समझे कि उदघाटन करने आए हैं, तो वह तो कैंची से कहीं भी फीता लटका हो तो काटना उनका कुल काम था। यह फीता लटका देखा उन्होंने स्त्री-पुरुष के बीच, कि मामला क्या है!
दूसरों के काटे नहीं कटेगी यह बेड़ी। यह तो काटेगा कोई दूसरा तो बंध जाएगी दोहरी।

चचा, चचा, चचा,
चचा में अब कुछ नहीं बचा;
झुके हुए सलाम हैं,
चची के गुलाम हैं।

इसलिए बेचारे कहते हैं रहीमः बचा सको तो कुछ बचा लो। चचा! मैं उनसे सहमत हूं। बात तो सच्ची कहते हैं, पते की कहते हैं। लेकिन उन्होंने भी अनुभव से सीखी और तुम भी अनुभव से ही सीखोगे। इसलिए मैं यह नहीं कहता कि तुम मान कर और रुक जाना, नहीं तो जीवन भर पछताओगे। अनुभव से गुजर जाओ।
अनुभव से गुजरना ही अनुभव से मुक्त होने की एकमात्र व्यवस्था है।
कठिनाई तो है अनुभव से गुजरने में, मुश्किल तो है।
डाक्टर साहब, मेरी पत्नी के मुंह से आवाज ही नहीं निकलती। चंदूलाल ने अपने निजी डाक्टर से जाकर कहा। कोई दवा दे दीजिए।
डाक्टर ने पूछाः आप घर कब पहुंचते हैं दफ्तर से?
चंदूलाल ने कहाः घर! ठीक पांच बजे।
डाक्टर ने कहाः तो कल साढ़े दस बजे रात घर पहुंचना। पत्नी के मुंह से आवाज निकलेगी! दवा वगैरह की कोई जरूरत नहीं है। अरे मुर्दा पत्नी हो तो बोलेगी! कितना ही गला लगा हो, ऐसी आवाज निकलेगी कि तुम भी याद रखोगे। और फिर कभी दवा मांगने नहीं आओगे। फिर तो तुम यही प्रार्थना करोगे कि हे प्रभु, वही बीमारी हो जाए।

एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन बहुत उदास बैठा था। मैंने पूछाः क्या हुआ? बड़े मियां, बात क्या है? इतने उदास क्यों हो?
उन्होंने कहाः मेरी पत्नी ने तीस दिन बोलचाल बंद कर दिया है।
तो मैंने कहाः यह तो खुश होने की बात है।
उन्होंने कहाः हां, खुश होने की बात है! आज तीस दिन खत्म हो रहे हैं, खाक खुश होने की बात है! आज फिर बोलचाल शुरू होगा। अब देखें क्या होता है! घर पहुंचें तो पता चले।
अनुभव से गुजरो।
गुलजान एक दिन डाक्टर के पास पहुंची और बोली कि डाक्टर साहब, मेरे पति नसरुद्दीन को न जाने क्या हो गया है, रात भर बड़बड़ाते रहते हैं! अच्छा हो आप कुछ गोलियां वगैरह दें।
डाक्टर ने कुछ गोलियां उसे देते हुए कहाः यह लीजिए, इन गोलियों से उनका बड़बड़ाना बिल्कुल बंद हो जाएगा।
गुलजान गुस्से से बोलीः लेकिन डाक्टर साहब, बड़बड़ाना बंद किसे करवाना है! अरे कुछ ऐसी गोलियां दीजिए, ताकि साफ-साफ सुनाई दे कि वे कह क्या रहे हैं। कमला, विमला इत्यादि नाम समझ में आते हैं, मगर साफ समझ में नहीं आते कि मामला क्या है। किससे लाग-लगाव चल रहा है। ये कौन हैं रांडें--कमला, विमला! रात-रात भर बैठ कर सुनती हूं। मगर अनर्गल बकवास में सब गड़बड़ हो जाता है।
यह तो तुम जरा अनुभव, चैतन्य कीर्ति, करो इन सबके। एक ही पत्नी काफी है। दो हैं तो फिर क्या कहना! और मोहम्मद ने इसीलिए तो कहा कि चार पत्नियां। चार जिसकी पत्नियां हों, उसका मोक्ष निश्चित है। अगर उसका मोक्ष न हो तो वह महामूढ़ है। फिर उसके लिए कोई उपाय नहीं। फिर उसका कोई उद्धार नहीं हो सकता। चार पत्नियां जिसका उद्धार न कर सकें, उसका मोक्ष असंभव है।
पड़ोसिन के यहां जाकर मुल्ला नसरुद्दीन की बीबी गुलजान बोलीः बहन, तुम
तो बड़ी परोपकारी स्त्री हो। क्या मेरा एक जरा सा काम करोगी?
पड़ोसिन बोलीः हां-हां, क्यों नहीं! बोलो, क्या काम आ पड़ा? बहन, अपना ही
घर है। मैं तुम्हारी हूं, बोलो।
गुलजान ने शर्माते हुए बतायाः बात यह है कि मुझे तुम्हारे पतिदेव से
एक घंटे लड़ लेने दो। मेरे पति आज चार दिन से बाहर गए हुए हैं।
एक कब्र पर लगे संगमरमर के पत्थर पर यह लिखा है--इस कब्र के अंदर एक ईमानदार, सत्यवादी, एकपतिव्रता और सदा पड़ोसियों की भलाई करने वाली समाज-सेविका श्रीमती गुलाबोरानी चिर-निद्रा में शयन कर रही हैं। वे आजीवन अपने पति श्रीमान ढब्बूजी को सुखी करने के कठोर प्रयत्न करती रहीं और अंततः स्वर्गवासी होकर सफल हुईं।
तो या तो तुम स्वर्गवासी हो जाओगे, या पत्नी स्वर्गवासी हो जाएगी। हर हाल में लड्डू ही लड्डू हैं।
बच्चन की एक कविता हैः चेकोस्लोवाकिया की भूलभुलैया--

प्राहा में है एक पहाड़ी
जिस पर लोहे का टॉवर है--
पेरिस के आइफल टॉवर का छोटा भाई--
उसके नीचे
भूलभुलैया बनी हुई है;
उसके सब दर-दीवारों पर
शीशे-शीशे जड़े हुए हैं;
उसके अंदर घुस जाने पर
बड़ी देर तक
लोग नहीं बाहर आ पाते,
शीशों से फिर-फिर टकराते।
यूनोवा, मेरी दुभाषिया, मुझसे बोली, "अंदर जाएं
और निकल कर बाहर आएं

तो मैं जानूं।
मैं बाहर के दरवाजे पर
इंतजार में खड़ी मिलूंगी!"

अंदर पैठा,
मैंने नजरें नीचे रखीं;
राहों का हर मोड़
नोट करता
मैं केवल तीन मिनट में बाहर आया! यूनोवा को हुआ अचंभा, बोली, "कैसे?"
आंखें नीची किए चला मैं, बोला,
"ऐसे!"
यूनोवा ने कहा,
"आपकी बुद्धि भारती मान गई मैं,
मगर आपने अटक-भटक का मजा गंवाया!"
मैं बोला,
"वह तो जीवन में मैंने अब तक बहुत उठाया।"

अटक-भटक का थोड़ा मजा लो! विवाह से बड़ी कोई भूलभुलैया नहीं है। थोड़े अटको-भटको।
चैतन्य कीर्ति, जल्दी न करना। रहीम का दोहा लिख कर रख लो जेब में, कभी- कभी निकाल कर पढ़ लेना, राहत मिलेगी कि कह तो गए सत्य, फिर रख लेना जेब में-- जब तक कि यह तुम्हारा ही अनुभव न बन जाए। और एक दिन निश्चित तुम्हारा अनुभव बन जाएगा।
जीवन में केवल एक ही उपाय है सीखने काः स्वानुभव। और वही मुक्ति का द्वार है।
आज इतना ही।

रहिमन धागा प्रेम का
नौवां प्रवचन

अज्ञात का वरण करो

पहला प्रश्नः संन्यास का मार्ग अपरिचित है और मैं भयभीत हूं। क्या करूं?

पुरुषोत्तमदास! जीवन को परिचित में ही समाप्त कर देना--मृत्यु है। जीवन की नाव को अपरिचित में लेते जाना--जीवन है। नितनूतन में जीवन है-- प्रतिपल नये की चुनौती, अज्ञात का आह्वान, अभिनंदन! जितना ही तुम अज्ञात में उतरोगे, उतने ही जीवंत हो उठोगे। और जितने ज्ञात में बंद हो जाओगे, उतने ही कब्र के भीतर समा गए।
बहुत लोग जीते ही नहीं; जीएं, इसके पहले ही मर जाते हैं। बहुत लोग पैदा
ही नहीं होते, जीना तो बहुत दूर। और जो चीज सबसे बड़ी बाधा है, वह हैः अपरिचित का भय।
धर्म तो उनके लिए है जिनके भीतर साहस है--साहस ही नहीं, दुस्साहस! और आश्चर्य यह है कि धर्म पर अड्डा जमा कर बैठ गए हैं जमाने भर के कायर लोग! मंदिरों-मस्जिदों में, गिरजों में, गुरुद्वारों में जो घुटने टेके तुम्हें प्रार्थना करते हुए लोग मिलेंगे, वे कायर हैं। उनकी प्रार्थना भय से ही उठ रही है। और भय से कभी प्रार्थना उठ सकती है? भय से कभी भगवान का संबंध हो सकता है? भय में जिस भगवान को तुमने मान लिया है, वह तुम्हारे भय का ही विस्तार है; वह तुम्हारी सुरक्षा का उपाय है। तुम डरे हुए हो। तुम चारों तरफ शारीरिक व्यवस्था चाहते हो, मानसिक व्यवस्था चाहते हो, आध्यात्मिक व्यवस्था चाहते हो। तुम चाहते हो कि कहीं रंच मात्र भी कोई असुरक्षा न बचे--इस लोक में भी, परलोक में भी। तुम चाहते हो सब भांति सुरक्षा हो। वही तुम्हारा धर्म है। और जो तुम्हें सुरक्षा का आश्वासन देता है, तुम उसके ही चरणों में गिरने को राजी हो।
मेरे पास सुरक्षा का कोई आश्वासन नहीं है। संन्यास तो असुरक्षा का वरण है--स्वेच्छा से। क्योंकि जैसे ही यह बात समझ में आ जाए कि भय पर आधारित भगवान झूठा होता है, भय से प्रेम जन्मता ही नहीं, तो परमात्मा कैसे जन्मेगा? जिससे तुम भयभीत हो, उसे प्रेम कर सकते हो? दिखावा कर सकते हो; वह स्वीकार। ऊपर-ऊपर औपचारिक निभाव कर सकते हो; वह स्वीकार। लेकिन तुम्हारे अंतरतम में, जिससे भय है, उससे विरोध होगा। उससे तुम बदला लेना चाहोगे। उससे मैत्री नहीं हो सकती। जो तुम्हें भयभीत कर रहा है, वह मित्र है?
एक युवक विवाह करके लौट रहा था। नाव पर सवार हुआ। समुराई था। जापान में योद्धाओं को समुराई कहते हैं। प्रसिद्ध समुराई था। उसकी तलवार की धाक थी, दूर-दूर तक धाक थी। उसकी तलवार की चोट जिस पर पड़ी, वह बचा नहीं। और अब तक कोई उस पर चोट कर सका नहीं था। दोनों नाव से नदी पार कर रहे थे कि अचानक तूफान आ गया। उसकी पत्नी तो घबड़ाने लगी, कंपने लगी, भयभीत होने लगी; लेकिन समुराई वैसा ही अडिग, वैसा ही निष्कंप, वैसा ही निश्चिंत, जैसा पहले था! जैसे तूफान आया कि नहीं आया, सब बराबर है! उसकी पत्नी तो बहुत हैरान हुई। उसने पूछाः यह तूफान तुम्हें डराता नहीं?
समुराई ने बजाय कुछ उत्तर देने के म्यान से तलवार निकाल ली। चमचमाती तलवार सूरज की रोशनी में, उसने पत्नी की गर्दन के पास रख दी, इतनी पास कि जैसे बाल भर का फासला, जरा सा झटका लग जाए, कि नाव हिल जाए, और तूफान है, कि गर्दन कट जाए। लेकिन पत्नी मुस्कुराती रही। उस युवक ने पूछाः तू घबड़ाती नहीं? तलवार इतनी निकट!
उस युवती ने कहाः तलवार तुम्हारे हाथ में है तो मुझे घबड़ाने का कोई कारण नहीं। तलवार किसी दुश्मन के हाथ में तो नहीं। तलवार से थोड़े ही घबड़ाते हैं हम; किसके हाथ में है, इससे घबड़ाते हैं।
उस युवक ने तलवार वापस म्यान में रख ली और कहा कि परमात्मा के हाथ में तूफान है, घबड़ाना क्या? जिससे हमारा प्रेम है, उससे भय कैसा? तूफान है तो

उसके हाथ में है। जो होगा, ठीक होगा। गलत हो ही नहीं सकता। गलत होना असंभव है।
प्रेम भयभीत नहीं होता। प्रेम को भयभीत किया नहीं जा सकता। तुम गर्दन काट सकते हो प्रेमी की, लेकिन उसे कंपित नहीं कर सकते। और जो भयभीत है, तुम लाख उपाय करो, कितनी ही प्रार्थनाएं, कितनी ही पूजाएं--सब झूठी, सब थोथी। जीना हो अगर तो भय पर आधारित धर्म को तो छोड़ ही देना होगा। तुलसीदास
ने कहा हैः भय बिन होय न प्रीति। इससे झूठी बात कभी कही नहीं गई। कहते हैं कि बिना भय के प्रेम नहीं होता। इससे ज्यादा अमनोवैज्ञानिक बात हो नहीं सकती। मैं तुमसे कहता हूंः यह एक वचन ही पर्याप्त है यह बताने को कि तुलसीदास ने कुछ जाना नहीं। भय के साथ प्रेम कभी हो नहीं सकता। और तुलसीदास कहते हैं कि भय के बिना प्रेम नहीं होता।
मगर हमारी सबकी यही मान्यता है कि भय से ही प्रेम होता है। तो पति पत्नी को डरवाता है। जितना डरवा सके उतना डरवाता है। क्योंकि सोचता हैः नहीं डरवाऊंगा तो प्रेम नहीं होगा। और पत्नी भी फिर जितना डरवा सकती है उतना पति को डरवाती है। वह भी सोचती है कि नहीं डरवाऊंगी तो प्रेम नहीं होगा। मां-बाप बच्चों को डरवाते हैं। और बच्चे भी कुछ कोर-कमी छोड़ते हैं! बच्चे भी डरवाते हैं मां-बाप को। उनके भी अपने ढंग हैं, उनके भी नुस्खे हैं। ये सब बाबा तुलसीदास के भक्त हैं। ये सब एक-दूसरे को डरवा रहे हैं। शिक्षक विद्यार्थियों को डरवा रहे हैं, विद्यार्थी शिक्षकों को डरवा रहे हैं। सब तरफ डर व्याप्त है।
परमात्मा की हमारी धारणा कुछ ऐसी है, जैसे वह कोई पुलिसवाला हो।
हमारी धारणा ऐसी है कि वह चौबीस घंटे देख रहा है, तुम क्या कर रहे हो।
तुम्हें बाथरूम में भी अकेला नहीं छोड़ता। बैठा है वहीं जहां ताले में छेद है, उसी में से झांक रहा है।
मैंने सुना है, एक ईसाई साध्वी कपड़े पहने-पहने ही नहाती थी। आखिर उसकी
और संगिनें-साथिएं चिंतित हुईं। उन्होंने कहाः तू कैसी पागल है! बाथरूम में दरवाजा बंद करके कपड़े क्यों नहीं उतारती? कपड़े पहने-पहने कैसे नहाएगी? तेरे शरीर से बदबू आने लगी है।
उसने कहाः कपड़े कैसे उतारूं? नहीं लिखा है बाइबिल में कि परमात्मा हर जगह तुम्हें देख रहा है? तो वह बाथरूम में भी देख रहा है। अब परमात्मा के सामने नग्न होना उचित है?
अब कोई इस पागल को कहे कि जो बाथरूम में देख सकता है, वह कपड़े के भीतर नहीं देख सकता? इससे तो तुम कैसे बचोगे? यह तो परमात्मा न हुआ, कोई खटमल हुआ! कपड़ों के भीतर घुसा है! वहीं जांच-पड़ताल कर रहा है कि क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है। यह तो परमात्मा न हुआ, कोई जासूस है, जो तुम्हारे पीछे पड़ा है, हाथ धोकर पीछे पड़ा है।
और सारे धर्मों ने तुम्हें डरवाया है, खूब डरवाया है। जरा भूल-चूक की
कि नरक। छोटी-छोटी चीजों में--और नरक! सिगरेट पी, गए नरक! पान खाया, गए नरक! रात पानी पी लिया, गए नरक! अलग-अलग धर्म, अलग-अलग नरकों के भय।
ऐसे धर्म हैं, जैसे जैन धर्म, पर्युषण के दिनों में अगर आलू खा लिए-- गरीब आलू--गए नरक! टमाटर! इनसे ज्यादा भोले-भाले प्राणी कहीं पा न सकोगे; न किसी को सताएं, न किसी को परेशान करें, एकदम अहिंसक! मगर खा लिया कि गए नरक। क्या-क्या डर! कैसे-कैसे डर! हर चीज में भयभीत कर रखा है तुम्हें।
यह पंडित-पुरोहितों का जाल है, इसका परमात्मा से कोई संबंध नहीं है। पंडित-पुरोहित जीते हैं तुम्हारे भय पर, तुम्हारे भय के शोषण पर। वे तुम्हें खूब भयभीत किए हुए हैं। वे तुम्हें ठहरने नहीं देते, कंपाए रखते हैं। तुम जितने भयभीत रहो, उतना ही उनका बल तुम्हारे ऊपर रहता है। भयभीत रहोगे तो तुम कभी अपनी मुक्ति की घोषणा न कर सकोगे। भयभीत रहोगे तो हिंदू रहोगे, मुसलमान रहोगे, ईसाई रहोगे, जैन रहोगे। निर्भय हुए कि फिर क्यों... फिर क्यों इन छोटी-छोटी सीमाओं में और दायरों में अपने को बंद करोगे? फिर क्यों इन डबरों में अपने को बंद करोगे? निर्भय हुए तो तुम छोड़ दोगे यह फिक्र, ये पागलपन की बातें कि कहीं कोई नरक है, जहां लोग कड़ाहों में पकौड़ों की तरह जलाए जा रहे हैं, च.ुडाए जा रहे हैं। और कहीं कोई स्वर्ग है, जहां हूरें ऋषि-मुनियों की सेवा कर रही हैं। फरिश्ते, अप्सराएं बैंड-बाजा बजा

कर स्वागत कर रहे हैं। और जहां शराब के चश्मे बह रहे हैं। और जहां कल्पवृक्ष हैं कि ऋषि-मुनि उनके नीचे बैठे हैं और जो भी इच्छा करते हैं, तत्क्षण पूरी हो जाती है।
न कहीं कोई नरक है, न कहीं कोई स्वर्ग है। नरक है तुम्हारे भय में और स्वर्ग है तुम्हारे निर्भय होने में। और निर्भयता का पाठ कहां सीखोगे? यही जीवन पाठशाला है।
पुरुषोत्तमदास, तुम कहते होः ‘संन्यास का मार्ग है अपरिचित।’
इसीलिए तो चलने योग्य है। इसीलिए! जब भी अपरिचित कोई मार्ग हो, चूकना मत। चलना। अपरिचित की पहचान करनी है। यह जीवन में जितना-जितना अपरिचित है, उसको परिचित करना है। यही तो बोध की तरफ ले जाएगा। जिस दिन कुछ भी अपरिचित न बचेगा, जिस दिन तुम सब जान लोगे जो जानने योग्य है, उस दिन तुम प्रबुद्ध हो जाओगे। अपरिचित से सिकुड़ते रहे और अपने ही घर की दीवाल के भीतर घुसे रहे डर के मारे--कि बाहर निकले तो कहीं ऐसा न हो जाए, कि कहीं वैसा न हो जाए--तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे।
मैं एक विश्वविद्यालय में प्रोफेसर था। मेरे जो वाइस-चांसलर थे, उन्होंने एक दिन मुझे बुलवाया। कमरे में कुछ लोग बैठे थे, उनसे कहाः आप लोग जाएं, मुझे कुछ निजी बात करनी है।
मैं थोड़ा हैरान था कि मुझसे उन्हें क्या निजी बात करनी होगी! फिर भी मैं चुप रहा। फिर उन्होंने कहाः आपसे क्या छिपाना, अपनी सत्य बात आपसे कहूं। अक्सर मुझे हवाई जहाज से यात्रा करनी पड़ती है और मैं बहुत घबड़ाता हूं। आप हंसें न और किसी और को आप बताना भी मत। लोग क्या सोचेंगे कि इस उम्र में, वाइस-चांसलर होकर, और हवाई जहाज में बैठने में डरता हूं! मगर मुझे डर लगा ही रहता है। मैं राम-राम, राम-राम जपता ही रहता हूं। ऐसे मैं कभी राम-राम नहीं जपता। ऐसे मुझे भगवान की याद ही नहीं आती, बस हवाई जहाज में ही आती है। बस मुझे लगा ही रहता है कि अब गिरा, तब गिरा। किसी तरह राम-राम करते-करते पहुंच जाता हूं दूसरी जगह, उतर जाता हूं हवाई जहाज से, तब कहीं मुझे चैन आती है। और यह काम मेरा ऐसा है कि आए दिन जाना पड़ता है--यहां जाओ, वहां जाओ! क्या करूं?
मैंने कहाः इतना डरने की क्या बात है?
उन्होंने कहाः डरने की बात आप कहते हैं! अरे रोज अखबार में देखो कि यहां हवाई जहाज गिर गया, पचास आदमी मर गए; वहां गिर गया, सत्तर आदमी मर गए! मैंने कहाः कितने हवाई जहाज उड़ते हैं और कितने गिरते हैं? आप तो गणित
के प्रोफेसर थे, आप तो थोड़ा गणित भी जानते हैं। कितना अनुपात है? सौ में से एक भी तो नहीं गिरता। हजार में एकाध गिरता है।
उन्होंने कहाः यह बात तो ठीक है।
तो मैंने कहाः नौ सौ निन्यानबे दफे बेकार ही राम-राम, राम-राम कर रहे हो।
फिर मैंने उनसे पूछा कि रात खाट पर सोते हो कि नहीं?
उन्होंने कहाः बराबर सोता हूं।
डरते हो कि नहीं?
उन्होंने कहाः क्यों डरूंगा?
मैंने कहाः खाट पर कितने लोग मरते हैं, मालूम है? कम से कम सत्तानबे प्रतिशत लोग खाट पर मरते हैं। सौ में सत्तानबे मौके ये हैं कि तुम भी खाट पर मरोगे। वहां राम-राम जपा करो रात भर! अगर डरना ही है तो खाट से डरो, हवाई जहाज से क्या डरना? हजार में एक मौका है मरने का। और खाट पर तो सौ में से सत्तानबे मौके हैं।
मैंने तो कहा कि तुम हवाई जहाज पर जाते ही रहो, मरना तो होगा ही। हवाई जहाज से मरोगे तो कम से कम अखबार में खबर भी छपेगी। और खाट पर ही मरे तो कौन फिक्र करता है! खाट पर मरने वालों की कोई फिक्र करता है?
जहां मैं रहता था जबलपुर में, जहां वे वाइस-चांसलर थे, वहां एक मुहावरा है। जब कोई मर जाता है, तो कहते हैंः उसकी खटिया खड़ी हो गई! गजब की बात है। आदमी तो सो गया, खटिया खड़ी हो गई! खटिया खड़ी हो गई, मतलब अरथी उठ गई। जैसे पंजाब में कहते हैं बारह बज गए, ऐसे जबलपुर में कहते हैं खटिया खड़ी हो गई। जबलपुर में किसी से भूल कर मत कहना कि खटिया खड़ी हो गई। झगड़ा हो जाए।

इसलिए तो सरदार नाराज हो जाता है, उससे कह दो कि सरदार जी, कितने बजे हैं? बारह बजे पूछ लो तो एकदम नाराज हो जाता है! और तुम सोचते हो कि बारह बजे की वजह से वह एकदम भन्ना रहा है। वह बेचारा इसलिए भन्ना रहा है कि तुम्हें पता नहीं कि बारह बजे का मतलब पंजाब में यह होता है, कि दो कांटों के बीच जो फासला था, खत्म। हो गए प्रभु के प्यारे! जो फासला था शरीर का, वह गया। अब दोनों एक हो गए। गए काम से। बारह बज गए का मतलब यह होता है कि मातम छा गया।
तो मैंने उनसे कहा कि डरो तो खटिया से डरो। किसी न किसी दिन खड़ी होगी! राम-राम जपा करो रात भर।
पांच-सात दिन बाद उन्होंने मुझे फिर बुलवाया। उन्होंने कहाः आपने और मेरी मुसीबत कर दी। मैं बुलवाया था कि मेरा कुछ हल होगा। अब मुझे खटिया पर भी डर लगता है!
मैंने कहाः अब तुम धार्मिक हो जाओ। यही तो धार्मिक होने के उपाय हैं। पहले तुम हवाई जहाज में धार्मिक होते थे सिर्फ, वह तो कभी-कभी होओगे; ऐसे कभी-कभी से काम चलेगा? अरे अखंड होना चाहिए आदमी को धार्मिक! अब अखंड पाठ करो। चार दिन की जिंदगी है, राम को याद कर लो। अब जिंदगी बची भी कितनी? चार दिन भी जाने के करीब हैं, आखिरी घड़ी आ रही है। अब सोना इत्यादि क्या? अब तो सोए तो खोए। अब तो राम-राम जपो। रात भर भी जपो, दिन भर भी जपो।
लोग भय से ही जी रहे हैं। और भय से कहीं जी सकते हो? तब तो हर चीज में
भय हो जाएगा। अपरिचित क्या नहीं है? इस जीवन में सभी कुछ तो अपरिचित है। जब बच्चा आता है... अगर पुरुषोत्तमदास, तुममें जरा भी समझ होती तो तुम कभी मां का गर्भ ही न छोड़ते, क्योंकि कहां अपरिचित लोक में जाना! नौ महीने मां के गर्भ में रहे, वह तो परिचित था। अब यह छोड़ना परिचित! और इससे ज्यादा सुरक्षित, इससे ज्यादा आरामदेह स्थान फिर कभी दुबारा पा सकोगे? असंभव! वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी के मन में जो सुख की खोज है, वह असल में गर्भ में उसे जो नौ महीने अनुभव हुआ है, उसकी ही खोज है। अज्ञात रूप से कहीं भीतर यह गूंज उसके मन में बनी रहती है कि कहां गए वे दिन, वे सुख के दिन! क्योंकि मां के गर्भ में बड़ी सुखद अवस्था है। ठीक उतने ही तापमान पर मां के शरीर के भीतर जल भरा होता है जितना तापमान तुम्हारे शरीर का है। उस तापमान में विश्राम करना सबसे ज्यादा सुखद घड़ी है। जैसे कोई अपने बाथरूम में ठीक शरीर के तापमान पर टब में पानी भर कर लेटा हो। और पानी ही नहीं है वहां, पानी में वे सारे रासायनिक द्रव्य हैं जो सागर के पानी में होते हैं। इसलिए शरीर को बिल्कुल ही शिथिल होने का मौका मिलता है। तुम्हारे शरीर में भी अस्सी प्रतिशत सागर का पानी है। और बच्चा तैरता रहता है उस पानी में। न भोजन की फिक्र। भोजन की तो बात छोड़ो, श्वास लेने तक की फिक्र नहीं। न व्यायाम करना है, न घूमने-फिरने जाना है; कि पांच मील चक्कर लगाओ रोज, नहीं तो स्वास्थ्य खराब हो जाए; कि पालक की सब्जी खाओ, नहीं तो स्वास्थ्य खराब हो जाए!
एक छोटा बच्चा कह रहा था अपनी मां से कि परमात्मा भी अजीब किस्म का आदमी है! विटामिन तो रख दिए पालक की सब्जी में और आइसक्रीम में कुछ भी नहीं! अरे रखने ही थे विटामिन तो आइसक्रीम में रखता। लोग दिल खोल कर खाते। विटामिन रखने गया तो पालक की भाजी में, कि जो खाई ही न जाए। मगर रोज खानी पड़े।
न पालक की सब्जी की जरूरत है, न चिंता है, न फिक्र है, न किराया चुकाना है, न बिजली का बिल भरना है, न इनकमटैक्स, कुछ भी नहीं। न कोई सरकार, न कोई पुलिसवाले, न कोई शिक्षक, न कोई स्कूल। बच्चा मस्त है। श्वास तक खुद नहीं लेता। मां श्वास लेती है उसके लिए। मां से उसे सारा पोषण मिलता है। यह नौ महीने वह स्वर्ग में रहता है।
फ्रायड ने यही खोज की कि यह जो बच्चा नौ महीने मां के गर्भ में अनुभव करता है, इसी से मनुष्य को सुख की खोज है। अज्ञात में यह बात बैठ गई है उसके कि ऐसी सुख की अवस्था भी हो सकती है! फिर हम जो घर बनाते हैं, वह भी हम इसी आधार पर बनाते हैं। हमारी सारी चेष्टा यही होती है कि हम किसी तरह वही सुखद अवस्था फिर बना लें। मगर उसको बनाने में बड़ी चिंताएं उठानी पड़ती हैं। उन चिंताओं में, कुछ सुख थोड़ा-बहुत हो भी जीवन में, वह भी खो जाता है।

तुम अगर डरते तो पैदा ही नहीं होते। लेकिन वह तो सौभाग्य की बात कि तुम्हें कुछ होश नहीं था, बेहोशी में पैदा हो गए, नहीं तो पैदा ही नहीं होते। समझदार तो पैदा ही नहीं होते। वे तो भीतर ही रुक जाते। वे तो कहतेः कहां जाना छोड़ कर अपना घर! हम भले, अपना घर भला!
अब तुम कहते हो कि संन्यास का मार्ग अपरिचित है।
जीवन के सभी मार्ग अपरिचित हैं। परिचित क्या है? प्रेम परिचित है? जब पहली दफा प्रेम किया था तो परिचित था? जब किसी के प्रेम में पड़ गए थे और आह्लादित हुए थे, आनंदित हुए थे और गीत झरने लगे थे और फूल खिलने लगे थे, तब परिचित थे? लेकिन चल पड़े अपरिचित मार्ग पर। फिर ले जाए कहीं! जब संगीत से प्रभावित हो गए थे और वीणा बजानी सीखनी शुरू कर दी थी, तो परिचित था कि कितना अभ्यास करना होगा?
यहूदी मेनुहिन से किसी ने पूछा--प्रसिद्ध वायलिनवादक--कि आप कितना अभ्यास करते हैं? आप जब बजाते हैं वायलिन तो ऐसा लगता है जैसे स्वस्फूर्त! मेनुहिन हंसने लगा, उसने कहाः लगेगा क्यों नहीं! आठ घंटे रोज अभ्यास करता हूं। आठ घंटे अभ्यास करता हूं, तब लगता है स्वस्फूर्त। अगर तीन दिन अभ्यास न करूं तो मुझे पता चलने लगता है कि चूकें होनी शुरू हो गईं। अगर चार दिन अभ्यास न करूं तो जो आलोचक हैं उनको पता चलने लगता है कि चूकें शुरू हो गईं। और अगर पांच दिन अभ्यास न करूं तो आम जनता को पता चलने लगता है कि चूकें शुरू हो गईं।
वायलिन सुनते वक्त तुम्हें ख्याल में भी नहीं आता, उसके पीछे कितना श्रम है, कितनी साधना है, कितनी तपश्चर्या है। तुम वायलिनवादक को देख कर तपश्चर्या का विचार ही नहीं करते। तुम सितारवादक को देख कर कभी तप की बात सोचते हो? तप की बात तो तुम सोचते हो किसी बुद्धू को धूनी रमाए बैठा दिखाई पड़ जाए तो। धूनी रमाने में कोई तप है? राख वगैरह लपेट कर अंगीठी जला कर बैठ गए, यह कोई तप है? अंगुलियां लहूलुहान हो जाती हैं सितारवादक की। वर्षों की सतत साधना के बाद तारों में से स्वर्गीय संगीत उठना शुरू होता है। वर्षों छाती टूटने लगती है बांसुरी को फूंक-फूंक कर, श्वास उखड़ने लगती है, तब कहीं बांसुरी में प्राण आते हैं। यह तपश्चर्या है।
लेकिन पहले कदम तो रखने होते हैं अज्ञात में ही। पहले से कहां पता होता है कि क्या होंगी यात्रा की अड़चनें!
मैं यह नहीं कहता कि संन्यास का मार्ग कोई सुगम मार्ग है, भूल कर नहीं कहता। दुर्गम पथ पर चलने की आकांक्षा उठी है। अपरिचित तो है ही।
बुद्ध ने कहा हैः संन्यास तो ऐसे है जैसे आकाश में उड़ते हुए पक्षी। उनके पैरों के चिह्न नहीं बनते। इसलिए कोई चाहे कि हम नकल करके और उनके पैरों के चिह्नों पर चल-चल कर उड़ लेंगे, तो गलती में है। संन्यास की कोई बंधी हुई लकीरें नहीं होतीं, कोई राजपथ नहीं होते, पगडंडियां भी नहीं होतीं। चलना पड़ता है खुद ही और जंगल में रास्ता बनाना पड़ता है।
हां, नकल करनी हो तो बात अलग। नकली संन्यास अपरिचित नहीं होता; वह बिल्कुल परिचित होता है।
मेरा संन्यास तो बिल्कुल अपरिचित है और मैं उसे अपरिचित ही रखना चाहता हूं। इसलिए मैं कोई बंधी-बंधाई धारणाएं नहीं देता। मैं अपने संन्यासी को नहीं कहता--यह खाओ, यह न खाओ; यह पीओ, वह न पीओ; ऐसे बैठो, वैसे बैठो; यह पहनो, वह न पहनो। मैं अपने संन्यासी को कोई बंधी-बंधाई धारणाएं नहीं देता। अपने संन्यासी को केवल सजगता का संदेश देता हूं। और फिर तुम्हारी सजगता तुम्हें जो करने को कहे, करो। मूर्च्छा से मत करो, बस इतना सार-सूत्र है। जाग कर जीओ बस, बेहोशी में नहीं। फिर तुम्हारे जागरण में जो फलित हो, शुभ है। तुम्हारा जागरण तुम्हें जहां ले जाए, जाओ। फिर कितना ही भय तुम्हें पीछे खींचे, मत खिंचना। जंजीरें रोकेंगी पैरों को। और जंजीरें साधारण जंजीरें नहीं हैं, सूक्ष्म हैं। और जंजीरें लोहे की भी नहीं हैं, सोने की हैं। इसलिए उनसे मोह भी पैदा होता है। उन पर हीरे-जवाहरात भी जड़े हैं। लगता है आभूषण हैं, कैसे छोड़ दें? कारागृह घर जैसे मालूम होने लगे हैं; इतने समय से हम रह रहे हैं उनमें कि हम सोच ही नहीं सकते कि इनके बिना भी हमारा जीवन हो सकता है। लेकिन जब तुम्हें अपरिचित और अज्ञात की हवाएं छूने लगेंगी और जब तुम्हारे जीवन में एक नई पुलक का प्रवेश होगा, तब तुम

जानोगे कि जीवन कुछ और था; हम किसी और चीज को जीवन मान कर बैठ गए थे। मत घबड़ाओ।

पंथ होने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला!

घेर ले छाया अमा बन,
आज कज्जल-अश्रुओं में रिमझिमा ले यह घिरा घन;
और होंगे नयन सूखे
तिल बुझे औ‘ पलक रूखे;
आर्द्र चितवन में यहां
शत विद्युतों में दीप खेला!

अन्य होंगे चरण हारे
और हैं जो लौटते, दे शूल को संकल्प सारे;
दुखी व्रती निर्माण उन्मद,
यह अमरता नापते पद
बांध देंगे अंक-संसृति
से तिमिर में स्वर्ण बेला!

दूसरी होगी कहानी,
शून्य में जिसके मिटे स्वर, धूलि में खोई निशानी; आज जिस पर प्रलय विस्मित--
मैं लगाती चल रही नित,
मोतियों का हाट औ’
चिनगारियों का एक मेला!

हास का मधु-दूत भेजो,
रोष की भू्र-भंगिमा पतझार की चाहे सहे जो! ले मिलेगा उर अचंचल,
वेदना-जल, स्वप्न-शतदल,
जान लो वह मिलन एकाकी
विरह में है दुकेला!
पंथ होने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला!

साहस जुटाओ!
पंथ होने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला!
है अपरिचित मार्ग और तुम अकेले हो और यह यात्रा एकाकी की है। यह अंतर्यात्रा है। यहां दूसरा तुम्हारे साथ जा भी नहीं सकता। कोई तुम्हारे साथ नहीं जा सकता। परमात्मा तक की उड़ान तुम्हें अकेले ही भरनी होगी।
और जब ऐसी आकांक्षा जगी हो--जगी होगी आकांक्षा, तभी तो तुमने प्रश्न पूछा है--तो भय को सरका कर रख दो। भय है, स्वीकार; लेकिन भय की सुनो क्यों? सुनना जरूरी नहीं। इस सत्य को स्मरण रखो कि वीर पुरुषों में और कायरों में इस बाबत कुछ भेद नहीं होता, दोनों को भय लगता है। ऐसा मत सोचना कि वीर पुरुष को भय नहीं लगता। उसको उतना ही भय लगता है जितना कायर को। आखिर उसके पास भी हृदय है और उसके पास भी मस्तिष्क है और उसे भी अपने जीवन को बचाने की आकांक्षा है। वह भी जब अपरिचित मार्ग पर जाता है तो उसका मन डांवाडोल होता है, झिझकता है। फिर फर्क क्या है कायर में और बहादुर में? फर्क यह है कि कायर अपने भय की सुनता है और बहादुर अपने भय की सुनता नहीं। बहादुर कहता है कि ठीक है, रहने दो भय!
पंथ होने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला!
मैं तो जाता हूं! जितना ही बहादुर अनुभव करता है भय, उतनी ही चुनौती बना लेता है उसको। वह भय को भी सीढ़ी बना लेता है। वह कहता हैः जब इतना भय है तो जाकर ही रहूंगा। जरूर कुछ जानने योग्य छिपा होगा।

मुफ्त तो कुछ भी नहीं मिलता। और हम परमात्मा को मुफ्त पाना चाहते हैं। और हमने कैसे-कैसे सस्ते परमात्मा बना रखे हैं! कहीं भी पत्थर पर सिंदूर लगा दिया, हनुमानजी हो गए! तुम जरा करके देखो, ले आओ एक पत्थर उठा कर, लगा दो सिंदूर, दो फूल चढ़ा दो, फिर बैठ कर देखते रहना। थोड़ी देर में तुम देखोगे कि लोग निकलने लगे, कोई सिर झुका रहा है, कोई दो फूल चढ़ा जाएगा, कोई दो पैसे चढ़ा जाएगा, कोई नारियल फोड़ जाएगा। कितना सस्ता है सब! तुम्हारे मंदिर की मूर्तियां चाहे कितनी ही सुंदर क्यों न गढ़ी गई हों, हैं तो पत्थर ही! और तुम्हारे मंदिर चाहे कितने ही कलात्मक क्यों न हों, हैं तो आखिर आदमी के ही निर्माण! इनका परमात्मा से क्या लेना-देना! न परमात्मा मस्जिद में है, न मंदिर में; न काबा में, न कैलाश में। परमात्मा अगर है तो दुस्साहसियों के प्राण में है। उस चुनौती में जब कोई उतर जाता है, समस्त भयों को काट कर, भय की भीड़ों को हटा कर और चल पड़ता है एकाकी, छोड़ देता है अपनी छोटी सी डोंगी को अज्ञात के सागर में। उस पार का कोई भरोसा नहीं है, कुछ पक्का नहीं है, होगा भी वह पार कि नहीं होगा कौन जाने! कोई गारंटी नहीं। पहुंच पाऊंगा या नहीं, यह भी कहां निश्चय है! और इस तूफान में, इस आंधी में, इस झंझावात में यह छोटी नौका, ये छोटे हाथ, ये छोटी पतवारें साथ दे सकेंगी! कहां डूब जाऊंगा!
मगर धन्यभागी हैं वे जो इतना साहस कर लेते हैं, क्योंकि वे जहां डूबते हैं वहीं किनारा है। उनके लिए मझधार भी किनारा बन जाती है। उनके लिए डूबना ही बचना हो जाता है। अभागे तो वे हैं जो इसी किनारे पर अटके रहते हैं, ठिठके ही रहते हैं, सोचते ही रहते हैं, बैठे रहते हैं और सोचते रहते हैं कि कब आए शुभ घड़ी और हम नाव छोड़ें। वह शुभ घड़ी कभी नहीं आती। जिंदगी हाथ से खो जाती है, मौत आ जाती है, शुभ घड़ी कभी नहीं आती। अभी जब अभीप्सा हो, अभी जब भीतर प्राणों में थोड़ी ऊर्जा है, आग है, तो कुछ करो। इस आग का उपयोग कर लो। फिर पीछे राख ही रह जाएगी।

अंगुलियों से छिड़ते जिस काल,
सुधा की बूंदें पाते कान।
धुनें सुन सिर धुनते थे लोग,
तान में पड़ जाती थी जान।

रगों में रम जाती थी रीझ,
कंठ का जब करते थे संग।
मीड़ जब बनते मिले मरोड़,
थिरकने लगती लोक-उमंग।

निकलते थे इनमें वे राग,
गलों के जो बनते थे हार।
सुरों में मिलती ऐसी लोच, बरस जाती थी जो रस-धार।

मनों को जो ले लेती मोल,
वह लहर इनसे पाती बीन।
सितारों में भरते वह गूंज,
दिलों को जो लेती थी छीन।
बोल थे इनके बड़े अमोल,
कभी इनमें भी थी झंकार।
करेगा प्यार इन्हें अब कौन,
आज तो हैं ये टूटे तार।

इसके पहले कि वीणा के तार टूट जाएं, बजा लो। दो गीत गा लो। तार तो टूटेंगे ही। नाव तो डूबेगी ही, किनारे पर भी बैठे रहे तो भी डूबेगी। तो फिर मझधार में डूबने का मजा क्यों छोड़ा जाए? फिर मझधार की मौज क्यों छोड़ी जाए? जब मरना ही है, मिटना ही है, तो एक बात निश्चित कि मौत से डर का कोई कारण

नहीं। जब मौत इतनी सुनिश्चित है कि उससे बचा ही नहीं जा सकता, तो मौत को हम गणित के बाहर छोड़ सकते हैं। जब कोई उपाय ही नहीं है मौत से बचने का, जब सब मिट ही जाना है, तो फिर क्या चिंता! फिर जब तक श्वासें हैं, दांव पर लगा लो। जब तक बीन बज सकती है, बजा लो। क्योंकि वीणा तो टूटी रह जाएगी, लेकिन उससे उठा हुआ संगीत परमात्मा तक पहुंच जाएगा। देह तो यहीं पड़ी रह जाएगी हड्डी- मांस-मज्जा की, मगर उससे उठे गीत पहुंच जाएंगे आकाश तक। तुम्हारा चाहे अंत हो जाए मझधार में, लेकिन तुम्हारे भीतर वह जो खोज थी, अभीप्सा थी, वह जो प्रार्थना थी, वह पहुंच जाएगी। वही तुम्हारी आत्मा है।
अब तुम पूछते हो, पुरुषोत्तमदासः ‘क्या करूं?’
अज्ञात का वरण करो! अज्ञात से विवाह रचाओ! इसके सिवाय जीने का न कभी कोई ढंग था, न है, न कोई ढंग कभी हो सकता है।

दूसरा प्रश्नः आप कहते हैं अनुभव से सीखो। लेकिन हम सोए-सोए बेहोश आदमियों के अनुभव का कितना मूल्य! क्यों झूठे आश्वासन दे रहे हैं? हम तो ऐसे गधे हैं जो बार-बार उसी गड्ढे में गिरते चले जाते हैं। कृपा करके कुछ सीधा मार्गदर्शन दें!
चैतन्य सागर उर्फ लहरू।

लहरू! इससे ज्यादा सीधा और कोई मार्गदर्शन नहीं हो सकता है। गधे भी अनुभव से सीख लेते हैं। वैज्ञानिकों से पूछो।
एक वैज्ञानिक जांच कर रहा था कि बंदरों में कितनी प्रतिभा होती है।
तो उसने एक केला छप्पर से बांध कर लटका दिया। बंदर बैठा देख रहा है। अब केले को बंदर अनासक्त भाव से नहीं देख सकता। कोई बंदर वीतराग नहीं है।
बांछें खिल गई होंगी बंदर की, लार टपक गई होगी बंदर की। मगर केला बहुत ऊंचा लटका है, उतनी छलांग नहीं। अब वैज्ञानिक देखता है कि कितनी इसमें अकल है। वह भीतर से लकड़ी के डब्बे लाता है। बगल में दीवाल के पास लकड़ी के डब्बे रखने लगता है। बंदर डब्बे भी देख रहा है। उसकी आंखों में चमक है। वैज्ञानिक सोच रहा है कि शायद वह हिसाब लगा रहा है कि डब्बे के ऊपर डब्बा रख कर, डब्बे के ऊपर डब्बा रख कर उसके ऊपर खड़ा हो जाऊंगा, तो केले तक पहुंच जाऊंगा। जब आखिरी डब्बा रख कर वैज्ञानिक लौटने लगा, जैसे ही वह केले के नीचे आया, बंदर झपटा, उसके सिर पर सवार हो गया और उसने केला तोड़ लिया!
यह वैज्ञानिक ने भी नहीं सोचा था। बंदरों में भी अकल होती है! कौन डब्बे उठाए! यह गधा खुद ही ला रहा है, ढो रहा है। वह इसको देख रहा है कि अच्छा! उसने राज निकाल लिया। उसने कहाः अब यह आखिरी डब्बा ले आया, अब यह जाने के करीब हैं बच्चू, अब इनका उपयोग कर लो, नहीं तो फिर डब्बे उठाना पड़ेंगे।
गधे भी सीख लेते हैं। सीखता ही आदमी ऐसे है--भूल-चूक करके, अनुभव से। अनुभव का क्या अर्थ? अनुभव का अर्थ होता हैः भूल-चूक करना, भटकना। भटक कर पीड़ा उठानी। गलत करना, कांटों से चुभ जाना। ठीक करना, फूलों की वर्षा हो जाना। ऐसे धीरे-धीरे गणित बैठता जाता है। दिखने लगता है कि क्या करने से आनंद होता है, क्या करने से दुख होता है। और तो सीखने का कोई उपाय ही नहीं है--भूल-चूक। इससे ज्यादा सीधा कोई उपाय नहीं। इससे बचने की लोग कोशिश करते हैं और उस कोशिश में ही झूठे हो जाते हैं। फिर एक ही रास्ता हैः दूसरे जो कहें, वह मान लो। वही लोगों ने किया है। तो लोग गीता पढ़ रहे हैं, सोच रहे हैं कि गीता में तो सब बातें कृष्ण महाराज कह ही गए, अब अपने को अलग से क्या सीखनी! मगर परिस्थिति बदल गई, समय बदल गया, सब कुछ बदल गया। अब कृष्ण भी लौटें तो गीता नहीं दोहराएंगे। कोई हि.ज मास्टर्स वायस के ग्रामोफोन रिकार्ड थोड़े ही हैं कृष्ण। लौटेंगे तो देखेंगे कि सब बदल गया। अब उस बात को कहने का कोई अर्थ नहीं होगा।
लेकिन कल ही मैंने पढ़ा कि मोरारजी देसाई ने कहा कि गीता में तो हर चीज
का उत्तर है। तो तीन साल भैया क्या करते रहे? एकाध उत्तर का तो उपयोग कर लेते! कम से कम जीवन-जल वाला उत्तर तो नहीं है। वही किया, और बाकी क्या किया? बस पिटी-पिटाई लकीरें पीट रहे हैं लोग! गीता में सब उत्तर हैं! सुनने

वाले भी प्रसन्न हो जाते हैं, उनके अहंकार को भी तृप्ति मिलती है कि हां, यही तो हम मानते हैं कि गीता में सब उत्तर हैं। तो जब से वे प्रधानमंत्री नहीं रहे, गीता-ज्ञान-मर्मज्ञ हो गए हैं! अब गीता पर प्रवचन देने लगे हैं! गीता में हर चीज का समाधान है!
मुसलमान सोचते हैं कुरान में हर चीज का समाधान है। ईसाई सोचते हैं बाइबिल में हर चीज का समाधान है। समाधान तो है, लेकिन समाधान हुआ कहां? एक समस्या तो मिटी नहीं। कृष्ण की मौजूदगी में भी नहीं मिटी थी तो अब क्या मिटेगी? और कृष्ण ने तो अपनी परिस्थिति के लिए समाधान दिया था, वह तब भी काम नहीं पड़ा, तो अब तो क्या काम पड़ेगा पांच हजार साल बाद? अब तो किस बात का उत्तर है वहां? लेकिन यह सस्ता रास्ता मालूम होता है, सीधा, कि पढ़ ली किताब, बस बात खत्म हो गई, उसमें उत्तर लिखा ही हुआ है। मगर यह वैसे ही है जैसे स्कूल के बच्चे करते हैं; उनको गणित करने को दो, किताब उलट कर देखी, पीछे उत्तर लिखे होते हैं! वे जल्दी से उत्तर देख लिए, उन्होंने समझा कि बात खत्म हो गई, उत्तर तो हमें मालूम है।
मगर उत्तर मालूम होने से कुछ नहीं होता। प्रश्न और उत्तर के बीच, उत्तर तक पहुंचने की प्रक्रिया कहां है? विधि कहां है? वह विधि अगर नहीं है तो तुम्हारा उत्तर थोथा रहेगा, बासा रहेगा, उधार रहेगा; उसमें प्राण नहीं हो सकते। वह उत्तर है ही नहीं। तुम उस उत्तर तक स्वयं नहीं पहुंचे हो। कृष्ण पहुंचे होंगे अपने अनुभव से, तो उन्होंने कीमत चुकाई, पहुंचे। तुमने कीमत नहीं चुकाई और तुम सोचते हो कि पहुंच जाएं! इस तरह के उधार उत्तरों से काम नहीं चल सकता।
मैं कल पढ़ रहा था कि दो दिन पहले वेटिकन में, पोप ने वेटिकन के पास की पहाड़ी पर अपने कंधे पर लकड़ी की सूली लेकर चढ़ाई की। दो हजार साल पहले जैसे जीसस को अपने कंधों पर सूली लेकर पहाड़ पर चढ़ना पड़ा था। लाखों लोग इकट्ठे हुए! तब भी हुए थे, अब भी हुए। लेकिन तब उन लाखों लोगों ने जीसस पर पत्थर फेंके थे, सड़े टमाटर फेंके थे, गालियां दी थीं, धक्के मारे थे। और अब? फूल बरसाए! यह ढोंग था जो हो रहा था। और तब जीसस को ढोना पड़ा था एक वजनी सूली को। तीन बार पहाड़ चढ़ते वक्त गिरे थे उसके वजन के नीचे दब कर, घुटने छिल गए थे, लहूलुहान हो गए थे। कोड़े पड़े थे--कि उठो, सूली को ढोओ! ऐसा तो कुछ भी न हुआ। पोप के लिए तो बिल्कुल हलकी, कम वजनी लकड़ी का सुंदर नक्काशी से भरा हुआ क्रॉस...
लेकिन जीसस के ही वचन का पालन किया जा रहा है। जीसस ने कहा हैः जो भी मेरे मार्ग पर चलेगा, उसे अपने कंधों पर सूली ढोनी पड़ेगी। वाह! कितना प्यारा अनुकरण! सो सूली ढो रहे हैं वे। और भी छुटभैये भी छोटी-छोटी सूलियां ले आए थे। अरे जब पोप ढो रहे हैं तो बाकी लोग भी ले आए थे। सभी यात्री ले आए थे। जुलूस रहा, शोभा-यात्रा रही। एक तरह की रामलीला हो रही है समझो। पहाड़ी पर पहुंच गए। पिकनिक का सामान भी लाए होंगे लोग। अब पहाड़ी पर गए थे तो कोई ऐसे ही थोड़े चले जाएंगे। अपना भोजन वगैरह लाए होंगे, तो पिकनिक हुई। और फिर मस्त अपने घर लौटे होंगे। इसकी बड़ी चर्चा हुई कि महान कार्य हुआ!
मैंने कहाः महान ही कार्य करना था तो कम से कम इस पोप को सूली तो चढ़ा
ही देना था! इतनी तो झंझट मिटा आते! जब गए ही थे पहाड़ पर तो इतना तो करके लौटते! पिकनिक मनानी थी, मना लेते फिर पीछे, इसको तो निपटा आते! इस बेचारे पर तो दया करते! इतनी दूर तक सूली ढोई, सब किया! मगर वह कुछ नहीं हुआ। पोप भी वापस आ गए! यह कैसी सूली ढोना हुई! इनको सूली पर लटका देते और पास की किसी गुफा में इनको रख देते तीन दिन तक और फिर देखते कि पुनरुज्जीवन होता है कि नहीं! तब ड्रामा पूरा होता। यह क्या रामलीला हुई!
मगर बस ऐसी ही रामलीलाएं हो रही हैं। हरेक आदमी इसी तरह की रामलीलाओं में पड़ा हुआ है। सारी दुनिया रामलीला में उलझी हुई है। रामलीला का मतलब हैः अनुकरण। थोथे अनुकरण, बासे अनुकरण।
उत्तर सीधे मालूम पड़ते हैं, मगर वे सीधे नहीं हैं। अगर किसी ने एक कोड़ा मार दिया होता बीच में पोप को, तो पता चल जाता। सूली दे मारते उसको वहीं।

एक रामलीला में ऐसा हुआ। हनुमानजी गए संजीवनी बूटी लेने। आए फिर रस्सी पर सरकते हुए। एक झूठा पुट्ठे का पहाड़... घिर्री में कहीं रस्सी अटक गई। हनुमानजी अटके बीच में। पहाड़ भी लिए। लक्ष्मणजी नीचे पड़े बेहोश। वे भी बीच-बीच में आंख खोल कर देखें कि बड़ी देर हो रही है। और रामचंद्रजी देख रहे हैं कि हनुमानजी सामने अटके हैं, मगर वे यही कह रहे हैं कि हे हनुमान, तुम कहां हो? जल्दी आओ! और जनता हंस रही कि यह भी खूब मजा हो रहा है! मैनेजर की कुछ समझ में न आया कि अब करना क्या! इसका कोई ठीक-ठीक निर्देश नहीं था रामलीला में कि अब इसका, ऐसी स्थिति आ जाए तो क्या करना। बाबा तुलसीदास कुछ लिख नहीं गए। सो घबड़ाहट में वह चढ़ा कि कोई तरह से रस्सी को सुलझा दे, मगर जब घबड़ाहट में सुलझाओ कुछ तो और उलझ जाता है। सो सुलझाने में और उलझ गया। रस्सी की खींचातानी में हनुमानजी की टांग खिंच गई, पूंछ टूट गई, पूंछ टपक कर गिर गई। और रामचंद्रजी वही कहे चले जा रहे हैं कि हे हनुमान जी, तुम कहां हो?
कुछ सूझा नहीं मैनेजर को, सो उसने चाकू निकाल कर रस्सी काट दी। हनुमानजी धड़ाम से गिरे मय पहाड़ के। लक्ष्मणजी तक उठ कर बैठ गए--संजीवनी देने की जरूरत ही नहीं पड़ी। और रामचंद्रजी अपना पुराना ही रट लगाए हुए हैं। वे कह रहे हैं कि भैया, संजीवनी ले आए?
हनुमानजी ने कहाः ऐसी की तैसी संजीवनी की! पहले यह बताओ, रस्सी किसने काटी?
रामलीला रामलीला है। उसका कोई मूल्य है? हनुमानजी तो एकदम गुस्से में अपनी पूंछ उठा कर कि पहले इस मैनेजर के बच्चे को दिखाता हूं, फिर अभी लौट कर आता हूं!
अनुकरण करोगे--फिर चाहे वह गीता का हो, चाहे वेद का, चाहे धम्मपद का-- कुछ लाभ नहीं। जीवन में शिक्षा तो अपने ही जीवन से लेनी होती है। और जीवन में शिक्षा का एक ही उपाय हैः जितनी भूलें कर सको, करो। हां, एक ही भूल दुबारा मत करना। नई-नई भूल करो रोज-रोज। कम से कम भूलों की तो ईजाद करो, इतनी तो बुद्धि दिखाओ! कम से कम नई-नई भूल तो करो। इतने तो आविष्कारक होना ही चाहिए।
लेकिन लोग पिटी-पिटाई भूलें करते हैं। भूलें भी वही जो तुम्हारे बाप-दादे भी करते रहे, तुम भी कर रहे हो। कुछ तो शर्म खाओ।
मैंने सुना है, एक आदमी टोपियां बेचने का काम करता था। इलेक्शन के वक्त गांधी-टोपियां खूब बिकती हैं! तो काफी कमाई हो जाती थी। साल भर टोपियां ही बनाता वह, इलेक्शन के वक्त गांधी-टोपी बेच लेता और बस साल भर के लिए काफी हो जाता। क्योंकि एकदम इलेक्शन के वक्त गांधीवादी पैदा होते हैं। जो देखो वही गांधीवादी! जिन्होंने गांधी को मारा, वे भी गांधीवादी! वे भी गांधी-टोपी लगाते हैं। वह गांधी-टोपियां बेच कर बाजार से लौट रहा था, रास्ते में थक गया था, एक वृक्ष के नीच विश्राम करने लेटा। कुछ टोपियां बच गई थीं उसकी टोकरी में। सो गया, झपकी लग गई। बंदर वृक्ष पर थे, वे नीचे उतरे। उन्होंने उस आदमी को टोपी लगाए देखा, उन्हें बात जंची। उन्होंने सोचाः हम भी गांधीवादी हो जाएं! अरे जब सभी गांधीवादी हो रहे हैं! तो पुराने समय में अपने पूर्वज रामजी के साथ रहे, तो हम भी क्यों पीछे रहें! सो उन्होंने टोकरी खोली, उसमें टोपियां मिल गईं, तो सबने टोपियां लगा लीं और बैठ गए टोपियां लगा कर वृक्ष के ऊपर।
जब इस आदमी की नींद खुली, टोकरी का ढक्कन खुला पड़ा था, टोपियां नदारद!
यह बड़ा घबड़ाया। इसने कहा, टोपियां गईं कहां? कोई चुरा ले गया! तभी इसे खिलखिलाहट की आवाज सुनाई पड़ी, बंदर हंस रहे थे। सब गांधीवादी बने बैठे थे। एकदम दिल्ली का मजमा था। यूं समझो कि संसद हो। इसने कहाः अब करना क्या, इनसे टोपियां कैसे लेना? और बंदर खिल्ली उड़ा रहे उसकी, उसको अंगूठे दिखला रहे। उसको तत्काल ख्याल आया कि बंदर नकलची होते हैं; सो उसने अपनी टोपी, जो एक ही टोपी उसके पास बची थी, जो वह खुद लगाए था, वह निकाल कर एकदम फेंक दी। उसने निकाल कर फेंकी कि बंदरों ने भी अपनी-अपनी टोपियां निकाल कर फेंक दीं; वे कोई पीछे रह सकते हैं इस आदमी से। इसने समझा क्या है अपने को! इसने जल्दी से टोपियां इकट्ठी कीं, अपनी टोकरी बंद की, भागा घर की तरफ।

अपने बेटे को जाकर समझाया कि देख ख्याल रख, अब मैं हो गया हूं बूढ़ा, कभी तेरी जिंदगी में ऐसा मौका आए तो ख्याल रखना कि बंदर होते हैं नकलची।
टोपियां अगर चोरी ले जाएं, अपनी टोपी फेंक देना, तो वे सब फेंक देंगे। घबड़ाना मत। मैं बहुत घबड़ा गया था। वह तो यह कहो कि संयोग से एकदम मुझे यह याद आ गई कि बंदर नकलची होते हैं, तो मैंने सोचा एक टोपी और दांव पर लगाने में हर्ज नहीं। और सब टोपियां बचा कर आ गया हूं।
फिर कई वर्षों बाद बेटा टोपियां बेचने गया। लौटता था, उसी झाड़ के नीचे विश्राम करने रुका। बंदर उतरे, टोपियां लगा कर झाड़ पर चढ़ गए। नींद खुली, मुस्कुराया। वे भी खिल्ली उड़ा रहे थे, अंगूठे दिखा रहे थे। उसने भी कहाः करते रहो खिल्ली, दिखाते रहो अंगूठा, अरे मुझे तरकीब मालूम है! उसने अपनी टोपी निकाल कर फेंक दी। एक बंदर, जिसको टोपी नहीं मिली थी, वह उतर कर वह टोपी भी लेकर चला गया। उन बंदरों के बाप भी मर गए थे, वे भी सिखा गए थे कि बेटा, आगे अगर कोई टोपियों का सौदागर इस तरह की हरकत करे तो टोपी उठा लाना, अपनी टोपी मत फेंकना। बंदर सीख गए और आदमी ने नहीं सीखा।
तुम कहते हो लहरू कि हम ऐसे गधे हैं जो बार-बार उसी गड्ढे में गिरते चले जाते हैं।
तो उसका एक ही मतलब है कि और लोग कहते हैं उसको गड्ढा, तुम उसे गड्ढा नहीं मानते हो। तुम्हें तो लगता है--अहा, कितना प्यारा! और लोग कहते हैं। ये महात्मागण खड़े हैं गड्ढे के बाहर और वे कह रहे हैंः ये गड्ढा है! और तुम्हें लगता है कि अहा, कितना प्यारा! कितना मनोरम! एक दफा तो और गिर लें! एक दफा तो और गिर लेने दो! एक डुबकी और मार लें! बहती गंगा, कौन हाथ न धो ले! और तुम कहते होः महात्मा जी, आप ठीक कह रहे हैं। पर एक डुबकी और। दिल नहीं मानता। ये महात्मागण कहते हैं कि यह गड्ढा है; यह तुम्हें नहीं दिखाई पड़ता कि गड्ढा है। जिस दिन तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि गड्ढा है, उसी दिन गिरना बंद हो जाएगा। और इनके कहने से तुम्हें दिखाई नहीं पड़ सकता। इनके कहने से सिर्फ एक बात होगी--और वह यह होगी कि तुम गिरोगे तो ही गड्ढे में, सिर्फ अपराध-भाव और पैदा हो जाएगा--जो कि दोहरी महंगी बात हो गई। गड्ढे में गिरने में उतनी खराबी नहीं थी, जितनी अपराध-भाव में खराबी है।
अब जैसे एक आदमी सिगरेट पी रहा है। मिल गए कोई महात्मा, उन्होंने कहाः शर्म नहीं आती सिगरेट पीते हुए! तुमने जल्दी से सिगरेट छिपा ली। अब तुम्हें डर भी लगने लगा कि कहीं रास्ते में महात्माजी न मिल जाएं कभी सिगरेट पीते हुए! छिप कर पीने लगे। डर-डर कर! महात्माओं से बचो, पंडितों से बचो, पुरोहितों से बचो, शिक्षकों से बचो, मां-बाप से बचो, पत्नी से बचो... बचते ही रहो! लोग क्या-क्या, कितना उपाय कर रहे हैं! कर क्या रहे हैं कुल जमा? धुआं भीतर ले गए, बाहर लाए। इससे बचने के लिए कितने उपाय कर रहे हैं! और इस उपाय करने में सिर्फ दो ही परिणाम हो रहे हैं। एक तो जिस चीज को तुम इतनी चोरी से करोगे, उसमें रस आ जाता है, उसमें मजा ही आ जाता है। कहते हैंः चुराए हुए चुंबन जितने मीठे होते हैं, दूसरे चुंबन नहीं होते। बात में कुछ बात है। पते की बात है। बाजार से खरीद कर लाओ वे ही फल, उनमें वह रस नहीं होता; पड़ोसी के झाड़ से तोड़ लो, फिर देखो कैसा मजा आता है! कच्चे भी हों तो भी स्वादिष्ट मालूम होते हैं।
जिस चीज का निषेध हो, उस चीज में रस बढ़ जाता है। यही तो ईसाइयों की प्राचीन कथा है कि ईश्वर ने कहा था अदम को और हव्वा को कि देखो, इस वृक्ष के फल मत खाना; यह ज्ञान का वृक्ष है, इसके फल खाओगे तो स्वर्ग से निष्कासित कर दिए जाओगे। अब यह परमात्मा भी खूब रहा! इसको मनोविज्ञान बिल्कुल आता ही नहीं था। अ ब स नहीं आता था मनोविज्ञान का। यह भी कोई कहने की बात थी! स्वर्ग में करा.ेडों वृक्ष थे, अगर यह अदम-हव्वा पर ही छोड़ देता तो अभी तक भी न खोज पाए होते ये कि कौन सा वृक्ष ज्ञान का वृक्ष है! मगर इसने खुद ही बता दिया कि यह ज्ञान का वृक्ष है, इसके फल मत खाना। अब उनकी नींद हराम हो गई होगी। अब उनको चैन न पड़ती होगी। जब भी उस वृक्ष के पास से निकलते होंगे, दिल कुलबुलाता होगा। एकदम गुदगुदी होती होगी कि पता नहीं इसमें क्या राज है! तभी तो वह शैतान उनको भरमा सका। शैतान सांप बन कर आया। अरे उसने कहा कि तुम्हें पता नहीं, परमात्मा रोक रहा है ईर्ष्या के कारण! क्योंकि तुम अगर इसके फल खा लोगे तो तुम भी उतने ही ज्ञानी हो जाओगे जितना परमात्मा है। और

वह नहीं चाहता कि कोई और ज्ञानी हो। ईर्ष्यालु है। जलन से मरा जा रहा है। तुमको अज्ञानी रखना चाहता है।
यह बात जंच गई। उसने पहले पत्नी को जंचाई। इसलिए सभी विक्रेता पहले पत्नियों के पास पहुंचते हैं--तभी से! तुम गए दफ्तर कि विक्रेता आए घर, कि यह मशीन खरीद लो, कि यह जूसर खरीद लो, कि यह सिलाई की मशीन बड़ी गजब की आई है, कि यह साड़ी, इसके बिना तो जीवन व्यर्थ है, अकारथ है! तुम जाओ दफ्तर और विक्रेता बाहर रास्ता देख रहे हैं कि तुम कब जाओ दफ्तर, क्योंकि पहले पत्नियों को समझाना पड़ता है। पत्नियां समझ में आ गईं, तुम्हारा क्या बलबूता है! वह पहला विक्रेता शैतान था। लेकिन ईश्वर खुद ही उसके हाथ में खेल गया। उसने हव्वा को राजी कर लिया, पत्नी को कहा कि तुम सब पागल हो, ये फल चख लो, ये बड़े स्वादिष्ट हैं! और इनके रस में ऐसा गजब है कि तुम भी परमात्मा जैसे हो जाओगे। यह परमात्मा ईर्ष्यालु है। वह तुम्हें अज्ञानी का अज्ञानी रखना चाहता है। तुम्हारी मर्जी! अज्ञानी रहना हो, अज्ञानी रहो।
अब स्त्री को कोई विक्रेता समझाए, बस मामला मुश्किल हो जाता है। उसने पति को राजी कर लिया। अदम पहला पति है, फिर बाकी पति उसी के पीछे चल रहे हैं। हां-हूं की होगी थोड़ी, ना-नू की होगी थोड़ी, लेकिन पत्नी फिर जिद पर अड़ गई होगी, बाल खींचने लगी होगी, रोने-गाने लगी होगी। सो उसने सोचा कि चलो झंझट मिटाओ। और उसके मन में भी लगा होगा, हो न हो यह बात सच हो। आखिर परमात्मा ने क्यों रोका?
जब तुम अपने बच्चे से कहते हो कि सिगरेट मत पीना, तो वह भी सोचता है कि क्यों, क्यों नहीं पीना? सारी दुनिया पी रही है, इतने लोग पी रहे हैं--और सिर्फ मैं न पीऊं? जरूर कुछ राज है। पीकर देखूं तो!
बस वही भूल हुई। वही भूल चलती चली जाती है। दूसरे तुमसे कह रहे हैं कि
यह गड्ढा है। सब तुमसे कह रहे हैं कि यह गड्ढा है। तुम भी सिर हिलाते हो, क्योंकि इतनी बार कहा गया है कि तुम्हारे मन में भी यह बात बैठ गई है कि यह गड्ढा है। तुममें इतनी हिम्मत भी नहीं रही है कि तुम यह कह सको कि मुझे यह गड्ढा नहीं दिखाई पड़ता; मुझे तो लगता है बड़ी प्यारी शय्या है, मैं तो इस पर लेटूंगा! तुममें इतना बल भी नहीं रहा कि तुम यह कह सको। बस और कहते हैं कि गड्ढा है। और सभी कहते हैं! और इतनी पुरानी परंपरा, इतने कहने वाले लोग, उनके इतने तर्क!
मैं जब विश्वविद्यालय से पहली दफा घर आया तो स्वभावतः मेरे पिता, मेरी मां चाहते थे कि मेरा विवाह हो जाए। कौन माता-पिता न चाहे! लेकिन मेरे पिता मेरी एक आदत से परिचित थे कि अगर मैंने एक दफा नहीं कह दिया तो फिर इस दुनिया में कोई उपाय नहीं, जो मुझसे हां भरवाई जा सके। सो वे सीधे मुझसे पूछना नहीं चाहते थे, क्योंकि एक दफा मैंने उनको नहीं कह दिया तो बात खत्म हो गई। और हां मैं कहूंगा, इसकी संभावना उन्हें कम लगती थी। सो अपने एक मित्र वकील को उन्होंने कहा--वकील थे--उनको कहा कि भई तुम वकील भी हो, समझदार भी हो, तार्किक भी हो; तुम इसे अगर समझा दो तो अच्छा हो। वकील को चुनौती मिली। उन्होंने कहाः मैं समझा दूंगा। यह छोकरा समझता क्या है अपने को! मेरी जिंदगी अदालत में बीती। अरे बड़े-बड़े मुकदमे जीते। जिनमें हार निश्चित थी, वे मुकदमे जीते। हत्यारों को छुड़ा लाया। तो इसको तो सिर्फ इस बात के लिए राजी करना है शादी के लिए, कोई फिक्र की बात नहीं। यह कितना ही तर्क करे, कोई फिक्र की बात नहीं।
वे आए। बड़ी बातें करने लगे। मैंने कहा कि आप सब ठीक कह रहे हैं, पहले
एक बात तय हो जाएः निर्णायक कौन होगा? तो हम निर्णायक भी तय कर लें। आप तो जानते ही हैं, वकील हैं, एक मजिस्ट्रेट भी होना चाहिए। नहीं तो हम विवाद करते रहें, हल कौन करेगा?
उन्होंने कहाः यह बात तो ठीक है।
तो मैंने कहाः आप जिसको कहें, उसको मैं राजी हूं। और दूसरी बात यह तय
कर लें कि अगर आप जीत गए तो निश्चित मैं शादी करूंगा, लेकिन अगर मैं जीत गया तो? आपको तलाक देना पड़ेगा।
उन्होंने मुझे गौर से देखा कि यह... यह जरा झंझट की बात है। कहने लगेः मैं बाल-बच्चे वाला आदमी हूं।

मैंने कहाः यह तुम जानो। मैं बाल-बच्चे वाला आदमी नहीं हूं। अगर तुम बाल-बच्चे वाले आदमी हो तो सोच-समझ लो, विचार कर लो बाल-बच्चों से, पत्नी से।
दो-तीन दिन वे आए ही नहीं, तो मैं उनके घर पहुंचा--कहां हैं वकील साहब? उनकी पत्नी ने कहाः वे घर पर नहीं हैं।
लेकिन जिस ढंग से कहा, मैं समझ गया कि वे घर पर हैं। मैंने कहा कि यह नहीं चलेगा। मैं यहीं बैठा रहूंगा। कभी तो आएंगे! जब भी आएंगे, यह निर्णय होना ही है। क्योंकि मेरी जिंदगी का सवाल है।
उनकी पत्नी ने कहा कि तुम्हारी जिंदगी का सवाल है कि हमारी जिंदगी का सवाल है? वे घर पर नहीं हैं, मैंने कह दिया, वे बाहर गए हैं। वे दो-तीन दिन नहीं लौटेंगे।
मैंने कहाः मैं दो-तीन दिन यहां रुकूंगा।
तब वकील साहब भी बाहर निकल आए, जब उन्होंने देखा कि दो-तीन दिन तक रुकने की बात है, कब तक छिपे रहेंगे! वे बोलेः भाई हम हाथ जोड़ते हैं। हमसे भूल हो गई जो हमने तुमसे कहा।
मैंने कहाः आप क्या सोचते थे कि विवाद एकतरफा हो सकता है? आप तो बड़े- बड़े मुकदमे जीते, मैं तो जिंदगी में कोई मुकदमा जीता ही नहीं, यही पहला मुकदमा था मेरा। और आप बिना लड़े हारे जा रहे हो!
मैंने कहाः इतनी क्या घबड़ाहट? इतनी क्या परेशानी? ऐसा लगता है कि तुम्हारा अनुभव भी यही कह रहा है कि अब हम तो फंस गए, अब किससे क्या कहना! और तुम जानते हो कि तुम सिद्ध न कर सकोगे, क्योंकि सारे महात्मा मेरे पक्ष में हैं। सदियों-सदियों से सारे महात्मा मेरे पक्ष में हैं। उन सबको मैं गवाही में खड़ा करूंगा। और मैं ऐसे पीछा छोड़ने वाला नहीं हूं। या तो तुम लिखित दो कि मैं हाथ जोड़ता हूं, मैं क्षमा मांगता हूं कि कभी ऐसी भूल नहीं करूंगा, अब किसी को विवाह के संबंध में नहीं समझाऊंगा। और या फिर मैं यहां रोज आकर बैठूंगा। और मैं गांव भर में खबर कर रहा हूं कि यह आदमी भाग रहा है। इसी ने चुनौती दी है और यह आदमी भाग रहा है!
वे कहने लगे मुझे बगल में ले जाकर कि भैया, मुझे भी मालूम है कि है तो गड्ढा ही। वह तो तुम्हारे पिताजी ने मुझे कहा तो मैंने सोचा, समझा दूंगा। मैंने कहाः मुझे गड्ढे में गिराने में तुम्हें शर्म न आई? और जब गड्ढा
है तो निकलते क्यों नहीं, जब मैं निकालने को तैयार हूं?
मगर गड्ढा और कहते हैं। तुमने मान लिया है; तुम्हारा अनुभव नहीं कहता। तुम्हारा अनुभव कहे तो तुम भाग खड़े होओ।
बुद्ध से किसी ने पूछा कि हम कैसे छूट जाएं गलतियों से?
बुद्ध ने कहाः गलतियों से छूट जाएं, यह सवाल उठता नहीं। जिस दिन गलती दिखाई पड़ जाती है, तुम छूट जाते हो। जिसके घर में आग लगी हो, वह यह नहीं पूछता कि मैं बाहर कैसे निकल आऊं; वह तो कूद जाता है। अगर वह बाथरूम में नंगा भी नहा रहा हो, तो भी फिक्र नहीं करता कि टॉवल भी लपेट लूं। वह नंग-धड़ंग ही कूद जाता है, दिगंबर ही। और लोग भी क्षमा कर देंगे कि भाई, घर में आग लगी है, इस हालत में कोई शिष्टाचार नियम इत्यादि का पालन नहीं किया जा सकता। कोई भी यह नहीं कहेगा कि तुम्हें शर्म नहीं आती कि बाथरूम की खिड़की में से कूद रहे! अरे बाहर के दरवाजे से निकलना चाहिए भले आदमी की तरह! कोई तुम चोर-चपाटी हो? लेकिन घर में आग लगी है तो कोई नियम-व्यवस्था मानी जाती है? जब घर में आग लगी है तो सब उचित है।
जिस दिन तुम्हें दिखाई पड़ जाए--बुद्ध ने कहा--कि तुम्हारे घर में आग लगी है, तुम छलांग लगा कर बाहर हो जाओगे।
लहरू, तुम कहते हो कि हम ऐसे गधे हैं जो बार-बार उसी गड्ढे में गिरते चले जाते हैं।
न तो तुम्हें पता है कि तुम गधे हो। कह रहे हो। क्योंकि गधे को भी यह पता चल जाए कि वह गधा है, तो वह गधा नहीं रहा। जिस गधे को यह पता चल गया कि मैं गधा हूं, वह गधा नहीं रहा। उसका गधापन खत्म! जिसने जान लिया कि मैं अज्ञानी हूं, उसमें ज्ञान की पहली किरण उतरी। और तुम्हें अगर समझ में आ गया है कि यह गड्ढा है...

तुम्हें आना चाहिए समझ में! वही मेरा जोर है--सतत! निरंतर! तुम्हें समझ में आना चाहिए। मैं कहूं, इससे क्या होगा? दुनिया कहे, इससे क्या होगा? सारी दुनिया के महात्मागण कहें, इससे क्या होगा? तुम्हें समझ में आना चाहिए। तुम्हें समझ में न आए तो कोई लाख उपाय करता रहे, तुम बचने के रास्ते निकालते रहोगे।
मैंने सुना है, चंदूलाल करीब एक माह से मुल्ला नसरुद्दीन के घर में जमे हुए मेहमानबाजी का सुख भोग रहे थे। स्वभावतः, जब मेहमान सुख भोगता है तो मेजबान दुख भोगता है। ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। शुरू से ही मुल्ला नसरुद्दीन ने हटाने की कोशिश की, मगर कोई उपाय काम ही न आए। जैसे ही पहले दिन ही आते देखा था कि तांगे से उतर रहे हैं चंदूलाल, वह इतने जोर से अपनी पत्नी से लड़ने लगा। पत्नी को उसने कहा कि हो जाने दे! जितना तेरे दिल में गुबार भरा हो जिंदगी का, इसी वक्त निकाल दे! यह चंदूलाल अगर डर जाए कि ऐसे घर में क्या रहना, जहां ऐसी मारपीट चल रही है, कि कोई हत्या होगी, कि पुलिस आएगी, कि क्या होगा, एकदम खून-खराबे की हालत कर दे खड़ी!
पत्नी ने भी कर दी खड़ी। और मुल्ला भी एकदम उठा कर डंडे और खाट पर बजाने लगा। और पत्नी चिल्लाए कि अरे मार डाला! अरे मार डाला! मारी गई! अरे हत्यारे!
दस-पंद्रह मिनट जब यह नाटक चला और बाहर सन्नाटा रहा, किसी ने द्वार पर
भी दस्तक न दी, सांझ का वक्त, तो मुल्ला नसरुद्दीन ने झांक कर देखा--तांगा भी जा चुका है, चंदूलाल भी नदारद हैं। बड़ा प्रसन्न हुआ। दोनों बाहर आए। सांझ का वक्त है। खाट बाहर पड़ी है, दोनों खाट पर बैठ गए। नसरुद्दीन ने कहा कि देख, मैंने भी क्या पिटाई की! खाट तो टूट गई, मगर क्या पिटाई की!
और पत्नी ने कहाः फिर मैंने भी क्या चीख-पुकार मचाई! हालांकि मेरा गला
लग गया।
और तभी चंदूलाल खाट के नीचे से निकले और उन्होंने कहाः मैं भी क्या भागा!
तब से वे महीने भर से वहीं जमे थे। अब समझना ही न चाहे कोई... । जब महीना
भर पूरा हो गया और सब तरह के कष्ट झेल-झेल परेशान हो गए... और चंदूलाल हर चीज में अड़ंगेबाजी भी लगाएं--आज यह सब्जी, कल वह सब्जी; आज यह बनाओ, कल वह बनाओ; आज सिनेमा देखने चलो, आज नाटक देखने चलो! मांग पर मांग! जीना दूभर कर दिया। आखिर मुल्ला नसरुद्दीन ने एक दिन कहा कि भैया चंदूलाल, महीना भर हो गया, आखिर पति हो तुम, पत्नी की भी सोचो! पत्नी-बच्चे दुखी होते होंगे, परेशान होते होंगे, राह देखते-देखते थक गए होंगे।
अरे--उन्होंने कहा--यह तुमने पहले क्यों नहीं कहा! कल ही तार कर देते हैं।
नसरुद्दीन सोच रहे थे कि वे जाएंगे, उन्होंने तार करके पत्नी-बच्चों
को भी बुला लिया। और मुसीबत पर मुसीबत हो गई। अब तो वे ऐसे जमे जैसे घर उनका हो और नसरुद्दीन वगैरह मेहमान! पत्नी से बात करने तक का मौका न मिले नसरुद्दीन को, क्योंकि कभी चंदूलाल जमे हैं, कभी उसकी पत्नी जमी है, कभी बच्चे खेल रहे हैं। और चंदूलाल के खिलाफ ही बात करनी है दोनों को कि अब इनसे कैसे छुटकारा पाना।
एक दिन मुल्ला ने कहा कि आज जरा मैं बाहर जा रहा हूं, शायद रात लौटूंगा नहीं, इसलिए तुम सो जाना चंदूलाल। मेरी राह मत देखना। और पत्नी से कह गया कि मैं बारह बजे के करीब आऊंगा, जब ये सब सो जाएंगे, धीरे से दरवाजा खटखटाऊंगा। तो तू दरवाजा खोल देना, तो अपने को जो बात करनी है वह कर लेंगे। बारह बजे धीरे से दरवाजा खटखटाया। किसी ने आहिस्ता से उठ कर दरवाजा खोला। देखा, चंदूलाल सामने खड़े हैं। कहा कि आओ-आओ, अभी-अभी एक कविता लिखी है। बस तुम्हारी राह ही देख रहा था। क्या मौके पर आ गए! सुनो।
उन्होंने अपना काव्य-पाठ शुरू कर दिया। उनकी कविता और जान लिए ले रही थी। क ख ग कविता का आए नहीं, मगर कविताएं वे ऐसी लंबी करें! पति-पत्नी ने किसी तरह उपाय निकाला कि अब कुछ और करो, किसी भी बहाने को लेकर अब तो इनसे छुटकारा पाना ही होगा। दूसरे दिन सुबह भोजन करते वक्त झगड़ा हो गया सूप के ऊपर। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि मैं कहूंगा कि यह बिल्कुल ठंडा सूप है, तू घर से निकल जा! एक मिनट इस घर में मत रुक। तलाक देने को तैयार हो जाऊंगा।

अगर चंदूलाल राजी हो जाए कि सूप ठंडा है तो मैं उसे भी कहूंगा कि तो तू भी निकल बाहर हो! तू भी चला जा इसी के साथ! न मुझे यह पत्नी चाहिए, न तू चाहिए, न तेरे पत्नी-बच्चे... सबको निकाल। उस गुस्से में बात चल जाएगी। और तू कहना कि सूप गरम है। अगर चंदूलाल कहे कि गरम है तो तू मुझ पर चिल्लाना कि निकल जा बाहर, हो जा घर के बाहर! हमें नहीं रहना तेरे साथ! जब हमारी किसी बात में मेल ही नहीं खाता तो क्या सार है साथ रहने से? क्यों जिंदगी खराब करना? अगर चंदूलाल राजी हो कि सूप गरम है, तो तू उसको भी चिल्ला देना कि तू भी निकल बाहर हो! तुझसे हमें क्या लेना-देना? इन्हीं का दोस्त है, तू भी जा! न हमें दोस्त चाहिए, न यह नसरुद्दीन चाहिए। भाड़ में जाओ!
दोनों लड़े--सूप गरम कि ठंडा। और चंदूलाल आहिस्ता से सूप चम्मच-चम्मच पीते रहे। बड़ी देर हो गई लड़ाई होते-होते, चंदूलाल कुछ बोलें ही न। आखिर नसरुद्दीन ने कहा कि भाई तुम बोलते क्यों नहीं? तुम तो कुछ कहो!
चंदूलाल ने कहाः मुझे कुछ नहीं कहना, मुझे अभी महीने भर और रुकना है। जैसा भी है, सब प्रभु की कृपा है! जैसा भी है, अच्छा है। अरे सब चीज में संतोष रखना चाहिए। संतोषी सदा सुखी। अब क्या ठंडा-गरम।
अब जिद ही किए हो न समझने की तो बात अलग, अन्यथा जिंदगी सब समझा देती है। जिंदगी से बड़ा पाठ क्या है लहरू?
और तुम मुझसे पूछ रहे हो कि आप सीधा मार्गदर्शन दें।
जो भी मैं कह रहा हूं, सीधी-सादी बात कह रहा हूं। तुम कह रहे होः हम सोए हुए हैं। वह तो मुझे पता है। इसलिए तुम्हें झकझोर रहा हूं। तुम्हें हिला- डुला रहा हूं। तुम पर चोटें भी करता हूं, बेरहमी से चोटें करता हूं! तुम्हारी धारणाओं को तोड़ता हूं। तुम्हें नाराज भी कर देता हूं, तुम्हें क्रुद्ध भी कर देता हूं, क्योंकि तुम्हारी धारणाएं तोड़ना तुम पसंद नहीं करते। लेकिन यही एक उपाय दिखता है कि शायद तुम जाग जाओ।
जैसे कोई सुबह-सुबह अपने कंबल में छिपा दुबका पड़ा है, सुबह की मीठी- मीठी ठंड और वह मजा ले रहा है सुबह की नींद का। सुबह जो मजा आता है नींद में, वह कभी भी नहीं आता। और तुम उसका कंबल छीनो और तुम उसका हाथ खींच कर बाहर निकालो, तो वह नाराज तो होगा ही, झगड़ा-झांसा खड़ा करेगा। चाहे उसने ही तुमसे कहा हो कि सुबह मुझे उठा देना, तो भी वह कहेगा कि नहीं भाई, मुझे नहीं उठना, क्षमा करो, भूल हो गई जो मैंने तुमसे कहा। अभी थोड़ी देर आराम कर लेने दो।
तुम सो रहे हो, वह मुझे पता है। सो रहे हो, इसीलिए सारे उपाय कर रहा हूं
कि किसी तरह तुम जग जाओ। तुम्हें झकझोर रहा हूं। तुम जग जाओ तो तुम्हारे जीवन में चीजें दिखाई पड़ने लगें। अभी तो तुम सपने देख रहे हो। तुम्हारा धार्मिक होना भी अभी एक सपना है। अभी तो तुम जो भी करोगे, वह सपना होगा। तुम जाकर साधु हो जाओ, सपना होगा। तुम त्यागी-व्रती हो जाओ, सपना होगा। तुम यह छोड़ दो, वह छोड़ दो, घर-द्वार छोड़ दो, गुफा में बैठ जाओ--क्या करोगे गुफा में बैठ कर? और-और सपने देखोगे। और गहरी नींद में खो जाओगे। बाजार के शोरगुल में न जगे तो तुम गुफा में जगोगे? बाजार का उपद्रव न जगा पाया, तो तुम सोचते हो कि जाकर गुफा की शांति में तुम जग जाओगे? और सुखद नींद आ जाएगी। कंबल और खींच कर, ओढ़ कर सो जाओगे।
मैं जानता हूं कि तुम सो रहे हो। लेकिन तुम जाग सकते हो, यह तुम्हारे सोने में छिपा हुआ राज है। जो सोया है, वह जाग सकता है। जो भटक गया है, वह मार्ग पर आ सकता है। जो गिर पड़ा है, वह उठ सकता है। जो गिरने में समर्थ है, वह उठने में समर्थ है। और जो सोने में समर्थ है, वह जागने में समर्थ है। तुम्हारी नींद तुम्हारे जागने की क्षमता की घोषणा है।
इसलिए मैं तुम्हारी नींद की निंदा नहीं करता। तुम्हारी नींद को तोड़ना
तो चाहता हूं, लेकिन तुमसे यह भी कहना चाहता हूं कि तुम्हारी नींद तुम्हारे जागने की क्षमता की सूचक है। घबड़ाओ मत। जिंदगी ही जगाएगी। ये जिंदगी के कंटकाकीर्ण रास्ते ही तुम्हें जगाएंगे। इसलिए मैं तुम्हें जिंदगी से नहीं हटा लेना चाहता हूं। मैं चाहता हूंः मेरे संन्यासी जीवन जीएं। क्योंकि मुझे नहीं लगता कि जीवन के अतिरिक्त और कोई तपश्चर्या है। और सब नाटक है। जीवन तपश्चर्या है। पत्नी के साथ रहना, पति के साथ रहना, बच्चों के साथ रहना, मां-बाप के साथ रहना, सास-ससुर के साथ रहना--तुम और बड़ी

तपश्चर्या खोज सकते हो? तुम सोच रहे हो कि जो एक दफा भोजन करते हैं, वे तपश्चर्या कर रहे हैं? तुम सोचते हो जो नंगे खड़े हैं, वे तपश्चर्या कर रहे हैं? वे छोटे से अभ्यास की बातें हैं, उनका कोई बड़ा मूल्य नहीं है। जो स्त्री अपनी सास को सह रही है, उससे पूछो तपश्चर्या क्या है!
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने कुत्ते को लेकर--प्यारा कुत्ता, कीमती कुत्ता--डाक्टर के पास पहुंचा, कहाः इसकी पूंछ काट दो!
डाक्टर ने कहाः तुम होश में हो? इतना प्यारा कुत्ता, पूंछ काट दोगे, बेकार हो जाएगा, दो कौड़ी का हो जाएगा। और अभी-अभी तुमने दो हजार रुपये में खरीदा है।
मुल्ला ने कहाः तुम फिक्र छोड़ो जी, पूंछ काटो! जो तुम्हारी फीस हो, तुम लो। तुम्हें इस सबमें पड़ने की जरूरत नहीं है। राज में तुम्हें उलझने की जरूरत नहीं है। यह राज राज रहने दो। मगर इसकी पूंछ जल्दी काटो!
डाक्टर ने कहा कि काट देता हूं भैया, तुम कहते हो तो मैं पूंछ काट देता हूं। लेकिन मुझे बता तो दो, नहीं तो यह जिज्ञासा मुझे रात भर जगाए रखेगी कि बात क्या थी! इतना सुंदर कुत्ता, पूंछ काट कर खराब क्यों कर रहे हो?
उसने कहा कि बात यह है कि मेरी सास आने वाली है और मैं घर में कोई ऐसा चिह्न नहीं छोड़ना चाहता जिससे उसे स्वागत का पता चले। और यह दुष्ट पूंछ हिलाएगा! इसको मैं समझा रहा हूं आज तीन दिन से कि बेटा, पूंछ नहीं हिलानी। मैं कहता हूं पूंछ नहीं हिलानी, वह मुझे ही पूंछ हिलाता है। यह मूरख है। यह सुनता ही नहीं है। यह जब तक इसकी कटेगी नहीं, मानेगा नहीं। और इसने अगर पूंछ हिलाई तो बस समझ लो कि सास टिक गई। इतना अभिनंदन काफी है। पहले मैं नरक में विश्वास नहीं करता था, लेकिन मेरी पत्नी और मेरी सास, दोनों ने मिल कर मुझे नरक में विश्वास करा दिया कि नरक है, स्वर्ग हो या न हो! दोनों के बीच में पिसा जा रहा हूं। पहले मैं कबीर के वचन का अर्थ नहीं समझता था--दो पाटन के बीच में साबित बचा न कोय। यह मेरी सास ने और मेरी पत्नी ने मुझे समझाया कि इसका अर्थ बच्चू यह है! जब मैं ही साबित नहीं बचा, मेरा कुत्ता कैसे बचेगा? तू भैया काट! इसकी पूंछ काट! मुझ अभागे का कुत्ता है, यह कब तक पूंछ बचा सकता है अपनी! मेरी कट गई, इसकी भी कटेगी।
तपश्चर्या! तुम जरा देखते हो, घर में दस-पंद्रह बच्चे--और तपश्चर्या क्या चाहते हो? जरा किसी महात्मा के आसपास दस-पंद्रह बच्चे बिठा दो, अगर दो-तीन दिन में महात्मा भाग न जाए तो तुम मुझसे कहना। महात्मा कहेगाः हम तो अपनी धूनी रमाएंगे। उसी में ज्यादा शांति थी। ये दस-पंद्रह बच्चे तो जान लिए ले रहे हैं। ये तो खा जाएंगे। कोई इधर खींचता है, कोई उधर खींचता है।
मुल्ला नसरुद्दीन ट्रेन में जा रहा था--अपने सब एक दर्जन बच्चों को साथ लिए। अपने एक बच्चे को बार-बार चपत पर चपत लगा रहा था। एक औरत सामने ही बैठी थी। आखिर उसके बर्दाश्त के बाहर हो गया। उसने कहाः सुनो जी, हालांकि मुझे क्या लेना-देना, मगर मेरे देखने के बर्दाश्त के बाहर है। वह बच्चा तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ रहा है और तुम उसे क्यों मार रहे हो? और तुम मारे ही चले जा रहे हो! अगर तुमने एक हाथ उसे और मारा तो मैं वह मजा चखाऊंगी कि जिंदगी भर याद रहेगा।
उसने कहाः और सुन लो! तू भी मजा चखाएगी, जिससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं! अरे मैं वैसे ही कोई कम मजा चख रहा हूं, जो तू मुझे मजा चखाएगी! तो सुन! मेरी पत्नी ड्राइवर के साथ भाग गई है और ये बारह बच्चे मेरे लिए छोड़ गई है। बड़ी लड़की घर आई है, वह गर्भवती है बिना विवाह के। उससे मैंने पूछा कि बाई कम से कम यह तो बता, यह है कौन तेरे बच्चे का बाप? वह कहती है, मुझे कुछ पता नहीं। तो मैंने उससे कहा कि तुझे पढ़ाया-लिखाया, कम से कम इतना तो पूछ लेती कि भैया, तुम्हारा नाम क्या है? ... और यह छोटा बच्चा, जिसको मैं पीट रहा हूं, यह टिकट चबा गया। और अभी-अभी मुझे पता चला है कि हम गलत गाड़ी में बैठे हुए हैं। और तू मुझे मजा चखाएगी! चखा ले बाई, तू भी चखा ले! अब और क्या बचा है मजा चखाने को! चली चल, तू मेरे संग चल! जो भी कर्म-फल हों, भोग लूं।
तपश्चर्या है जीवन! दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि तुम सब भोग रहे हो इसलिए दिखाई नहीं पड़ता। मगर अगर गौर से देखोगे तो मेरे हिसाब में न तो पहाड़ों पर,

न आश्रमों में, न गुफाओं में ऐसा तप है जैसा तप तुम कर रहे हो। चौबीस घंटे अंगारों पर बैठे हुए हो, अंगारों पर चल रहे हो। अगर यहां न जग सके लहरू, तो कहां जगोगे? अगर इतनी चोटों में भी न जगे तो फिर कहीं न जग सकोगे।
यह संसार परमात्मा की ईजाद है आदमी को जगाने के लिए। यहां सोए हुए आदमी भेजे जाते हैं, ताकि जग जाएं। इसलिए मैं कहता हूं कि अनुभव से सीखो। तुम्हारा अनुभव एकमात्र शिक्षक है। अप्प दीपो भव! उसे ही अपना दीया बनाओ। अपने दीये खुद बनो!

सब आंखों के आंसू उजले, सबके सपनों में सत्य पला!
जिसने उसको ज्वाला सौंपी
उसने इसमें मकरंद भरा,
आलोक लुटाता वह घुल-घुल
देता झर यह सौरभ बिखरा!
दोनों संगी, पथ एक किंतु कब दीप खिला? कब फूल जला? वह अचल धरा को भेंट रहा
शत-शत निर्झर में हो चंचल,
चिर परिधि बना भू को घेरे
इसका नित उर्मिल करुणा जल!
कब सागर उर पाषाण हुआ? कब गिरि ने निर्मम तन बदला?

नभ तारक सा खंडित पुलकित
यह क्षुर-धारा को चूम रहा
वह अंगारों का मधु-रस पी
केशर-किरणों सा झूम रहा!
अनमोल बना रहने को कब टूटा कंचन हीरक पिघला?

नीलम मरकत के सम्पुट दो
जिनमें बनता जीवन-मोती,
इसमें ढलते सब रंग-रूप
उसकी आभा स्पंदित होती।
जो नभ में विद्युत-मेघ बना, वह रज में अंकुर हो निकला!

संसृति के प्रति पग में मेरी
सांसों का नव अंकन चुन लो,
मेरे बनने, मिटने में नित
अपनी साधों के क्षण गिन लो।
जलते-खिलते बढ़ते जग में घुलमिल एकाकी प्राण चला!
सपने-सपने में सत्य ढला!

तुम्हारे स्वप्न में भी सत्य की छाया पड़ रही है और तुम्हारी नींद में
भी जागरण का बीज पड़ा है। वहीं से अंकुरित होगा। और जीवन ही एकमात्र अवसर है। भागो मत। भागना आसान है।
लोग सोचते हैं कि मैंने संन्यास को आसान कर दिया है, क्योंकि मैं अपने संन्यासियों को घर छोड़ने को नहीं कह रहा हूं। लोग गलत सोचते हैं। मैंने अपने संन्यास को अति कठिन कर दिया। पुराना संन्यास बिल्कुल सस्ता है, दो कौड़ी का है। घर कौन कहीं छा.ेडना चाहता? तुम जरा खुद से ही पूछो। घर छोड़ने की बात तो कितनी बार मन में नहीं आ जाती! कितनी बार घर छोड़ने की ही बात मन में नहीं आती, कितनी ही बार आत्महत्या तक करने की बात आ जाती है। वहां तक जिंदगी आदमी को दुख दे देती है कि आदमी सोचता हैः मर ही जाऊं! खतम ही कर लूं अपने को! क्या सार है? क्यों सहूं इतने धक्के? इतनी पीड़ाएं? क्यों इतना परेशान होऊं? किसलिए? क्या मिल जाएगा?
संसार से भागने की तो बहुत बार वृत्ति उठती है। और कम से कम इस देश में, जहां की परंपरा भगोड़ों की है बड़ी आसानी से। यहां तो हमने भगोड़ेपन को इतना सम्मान दिया है कि जिसका हिसाब नहीं। इसलिए हमारे देश में

आत्महत्याएं कम होती हैं, उसका कुल कारण हमारी पुरानी संन्यास की परंपरा है। सारी दुनिया में आत्महत्याएं ज्यादा होती हैं, क्योंकि वहां दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। अगर बचना है तो मरो। हमने एक और तरकीब निकाल ली। हम पुराने अनुभवी लोग हैं। हमने संन्यास निकाल लिया। हमने कहा कि मरने की क्या जरूरत है? अरे भाग जाओ! और संन्यासी को हम भगोड़ा नहीं कहते, पलायनवादी नहीं कहते--त्यागी! व्रती! उसको हम बड़ा सम्मान देते हैं, बड़ा आदर देते हैं। अगर कोई युद्ध के मैदान से पीठ दिखा दे तो उसको हम कहते हैं-- कायर। मगर अगर हमें कायर न कहना हो और बात को सम्मान देना हो तो हम कहते हैं--रणछोड़दासजी! कृष्ण ने पीठ दिखा दी तो रणछोड़दासजी और तुम पीठ दिखा दो तो कायर। तुम भाग खड़े होओ जंगल की तरफ तो कायर। लेकिन हमने इस देश में कायरता को बड़ा सुंदर बाना पहना दिया। हमने खूब फूलमालाएं चढ़ा दीं। चरणों में झुक-झुक हम नमस्कार करने लगे। हमने पलायनवाद को इतना सम्मान दिया कि पलायनवाद धार्मिक होने का पर्यायवाची हो गया। यह सस्ता संन्यास इस देश से धर्म को नष्ट किया।
मैं संन्यास को कठिन बना रहा हूं। मैं कह रहा हूंः दुकान पर बैठ कर, बाजार में रुक कर, घर में--जहां कि तपश्चर्या ही तपश्चर्या है! कुछ और करना नहीं है, कुछ और धूनी वगैरह नहीं रमानी है। धूनी तो रमी हुई है। कुछ और तुम्हें त्रिशूल वगैरह छेदने की जरूरत नहीं है; छिदे हुए हैं। कुछ कांटे बिछा कर और शय्या बनाने की जरूरत नहीं है; कांटे की शय्या पर तुम सो रहे हो। तुम्हारी जिंदगी कांटों से भरी है, अब और क्या करना है?
इस जीवन को ही जीओ। और धीरे-धीरे समझपूर्वक जीओ--कि मैं क्या कर रहा हूं? क्यों कर रहा हूं? और मुझे इस जीवन से क्या मिल रहा है? अगर सुख मिल रहा है, तो खूब जीओ, जी भर कर जीओ! और अगर दुख मिल रहा है, तो जिस-जिस चीज से दुख मिल रहा है, उसको विसर्जित करो। अगर क्रोध दुख देता है, तो क्रोध को विसर्जित करो। अगर ध्यान आनंद देता है, तो जितनी ऊर्जा क्रोध में लगाते हो, उतनी ऊर्जा ध्यान में लगाओ। ऐसे रूपांतरण होगा। गड्ढे में ही गिरना है तो क्रोध के गड्ढे में क्यों गिरना, ध्यान के गड्ढे में गिरो! अगर गड्ढे में ही गिरना है तो पद-प्रतिष्ठा, महत्वाकांक्षा, अहंकार, इनके गड्ढों में क्यों गिरते हो? विनम्रता, सहृदयता, सरलता, इनके गड्ढों में गिरो। काश, तुम जरा चुनाव करने लगो!
और चुनाव तुम कर सकते हो। क्योंकि जब तुम्हें सिर-दर्द होता है तो पता चलता है और तुम दवा ले लेते हो। और जब तुम्हारे पेट में दर्द होता है तो पता चलता है।
मेरे एक शिक्षक थे स्कूल में। वे जब भी अपनी नई कक्षा शुरू करते थे, जब मैं पहली दफा उनकी कक्षा में गया, तो उन्होंने पहला जो उपदेश दिया, वह यह था कि कुछ बातें ख्याल कर लो। पहली बात कि कुछ दर्दों में मैं मानता नहीं, जैसे सिर-दर्द, पेट-दर्द।
मैंने उनसे पूछाः क्यों? उन्होंने कहा कि इनका तुम कोई प्रमाण नहीं
दे सकते। हां, बुखार हो तो मैं मानता हूं। जब तक मेरे पास प्रमाण न हो, तब तक मैं नहीं मान सकता। नहीं तो लोग... यही विद्यार्थी चालबाजी करते हैं। कहते हैं, हमारे सिर में दर्द हो रहा है, घर जाना है। कोई कहता है, पेट में दर्द हो रहा है। ये दोनों दर्द तो मैं मानता ही नहीं।
मैंने कहाः फिर ठीक है।
दूसरे दिन सुबह, वे घूमने जाते थे रोज, दो मकरंद के वृक्ष थे हमारे स्कूल के पास ही। मैं उस पर चढ़ कर बैठ गया ऊपर। और एक पत्थर उनके सिर पर गिरा दिया। खड़ाक से सिर में लगा, चौंक कर ऊपर देखा और कहाः मेरी खोपड़ी खोल दोगे! क्या करते हो? इतना दर्द हो रहा है!
मैंने कहाः सिर-दर्द में मैं भी नहीं मानता। आप जाइए घूमने। और अगर आप
इस तरह की बातें करेंगे... तो अपने शब्द आप वापस ले लेना, क्योंकि आज स्कूल में मुझे भी सिर-दर्द होने वाला है। अभी से कहे देता हूं, पहले से ही कहे देता हूं, होने ही वाला है!
उन्होंने मुझे घर बुलाया। उन्होंने कहाः भैया, जब तुझे सिर-दर्द इत्यादि हो, सबके सामने कहने की कोई जरूरत नहीं, ऐसा अंगुली से इशारा कर दिया कर। मैं तुझे छुट्टी दे दूंगा, क्योंकि तेरे पीछे सब और बिगड़ेंगे। और

यह बात जो पत्थर की हुई, सो हुई, अब किसी और को मत बताना। क्योंकि मेरी जिंदगी हो गई, इसी तरह मैंने लोगों को रोका है, नहीं तो बस सिर-दर्द, पेट-दर्द।
मैंने कहाः आप कहो तो पेट-दर्द भी आपको करके दिखलाऊं।
उन्होंने कहा कि नहीं। सिर-दर्द काफी है। पेट-दर्द कैसे करके दिखलाओगे?
मैंने कहाः वह मैं रास्ता खोज लूंगा।
अकेले ही थे, शादी उन्होंने की नहीं थी। सो उनका रसोइया था। मैंने कहा
कि मैं रसोइए को मिला लूंगा। अरे रुपये दो रुपये की बात है, भोजन में कुछ ऐसा मिलवा दूंगा कि ऐसा दर्द होगा कि छठी का दूध याद आ जाएगा। और प्रमाण तो कुछ है नहीं। तो आपको मेरे सिर-दर्द और मेरे पेट-दर्द में तो मानना ही पड़ेगा।
उन्होंने कहाः मैं बिल्कुल मान ही लिया! तुम सिर्फ अंगुली से इशारा
कर देना। एक अंगुली, यानी सिर-दर्द। दो अंगुली, यानी पेट-दर्द।
तुम्हें सिर-दर्द पता चल जाता है, पेट-दर्द पता चल जाता है और तुम्हें आत्मा में होते हुए दर्द पता नहीं चलते? इतने सोए हो? इतना तो सोया हुआ कोई भी नहीं है। जब तुम क्रोध करते हो तो पता चलता है, पीड़ा भी पता चलती है। जब ईर्ष्या से जलते हो तब जलन भी मालूम होती है, अंगारे की तरह छाती में कुछ बैठ जाता है।
नहीं लहरू, इतना सोया हुआ कोई भी नहीं है। हां, तुम देखना ही न चाहो तो बात और।
और संन्यास का अर्थ ही यही है कि देखो। जो भी तुम्हारे जीवन में घट रहा है, उसे देखो, परखो, उसके कारण खोजो। उसके कारण की खोज में ही, निदान में ही समाधान है। जैसे ही तुम्हें दिखाई पड़ जाएगा कि इस कारण से मेरे जीवन में पीड़ा है, वह कारण हाथ से गिर जाएगा। जो तुमने समझ ली बात, उससे तुम मुक्त हो जाओगे।
नहीं, तुम आदमी हो, गधे नहीं हो। तुम महिमाशाली हो! तुम्हारे भीतर चैतन्य की अपूर्व क्षमता छिपी पड़ी है! तुम्हारे भीतर परमात्मा विराजमान है। जरा उसे जगने का मौका दो। और वह तड़प रहा है जगने को। और जब तक जग न जाएगा, तब तक तुम न पाओगे संतोष, न पाओगे आनंद। तब तक तुम्हारा जीवन बस कोरा ही रहेगा; उसमें न होगा कोई काव्य, न होगा कोई संगीत, न खिलेंगे समाधि के कमल, न उड़ेगी सुगंध। तुम यूं ही आए, यूं ही चले जाओगे। जैसे हुए न हुए बराबर। मिट्टी ही रह जाना है या मिट्टी से कमल को भी पैदा कर लेना है?
और मैं जो कह रहा हूं, इससे सीधी-सादी और कोई बात नहीं है। मेरी बात सीधी-सादी है, इसीलिए तुम्हें दिक्कत होती है समझने में। तुम चाहते हो कि मैं बंधी-बंधाई तुम्हें सूचनाएं दे दूं। तुमसे कह दूं--टमाटर न खाना, सिगरेट न पीना, पानी छान कर पीना, रात भोजन न करना, शाकाहार करना, ऐसा करना, वैसा करना--तुम इसको सीधी-सीधी मार्ग-निर्देश मानते हो। मगर इन सब बातों से कुछ नहीं हुआ। ये तो लोग कर ही रहे हैं। जो आदमी पानी छान कर पीता है, वह खून बिना छाने पी जाता है। जो आदमी रात्रि-भोजन नहीं करता, वह दिन में इतना डट कर भोजन कर जाता है कि जिसका हिसाब नहीं।
तुम जाकर जांच-पड़ताल करो। तुम्हें जैनियों की जितनी तोंद बढ़ी हुई दिखाई पड़ेगी, उतनी किसी की नहीं। रात भोजन करना नहीं, पानी तक नहीं पीना, सो वे शाम से ही इतना डट कर पीते हैं, इतना करते हैं भोजन कि रात भर भी तो गुजारनी है, आखिर उनको भी तो गुजारनी है! तो पेट बढ़ जाते हैं। जैन मुनियों के पेट तो होने ही नहीं चाहिए--ऐसे उपवासी, ऐसे व्रती! मगर उनकी भी तोंदें बढ़ी हुई हैं। नग्न खड़े हैं, बहुत भद्दा लगता है उनकी तोंद को देख कर। मैं सिर्फ तोंद की वजह से एतराज करता हूं नग्न खड़े होने पर, अन्यथा मेरा कोई एतराज नहीं है। अगर शरीर स्वस्थ हो, सानुपात हो--सुंदर बात है, नग्न खड़े हों। कम से कम रख-रखाव तो हो थोड़ा! कम से कम दरस-परस में एकदम घबड़ाओ तो न लोगों को! कम से कम लोगों के चित्त को थोड़ी शांति तो मिले देख कर! तुम्हें देख कर एकदम से विरक्ति तो पैदा न हो, हताशा तो न आए। सारा शरीर दुबला-पतला और तोंद बड़ी, क्योंकि एक ही बार भोजन करना है। तो एक ही बार भोजन करना है तो

चौबीस घंटे का इंतजाम कर लेना है। जैसे ऊंट करता है न, खूब डट कर पानी पी लेता है ताकि रेगिस्तान में फिर पीना ही न पड़े। वही हालत है।
ये सब नियम काम नहीं आए। इन नियमों से लोगों ने तरकीबें निकाल लीं। एक
से एक तरकीबें निकाल लेते हैं लोग। और एक चीज छोड़ते हैं तो दूसरी पकड़ लेते हैं। इसलिए मैं तुम्हें नियम नहीं देता; मैं तुम्हें सिर्फ बोध देता हूं, स्मरण देता हूं। और फिर तुम्हारा बोध ही तुम्हारे लिए नियम का निर्धारक होना चाहिए। तुम इतना श्रम नहीं करना चाहते। तुम चाहते हो पचा-पचाया भोजन मिल जाए। लेकिन तुम बच्चे ही रह जाओगे, पचा-पचाया भोजन कब तक करोगे? कब प्रौढ़ बनोगे? अब परिपक्व होने का क्षण है। आदमियत अब बचकानी नहीं है कि उनको छोटी-छोटी बातें बताओ।
मैं भोपाल में एक घर में मेहमान था। मैं देख कर दंग हुआ। बड़े रईस का घर
और बैठकखाने में तख्ती लगी हैः यहां थूकना मना है।
मैंने कहाः हद हो गई! यहां लोग थूकते भी हैं?
उन्होंने कहाः यह भोपाल है।
मैंने कहाः मैं समझा नहीं।
उन्होंने कहा कि यहां लोग जो न करें सो थोड़ा है। यह राजधानी है। यहां लोग एकदम पान चबाते हैं और थूक देते हैं। जहां बैठे हैं वहीं थूक देते हैं। तो यहां तख्ती लगानी पड़ती है कि यहां थूकना मना है।
अब जहां तख्ती लगानी पड़ती हो कि यहां थूकना मना है और बैठकखाने में...
तो मैंने कहा कि भैया, तुम तख्ती लगा लो कि यहां पेशाब करना मना है। कि कहीं कोई मोरारजी देसाई या मोरारजी देसाई के भाई-बंधु आ जाएं और एकदम करने लगें, फिर? राजधानी है और यहां मोरारजी देसाई आते ही होंगे। फिर तो बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाएगी। ऐसी-ऐसी तख्तियां लगाओगे कि जिनको नहीं भी करनी हो, उनको भी लग आएगी। अब तुम देख लो, बैठे-बैठे अगर कुर्सी पर बार-बार पढ़ना पड़े कि यहां पेशाब करना मना है, तो तुम जल्दी से अपना जनेऊ कान पर चढ़ाने लगोगे कि अब करना क्या है! तुम्हें और कोई बात ही न सूझेगी अब।
छोटी-छोटी बचकानी बातें सिर्फ आदमी के कच्चेपन का सबूत होती हैं। मैं नहीं देता कोई इस तरह के नियम--क्या करो और क्या न करो। मैं तो इतना ही कहता हूंः जो भी तुम कर रहे हो, जाग कर करो! जो भी तुम कर रहे हो! अगर तुम चोरी भी कर रहे हो तो जाग कर करो। मैं यह भी नहीं कहता कि चोरी मत करो। जाग कर करो! अगर जाग कर चोरी कर सके तो चोरी भी शुभ है। हालांकि मैं जानता हूं कि जाग कर कोई भी चोरी नहीं कर सकता है। अगर तुम शराब पी रहे हो तो जाग कर पीओ। अगर पी सको जाग कर, शुभ है, पुण्य है। लेकिन मैं जानता हूं कि कोई जाग कर शराब नहीं पी सकता। जागे, कि जो व्यर्थ है, अपने से छूट जाता है; जो सार्थक है, वही शेष रह जाता है।
आज इतना ही।

रहिमन धागा प्रेम का
दसवां प्रवचन

कस्तूरी कुंडल बसै

पहला प्रश्नः मैं कौन हूं, मैं कहां से आया हूं और क्या मेरी नियति है?

सियारामशरण! यह प्रश्न ऐसा नहीं कि कोई और तुम्हें इसका उत्तर दे सके। नहीं कि उत्तर नहीं दिए गए हैं। उत्तर दिए गए हैं। उत्तर दिए जा सकते हैं। पर वे व्यर्थ होंगे, अप्रासंगिक होंगे। यह तो प्रश्न अकेला प्रश्न है, जो इतना मूल्यवान है कि तुम्हें स्वयं ही इसका उत्तर खोजना पड़े, तो ही उत्तर पर भरोसा करना। उपनिषदों में उत्तर हैं, वेदों में उत्तर हैं, कुरान में, गीता में, बाइबिल में; उत्तरों ही उत्तरों से भरा हुआ है इतिहास, मगर वे उत्तर पराए हैं।
तुम पूछ रहे होः "मैं कौन हूं?"
किससे पूछ रहे हो? यह प्रश्न तो अपने से ही पूछने योग्य है। यह प्रश्न
तो मंत्र है। इस प्रश्न को लेकर तो भीतर डुबकी मारनी जरूरी है। जब तक तुम अपने चित्त को इतना शांत न कर लो कि चित्त दर्पण हो जाए, तब तक तुम्हें अपनी प्रतिछवि दिखाई नहीं पड़ेगी। और लाख उत्तर दिए जाएं, उधार होंगे। कोई कह दे कि तुम आत्मा हो, क्या होगा सार? सुन लोगे, समझोगे क्या खाक! कोई कह दे कि तुम परमात्मा हो, तो भी क्या होगा? कहा तो गया है बहुत बार। सुना भी तुमने बहुत बार। मगर जीवन जहां है, वहीं का वहीं है।
यह कोई सैद्धांतिक प्रश्न नहीं है। यह प्रश्न अस्तित्वगत है। यह प्रश्न कम है, तुम्हारे जीवन की मौलिक समस्या है। उत्तर नहीं चाहिए, समाधान चाहिए। और समाधान सिवाय समाधि के और कहीं नहीं है। इसीलिए तो समाधि को समाधि कहते हैं, क्योंकि उसमें समाधान है। मैं कहूंगाः तुम इसे ध्यान बनाओ। मत पूछो मुझसे। पूछो अपने से। रोज-रोज पूछो। जितना समय मिले, जितनी शक्ति जुटा सको, इस प्रश्न में लगाओ। राम-राम जपने से यह ज्यादा सार्थक है कि तुम अपने भीतर गहराइयों में गुंजाओ यह प्रश्न--मैं कौन हूं? और जल्दी से किसी उत्तर से राजी मत हो जाना। क्योंकि मन बहुत चालबाज है, बहुत चालाक है, चतुर है। मन कहेगाः यह भी क्या बात! अरे साफ तो कृष्ण ने कहा है कि तुम कौन हो। साफ तो उपनिषद कहते हैं कि तुम कौन हो। और क्या होगी स्पष्ट बात? अहं ब्रह्मास्मि! मैं ब्रह्म हूं! उदघोषणा कर गए ऋषि-मुनि, जिन्होंने जाना; द्रष्टा, जिन्होंने देखा। अब तुम क्यों सिर पचा रहे हो? तुम भी दोहराओ--अहं ब्रह्मास्मि!
और यही लोग कर रहे हैं, दोहरा रहे हैं। मगर जो उत्तर तुम्हारा नहीं है,
वह दो कौड़ी का है। कितना ही कीमती मालूम पड़े, उसमें प्राण नहीं हैं, उसमें श्वास नहीं चलती, हृदय नहीं धड़कता।
अलहिल्लाज मंसूर ने कहाः अनलहक! मैं सत्य हूं! मगर क्या तुम्हारे काम
का है यह उत्तर? मंसूर के काम का है। मंसूर ने जान कर कहा है। और तुम तो सिर्फ दोहराओगे।
ध्यान रखो, जीवन की जो मौलिक समस्याएं हैं, उनके समाधान बासे नहीं होते; उनके समाधान उतने ही मौलिक होने चाहिए जितनी समस्याएं मौलिक हैं। मत पूछो मुझसे। पूछो अपने से।
और तुम पूछते हो कि कहां से मेरा आना हुआ?
न कहीं से आए हो, न कहीं जा रहे हो। सदा से यहीं हो। आने-जाने की बात, आवागमन की बात सपना भर है। इस अस्तित्व में न तो कुछ आता है, न कुछ जाता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि रेत के एक कण को भी हम मिटाना चाहें, नेस्तनाबूद करना चाहें, तो न कर सकेंगे। पानी की एक बूंद को भी नहीं मिटा सकते। रहेगी! ऐसे मिटा दोगे तो वैसे रहेगी। नहीं पानी की तरह रहेगी तो भाप की तरह रहेगी। नहीं भाप की तरह रहेगी तो बर्फ की तरह रहेगी। नहीं बर्फ की तरह रहने दोगे तो आक्सीजन-हाइड्रोजन की तरह रहेगी। मगर रहेगी। अस्तित्व को अनस्तित्व नहीं किया जा सकता। जो है, वह है; उसके नहीं होने का कोई उपाय नहीं है। और जो नहीं है, वह नहीं है; उसके होने का कोई उपाय नहीं है।

अस्तित्व न तो ज्यादा होता है, न कम; जितना है बस उतना है। जस का तस! न रत्ती भर बढ़ता है, न घटता है। लेकिन परिवर्तन बहुत होते मालूम होते हैं। लेकिन सब परिवर्तन संयोग के परिवर्तन हैं--इधर से उधर। जैसे कि तुम अपने बैठकखाने को जमा लो बार-बार; यह तस्वीर इस दीवाल से हटा कर दूसरी दीवाल पर टांग दी; और यह सोफा बाएं कोने से हटा कर दाएं कोने में रख दिया; और यह गुलदस्ता यूं सजाया था, अब यूं सजा दिया; अभी भारतीय ढंग से सजा था, अब जापानी ढंग से सजा दिया--बस ऐसे ही कुछ फर्क, जो कि फर्क नहीं हैं, केवल नये-नये संयोग हैं। सब पुराना है। सब वही का वही है। सब वैसे का वैसा है। इसे स्मरण रखोः न तो तुम कहीं से आए हो, न कहीं जा रहे हो।
महर्षि रमण के अंतिम क्षण थे। और किसी ने पूछा कि आप जा रहे हैं, आप हमें छोड़ कर जा रहे हैं, हमें अनाथ किए जा रहे हैं। रमण ने आंखें खोलीं और कहाः तुम पागल हुए हो! मैं जाऊंगा भी तो कहां जाऊंगा? जाने को जगह कहां है? यहीं हूं और यहीं रहूंगा। शरीर में नहीं तो शरीर के बाहर। घर में नहीं तो घर के बाहर। इधर नहीं तो उधर। मगर जाऊंगा कहां? जाने को जगह कहां है? न आया हूं, न जाऊंगा।
इसे ज्ञानियों ने आवागमन से मुक्ति कहा है--इस बोध को, कि न कुछ आना है,
न कुछ जाना है। लेकिन सपने में हम बहुत आवाजाही कर रहे हैं। रात तुम सो गए, फिर रात भर सपनों में कहां-कहां आते हो, कहां-कहां जाते हो! और सुबह उठ कर अगर तुम पूछने लगो कि रात मैं चला गया था तिब्बत, कैसे गया? न ट्रेन पकड़ी, न हवाई जहाज पकड़ा, पहुंचा कैसे? फिर लौटा कैसे? तो तुम जिससे पूछोगे, वह भी हंसेगा। वह भी कहेगाः पागल हो गए हो! न कहीं गए, न कहीं आए। सपना देखा था। कोई सपना देख रहा है देह होने का। कोई सपना देख रहा है धनी होने का। कोई सपना देख रहा है त्यागी होने का। कोई सपना देख रहा है पापी होने का। कोई सपना देख रहा है पुण्यात्मा होने का। बस सपने ही सपने हैं। जिस दिन जागोगे ध्यान में, उस दिन पाओगे--न कहीं गए, न आए; सब आवाजाही मन की कल्पना थी। इसलिए न किन्हीं वाहनों की जरूरत थी, न यात्रा करनी पड़ी, न लौटने के लिए कोई आयोजन करना पड़ा।
और तुम पूछते होः "मेरी नियति क्या है?"
अस्तित्व की कोई नियति नहीं है। इसीलिए तो हमने इस देश में सृष्टि को लीला कहा है। लीला का अर्थ होता है--जिसकी कोई नियति नहीं है। जैसे कोई खेल खेले। अब खेल की कोई नियति थोड़े ही होती है! कोई ताश खेल रहा है, कि चौपड़ खेल रहा है, कि शतरंज बिछा रखी है--इसकी कोई नियति थोड़े ही होती है! इसका कोई प्रयोजन थोड़े ही है। इससे कुछ मिल थोड़े ही जाएगा; कुछ पा तो नहीं लिया जाएगा। इससे कुछ उपलब्धि तो नहीं होनी है। मनोरंजन है, खेल है। लोग चाहें तो रेत के घर बनाते हैं नदी के तट पर बैठ कर, खेल खेलते हैं। ताश के घर बनाते हैं, खेल खेलते हैं। हवा का एक झोंका आया और सब गिर जाता है।
पृथ्वी पर इस देश ने ही लीला शब्द का प्रयोग किया है। दुनिया का कोई दूसरा धर्म इतनी हिम्मत नहीं जुटा सका कि कह सकता कि अस्तित्व लीला है, खेल है। सबने कहाः अस्तित्व सृष्टि है। परमात्मा स्रष्टा है। जब सृष्टि कहते हो अस्तित्व को तो बड़ी गुरु-गंभीरता आ जाती है बात में। बड़े प्रयोजन से बनाई गई बात है। बनाने वाले ने बड़े इरादे रखे हैं, आकांक्षाएं हैं, अभीप्साएं हैं। कोई प्रयोजन है पीछे। कोई अर्थ छिपा है।
परमात्मा में कोई वासना है जो अस्तित्व को किसी प्रयोजन से बनाएगा? उसे कुछ कमी है? प्रयोजन तो वहां होता है जहां कुछ कमी होती है। परमात्मा तो भरपूर है, लबालब है। यह सृष्टि नहीं है इस अर्थों में कि वह कुछ पाना चाहता है इसे बना कर। यह लीला है इस अर्थों में कि ऊर्जा इतनी है कि करे भी तो क्या करे! नाचता है, गाता है, गुनगुनाता है, फूल रचता है, तितलियों के पंख रंगता है, इंद्रधनुष सजाता है। सब खेल है, सब लीला है। नहीं कोई प्रयोजन, नहीं कोई लक्ष्य। लक्ष्य की भाषा अहंकार की भाषा है। बिना लक्ष्य के, बिना प्रयोजन के तुम्हें लगता है पैर के नीचे से जमीन खिसक गई। तो तुम तत्क्षण पूछने लगते हो कि फिर हम ऐसा क्यों करें? वैसा क्यों करें? एक चित्रकला-विशेषज्ञ ने पाब्लो पिकासो से पूछा कि तुम जो चित्र अभी तैयार कर रहे हो, जो अभी-अभी पूरा हुआ है, जिस पर तुमने आखिरी रंग डाल दिया

है, इसका अर्थ क्या है? इसका प्रयोजन क्या है? तुम आखिर इससे कहना क्या चाहते हो?
पिकासो ने उस चित्रकला-मर्मज्ञ को ऐसे देखा, जैसे उसने कोई पागलपन की बात पूछी हो। फिर उसका हाथ पकड़ा और उसे बाहर ले गया बगीचे में। गुलाब की झाड़ी पर सुंदर फूल खिले हैं गुलाब के और पिकासो ने कहा कि ये गुलाब के फूल हैं, इनका क्या प्रयोजन है? इनका क्या अर्थ है? और अगर गुलाब के फूल बिना प्रयोजन के हो सकते हैं, बिना अर्थ के हो सकते हैं, तो मेरे चित्रों में भी अर्थ होने की कोई आवश्यकता है? आनंद है, अभिप्राय कुछ भी नहीं। मुझे मजा आया। जब भर रहा था रंग तूलिका से तो मैं मदमस्त हुआ। बस बात पूरी हो गई। साधन और साध्य का भेद नहीं है। साधन और साध्य एक ही हैं। पिकासो जो कह रहा है, वही लीला का अर्थ है। यह सारा अस्तित्व ऊर्जा की एक महत लीला है। मत पूछो कि नियति क्या है। नियति होती है मशीनों की। तुम अगर मशीन बनाते हो तो उसकी नियति होती है। उसे किसी प्रयोजन से बनाते हो। उससे कुछ पैदा करना है, उत्पादन करना है, फैक्टरी बनानी है। मनुष्य का कोई प्रयोजन नहीं होता, कोई नियति नहीं होती। मनुष्य तो परमात्मा का आनंद है।
जहां-जहां जीवन है, वहां-वहां कोई नियति नहीं है। नियति से मुक्त हो जाना, नियति की दृष्टि से मुक्त हो जाना--मोक्ष है, निर्वाण है। यह तो पूछो कि मैं कौन हूं। जरूर अपने से पूछो। मगर इस उपद्रव में मत पड़ना कि मैं किसलिए हूं। उसका तुम कभी कोई उत्तर न पाओगे। इसका उत्तर तो जरूर पाओगे कि मैं कौन हूं। वही उत्तर पाओगे जो सदा पाया गया है। मगर वह उत्तर तुम्हारे भीतर से आना चाहिए। पाओगे कि चैतन्य हो, द्रष्टा हो, साक्षी हो, सच्चिदानंद हो--सत हो, चित हो, आनंद हो। और यह खजाना तुम्हारे भीतर भरा पड़ा है। मत फैलाओ अपनी झोली कहीं और।

ओ रंभाती नदियो,
बेसुध
कहां भागी जाती हो?
वंशी-रव
तुम्हारे ही भीतर है!

ओ फेन-गुच्छ
लहरों की पूंछ उठाए
दौड़ती नदियो,
इस पार उस पार भी देखो--
जहां फूलों के कूल
सुनहले धान से खेत हैं।

कल-कल छल-छल
अपनी ही विरह व्यथा
प्रीति कथा कहती
मत चली जाओ!

सागर ही तुम्हारा सत्य नहीं, वह तो गतिमय स्रोत की तरह गतिहीन स्थिर भर है!
तुम्हारा सत्य
तुम्हारे ही भीतर है!

राशि का ही अनंत
अनंत नहीं--
गुण का अनंत
बूंद-बूंद में है!

ओ रंभाती नदियो,

बेसुध
कहां भागी जाती हो?
वंशी-रव
तुम्हारे ही भीतर है!

कहीं और जाना नहीं है। तुम्हारा सत्य तुम्हारे भीतर है। और सागर में
ही नहीं छिपा है सत्य, बूंद-बूंद में छिपा है, एक-एक बूंद में छिपा है। एक बूंद के राज को जान लिया तो सब सागरों का राज प्रकट हो जाता है। एक बूंद के रहस्य में डूब गए तो सब रहस्य जान लिए। एक-एक कण में परमात्मा उतना ही विराजमान है जितना समग्र में, क्योंकि पूर्ण के खंड नहीं हो सकते; पूर्ण अखंड है। तुम्हारे भीतर परमात्मा उतना ही है जितना पूरे विराट अस्तित्व में, क्योंकि पूर्ण के कोई खंड नहीं हो सकते। ऐसा मत सोचना कि मेरे भीतर थोड़ा सा टुकड़ा है पूर्ण का और थोड़ा सा टुकड़ा औरों के भीतर है, ऐसे सब टुकड़े बिखरे हैं, सबका जोड़ परमात्मा है। परमात्मा जोड़ नहीं है। यह छोटा गणित वहां काम नहीं आता। वहां गणित भी बदल जाता है। वहां तर्क भी बदल जाता है। वहां हमारी सामान्य भाषा भी बदल जाती है। अंश और अंशी वहां एक-दूसरे से छोटे-बड़े नहीं होते, बराबर होते हैं, समान होते हैं।
प्रश्न तुम्हारा सुंदर है, मगर इसे ध्यान बनाओ। शुरू-शुरू में तो पूछना कि मैं कौन हूं--शब्दों में। शब्दों से ही शुरू करना पड़ेगा, क्योंकि शब्दों के जंगल में ही हम खो गए हैं। जहां हम खो गए हैं, वहीं से यात्रा का पहला कदम उठाना होगा। फिर धीरे-धीरे जैसे-जैसे प्रश्न साफ होने लगे, शब्द छोड़ते जाना, सिर्फ प्रश्नचिह्न रह जाए भीतर। मौन बैठना, प्रश्नचिह्न ही रहे--कौन हूं? लेकिन शब्द नहीं। और फिर धीरे-धीरे प्रश्नचिह्न भी छूट जाए, सिर्फ भाव रह जाए।
शेख फरीद एक अलमस्त सूफी हुआ। नदी-स्नान करने जा रहा था। एक आदमी ने उससे पूछाः बाबा फरीद, ईश्वर को मुझे भी पाना है। क्या रास्ता है?
फरीद ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा, जैसे जांच-पड़ताल की, जैसे तौला तराजू
पर और कहा कि सच, ईश्वर को जानना है?
वह आदमी थोड़ा डरा भी। उसने तो जिज्ञासा ही की थी, यूं ही, एक बौद्धिक खुजलाहट। बाबा फरीद मिल गए रास्ते पर, चलो लगे हाथ पूछ ही लो! बहती गंगा, धो ही लो हाथ, क्या हर्ज है! मगर फरीद ने कहाः सच, ईश्वर को जानना है? थोड़ा तो डरा। मगर अब फंस ही गया था, कहाः हां-हां!

फरीद ने कहाः तो आ मेरे पीछे। ऐसे प्रश्न स्नान के बाद ही पूछे जा सकते हैं। पहले नदी पर स्नान कर लें, फिर उत्तर दूंगा। और मौका लग गया तो स्नान करने में ही उत्तर दे दूंगा।
वह आदमी थोड़ा तो डरा, कि मौका लग गया तो स्नान करने में ही उत्तर दे दूंगा, इसका क्या मतलब है? लेकिन फिर सोचा कि ये फकीर उलटबांसियों में बोलते हैं। सधुक्कड़ी भाषा इनकी अपनी ही होती है। होगा कुछ मतलब। अरे क्या बिगाड़ लेगा! नहाने को ही तो कह रहा है! कोई बहुत बड़ा कठिन काम भी करने को नहीं कह रहा है। वैसे भी मैं नहाता घर जाकर, नदी पर ही नहा लूंगा।
चल पड़ा फरीद के साथ। कपड़े उतार कर दोनों नदी में स्नान करने उतरे। जैसे ही उस आदमी ने डुबकी लगाई, फरीद उसके ऊपर सवार हो गया। वह उसे निकलने न दे पानी में से। उसकी गर्दन को दबाए ही जाए, दबाए ही जाए। वह तड़पने लगा। मछली जैसे तड़प जाए, रेत में कोई फेंक दे जलती--ऐसे तड़पने लगा। हाथ-पैर पटके। मगर फरीद भी मजबूत फकीर था। हालांकि वह आदमी दुबला-पतला था, जैसे कि अक्सर जिज्ञासु होते हैं; लेकिन उसने भी पूरी ताकत लगा दी। जहां जिंदगी और मरण का सवाल हो, उसने भी इतनी ताकत लगाई... सब लगा दी ताकत कि हालांकि फरीद मस्त फकीर था, मगर फरीद को भी एक झटके में फेंक दिया। पानी के बाहर निकला, फरीद ने पूछाः समझे कुछ?
उसने कहाः खाक समझे! जान लिए लेते थे। यह कोई ईश्वर को जानने का ढंग है? तुम आदमी हो कि हत्यारे? मैंने तो सुना था कि पहुंचे हुए फकीर हो और तुम तो पागल मालूम होते हो। मेरा गला घोंटे डालते थे!

फरीद ने कहाः ये बातें पीछे हो जाएंगी। पहले मतलब की बात हो जाए, नहीं
तो तू भूल न जाए कहीं, क्योंकि आदमी की स्मृति बड़ी कमजोर है। मैं तुझसे पूछता हूं कि जब मैंने तुझे पानी में दबाया तो तेरे मन में कितने ख्याल थे?
उसने कहाः कितने ख्याल! अरे एक ही ख्याल था कि किस तरह बाहर निकलूं। कितनी देर वह एक ख्याल रुका?
उसने कहा कि वह भी ज्यादा देर नहीं रुका। जब तुम दबाए ही गए तो वह ख्याल भी नदारद हो गया। फिर तो भाव ही रह गया। विचार भी नहीं रहा, सिर्फ भाव कि कैसे... ! अब कह रहा हूं--उसने कहा--तो शब्द में कहना पड़ रहा है, लेकिन उस वक्त शब्द भी नहीं थे। कैसे एक सांस हवा मिल जाए! फिर तो मुझे भाव का भी पता नहीं है कि भाव भी बचा कि नहीं। फिर तो क्या हुआ, मुझे पता नहीं है। किस अज्ञात ऊर्जा ने मुझे पकड़ लिया! नहीं तो तुम जैसे मस्त मौला को मैं उठा कर फेंक दूं, यह मेरे बस के बाहर था। मगर कोई अज्ञात स्रोत मेरे भीतर फूट पड़ा। कहीं से कोई ऊर्जा आ गई। अपनी तो नहीं, परमात्मा की कृपा ही समझो! भूल हो गई जो तुमसे पूछा, अब कभी न पूछूंगा। और गांव में खबर कर दूंगा कि भैया, कोई इससे ईश्वर के संबंध में मत पूछना। और अगर यह नदी जाने की बात कहे, तब तो जाना ही मत इसके साथ, क्योंकि आज हम तो बच गए, दूसरे बच सकें कि न बच सकें। फरीद ने कहाः जिस दिन ईश्वर को भी तुम इसी तरह चाहोगे कि पहले विचार, फिर भाव और फिर भाव भी नहीं--मात्र एक ऊर्जा की स्फुरणा--उसी दिन ईश्वर को पा लोगे।
यह मेरा उत्तर है--फरीद ने कहा--अब तू जा। और जिज्ञासा से कुछ भी नहीं होगा। मुमुक्षा चाहिए।
यही मैं तुमसे कह रहा हूं। पहले तो पूछना मैं कौन हूं शब्दों में; फिर प्रश्न ही रह जाए भाव में; फिर भाव भी चला जाए, एक भाव-शून्य, शब्द-शून्य अवस्था रह जाए। उसे चाहे ध्यान कहो, चाहे प्रार्थना कहो, जो तुम्हारी मौज हो। वहीं से उत्तर आएगा। और तब तुम समझ जाओगे।

कस्तूरी कुंडल बसै! कस्तूरी तुम्हारे भीतर बसी है और तुम भागे फिरते
हो जंगलों में। पागल हुए जाते हो--कहां मिले? कैसे मिले? जो भी पाने योग्य है, जो भी सार्थक है, वह तुम्हारे भीतर है।
ओ रंभाती नदियो,
बेसुध
कहां भागी जाती हो?
वंशी-रव
तुम्हारे ही भीतर है!

दूसरा प्रश्नः आदर और श्रद्धा में क्या फर्क है?

आनंद मैत्रेय! आदर और श्रद्धा में फर्क बहुत है--जमीन-आसमान जितना। आदर औपचारिक होता है; श्रद्धा अनौपचारिक। आदर सीखी हुई बात है; श्रद्धा स्वस्फूर्त।
जैसे तुमको कहा गया कि पुरोहित को आदर करना चाहिए, पंडित को आदर करना चाहिए, वृद्धजनों को आदर करना चाहिए, मां को, पिता को आदर करना चाहिए, गुरुजनों को आदर करना चाहिए। यह तुम्हें पिलाया गया है, जब तुम्हें होश नहीं था, तब से। मां के दूध के साथ ही तुम्हें ये बातें पिलाई गई हैं। सो तुम आदर करते हो।
मेरे पास भारतीय मित्र आते हैं। अपने छोटे बच्चों को ले आते हैं। वे स्वयं तो झुक कर चरण छूते हैं, अपने छोटे बच्चों की भी गर्दन पकड़ कर झुका देते हैं। मैं उनको कहता हूंः यह क्या कर रहे हो? वह बच्चा इनकार कर रहा है सब तरह से, क्योंकि उसे मुझसे क्या लेना-देना! वे उसकी गर्दन पकड़े हुए हैं! अब बाप गर्दन पकड़े हुए है तो बच्चा भाग भी नहीं सकता और झुका रहा है तो झुकना भी पड़ेगा। इस तरह झुकाते-झुकाते तुम उसका अभ्यास करवा दोगे। फिर यह कहीं भी झुकेगा। झुकना इसकी आदत में शुमार हो जाएगा। इसको हम आदर कहते हैं। जहां भी देखेगा कि किसी के हाथ में अधिकार है, सत्ता है, जहां भी

देखेगा कि किसी के हाथ में पद है, प्रतिष्ठा है, वहीं झुक जाएगा। लेकिन इसकी अंतरात्मा नहीं झुक रही है। अंतरात्मा तो पहले दिन भी नहीं झुकी थी। यह सिर्फ अभ्यासवश है।
तुम मंदिर में जाते हो, रामचंद्र की प्रतिमा है, कि बुद्ध की प्रतिमा है, कि कृष्ण की प्रतिमा है, बस एकदम से झुके! लेकिन तुमने एक बात ख्याल की? जैन जाता है कृष्ण के मंदिर में, उसके भीतर कोई झुकने का भाव नहीं उठता! उठता ही नहीं। हिंदू जाता है महावीर की प्रतिमा के सामने, उसके मन में झुकने का कोई भाव नहीं उठता। हिंदू झुकता है कृष्ण की प्रतिमा के सामने, रुक ही नहीं सकता बिना झुके। चाहे भी कि रुक जाए तो नहीं रुक सकता। करीब-करीब बात अचेतन में समा गई है। यह एक तरह का सम्मोहन है। यह सामूहिक सम्मोहन है। इसको हम आदर कहते हैं। समाज इसी तरह की थोथी बातों पर जिंदा है।
हम अपने बच्चों को इसी तरह से संस्कारबद्ध करते हैं, संस्कारों में बांधते हैं। हिंदू बनाते, मुसलमान बनाते, जैन बनाते।
मैं जैन घर में पैदा हुआ, तो मुझे बचपन से ही बताया गया कि जैनों के अतिरिक्त सब गुरु--कुगुरु! जैन शास्त्रों के अतिरिक्त सब शास्त्र-- कुशास्त्र। जैन मंदिरों के अतिरिक्त, जैन तीर्थों के अतिरिक्त न कोई तीर्थ है, न कोई मंदिर।
वही हिंदुओं को भी समझाया जा रहा है। वही मुसलमानों को भी समझाया जा रहा है। मुसलमान का पैर लग जाए गीता में तो उसे कुछ भय पैदा नहीं होता, बल्कि आनंद ही आता है कि चलो अच्छा हुआ, इतना पुण्य हुआ, यही क्या कम है! हिंदू का पैर लग जाए, एकदम साष्टांग दंडवत करेगा, सिर पटकेगा, माफी मांगेगा, घबड़ा जाएगा, पसीना-पसीना हो जाएगा। किताब वही है। मगर मुसलमान का सम्मोहन अलग है। हिंदू का सम्मोहन अलग है। दोनों को अलग-अलग संस्कार दिए गए हैं।
मस्जिद के सामने से गुजरते वक्त तुम्हें कभी झुकने का भाव पैदा होता है? ख्याल ही नहीं आता कि मस्जिद भी कोई झुकने की जगह है। हां, हनुमानजी की मढ़िया के सामने से गुजरते वक्त पैंट में हाथ डाले हुए गुजरो! लौटना पड़ेगा। दस-पांच कदम के बाद तबियत घबड़ाने लगेगी कि कहीं नाराज ही न हो जाएं! अपना क्या बिगड़ता है, चलो नमस्कार कर ही लो! हनुमानजी ही हैं, गुस्सा आ जाए, क्रुद्ध हो जाएं, कोई झंझट खड़ी कर दें, कोई मुसीबत में डाल दें! लौट कर आओगे।
मेरे एक मित्र के साथ मैं रोज सुबह घूमने जाता था। कोई मंदिर हो, हिंदू मंदिर भर हो, राम का हो कि कृष्ण का हो कि हनुमानजी का हो कि शिवजी का हो, उनको झुक कर नमस्कार करना है। घूमना ही मुश्किल हो जाता। और यहां तो गली-चौक, गली-गली मंदिर ही मंदिर हैं। हर जगह खड़े होकर उनको नमस्कार करनी। मुझे भी खड़ा होना पड़ता उनके साथ। मैंने उनसे कहा कि दो बातों में से एक कुछ तय कर लो--या तो मेरे साथ घूमने जाना हो तो यह गोरखधंधा बंद करो और अगर तुम्हें यह गोरखधंधा करना हो तो मेरे साथ घूमने जाना बंद करो। यह क्या मचा रखा है! अपने घर ही बैठ कर एक दफा सबका स्मरण कर लिया। हिंदू होशियार थे, विष्णु सहस्र-नाम लिख गए, हजार नाम भगवान के सब आ जाते हैं। एक दफा विष्णु सहस्र-नाम पढ़ लिया रोज सुबह बैठ कर, सबको नमस्कार हो गया, झंझट मिटी। फिर अब यह बार-बार जगह-जगह... और ऐसे कहां-कहां झुकते फिरोगे!
उन्होंने कहा कि संकोच तो मुझे भी लगता है, मगर आदत पड़ी है। मेरे बाप सिखा गए। उनकी भी यही आदत थी।
तो मैंने कहाः अब यह छोड़ो। बाप गए, अब आदत क्यों ढो रहे हो?
उन्होंने कहाः अच्छा कल से मैं कोशिश करूंगा।
कल वे मेरे साथ गए। पहली मढ़िया आई हनुमानजी की और मैंने देखा कि उनके पैर डगमगा रहे हैं। मैंने कहाः सम्हल कर! सावधान! यही वक्त है सावधानी का। उन्होंने कहाः बिल्कुल सावधान हूं।
मगर मैंने देखा कि उनके चेहरे पर घबराहट है। कोई दस-पंद्रह कदम मेरे साथ आगे गए और मुझसे कहा कि माफ करें, मैं आगे नहीं बढ़ सकता। मुझे नमस्कार करना ही पड़ेगा। नहीं तो आज मेरा पूरा दिन खराब हो जाएगा। मुझे बेचैनी सता रही है कि अरे, आज हनुमानजी को बिना नमस्कार किए आगे जा रहे हो! गए लौट कर,

नमस्कार किया, तब उनके मन को चैन आया। यह आदर है। नहीं करना चाहते तो भी करना पड़ रहा है।
यह श्रद्धा नहीं है। श्रद्धा बड़ी और बात है। श्रद्धा का अर्थ होता है--स्वस्फूर्त, किसी की सिखाई हुई नहीं। तुम जब किसी व्यक्ति के सामने इसलिए झुकते हो कि तुम्हारा हृदय झुकने के लिए आतुर हुआ है, तब श्रद्धा। जब तुम इसलिए झुकते हो क्योंकि झुकना सिखाया गया है, तब आदर। आदर औपचारिक है, दो कौड़ी का है। सामाजिक व्यवस्था है। श्रद्धा जड़-मूल से क्रांति है, जीवन-क्रांति है। श्रद्धा का फूल खिल जाए तो जीवन में सुगंध ही सुगंध भर जाए। आदर, ऐसे समझो जैसे प्लास्टिक के फूल। फूल जैसे लगते हैं। दूर से देखो तो धोखा भी खा जाओ। बिल्कुल फूल जैसे लगते हैं, कभी-कभी तो फूल से भी सुंदर बन सकते हैं। और कुछ खूबियां होती हैं प्लास्टिक के फूल में, जो असली फूल में नहीं होतीं। प्लास्टिक का फूल टिकता है, खूब टिकता है, सदियों टिक सकता है। सच तो यह है कि वैज्ञानिक इस बात से परेशान हैं कि हम इतने प्लास्टिक का उपयोग कर रहे हैं, यह सब प्लास्टिक जमीन में इकट्ठा हो रहा है। प्लास्टिक मरता नहीं। प्लास्टिक बिल्कुल अमृत को उपलब्ध है। अमृतस्य पुत्रः! वह जो वेद में वचन आया है, वह आदमी के बाबत नहीं है, प्लास्टिक के बाबत है। प्लास्टिक को मारने का उपाय नहीं है। इतना प्लास्टिक इकट्ठा होता जा रहा है जमीन में, समुद्रों में, नदियों में, यह प्लास्टिक खतरनाक है, क्योंकि इससे जमीन की उर्वरा शक्ति मर जाएगी। प्रकृति की जितनी चीजें हैं वे गल जाती हैं, प्रकृति में वापस फिर मिल जाती हैं। जैसे आदमी मरेगा तो पानी पानी में मिल जाएगा; अस्सी प्रतिशत आदमी में पानी होता है। पानी ही पानी समझो तुम अपने को; अस्सी प्रतिशत कोई कम मामला नहीं है। अस्सी प्रतिशत पानी पानी में मिल जाएगा। बची-खुची मिट्टी मिट्टी में मिल जाएगी। सांस हवा में चली जाएगी। फिर छोटी-छोटी चीजें हैं, अल्युमिनियम है, कुछ और दूसरी धातुएं हैं, लोहा है थोड़ा-बहुत हड्डी में, वह सब मिल जाएगा। सौ-पचास साल के भीतर सब वापस अपने-अपने मूलस्रोत को चला जाएगा। रिसाइक्लिंग हो गई। अब फिर कोई नया आदमी उससे पैदा हो सकता है। प्रकृति में जो भी पैदा होता है, वह अटकता नहीं, वह प्रकृति को कहीं अटकाता नहीं। प्लास्टिक बड़ी खतरनाक चीज आदमी ने बना ली है; वह मरता ही नहीं। वह पड़ा रहेगा सदियों तक। और जहां पड़ा रहेगा वहीं नुकसान करेगा। अटका रहेगा, जगह-जगह अवरोध खड़े कर देगा।
तो प्लास्टिक की एक खूबी है कि उसका फूल रोज-रोज सांझ को मुर्झाएगा नहीं। न सूरज से डरता वह, न पानी से डरता वह। उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। न पानी की जरूरत, न खाद की जरूरत। उसकी जड़ें ही नहीं हैं कोई; बिना जड़ के, आकाश-बेल है।
मुल्ला नसरुद्दीन को मैं देखता था अपनी खिड़की में रोज गमले में पानी डालते। गमले में फूल खिले थे। एक दिन पास से गुजर रहा था तो मैंने देखा कि वह पानी तो डाल रहा है, लेकिन जिस लोटे से पानी डाल रहा है, उसकी टोंटी में से पानी गिर नहीं रहा, लोटा खाली है। मैंने पूछाः नसरुद्दीन, पानी तो लोटे में है नहीं, तुम डाल क्या रहे हो?
उसने कहा कि डाल कौन रहा है पानी! ये फूल कोई असली हैं? प्लास्टिक के हैं। मगर मोहल्ले वालों को धोखा दे रहा हूं। पानी न डालो तो वे समझते हैं कि प्लास्टिक के फूल हैं; सो रोज खाली लोटा सुबह से... रोज सुबह-शाम उलटा देता हूं। मोहल्ले वालों को भरोसा बना रहता है कि फूल असली ही होने चाहिए, नहीं तो कोई पानी डालता है!
नकली फूल की खूबी है--टिकता है, बड़ा स्थायी है। प्रेम जैसा नहीं है, विवाह जैसा है। टिका सो टिका! जनम-जनम पीछा करता है। प्रेम से इसीलिए सारी सभ्यताएं भयभीत रही हैं, क्योंकि प्रेम असली फूल है--सुबह खिले, सांझ मुरझा जाए। तुमने आमतौर से दूसरी ही बात सुनी होगी। तुमने सुना होगा कि प्रेम अगर असली हो तो मरता नहीं। तुम गलती में हो। असली चीजें मरती हैं; नकली चीजें भर नहीं मरतीं। प्रेम अगर असली हो तो मर जाएगा; जैसे जन्मा, वैसे मरेगा। और जितनी त्वरा से जन्मा, उतनी ही त्वरा से मर जाएगा।
सुबह जो फूल खिला था, वह सांझ पंखुड़ियां बिखर जाएंगी। इससे यह मत समझ लेना कि फूल नकली था। फूल असली था। सुबह खिला ही नहीं, बाजार से ले आए खरीद

कर प्लास्टिक का फूल, तो वह क्यों मरेगा? शाम को झड़ेगा भी नहीं। इसलिए समझदारों ने प्रेम को तो समाप्त कर दिया दुनिया से, विवाह को उसकी जगह परिपूरक बना दिया। विवाह प्लास्टिक का फूल है; वह मरता ही नहीं। क्योंकि पहली बात तो वह कभी पैदा ही नहीं होता। मां-बाप तय करते हैं। पंडित-पुरोहित तय करते हैं। जन्म-कुंडली मिलाई जाती है; उससे तय होता है। जिन दो व्यक्तियों का विवाह हो रहा है, उनसे तो पूछा ही नहीं जाता; उनका तो कुछ लेना ही देना नहीं है इससे; वे तो इसमें साझीदार ही नहीं हैं। उनकी तो कुछ बात का सवाल नहीं उठता। उनको बीच में आने की जरूरत भी नहीं है। दूसरे तय कर देते हैं। और तय करने वाले और कारणों से तय करते हैं; प्रेम उसमें कारण नहीं होता। धन कितना, पद कितना, प्रतिष्ठा कितनी, कुलीनता कितनी, सदाचार, नैतिकता... न मालूम कितने और सब कारण होंगे, मगर प्रेम उसमें कोई भी मापदंड नहीं होता। क्योंकि प्रेम से सभी सभ्यताएं भयभीत हैं। क्योंकि प्रेम का कुछ भरोसा नहीं है।
पश्चिम में आज जो विवाह मर रहा है, उसका कुल कारण इतना है कि पश्चिम ने प्रेम को फिर से मूल्य देना शुरू कर दिया। प्रेम को मूल्य दोगे, विवाह मरेगा। आज अमरीका में दो शादियां होती हैं और एक तलाक। हर दो शादी के पीछे एक तलाक। और बाकी जो एक तलाक नहीं होता, तुम यह मत समझना कि वे मजे से रह रहे हैं। उस भ्रांति में मत पड़ना। वे जरा दकियानूसी किस्म के लोग हैं; डरते हैं, हिम्मत नहीं जुटा पाते। सोचते हैं कि अब गुजार ही दो; चार दिन की जिंदगी है, यूं ही कट गई, यूं भी कट जाएगी।
अगर लोगों के भीतर झांक कर देखो तो बड़ी हैरानी होगी। लेकिन औपचारिकता।
जैसे प्रेम और विवाह में भेद है, वैसे ही श्रद्धा और आदर में भेद है। आदर विवाह जैसा है--सामाजिक उत्पत्ति, सामाजिक व्यवस्था का अंग है। श्रद्धा तो प्रेम का ही विकसित रूप है, प्रेम की पराकाष्ठा है। जब तुम किसी व्यक्ति के हार्दिक प्रेम में पड़ जाते हो--ऐसे प्रेम में, जो तुम्हें उसके सामने झुकने को, समर्पित होने को विवश कर देता है--तो श्रद्धा!
मैं विश्वविद्यालय में अध्यापक था कुछ वर्षों तक। दिल्ली में एक शिक्षामंत्री ने उन दिनों एक छोटी सी बैठक बुलाई थी भारतवर्ष के अलग-अलग विश्वविद्यालयों से अध्यापकों की, क्योंकि विद्यार्थियों और अध्यापकों के बीच बिगड़ते हुए संबंध रोज-रोज समस्या बनते जा रहे थे। भूल-चूक से मुझे भी बुला लिया। भूल-चूक से ही कहना चाहिए, क्योंकि बुला कर फिर बहुत पछताए। मुझसे पहले जो अध्यापकगण बोले, उन सबका स्वर एक ही था कि शास्त्र कहते हैंः शिक्षक को आदर देना चाहिए। यह हमारी भारतीय परंपरा है, यह हमारी संस्कृति है। और यह विनष्ट हो रही है।
मैं जब बोला तो मैंने कहा कि जहां तक मैं शास्त्रों को समझता हूं, शास्त्र कहते हैंः जिसको आदर देना ही पड़े, वही शिक्षक है। गुरु को आदर देना चाहिए, यह मैं व्याख्या नहीं मान सकता। लेकिन जिसको आदर देना ही पड़े, कोई उपाय ही न हो सिवाय आदर देने के, वही गुरु है। वह गुरु की परिभाषा है। जिसके सामने जाकर झुक ही जाना पड़े, न झुकना चाहो तो भी, नकार लेकर जाओ तो भी, निषेध लेकर जाओ तो भी, नहीं से भरे हुए जाओ फिर भी हां उठ आए--तो समझना कि गुरु के पास आए।
सभी शिक्षक गुरु नहीं होते। और इसलिए जो शिक्षक गुरु ही नहीं हैं, उनके प्रति आदर भी क्यों होना चाहिए? वे नौकर हैं, तनख्वाह मिलती है, बात खत्म हो गई। तुम तनख्वाह लेते हो, पढ़ा देते हो; वे फीस चुका देते हैं, पढ़ लेते हैं। इससे ज्यादा की मांग क्यों? यह अहंकार की आकांक्षा क्यों कि हमें आदर भी मिलना चाहिए? अगर चाहते हो कि आदर मिले तो आदर योग्य हो जाओ। मगर उसकी तो कोई चिंता नहीं है।
मैंने कहा कि इतने अध्यापक बोले, एक ने भी यह फिक्र नहीं की जाहिर कि शिक्षक आदर योग्य नहीं रहा है, इसलिए आदर नहीं मिल रहा है।
गौतम बुद्ध के पांच शिष्य थे, जब वे तपश्चर्या कर रहे थे। फिर बुद्ध
को लगा कि इस तपश्चर्या में कुछ सार नहीं है, व्यर्थ मैं अपने शरीर को सुखा रहा हूं; यह तो निपट दुखवाद है; यह तो आत्महिंसा है। तो उन्होंने तपश्चर्या छोड़ दी। वे जो पांच शिष्य थे वे तो परंपरागत रूप से इसीलिए उनके

शिष्य थे कि बुद्ध तपश्चर्या में बड़े कुशल थे, अपने को सताने में लाजवाब थे। ऐसे-ऐसे ढंग से अपने को सताते थे, ऐसी-ऐसी नई-नई ईजादें करते थे अपने को सताने की, इसीलिए वे पांच उनसे प्रभावित थे। उन्होंने देखाः यह तो भ्रष्ट हो गया, गौतम भ्रष्ट हो गया। अब इसने तपश्चर्या छोड़ दी। तो वे छोड़ कर चले गए।
और तब बुद्ध को परमज्ञान हुआ। जब परमज्ञान बुद्ध को हुआ तो उन्होंने कहा कि पहले मैं उन पांच को खोजूं जो मुझे छोड़ कर चले गए थे। कुछ भी हो, वे मेरे साथ वर्षों रहे। वे मुझे छोड़ कर चले गए हैं, मैंने उन्हें नहीं छोड़ दिया है। उनकी नासमझी के लिए इतना बड़ा दंड देना उचित नहीं है। तो वे उनकी तलाश में आए, इसीलिए सारनाथ तक आए, क्योंकि जैसे-जैसे उनकी खोज की, पता चला वे और आगे, और आगे, पता चला वे सारनाथ में रुके हुए हैं, तो वे सारनाथ आए। सुबह का वक्त है। ऐसी ही सुबह रही होगी। वे पांचों बैठे हैं एक वृक्ष के नीचे और उन्होंने देखा बुद्ध को आते हुए। उन पांचों ने कहाः यह भ्रष्ट गौतम आ रहा है। हम इसको उठ कर नमस्कार न करें। यह भ्रष्ट हो चुका है, इसको क्यों नमस्कार करना? हम इसकी तरफ पीठ ही रखें। आए और खुद ही बैठ जाए तो बैठ जाए। हम यह भी नहीं कहेंगे कि आइए, पधारिए, विराजिए। हम क्यों कहें? इससे तो हम ही बेहतर हैं, कम से कम अपने मार्ग पर तो डटे हुए हैं। यह तो मार्ग से च्युत हो गया।
उन्होंने पांचों ने तय कर लिया। मगर जैसे-जैसे बुद्ध करीब आए, वैसे- वैसे मुश्किल होने लगी। एक उठा और बुद्ध के चरणों पर गिर पड़ा। दूसरा उठा और वह भी गिरा। फिर तो पांचों उठे और बुद्ध के चरणों पर गिरे। बुद्ध ने कहा कि मेरे मित्रो, इतनी जल्दी अपना संकल्प नहीं छोड़ देना चाहिए। क्या तुमने तय नहीं किया था... क्योंकि तुम्हारे ढंग देख कर मुझे लग रहा था कि तुमने तय किया है... कि सम्मान नहीं दोगे। तुमने मेरी तरफ पीठ कर ली। फिर तुम मेरे चरणों में क्यों गिरे?
उन्होंने कहाः यह तो हमें भी पता नहीं। मगर तुम्हारे साथ एक हवा आई, तुम्हारे साथ गंध का एक प्रवाह आया! तुम क्या आए, एक ऊर्जा आई, एक वातावरण आया। तुम क्या आए जैसे वसंत आया और फूल अपने आप खिलने लगे। हम करें भी तो क्या करें?
इसको मैं श्रद्धा कहता हूंः फूल अपने आप खिलने लगें।
आदर, आनंद मैत्रेय, औपचारिक होता है--दो कौड़ी का, उसका कोई भी मूल्य नहीं। मूल्य है तो श्रद्धा का। भाषाकोश में तो दोनों का एक ही अर्थ है, लेकिन जीवन के कोश में दोनों बड़े विपरीत हैं। श्रद्धा में प्राण होते हैं; आदर लाश है। आदर होता है परंपरागत; श्रद्धा होती है व्यक्तिगत। आदर होता है सामूहिक; श्रद्धा होती है निजी, आत्मगत। श्रद्धा अपना निर्णय है; आदर दूसरों का निर्णय है। और जो दूसरों के निर्णय से चलता है, वह भी कोई आदमी है? भेड़ है! आदर में शर्त होती है, फिर शर्त चाहे कोई भी हो--आयु की शर्त हो, कि कोई उम्र में बड़ा है, तो उसको आदर देना चाहिए। अब उम्र में बड़े होने से क्या आदर का संबंध है? कोई संबंध नहीं है। कितने तो बूढ़े हैं दुनिया में, जो बचकानी प्रवृत्तियों से भरे हुए हैं। कोई ब.ूढे होने से ही थोड़े ही प्रौढ़ होता है। काश प्रौढ़ता इतनी सस्ती बात होती, कि बूढ़े हो गए और प्रौढ़ हो गए! अधिकतर लोग तो बाल धूप में ही सफेद करते हैं। जीवन का अनुभव और बात है। उम्र का बढ़ते जाना और बात है। उम्र तो जानवरों की भी बढ़ेगी। उम्र तो बढ़ती चली जाएगी। वह तो घड़ी और कैलेंडर की बात है; आत्मा की नहीं। ऐसे भी पड़े रहे तो भी उम्र बढ़ती ही रहेगी; कुछ भी न किया तो भी उम्र बढ़ती रहेगी। सब तरह की मूढ़ताएं करते रहे तो भी उम्र बढ़ती रहेगी। उम्र का कोई संबंध बोध से नहीं है।
मुल्ला नसरुद्दीन सौ साल का हो गया था, तो उसके घर पत्रकार आए। क्योंकि सौ साल का कोई हो जाए... उसकी तस्वीरें लीं। उससे पूछा कि नसरुद्दीन, तुम्हारी इतनी लंबी उम्र का राज क्या है?
उसने कहाः राज? न मैंने कभी शराब पी, न कभी मैंने सिगरेट पी, न मैं कभी जुआ खेला। कभी गलत सत्संग मैंने किया ही नहीं। ठीक आठ बजे सो जाना और ब्रह्ममुहूर्त में उठ आना। पांच मील रोज सुबह घूमने जाना। कुरान का पाठ करना। जीवन धर्म में लगा रहा। इसी से यह लंबी आयु मिली।

तभी बगल के कमरे में, जैसे कोई चीज गिरी, ऐसा धड़ाका हुआ। तो वे सब चौंक गए। उन्होंने कहाः क्या हुआ?
मुल्ला ने कहाः कुछ घबड़ाओ न, ये मेरे पिताजी हैं। इन्होंने लगता है फिर नौकरानी को पकड़ लिया।
उन्होंने कहाः तुम्हारे पिताजी! इनकी उम्र कितनी है?
कहा कि होगी कोई एक सौ बीस साल।
और अभी तक नौकरानी को पकड़ते हैं?
अरे, उसने कहा कि इनकी पूछो ही मत। जब पी लेते हैं तो फिर इन्हें कुछ होश नहीं कि कौन नौकरानी है, कौन क्या है।
वे तो कहे कि यह बड़ी चमत्कार की बात है कि तुम्हारे पिता एक सौ बीस साल
के हैं और तुम सौ साल के!
अरे, उसने कहाः यह कुछ भी नहीं है। मेरे दादा भी अभी जिंदा हैं।
वे कहां हैं? पत्रकारों ने पूछाः उनके हम दर्शन करना चाहते हैं। उनकी उम्र क्या है?
होगी कोई एक सौ चालीस साल।
कहाः तो वे हैं कहां?
उसने कहा कि वे जरा बरात में गए हैं।
किसकी बरात में?
खुद की बरात में।
क्या इस उम्र में विवाह कर रहे हैं?
नसरुद्दीन ने कहाः कर नहीं रहे हैं, करना पड़ रहा है! वह स्त्री गर्भवती हो गई।
उम्र से क्या होगा? मूढ़ और मूढ़ हो जाएगा, जितनी ज्यादा उम्र हो जाएगी।
गधे कुछ उम्र बढ़ने से घोड़े थोड़े ही हो जाते हैं! खच्चर भी नहीं होते। और महागधे हो जाते हैं।
लेकिन आदर होता है सशर्त। उसमें शर्तें होती हैं। आयु की शर्त होती है, धन की शर्त होती है। जिसके पास धन हो, उसको आदर। जब तक धन हो, तब तक ठीक। जिस दिन धन गया, उस दिन आदर गया। ज्ञान हो... ज्ञान अर्थात शास्त्रीय ज्ञान। पंडित हो, उपनिषद कंठस्थ हों... ।
अभी एक सज्जन ने मुझे आकर कहा... उज्जैन से आए और कहा कि गजब की चीज देखी। एक महात्मा उज्जैन में आए हुए हैं--मेला भरा न कुंभ का उज्जैन में! एक महात्मा आए हुए हैं। वे शीर्षासन करके दो घंटे तक रामायण का रोज पाठ करते हैं।
जैसे बुद्धू तुम इस देश में पा सकते हो, वैसे तुम कहीं भी नहीं पा सकोगे। धन्य भारत-भूमि! अब एक बुद्धू को शीर्षासन करके रामायण पढ़ना बड़ी महत्वपूर्ण बात मालूम पड़ रही है। और ये दूसरे बुद्धू आए हैं, जो खबर लेकर कि वाह, कैसे महात्मा! और कहते हैं वहीं भीड़ लगी है सबसे ज्यादा। जब वे रामायण का पाठ करते हैं शीर्षासन में खड़े होकर, तो जनता गदगद हो जाती है। अब इसमें गदगद होने की क्या बात है? यह आदमी मूरख है, इसको करने दो।
मगर तुम कुंभ में जाओ तो तुम्हें इसी तरह के लोग मिलेंगे। कोई आदमी नौ साल से एक हाथ ऊंचा उठाए खड़ा है। उनसे पूछाः क्यों? उन्होंने कहा कि बारह साल का नियम लिया है, एक हाथ ऊंचा रखेंगे। जैसे पागलों की एक जमात है! विक्षिप्तों की एक जमात है! कोई आदमी खड़ा ही है तो वह बैठता ही नहीं है, सालों बीत गए, वह खड़ा ही हुआ है। उसने जिद बांध रखी है कि वह खड़ा रहेगा। न चेहरे पर कोई प्रतिभा है, न कोई बुद्धत्व की आभा है। मगर खड़े हैं, तो पर्याप्त है हमारे लिए।
हम आदर भी किन-किन बातों से देते हैं! किन-किन कारणों से देते हैं! और
जो भी पद पर हो, उसी को हम आदर देने लगते हैं। कोई प्रधानमंत्री हो गया, बस आदर, एकदम! कोई राष्ट्रपति हो गया, एकदम आदर! अभी मदर टेरेसा को नोबल-प्राइज मिल गई, बस एकदम आदर! मदर टेरेसा वही की वही, नोबल-प्राइज के पहले भी वही की वही थी। भारत के किसी विश्वविद्यालय को न सूझा कि कभी डी.लिट. दें। अब एकदम विश्वविद्यालयों में होड़ लगी है, सभी विश्वविद्यालयों को डी.लिट. देना है। भारत-रत्न! अब हुईं भारत-रत्न वे, जब नोबल-प्राइज मिल गई। बस कुछ

भी शर्त होनी चाहिए और हमारी बंधी-बंधाई धारणाओं में एकदम तहलका मच जाता है।
श्रद्धा बेशर्त होती है, जैसे प्रेम बेशर्त होता है। तुमसे अगर कोई पूछे कि तुम्हारा किसी से प्रेम किसलिए हुआ? तो तुम उत्तर न दे पाओगे। अगर उत्तर दे पाओ तो समझना कि प्रेम नहीं है। कुछ और होगा। तुम अगर कहो, क्योंकि इसके पिता बड़े प्रतिष्ठित हैं, क्योंकि इसके पास धन बहुत है, कि यह बाप की इकलौती बेटी है। इकलौती बेटी होने से मुझे बड़ी दया आई, कि इस बेचारी का उद्धार कर दूं। कि बाप के पास पैसा बहुत है, कोई दुष्ट बरबाद न कर दे, तो सोचा कि रक्षा करूं। अगर तुम कुछ कारण बता सको तो समझना कि वह प्रेम नहीं है। लेकिन तुम अगर हक्के-बक्के रह जाओ, तुम कहो कि कुछ कह नहीं सकता क्यों, क्यों का उत्तर नहीं है--बस हो गया, बेशर्त! तुम जो कारण खोजते भी हो कभी, तुम कहते हो कि बहुत सुंदर है, वे भी कारण सच्चे नहीं हैं। क्योंकि तुम सोचते हो कि सुंदर होने की वजह से तुम्हें प्रेम हो गया है; असलियत यह है कि प्रेम हो गया है, इसलिए वह तुम्हें सुंदर मालूम हो रही है। क्योंकि और किसी को सुंदर नहीं मालूम हो रही है।
लैला किसी को सुंदर नहीं मालूम हुई, सिवाय मजनू के। इसलिए सौंदर्य के कारण प्रेम होता है, यह बात गलत है। प्रेम के कारण सौंदर्य का बोध होने लगता है। फिर तुम बहाने खोजते हो, क्योंकि हमारा मन कहता है कि कुछ न कुछ तो तर्क होना ही चाहिए--क्यों प्रेम हो गया है? ठीक वैसी ही अवस्था श्रद्धा की है। श्रद्धा भी एक दीवानापन है। कोई तर्क नहीं है। जिससे तुम्हारे श्रद्धा के संबंध हो जाएंगे, जब भी लोग पूछेंगे, तुम बिल्कुल हक्के-बक्के रह जाओगे, अवाक रह जाओगे। तुम उत्तर न दे पाओगे, संतोषदायी उत्तर तो दे ही न पाओगे। इसलिए सभी प्रेमी, सभी श्रद्धालु दीवाने समझे जाते हैं, क्योंकि वे कोई भी ऐसा स्थूल उत्तर नहीं दे सकते जो दूसरों की तर्क-सरणी में आ सके।
मेरे संन्यासियों का यह रोज का अनुभव है। उनसे लोग पूछते हैं कि तुम्हें क्या हो गया? भले-चंगे आदमी थे, अचानक तुम्हें हो क्या गया? कभी सोचा न था कि तुम्हें यह हो जाएगा।
और नहीं वे उत्तर दे पाते। नहीं वे उत्तर दे सकते हैं। कोई उपाय नहीं उत्तर देने का। यह बात स्वाद की है।
श्रद्धा एक अनुभव है, जो अगम्य है। आदर बासा होता है; श्रद्धा ताजी होती है--सुबह की ओस जैसी ताजी! आदर अतीत से बंधा होता है; श्रद्धा वर्तमान का अनुभव होती है। आदर हमेशा औरों के हाथ से आया हुआ सिक्का है, जिस पर न मालूम कितने हाथों की छाप लगी है, पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है। दूसरे हंसेंगे उस पर, क्योंकि वह उनकी परंपरा नहीं है।
जैसे अगर किसी हिंदू को चुटैया बांधे हुए कोई भी देखता है तो हंसता है, मगर हिंदू नहीं हंसता। हिंदू को तो चोटीधारी बहुत जंचता है। उसके मन में बड़ा आदर पैदा होता है। उसे यही सिखाया गया है कि यह तो ऋषि-मुनियों के देश में सदा से ही है; इसका रहस्य है, राज है। और क्या-क्या राज लोग खोजते हैं!
एक महात्मा प्रवचन कर रहे थे। मैं भी मंच पर मौजूद था। क्या गजब की बातें वे कह रहे थे कि जब मैं बोला तो फिर मुझसे नहीं रहा गया; मुझे कहना ही पड़ा कि ये बातें बड़ी गजब की हैं। उपद्रव हो गया। महात्मा बिल्कुल विक्षिप्त हो गए। महात्माओं के विक्षिप्त होने में देर नहीं लगती, क्योंकि जितना भी वे दिखाते हैं शांति, सौमनस्य, समता, वह सब ऊपरी है, थोथी है।
वे समझा रहे थे कि यह जो चोटी है, यह बड़ी वैज्ञानिक है। जैसे कि बड़े- बड़े मकानों के ऊपर लोहे का डंडा लगा रहता है न, कि बिजली वगैरह गिरे तो मकान ध्वस्त न हो, बिजली सीधी जमीन में चली जाए--ऐसे ही हिंदुओं ने बहुत पहले ही यह विज्ञान खोज लिया, उन्होंने चुटैया बांध कर खड़ी रख दी।
क्या गजब की बात कर रहे हैं वे भी! इसका तो मतलब हुआ कि हिंदुओं पर तो कभी बिजली गिरनी नहीं चाहिए थी। बिजली गिरे तो औरों पर गिरे। और तब तो हिंदू संन्यासियों पर, जो बिल्कुल घुट्टमघुट्ट होते हैं, बिजली रोज-रोज

गिरनी चाहिए। कोई जगह ही नहीं है चुटैया के लिए। हिंदू संन्यासी तो मारे जाएं जब देखो तब, जहां जाएं वहीं बिजली गिरे, बिजली खोज-खोज कर गिरे।
वे खुद घुटमुंडे थे। मैंने पूछा कि यह तो बड़ी मजे की बात है। यह घुटमुंड संन्यासी लोगों को समझा रहा है चुटैया का महत्व। इनकी चुटैया कहां है? इनके विज्ञान का क्या हुआ?
और भी गजब की बातें वे समझा रहे थे कि हिंदू क्यों खड़ाऊं पहनते हैं! क्योंकि उससे अंगूठे की नस दबी रहती है, अंगूठे की नस दबी रहने से आदमी को ब्रह्मचर्य सधता है।
तो एकाध दफे जाकर अस्पताल में दबवा ही दो ठीक से नस। अंगूठे की ही नस है। तो नसबंदी की और क्या जरूरत है? अंगूठे की ही नस दबानी है तो दबा दो। इसको कहां लकड़ी की खड़ाऊं बांध कर खटर-पटर करते फिरते हो! और कभी तो खड़ाऊं उतारोगे, तब नस का क्या होगा? रात सोओगे, तब तो खड़ाऊं उतारोगे। और बाल-बच्चे रात को ही ज्यादा पैदा होते हैं, दिन को तो होते नहीं।
तो मैंने कहाः ये महात्मा जो समझा रहे हैं, इसका मतलब कि रात खड़ाऊं पहने सोओ। और समझ लो कि पति ने दबा भी ली नस, पत्नी का क्या होगा? वह भी खड़ाऊं पहने सो रही है! खड़ाऊं चल जाएंगी रात में ही। खोपड़ियां खुल जाएंगी। और कहां-कहां खड़ाऊं लिए फिरोगे?
बस वे तो एकदम क्रोध में आ गए कि मैंने धर्म का खंडन कर दिया। धर्म का कोई खंडन नहीं है इसमें, सिर्फ मूर्खतापूर्ण बातों का। लेकिन हिंदुओं को बात जमेगी। हिंदू ताली बजा रहे थे, प्रसन्न हो रहे थे। क्योंकि उनकी चुटैया की रक्षा की जा रही है।
हमारी मूढ़ताओं की भी जब रक्षा की जाती है तो हम बड़े खुश होते हैं; उससे हमारे अहंकार को तृप्ति मिलती है कि अरे हम कुछ ऐसे-वैसे! हम भी बड़े वैज्ञानिक हैं! हमारी बातों में भी बड़े गूढ़ रहस्य हैं, छिपे हुए राज हैं! आदर उधार होता है, बासा होता है, थोथा होता है, अनुकरणात्मक होता है, नकलची होता है। तुम दूसरों की नकल करते फिरते हो। श्रद्धा स्व-अनुभूत है। आदर बुद्धि को नष्ट करता है, बुद्धि का दुश्मन है। बुद्धि जंग खा जाती है आदर में। श्रद्धा में बुद्धि की जंग निखरती है, श्रद्धा में बुद्धि पर धार आती है; तलवार पर तेजी आती है, चमक आती है।
श्रद्धा को तो जरूर चुनना। आदर से बचना। सब नकली फूलों से बचना। अगर चाहते हो तुम्हारे जीवन में कभी सुगंध हो सके तो नकली फूलों से सावधान रहना जरूरी है।

तीसरा प्रश्नः मैं राजनीति में हूं। क्या आप मुझे भी बदलेंगे नहीं? क्या मुझ पर कृपा न करेंगे?

उदयसिंह! भैया, काम तो जरा मुश्किल है। कोशिश करेंगे, सफलता-असफलता भगवान के हाथ! क्योंकि जो राजनीति में है, वह यूं ही थोड़े ही राजनीति में होता है, अकारण तो नहीं होता।
राजनीति का अर्थ क्या होता है?
राजनीति का अर्थ होता हैः दूसरों के ऊपर मालकियत की आकांक्षा। और धर्म राजनीति से बिल्कुल विपरीत है। धर्म का अर्थ होता हैः अपने पर मालकियत की आकांक्षा। ये दोनों दिशाएं भिन्न हैं।
तुम यह कह रहे हो कि मैं पूरब की तरफ जा रहा हूं, क्या आप मुझे पश्चिम
की तरफ जाने में सहायता करेंगे?
मैं कोशिश तो करूंगा, मगर तुम अगर पूरब की तरफ जाने की धुन में बंधे हो
तो पश्चिम की तरफ ले जाना बड़ा मुश्किल हो जाएगा।
तुम्हें राजनीति छोड़नी होगी, जो कि कठिन बात है। क्योंकि राजनीति का स्वाद शराब जैसा स्वाद है; लग जाए तो छोड़े नहीं छूटता। बहुत मुश्किल हो जाता है। हजार बहानों से लौट-लौट आता है। तुम अगर धर्म में भी प्रविष्ट हो जाओ तो वहां भी तुम कुछ न कुछ राजनीतिक दांव-पेंच करोगे। यह पीछे के दरवाजे से आ जाएगा। आखिर धर्म में भी तो खूब राजनीति चलती है। शंकराचार्यों पर अदालतों में मुकदमे चलते हैं।

एक मुकदमा इलाहाबाद के हाईकोर्ट में वर्षों से चल रहा है, दो शंकराचार्य दावा कर रहे हैं एक ही स्थान के शंकराचार्य होने का। अब यह राजनीति हो गई। शंकराचार्य भी और अदालत में दावा करें और अदालत निर्णय करे कि कौन असली शंकराचार्य है! यह भी न्यायाधीश, जिनको धर्म का क ख ग भी न आता हो, वे निर्णय करेंगे कि कौन असली शंकराचार्य है! और उनसे निर्णय की भिक्षा मांगने दो शंकराचार्य खड़े हुए हैं। और वर्षों से मुकदमा चल रहा है। और पीठ पर ताला पड़ा हुआ है पुलिस का। क्योंकि जब तक निर्णय न हो, तब तक झंझट है। कई दफा डंडेबाजी हो चुकी। दोनों के भक्त हैं।
जो पूर्व-शंकराचार्य थे, जो यह उपद्रव छोड़ गए, वे दोनों को वसीयत कर गए हैं। पहले एक को वसीयत कर गए। फिर मरते वक्त दूसरे ने कुछ ज्यादा खुशामद की होगी। पहला निश्चिंत हो गया होगा कि अब क्या करना, वसीयत तो मेरे नाम हो चुकी है। दूसरे आदमी ने ज्यादा चमचागिरी की होगी। सो मरते वक्त उसके नाम भी वसीयत कर गए। अब वसीयत दोनों के नाम है। अदालत भी कैसे तय करे कि कौन असली में शंकराचार्य है?
कितने मंदिर हैं, कितनी मस्जिद हैं, कितने गुरुद्वारे हैं, जहां सिवाय राजनीति के और कुछ भी नहीं है। धर्म के नाम पर राजनीति चल रही है। तो तुम धर्म में भी आ जाओगे, इससे कुछ पक्का नहीं है कि राजनीति से छूट जाओगे। राजनीति से छूटने के लिए बड़ी सजगता की जरूरत है। वे चालबाजियां जो तुम्हें आ गईं, दांव-पेंच जो तुमने सीख लिए, उनसे बचना बहुत मुश्किल है। मुल्ला नसरुद्दीन नेता है, बड़ा नेता है। उसके बेटे ने उससे पूछा कि पिताजी, कुछ-कुछ धीरे-धीरे राजनीति मुझे भी सिखाइए। आपके गले में फूलों की मालाएं, स्वागत-सत्कार देख-देख मेरे मन में भी होता है कि कभी मैं भी इसी मार्ग पर चलूं।
नसरुद्दीन ने कहाः तो ले पहला पाठ। चढ़ जा इस सीढ़ी पर।
उसने कहाः सीढ़ी पर चढ़ने से क्या होगा?
नसरुद्दीन ने कहाः तू चढ़ तो!
बेटा सीढ़ी पर चढ़ गया। नसरुद्दीन ने कहाः अब कूद जा, मैं खड़ा हूं सम्हालने को।
बेटा थोड़ा डरा कि कहीं गिर जाए, हाथ से चूक जाए। नसरुद्दीन ने कहाः अरे, जब मैं तुझे सम्हालने को खड़ा हूं, तू डरता क्यों है? साहस जुटा! क्या तू खाक राजनीति करेगा अगर साहस ही नहीं है? यह तो काम ही ऐसा है कि यहां खतरों में कूदना पड़ता है। यह तो जलती आग में कूदना है। यहां न कोई आग जल रही है, न कुछ है। और फिर मैं खड़ा हूं तुझे सम्हालने को।
जब बाप ने बहुत भरोसा दिया तो बेटा कूद पड़ा। जब बेटा कूदा, नसरुद्दीन
हट कर खड़ा हो गया। धड़ाम से नीचे गिरा। दोनों घुटने टूट गए। रोने लगा। कहा कि यह क्या मामला है?
नसरुद्दीन ने कहाः यह पहला पाठ। राजनीति में अपने सगे बाप का भी कभी भरोसा मत करना। भरोसा करना ही मत। यह राजनीति का पहला पाठ!
और धर्म का पहला पाठ हैः श्रद्धा। राजनीति का पहला पाठ हैः संदेह। जो अपने हैं, उन पर भी संदेह रखना, क्योंकि वे ही काटेंगे, वे ही तुम्हारी गर्दन काटेंगे। जो अपने नहीं हैं, वे तो इतने दूर होते हैं कि गर्दन काटने का मौका उनको मिल नहीं सकता।
और राजनीति में कोई बहुत बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं होती। ध्यान रखना, संदेह के लिए कोई बहुत बुद्धिमत्ता की आवश्यकता नहीं होती। श्रद्धा के लिए बड़ी प्रखर बुद्धिमत्ता चाहिए। दूसरों पर हुकूमत करने के लिए कोई बहुत ज्यादा मेधा की, प्रतिभा की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि दूसरे तो गुलाम बनने को तैयार ही बैठे हैं। सदियों से उन्हें गुलाम बनाया गया है। वे तो राह ही देख रहे हैं कि कोई आए और गुलाम बनाए। उन्हें कोई गुलाम न बनाए तो वे बेचैन होने लगते हैं। उन्हें तो किसी न किसी का जिंदाबाद, किसी न किसी का नारा लगाना है। उनके लिए तो कोई नारा लगाने वाला चाहिए। कोई नारा लगवाए उनसे, जय-जयकार करवाए, तो उनके दिल को शांति मिलती है। जब तक कोई उनकी छाती पर न बैठे, उनको लगता है कि जिंदगी बेकार।
सदियों से गुलामी सिखाई गई है, इसलिए लोग तो गुलाम होने को तैयार हैं।

लेकिन स्वयं की मालकियत कठिन मामला है। बड़ी प्रतिभा चाहिए! बड़ी पैनी प्रतिभा चाहिए! स्वयं की मालकियत का अर्थ हैः अपने अचेतन से मुक्त होना, अपने अंधकार से मुक्त होना, अपने अहंकार से मुक्त होना।
राजनीति तो अहंकार को भरती है और धर्म अहंकार से छुटकारा है। राजनीति में तो अहंकार का पोषण है। कौन नहीं चाहता अहंकार का पोषण? हर एक चाहता है! एक चूहा, सुबह-सुबह सर्दी के दिन थे, और एक हाथी के पास बगल में खड़ा हुआ धूप ले रहा था। हाथी भी फुरसत में था। सुबह का समय, सर्दी का मौसम, मीठी- मीठी धूप। आस-पास देखा, कोई दिखाई नहीं पड़ रहा था। तभी उसे चीं-चीं की आवाज थोड़ी सी सुनाई पड़ी तो उसने नीचे झुक कर देखा, एक चूहा बैठा था। उसने इतना छोटा प्राणी कभी देखा नहीं था। नजर ही न गई थी। उसने कहाः अरे, इतना छोटा प्राणी! तू इतना सा है!
चूहे ने अपना सीना फुला कर कहा कि आप गलती में हैं। मैं कोई छोटा-मोटा नहीं हूं। दो-तीन महीने से जरा तबियत खराब रहती है।
चूहा भी कोई... कोई हाथी अपने को समझता क्या है! दो-तीन महीने से जरा तबियत खराब रहती है। जरा सेहत ठीक नहीं है। अन्यथा हाथी से कुछ छोटा है! राजनीति तो अहंकार है। छोटे से छोटे आदमी को, जितना छोटा आदमी हो, उतनी ही राजनीति भाती है। क्योंकि राजनीति ही एकमात्र उपाय है, जहां वह अपने छोटेपन को भुला सकता है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि राजनीति का जन्म होता है इनफीरियारिटी कांप्लेक्स में। वह जो हीनता की ग्रंथि है, जिस आदमी को लगता है कि मैं हीन हूं, वह राजनीति में चला जाता है। हीनों के अतिरिक्त राजनीति में कोई जाता नहीं।
तो उदयसिंह, मामला तो जरा कठिन है, मगर कोशिश करेंगे।
एक राजनेता का बायां हाथ मशीन में कट गया। वह मरहम-पट्टी करवाने डाक्टर के पास पहुंचा। डाक्टर ने कहाः भाई, यह तो तुम्हारी किस्मत अच्छी थी कि मशीन में बायां हाथ आया, यदि दायां हाथ आ जाता तो तुम दुनिया का कोई भी काम नहीं कर सकते थे।
राजनेता ने कहाः अरे डाक्टर साहब, किस्मत काहे की अच्छी! यह तो मेरी होशियारी है। दरअसल मेरा दायां हाथ ही मशीन में आया था, लेकिन मैंने झट से उसे पीछे खींच बायां हाथ आगे कर दिया।
अब पता नहीं तुम कितने दिन से, उदयसिंह, राजनीति में हो, कितने दिन से दायां हाथ खींच कर बायां हाथ मशीन के नीचे कर रहे हो, पता नहीं। इस पर निर्भर करेगा कि आदतें कितनी जड़ हो गई हैं, तुम नशे में कितने धुत हो गए हो।
एक बार जग्गू भैया हाथी पर बैठ कर गांव का निरीक्षण करने आए हुए थे। लोगों की भीड़ लग गई। बच्चे तो हो-हल्ला मचाने लगे। जग्गू भैया तो एकदम क्रोधित हो गए, गुस्से से बोलेः क्यों रे मूर्खो, क्या कभी हाथी नहीं देखा?
बच्चे बोलेः श्रीमान जी, हाथी तो देखा है, मगर हाथी के ऊपर हाथी आज पहली बार देख रहे हैं।
पिछले चुनाव के बाद जब मुल्ला नसरुद्दीन श्री राजनारायण से मिला, तो बोलाः आपको देख कर तो मुझे सहसा एक महापुरुष की याद आ जाती है।
राजनारायण ने खुश होकर पूछाः नसरुद्दीन, चुनाव के पहले भी तुमने मुझसे यही बात कही थी, अब फिर वही कह रहे हो। तब तो मुझे फुरसत नहीं थी इस बात का अर्थ पूछने की, लेकिन अब सच-सच बताओ कि मुझे देख कर तुम्हें किस महापुरुष का स्मरण हो आता है?
मुल्ला बोलाः अच्छा किया आपने जो उस समय न पूछा। उस समय तो मैं भी बता
न सकता था, लेकिन अब डर काहे का! अब सुन ही लो, बिल्कुल सच बात। आपको देख कर मुझे हमेशा महान वैज्ञानिक स्वर्गीय डार्विन की याद आ जाती है, जिन्होंने कहा था--आदमी बंदर की औलाद है।
उदयसिंह, कोशिश करेंगे। तुमसे भी जितना बन सके, सहयोग देना; हालांकि राजनेताओं की आदत सहयोग देने की होती नहीं। दो राजनेताओं को पास-पास बिठालना मुश्किल! लड़ना-झगड़ना, हाथापाई उनका गुणधर्म हो जाता है। खंडन-मंडन। दांव-पेंच। बैठ ही नहीं सकते शांति से। न किसी को शांति से बैठने दे

सकते हैं। उछल-कूद मचाए ही रखते हैं। अगर तुम्हारा सहयोग रहे तो हो सकता है, क्यों नहीं हो सकता!
संत महाराज ने लिखा हैः पंजाब देस दे ऐस मजबूत पत्थर नूं आपने ऐनी जल्दी पिघला दिया! सदगुरु साहब, तुसी कमाल कीता। मैं वारी जावां!
अगर पंजाब देश का पत्थर भी पिघल सकता है... तो एक ही मुझे डर लगता है उदयसिंह तुम्हारे नाम को देख कर, कि कहीं ऐसा न हो कि तुम राजनीति में भी होओ और पंजाबी भी होओ। फिर जरा खतरा है। फिर तो करेला नीम चढ़ा। फिर बहुत मुश्किल है। फिर वश के बाहर बात हो जाएगी। लेकिन कोशिश मैं हर हालत में करूंगा।
और तुमने जब प्रार्थना की है कि क्या आप मुझे भी बदलेंगे नहीं, तो तुमने चुनौती भी दे दी। बदलने की पूरी कोशिश करेंगे। यहां तो छेनी-हथौड़ी लिए बैठे ही हुए हैं।

आखिरी प्रश्नः मोहम्मद ने चार शादियों की आज्ञा दी थी। आप कितनी शादियों की आज्ञा देंगे?

चैतन्य कीर्ति! चैतन्य कीर्ति बार-बार शादी के संबंध में प्रश्न पूछ रहे हैं। कारण भी तुम्हें बता दूं। दो जुड़वां बहनों के प्रेम में पड़ गए हैं। ख्याल रखना, सदगुरु कबीर क्या कह गए हैंः दो पाटन के बीच में साबित बचा न कोय! और पाट भी जुड़वां! ऐसे पिसोगे कि खोज-खबर भी न मिलेगी।
मोहम्मद ने जरूर कहा है कि चार शादियां करना, वह सिर्फ इसीलिए कि जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी वैराग्य-भाव पैदा हो। क्योंकि मुसलमान एक ही जन्म में मानते हैं। हिंदुओं ने तय किया कि एक ही शादी करना, क्योंकि कोई जल्दी तो है नहीं। जनम-जनम पड़े हैं। हजारों कर लेंगे कर-कर के, एक-एक के बाद, एक-एक के बाद। यहां तो आवागमन का चक्कर चल रहा है। पहले भी बहुत कर चुके, अब भी बहुत, आगे भी बहुत, जल्दी कुछ नहीं है। लेकिन इस्लाम तो एक ही जन्म को मानता है।
सो मोहम्मद को बेचारों को व्यवस्था करनी पड़ी कि इस तरह की आंच दें तुमको कि एक ही जीवन में वाष्पीभूत हो जाओ। चार चूल्हों पर बिठा दिया! ऐसे तो एक ही काफी होता, मगर चार पर बिठा दिया तो मोक्ष तो सुनिश्चित है। मतलब कोई दिशा न छोड़ी जहां भाग जाओ, चारों दिशाओं में पाबंदी कर दी। निकल भागने का उपाय न छोड़ा। इसी जन्म में होना ही पड़ेगा मुक्त।
और खुद मोहम्मद ने नौ शादियां कीं। मुझसे लोग पूछते हैं कि मोहम्मद
ने नौ शादियां क्यों कीं? और मुझसे लोग यह भी पूछते हैं कि हमने सुना है कि मोहम्मद सदेह स्वर्ग गए।
जाएंगे क्यों नहीं! नौ शादियां करोगे, देह सहित जाओगे। देह भी न छोड़ पाओगे। इतनी फुरसत कहां! जो भागे होंगे, सो देह भी लेते गए साथ। कहते हैं घोड़ी पर बैठे-बैठे स्वर्ग चले गए।... घोड़ी से तो उतर आते! मगर फुरसत न मिली होगी। वे जो नौ बाइयां घेरे खड़ी रही होंगी, सो वे जो नौ दो ग्यारह हुए, सो स्वर्ग में ही रुके। मैं पक्का मानता हूं कि वे सदेह ही स्वर्ग गए और घोड़ी पर ही बैठे हुए गए। इसमें चमत्कार कुछ भी नहीं है। हाथ चंकट को उधार क्या! नौ शादी करो और देखो!
नौ शादी करनी पड़ीं बेचारे मोहम्मद को, क्योंकि जब शिष्यों को चार शादी करने को कहा, तो दृष्टांत तो कम से कम आगे का रखना चाहिए। नहीं तो शिष्य कहेंगे कि वाह गुरु, खुद तो एक से ही निपट रहे हो और हमें चार से निपटा रहे हो! नहीं सदगुरु साहब, कोई चमत्कार करो! कुछ हमसे आगे बढ़ कर दिखाओ! सो उन्होंने नौ शादियां कीं।
चैतन्य कीर्ति, तुम इस झंझट में न पड़ो तो अच्छा। एक ही काफी है। बुद्धि हो तो एक काफी और बुद्धि न हो तो चार भी काफी नहीं। बुद्धुओं को तो कोई चीज काफी नहीं होती। कितने ही कुटें-पिटें, उनकी आशा मरती ही नहीं। बुद्धुओं की आशा नहीं मरती।
बुद्ध ने कहा हैः वही है ज्ञानी, जिसकी आशा मर गई, जो निराशा को उपलब्ध
हो गया। बड़ी आश्चर्य की बात कही--निराशा को! निराशा से उनका मतलब हैः जिसने यह आशा छोड़ दी कि इस जगत में कोई सुख मिल सकता है। लेकिन हमें तो आशा रहती

है कि और नहीं कर पाए दूसरे लोग, वह उनकी भूल-चूक रही होगी, हम तो करके दिखा देंगे। नहीं, तुम भी न करके दिखा पाओगे।

दुख के वक्त
मित्र ही
मित्र के काम आता है,
इसीलिए तो हर मित्र
अपने मित्र की
शादी में जाता है।

जज साहब ने अपने अपराधी से कहाः हमें यह भी बताया गया है कि बरसों से तुमने अपनी बीबी को डरा-धमका कर रखा है और एक प्रकार से उसे अपना गुलाम बना लिया है।
अपराधी ने हकलाते हुए कहाः हुजूर, हुजूर, देखिए, बात यह है कि...
जज ने बात काटते हुए कहाः सफाई पेश करने की आवश्यकता नहीं। तुम केवल इतना बता दो कि यह चमत्कार किस प्रकार कर लेते हो?
कौन आदमी किस स्त्री को कब गुलाम बना पाया? भ्रांति कई को रहती है। और स्त्रियां यह भ्रांति पलने देती हैं। आदमी ने ऊपर-ऊपर से गुलामी थोप दी है स्त्री के ऊपर, लेकिन भीतर-भीतर से स्त्री ने भी आदमी के ऊपर गुलामी थोप दी है। अगर आदमी ने उसकी देह को गुलाम बना लिया है तो स्त्री ने उसकी आत्मा को गुलाम बना लिया है, जो कि ज्यादा महंगा सौदा है।
विवाह के लिए इतनी आतुरता क्या? इतनी जल्दी क्या? अगर किसी व्यक्ति
से तुम्हारी प्रीति है, प्रेम है, तुम्हारा तालमेल है--साथ रहो। जीओ साथ। एक-दूसरे को परखो-पहचानो। काश, तुम्हें ऐसा लगे कि तुम दोनों एक-दूसरे के लिए ही निर्मित हो, तो हो गया विवाह! फिर चाहे औपचारिक विवाह करना हो तो कर लेना--समाज, सभ्यता, संस्कृति के हिसाब से। लेकिन इसके पहले आंतरिक विवाह की प्रतीति हो जानी चाहिए। अगर वह आंतरिक प्रतीति न होती हो तो तुम कष्ट में पड़ोगे और किसी स्त्री को भी कष्ट में डालोगे।
और लोग क्यों इतने आतुर हैं विवाह करने को? इतनी जल्दबाजी क्या है?
अपने एकांत में अपने को दुखी पाते हैं, सोचते हैं दूसरे से सुख मिल जाए। दूसरा भी यही सोचता है। दोनों दुखी हैं। दो दुखी आदमी मिल कर दुख दुगना हो जाता है; दुगना ही नहीं, गुणनफल हो जाता है। सुख कहां हो सकता है! तुम दुखी, स्त्री दुखी। वह सोच रही है कि तुमसे मिल कर सुखी हो जाएगी; तुम सोच रहे हो कि तुम उससे मिल कर सुखी हो जाओगे। फिर मिल कर पता चलता है, लेकिन तब तक बहुत देर हो गई होती है।
इसलिए तो सब पुरानी कहानियां--नई कहानियां भी, फिल्में भी, नाटक भी--बस शहनाई बजी और परदा गिरा! पुरानी कहानियां कहती हैं कि बस शहनाई बजी, बैंड-बाजे बजे, दोनों का विवाह हो गया और फिर दोनों सुख से रहने लगे। बाकी सब कहानी तो समझ में आती है, मगर यह बाद में जो दोनों सुख से रहने लगे, यह बिल्कुल समझ में नहीं आता। इससे ज्यादा झूठी कोई बात ही नहीं कही गई। मगर इसके आगे सच्ची बात कहना ठीक भी नहीं है। बस यहीं आकर कहानियां रुक जाती हैं। शहनाई के बाद बस बात खतम। फिल्म भी एकदम, शहनाई बजती रहती है, बैंड-बाजे, और खत्म--दि एंड। क्योंकि आगे बात ले जाना खतरे से खाली नहीं है। सच्चाइयों को छूना खतरे से खाली नहीं है।
मैं तुमसे जो कह रहा हूं, वे जीवन के सीधे-सीधे सत्य हैं। न तो मैं चाहता हूं कि तुम स्त्रियों के ऊपर हावी होओ, न चाहता हूं कि स्त्रियां तुम पर हावी हों। प्रेम अगर स्वतंत्रता दे सके तो ही प्रेम है। प्रेम अगर परतंत्रता लाए तो वह प्रेम नहीं है। और तुम्हारा तथाकथित विवाह परतंत्रता लाता है। परतंत्रता लाता है, इसलिए बगावत लाता है। परतंत्रता लाता है, इसलिए प्रतिशोध लाता है।
और फिर जब तुम एक से बंध जाते हो तो स्वभावतः तुम्हें दूसरी स्त्रियां सुंदर दिखाई पड़ने लगती हैं। क्योंकि दूसरी स्त्रियों को तुम बाहर से देखते हो; अपनी स्त्री को भीतर से पहचानने लगते हो। बाहर से तो सभी सुंदर हैं। दूर के ढोल सुहावने! अपना पति तो तुम्हें भीतर से लगता है कि

क्या है, कुछ भी नहीं। गीदड़ का बच्चा है! दूसरों के पति लगते हैं कि अहा, क्या सीना फुलाए सिंह की तरह चलते हैं! मगर तुम्हें पता नहीं कि उनके घर की हालत में भी वही बात है। वे भी गीदड़ के बच्चे हैं। घर के बाहर कौन सीना फुला कर नहीं चलता? घर में तो चले कोई फुला कर! वहां बिल्कुल लोग पूंछ दबा कर चलते हैं।
चंदूलाल अपनी पत्नी के साथ घूमने निकले थे। रास्ते में एक छोटा तालाब पड़ता था, जिसमें बतख तैर रहे थे। एकाएक गुलाबो ने चंदूलाल को हुद्दा मार कर आंखें मटकाते हुए कहाः जरा उधर तो देखिए! वे बतख और बतखी कैसे एक-दूसरे के साथ प्रेम-क्रीड़ा कर रहे हैं!
चंदूलाल ने चश्मे को सम्हाला, गौर से देखा और पत्नी को झिड़कते हुए बोलेः इतनी उम्र हो गई, फिर भी तेरा ध्यान अभी भी ऐसी चीजों की ओर जाता है। दस बच्चों की मां है, कुछ तो शरम खाया कर!
पत्नी कुछ न बोली। जब घूम कर दोनों फिर उसी तालाब के पास से गुजरे, तो गुलाबो ने वही दृश्य देखा। उससे रहा नहीं गया, बोलीः आह, जरा देखिए, दोनों अभी तक कैसे एक-दूसरे में मशगूल हैं!
चंदूलाल ने फिर अपना चश्मा चढ़ा कर देखा और बोलेः अरी भाग्यवान, वह तो मैं भी देख रहा हूं। लेकिन तूने कुछ और देखा? बतखी दूसरी है!
बंध जाओगे एक से कि तत्क्षण सारी दुनिया में सुंदर स्त्रियां, सुंदर पुरुष दिखाई पड़ने लगेंगे। बंधे कि बस दिखाई पड़ने शुरू हुए। और तब भ्रांतियों का जाल फैलना शुरू हो जाता है। बंधने की कोई जरूरत नहीं, चैतन्य कीर्ति।
भविष्य में विवाह की कोई संभावना है नहीं, विवाह का कोई भविष्य नहीं है। विवाह सड़ गई संस्था! हां, प्रेम के कारण लोग साथ रहें, उत्तरदायित्वपूर्वक साथ रहें। विवाह की जरूरत तो तभी पड़नी चाहिए जब वे तय करें कि उन्हें बच्चे पैदा करने हैं; उसके पहले विवाह की कोई चिंता में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। और जीवन के अनुभव अगर तुम्हें इस जगह ले आएं कि किसी स्त्री, किसी पुरुष के साथ रह कर तुम ज्यादा शांत हुए हो, ज्यादा मौन हुए हो, ज्यादा आनंदित-प्रफुल्लित हुए हो, तुम्हारे जीवन का संगीत गहन हुआ है, तुम्हारे सरगम में कुछ जुड़ा, कुछ फूल खिले, कुछ नये तारे उगे, कुछ दीये जले--तो फिर ठीक है, साथ रहने का अंतिम निर्णय लेना। मगर जल्दबाजी नहीं। अन्यथा अड़चनें खड़ी होंगी।
लोग फिर रोते हैं, पछताते हैं। और विवाह की बड़ी जल्दी होती है। लोग सोचते हैं कि बस अभी हो जाए। अभी चैतन्य कीर्ति पांच-सात दफा विवाह के बाबत पूछ चुके हैं। इसलिए मैं थोड़ा चिंतित हुआ जा रहा हूं।
प्रेम पर्याप्त है। और प्रेम अगर विवाह बन जाए तो विवाह भी सुंदर है। लेकिन यह भूल कर मत सोचना कि विवाह प्रेम बन सकता है। इस भूल में सदियों आदमी रहा है कि पहले विवाह, फिर प्रेम बन जाएगा। वह नहीं बनता। वह बात नहीं बनी। वह गणित ठीक नहीं बैठा।
मैं कोई विवाह-विरोधी नहीं हूं। लेकिन मैं विवाह को एक नैसर्गिकता देना चाहता हूं, एक मनुष्यता देना चाहता हूं। अभी तो विवाह एक संस्था है। और संस्था में कौन रहना चाहता है? संस्था में सिर्फ पागल रहना चाहते हैं। संस्था कोई रहने की जगह है!
विवाह से थोड़े सावधान रहना, चैतन्य कीर्ति। और दो बहनें, जुड़वां बहनें, तुम दोनों के बीच मुश्किल में न पड़ जाना--घर के न घाट के! धोबी के गधे हो जाओगे। इधर भी पिटोगे, उधर भी पिटोगे। और मोहम्मद वगैरह में तुम दलीलें न खोजो। मोहम्मद की मोहम्मद समझें। अब जो उन पर बीती, वह तुम्हें क्या पता! उसका तो कहीं उल्लेख भी नहीं किया जाता।
जिंदगी में असली बातें तो छोड़ ही दी जाती हैं। जिंदगी बड़ी अजीब है! यहां नकली और झूठी बातें तो खूब लिखी जाती हैं, असली बातें छोड़ दी जाती हैं। मोहम्मद पर नौ पत्नियों के साथ क्या गुजरी, यह तो कोई नहीं कहता, यह तो कहीं लिखा ही हुआ नहीं है। कृष्ण के साथ सोलह हजार पत्नियों के साथ क्या गुजरा, जरा सोचो तो! कुंभ का मेला लगा रहा। ऐसी धक्कमधुक्की हुई होगी कि कृष्ण कह तो गए कि आऊंगा, जब धर्म की ग्लानि होगी, आते-करते नहीं। एक अनुभव काफी है--कि अब कौन झंझट में पड़े! फिर कहीं कुंभ का मेला लग जाए। फिर

वही धक्कमधुक्की, वही खींचातानी! तुम सोचते हो कृष्ण की दुर्गति नहीं हुई होगी! जरा सोलह हजार स्त्रियों की कल्पना तो करो! कोई टांग खींच रही, कोई हाथ खींच रही, कोई मोर-मुकुट ले भागी, किसी ने बांसुरी ही छीन ली! सिर्फ एक ही संभावना दिखाई पड़ती है कि आदमी वे होशियार थे, शायद इनको आपस में लड़ाते रहे हों तो बात अलग। और कोई बचाव का उपाय नहीं दिखता, कि इनकी कुश्तमकुश्ती आपस में करवा दी हो कि तुम निपटो-सुलझो। और मथुरा से भागे क्यों? और कहां बसे--द्वारका--कि जिसके आगे भागने की और कोई जगह ही नहीं थी। ऐसे भागे कि वे सखियां बहुत बुलाती रहीं, चिट्ठी पर चिट्ठी, पाती पर पाती भेजती रहीं, नहीं आए सो नहीं आए।
जरा जीवन के सत्यों को समझो! तुम इन झंझटों में न पड़ना। थोड़ी सावधानी
से चलना। अभी समय सावधानी से चलने का है। और जल्दी क्या है? आदमी बाजार में दो पैसे की हंडी भी खरीदने जाता है तो ठोंक-पीट कर, दस दुकानों पर जाकर लेता है। और विवाह, बस लोग कहते हैं, पहली नजर में विवाह हो गया। हां, पहली नजर में विवाह का सिर्फ एक फायदा हैः समय की बचत होती है।
आज इतना ही।

रहिमन धागा प्रेम का
ग्यारहवां प्रवचन

समाधि के फूल

पहला प्रश्नः इसका रोना नहीं कि तुमने क्यों किया दिल बरबाद, इसका गम
है कि बहुत देर में बरबाद किया। मुझको तो नहीं होश, तुमको तो खबर हो शायद, लोग कहते हैं कि तुमने मुझे बरबाद किया।

स्वभाव! बीज जब तक मिटे नहीं, तब तक उसका होना सार्थक ही नहीं है। मिटने में ही उसकी सार्थकता है। टूट कर बिखर जाने में ही उसका सौभाग्य है। जो बीज अपने को बचा ले, वह अभागा है। बीज को तो गल जाना चाहिए, मिट्टी में मिल जाना चाहिए; खोजे से भी न मिले, ऐसा आत्मसात हो जाना चाहिए भूमि के साथ। तभी अंकुरण होता है; तभी जीवन का जन्म है।
हृदय तो बीज है आत्मा का। जो हृदय को बचा लेते हैं, वे आत्मा के जन्म
से वंचित रह जाते हैं। और जिन्होंने आत्मा ही न जानी, उनके लिए परमात्मा तो बहुत दूर की कल्पना है--मात्र कल्पना है, हवाई कल्पना है, बातचीत है। उसका कोई मूल्य नहीं। हृदय मिटे तो आत्मा का आविर्भाव होता है। और जिस दिन तुम आत्मा को भी मिटाने को राजी हो जाते हो, उस दिन परमात्मा का अनुभव होता है। हृदय यानी तुम्हारी अस्मिता, मैं-भाव। हृदय यानी मैं पृथक हूं अस्तित्व से।
इस पृथकता को तोड़ो तो पहले तो ऐसा ही लगेगा कि बरबाद हुए। और दूसरों
को तो सदा ही ऐसा लगेगा कि बरबाद हुए। तो दूसरे तो ठीक कहते हैं कि लोग कहते हैं कि तुमने मुझे बरबाद किया। उनको तो सिर्फ बरबादी ही दिखेगी। उनको तो तुम्हारे भीतर जो घटित हुआ है, उसकी कोई खबर भी नहीं हो सकती। वह तो तुम्हीं जानते हो कि तुम्हारे भीतर नये अंकुर फूटे हैं, नये जीवन का सूत्रपात हुआ है। इसलिए तुम कह सकते होः
इसका रोना नहीं कि तुमने क्यों किया दिल बरबाद,
इसका गम है कि बहुत देर में बरबाद किया।
दूसरे तो इतना ही कहेंगे सिर्फ कि हो गए बरबाद। इस आदमी ने तुम्हें डुबाया। और वे ठीक ही कहते हैं। उनका अपना हिसाब है।
अब स्वभाव एक बड़ी फैक्टरी के मालिक... अभी कल ही मैं देखता था कि उनकी फैक्टरी वेकफील्ड को अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार मिला है। चित्र छपा था। चित्र देख कर मुझे लगा कि स्वभाव अगर संन्यासी न होते तो शायद चित्र में होते, पुरस्कार लेते हुए दिखाई पड़ते चित्र में। कोई और ले रहा है। स्वभाव ही प्राण थे उस संस्थान के। सब छोड़-छाड़ कर मेरे साथ दीवाने हो गए। तो लोग तो कहेंगे ही कि बरबाद हो गए, कि पागल हो गए। उनका भी कोई कसूर नहीं। उनके अपने मापदंड हैं। जैसे कोयला अगर हीरा हो जाए तो दूसरे कोयले तो यही कहेंगे कि हो गए बरबाद। कोयला ही हीरा होता है, ख्याल रखना। कोयले और हीरे में कोई रासायनिक भेद नहीं है। कोयला ही सदियों तक भूमि के नीचे दबा-दबा हीरे में रूपांतरित होता है। हीरे और कोयले का रासायनिक सूत्र एक ही है। हीरा कोयले की अंतिम परिणति है और कोयला हीरे की शुरुआत है। कहो कि कोयला बीज है और हीरा फूल है। मगर दोनों जुड़े हैं। जब कोई हीरा निर्मित होता होगा कोयले के टुकड़े से, तो और कोयले के टुकड़े क्या कहते होंगे? कि हुआ बरबाद! गया काम से! अपना न रहा! अपने जैसा न रहा! मगर हीरे पहचानेंगे कि दो कौड़ी का था, आज बहुमूल्य हो गया।
तो स्वभाव, जो तुम जैसे ही बरबाद हुए हैं, वे पहचानेंगे। तुम पहचानोगे। क्योंकि इसके पहले तुम जी कहां रहे थे! एक धोखा था, खींच रहे थे, ढो रहे थे। आज तुम जी रहे हो। एक उमंग है, एक उत्फुल्लता है, एक आनंद है। आज तुम रसविभोर हो। गई अस्मिता, गया अहंकार, गई अकड़। आज तुम तरल हो, सरल हो। और यही तरलता, यही सरलता तुम्हें पात्र बनाएगी उस परम घटना के लिए। उस परम सौभाग्य का क्षण भी दूर नहीं, जब प्रभु भी तुममें उतर आए, जब वह महारास हो, जब उसकी रसधार बहे। लेकिन लोग तो तब भी कहते रहेंगे।

मीरा से भी लोगों ने यही कहा कि तू क्या करती है पागल! राजघराने से है! महलों से है! बाजारों में नाचती फिरती है! सब लोक-लाज खो दी!
बुद्ध से भी लोगों ने यही कहाः सब तुम्हारा था। सुंदर महल थे। सुंदर पत्नी थी, बेटा था। बड़ी संभावनाएं थीं। जिस पद और प्रतिष्ठा के लिए लोग जीवन भर दौड़ते हैं, वह तुम्हें अनायास मिला था। न मालूम कितने-कितने जन्मों के पुण्यों का फल था! और तुम लात मार कर चले आए! पागल हो तुम!
बुद्ध ने जब अपना घर छोड़ा तो वे राज्य छोड़ कर चले गए, राज्य की सीमा छोड़ दी। क्योंकि वहां रहेंगे तो पिता आदमियों को भेजेंगे, लोग समझाएंगे, सिर पचाएंगे, तो वे पड़ोसी राज्य में चले गए। लेकिन पिता कुछ इतनी आसानी से तो नहीं छोड़ दे सकते थे। उन्होंने पड़ोसी राजा को खबर की। बिंबिसार पड़ोस का राजा था। वह बुद्ध के पिता का बचपन का मित्र था, दोनों साथ-साथ पढ़े थे, साथ-साथ ही धनुर्विद हुए थे। पुरानी दोस्ती थी। उन्होंने खबर भेजी कि मेरा बेटा संन्यस्त हो गया है, वह तुम्हारे राज्य में कहीं है, जाओ उसे समझाओ। बिंबिसार गया। बहुत प्रेम से बुद्ध से मिला और बुद्ध से उसने कहाः हो जाता है कभी। हो गई होगी कोई बात। तुम्हारी और तुम्हारे पिता की नहीं बनती, फिक्र छोड़ो। मैं भी तुम्हारे पिता जैसा हूं। तुम्हारे पिता के मुझ पर बहुत उपकार हैं। काश तुम्हारे लिए मैं कुछ कर सकूं तो उऋण हो जाऊंगा। तुम आओ, यह महल भी तुम्हारा है और यह राज्य भी तुम्हारा है। मेरी एक ही लड़की है, मैं उससे तुम्हें विवाहित किए देता हूं। तुम छोड़ो वह राज्य। छोड़ ही दिया, ठीक है। नहीं जाना, मत जाओ। पिता से नहीं बनती न, किस बेटे की बनती है! कोई फिक्र न करो। इस राज्य को सम्हाल लो। वैसे तो वह भी राज्य तुम्हारा है, क्योंकि अकेले बेटे हो। पिता बूढ़े हैं। तो तुम दोहरे राज्य के मालिक हो जाओगे।
बुद्ध हंसे और उन्होंने कहाः तो मालूम होता है मुझे यह राज्य भी छोड़
कर भागना पड़ेगा। इसीलिए तो छोड़ कर चला आया कि वहां समझाने वाले आएंगे। आप यहां भी आ गए!
लेकिन बिंबिसार ने कहा कि तुम अभी जवान हो, अभी तुम्हें जीवन का अनुभव नहीं, जल्दबाजी न करो, अधैर्य न करो। चलो महल। सोचो-विचारो। समय दो। मैं तुमसे कहता हूं--पछताओगे पीछे।
बुद्ध ने इतना ही पूछा कि क्या तुम अपनी छाती पर हाथ रख कर यह कह सकते
हो कि तुमने जीवन में वह पा लिया जिससे तृप्ति होती है?
बिंबिसार थोड़ा बेचैन हुआ। छाती पर हाथ रख कर तो न कह सका। आदमी ईमानदार रहा होगा। उसने कहाः यह तो मैं न कह सकूंगा कि मैंने वह पा लिया है, जिससे जीवन तृप्त हो जाता है, जिससे जीवन परिपूर्ण हो जाता है।
तो बुद्ध ने कहाः फिर मुझे बाधा न डालो। तुम्हारे महल में मैं वही पा सकूंगा जो तुमने पाया है। उससे तुम्हें तृप्ति नहीं मिली, मुझे कैसे मिलेगी? मेरे पिता को नहीं मिली, मुझे कैसे मिलेगी? किसको कब मिली है? तुम मुझे मेरी राह पर छोड़ दो। तुम मुझे मेरी बरबादी पर छोड़ दो, दया मत करो।
क्योंकि मैंने, तुम जो आबाद हो, उनको मैंने बरबाद देखा है। तुम मुझे बरबादी पर छोड़ दो। कौन जाने, शायद यही आबाद होने का रास्ता हो।
और एक दिन बुद्ध आबाद हुए। और एक दिन बिंबिसार उनके चरणों में झुका।
एक दिन बुद्ध के पिता भी बुद्ध के चरणों में झुके।
आज तो, स्वभाव, तुम्हें बहुत लोग कहेंगे कि अभी भी लौट आओ, अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है। घर, परिवार, भाई... और वे सब तुम्हें प्रेम करते हैं। ऐसा नहीं कि वे तुम्हारे कोई दुश्मन हैं। सब तुम्हारे चाहक हैं। वे सब चाहेंगे कि तुम लौट आओ। तुम्हारी ही भलाई के लिए चाहेंगे कि तुम लौट आओ। लेकिन उनकी समझ कितनी है? उनका अनुभव कितना है? धन का होगा, सुख-सुविधा का होगा, ध्यान का तो नहीं, अंतर-आनंद का तो नहीं। वे भी कहेंगे कि तुम बरबाद हुए, लेकिन उनके कहने में और तुम्हारे कहने में बहुत फर्क है। मैं भी कहता हूं कि तुम बरबाद हुए। लेकिन मैं कहता हूं कि यही सौभाग्य है, परम सौभाग्य है कि तुमने हिम्मत जुटा ली और तुम बरबाद हो सके। अब द्वार खुलते हैं संभावनाओं के। बीज टूटा कि बस निकले नये कोंपल, निकले नये पत्ते, बनेगा बड़ा वृक्ष कि जिसके नीचे हजारों लोग छाया में बैठ सकें। उड़ेगी गंध आकाश में कि गुफ्तगू होगी चांद-तारों से।

तुम ठीक कहते होः
इसका रोना नहीं कि तुमने क्यों किया दिल बरबाद,
इसका गम है कि बहुत देर में बरबाद किया।
लगता है ऐसा ही। जब तुम जानना शुरू करते हो यह बरबादी का मजा, इस बरबादी का रस, जब पीते हो यह जाम, तब ऐसा ही लगता है कि अरे, कितनी देर हो गई, काश यह जरा जल्दी होता! लेकिन कुछ भी समय के पहले नहीं होता है। जब हो सकता था तभी हुआ है। समय के पहले तुमसे कहता भी तो तुम सुनते नहीं। कितने तो हैं जिनसे कह रहा हूं, नहीं सुन रहे हैं। वे भी एक दिन कहेंगे कि बहुत देर में बरबाद किया। बरबादी का रस पी लेंगे, तब कहेंगे न! अभी तो बरबादी डराती है, घबड़ाती है। अभी तो बचने का उपाय खोजते हैं। कितने उपाय खोजते हैं!
मेरे विरोध में जो बातें चलती हैं, वे और कुछ भी नहीं हैं--सिवाय अपने
को बचाने के उपाय के। आत्मरक्षा के अतिरिक्त उनका और कोई लक्ष्य नहीं है। मेरे खिलाफ इतना धुआं खड़ा कर लेते हैं अपने चारों तरफ कि एक बात निश्चित हो जाती है स्वयं के समक्ष, कि नहीं इस आदमी के साथ एक कदम बढ़ाना। बस उतने के लिए कितनी गालियां उन्हें देनी पड़ती हैं, कितने झूठ उन्हें गढ़ने पड़ते हैं, वे सब कर लेते हैं। कितना आविष्कार उन्हें करना पड़ता है! सब करने के लिए राजी हैं--सुरक्षा के लिए, आत्म-रक्षा के लिए। हालांकि वे भी एक दिन यही कहेंगे।
स्वभाव ने भी बहुत दिन तक खींचतान की। कोई जल्दी ही मिटने को राजी नहीं होता। कौन मिटने को जल्दी राजी होता है? धीरे-धीरे ही यह रस लगता है। यह रस है भी बड़ा महंगा। सौदा बड़ा महंगा है। जो है, वह तो छूटने लगता है हाथ से; और जो नहीं है, उसका क्या भरोसा? उसे तो लगा देना है दांव पर जो पास में है--और जो बहुत दूर है, कहीं आकाश में, उसकी आशा में। बड़ा साहस चाहिए, दुस्साहस चाहिए!
स्वभाव भी खूब मुझसे लड़े-झगड़े हैं। खूब रस्साकसी की है। खूब खींचतान
की है। बचने के जितने उपाय कर सकते थे, किए हैं। लेकिन सौभाग्यशाली हैं कि उनके सब उपाय हार गए। कभी यूं होता है कि हार में ही जीत हो जाती है और कभी यूं होता है कि जीत में ही हार हो जाती है। अगर किसी जाग्रत व्यक्ति के पास हार सको तो जीत गए; अगर जीत जाओ तो हार गए।
मगर ध्यान रहे, जब होता है, जिस घड़ी होता है, वही घड़ी हो सकता था। एक परिपक्वता की घड़ी होती है। एक प्रौढ़ता की घड़ी होती है। असमय में इस जगत में कुछ भी नहीं घटता है। मैंने लाख उपाय किए हैं अनेक लोगों के साथ, लेकिन अगर समय नहीं पका था तो बात नहीं हो सकी। बनते-बनते बिगड़ गई है। और अगर समय पका था तो बिना उपाय किए भी बात बन गई है। जरा सा इशारा और यात्रा शुरू हो गई। अन्यथा पुकारते रहो, चिल्लाते रहो, बहरे कानों पर बात पड़ती है, कोई सुनता नहीं है।
एक बार एक चौक पर दो बहरे मिले। एक बहरे ने दूसरे बहरे से पूछाः क्यों भाई, क्या बाजार जा रहे हो?
दूसरे बहरे ने कहाः नहीं-नहीं, जरा बाजार तक जा रहा हूं।
पहला बहरा बोलाः अच्छा-अच्छा, मैंने समझा कि बाजार जा रहे हो।
बस ऐसा ही होता है। मैं कुछ कहूंगा, अगर समय नहीं पका है, तुम कुछ समझोगे। न समझो तो भी ठीक। बिल्कुल न समझो तो भी ठीक। कुछ का कुछ समझोगे। अर्थ समझ में न आए, चलेगा; लेकिन अनर्थ समझ में आ जाता है।
एक दार्शनिक को मजबूरी में नौकरी करनी पड़ी। कुछ उलटी-सीधी बातें कहने
के कारण विश्वविद्यालय से निकाल दिया गया। कुछ बगावती बातें कि विश्वविद्यालय बर्दाश्त न कर सका। तो कुछ और तो वह जानता नहीं था, बस कोई छोटा-मोटा काम ही कर सकता था। तो एक घर में झाडू-बुहारी लगानी, बर्तन मल देने, इस तरह के छोटे काम की नौकरी कर ली। दार्शनिक था तो वह मालिक से पूछे ही न। खुद ही काफी होशियार था। अपनी होशियारी से ही काम करे। मगर उसकी होशियारी दूसरी दुनिया की थी। दर्शनशास्त्र की होशियारी एक बात, बुहारी लगाने का मामला बिल्कुल दूसरी बात। बर्तन मलना बिल्कुल दूसरी बात। तर्कशास्त्र पढ़ना और पढ़ाना बिल्कुल दूसरी बात। इन दोनों में कोई तालमेल नहीं है।

मालिक उससे थक गया, घबड़ा गया। आखिर मालिक ने उससे कहा कि सुनो जी, जब
भी तुम कुछ करो, पहले मुझसे पूछ लिया करो। क्योंकि तुम जो भी करते हो, गलत-सलत करते हो। तुम जैसा समझदार आदमी, ऐसी आशा न थी, कि तुमको मैंने बाजार सब्जी लेने भेजा तो तुम दिन भर सब्जी लाते रहे।

पहले भिंडी खरीद कर लाया, फिर भाजी खरीद कर लाया, फिर मूली खरीद कर लाया, फिर चटनी खरीद कर लाया। एक-एक चीज! दिन भर सुबह से शाम तक बाजार आता रहा, जाता रहा।
मालिक ने कहाः हद हो गई! ये कोई ढंग हैं?
दार्शनिक ने कहाः मैंने तो सोचा कि एक-एक काम को परिपूर्णता से निपटा लेना चाहिए। ऐसे बहुत से कामों में उलझ जाने से द्वंद्व खड़ा होता है, दुविधा खड़ी होती है, उलझन खड़ी होती है। मैं साफ-सुथरा और सुलझा हुआ आदमी हूं। फिर आप जैसा कहते हैं!
एक दिन आया। मालिक किसी से बात कर रहा था तो वह खड़ा। जब बात पूरी हो गई
तो उसने मालिक से पूछा कि मालिक, मैंने खिड़की में से देखा कि रसोईघर में बिल्ली दूध पी रही है, अगर आप कहें तो उसे भगा दूं?
मगर बात अगर यहीं होती तो भी ठीक थी। मालिक बीमार पड़ा। दार्शनिक को भेजा कि जाकर वैद्य को ले आए। सुबह का गया, सांझ लौटा। और वैद्य को ही नहीं लाया, कोई दस-पच्चीस लोगों को साथ लेकर आया। मालिक के तो होश उड़ गए, बीमारी भी उड़ गई साथ में। एकदम उठ कर बैठ गया, दिन भर से पड़ा था। और कहा कि माजरा क्या है? यह बारात किसलिए लिए आ रहे हो?
उसने कहाः मालिक, आपने कहा था न कि एक दफे जाना भिंडी लाए, एक दफे गए फिर मूली लाए, एक दफे गए फिर सब्जी लाए, फिर भाजी लाए, यह ठीक नहीं है। एक ही दफे में निपटा देना चाहिए। तो मैं गया, वैद्य को लाया। फिर हो सकता है वैद्य काम कर सके न कर सके, इसलिए एक हकीम को भी लाया। फिर पता नहीं हकीमी जमे न जमे, तो एक एलोपैथ को भी ले आया हूं। और क्या पता एलोपैथी का, एक नेचरोपैथ को भी ले आया हूं। और नेचरोपैथी में पता नहीं आपको भरोसा हो या न हो, विश्वास हो या न हो, सो होम्योपैथ को भी ले आया हूं। सब तरह के डाक्टर ले आया हूं--एकबारगी में!
फिर भी मालिक ने कहा कि इससे भी हल नहीं होता। ये पच्चीस आदमी क्यों?
तो उसने कहाः इनमें से कुछ हैं जो पुलटिस बनाते हैं। क्योंकि कोई डाक्टर कहे पुलटिस बनाओ, फिर जाओ बाजार।
फिर भी मालिक ने कहा कि इनमें तो मुझे कुछ गुंडे-लफंगे भी बस्ती के दिखाई पड़ रहे हैं।
उसने कहाः मैं कुछ ले आया हूं कि हो सकता है डाक्टर सफल हों या न हों, अगर आप मर ही गए तो कब्रिस्तान भी ले जाने के लिए कोई चाहिए कि नहीं? तो अच्छे मजबूत... इन्हीं को तो ढूंढ़ने में दिन भर लग गया। अरथी का सामान भी ले आया हूं मालिक, बिल्कुल निश्चिंत रहो! बाहर अरथी तैयार हो रही है, भीतर इलाज चलेगा। एक ही दफा में निपटा दिया है।
मैं तुमसे क्या कह रहा हूं, अगर तुम उसे न समझो तो भी ठीक है। लेकिन कठिनाई न समझने की नहीं है। अर्थ पकड़ में न आए, इतना ही नहीं है; अनर्थ पकड़ में आ जाता है। और जब तक जीवन की वह परम घड़ी नहीं आई, वसंत का क्षण नहीं आया, जब फूल खिलें, उसके पहले कुछ भी नहीं हो सकता, स्वभाव। तुम्हारी आकांक्षा प्रीतिकर है। लेकिन अनुग्रह मानो परमात्मा का कि जब भी हुआ, जल्दी हुआ। और भी देर लग सकती थी। यह शिकायत भी भूल जाओ कि इतनी देर क्यों लगी। यह स्वाभाविक है शिकायत। यह सबको होता है। यह स्वयं बुद्ध तक को हुआ था। बुद्ध को जब ज्ञान हुआ तो उनको पहला सवाल जो उठा वह यही कि इतनी देर क्यों लगी? यह बात इतनी सरल है। यह कभी की हो जानी चाहिए थी। इतने-इतने जन्म लग गए इस सरल सी बात के होने में! यह स्वाभाविक अनुभव, यह अपना ही साक्षात्कार, इतना समय क्यों लिया? बेबूझ लगती है पहेली। लेकिन जीवन पकाता है। जीवन के सब अनुभव पकाते हैं। सुख और दुख, सब पकाते हैं। दिन और रात, सर्दी और गर्मी, सब पकाते हैं। और प्रत्येक व्यक्ति के पकने की अलग-अलग शैली है। जैसे हर फल के पकने की अलग-अलग शैली होती है और हर वृक्ष के फूल खिलने का अलग-अलग अवसर होता है, अलग-अलग मौका होता है। कुछ फूल दिन को

खिलते हैं, कुछ फूल रात को खिलते हैं। कुछ फूल गर्मी में खिलते हैं, कुछ फूल सर्दी में खिलते हैं। कुछ फूल वर्षा में खिलते हैं। सब अपनी नियति से जीते हैं, स्वभाव से जीते हैं। और स्वभाव की प्रत्येक की प्रक्रिया निजी है।
तो जो तुम्हें लग रहा है कि इतनी देर में क्यों बरबाद किया, वह यद्यपि स्वाभाविक है, लेकिन उस शिकायत को भी जाने दो। कहो कि चलो बरबाद तो किया, देर में ही सही! कोई ज्यादा देर नहीं हो गई। अनंत काल अभी भी शेष है। अनंत काल तक अब यह आनंद झरेगा, बरसेगा। क्या देर हो गई? कुछ देर नहीं हो गई है। शिकायत की जगह हमेशा अनुग्रह के भाव को गहराओ। इससे लाभ है। अनुग्रह
का भाव मंगलदायी है, क्योंकि अनुग्रह के भाव के अतिरिक्त और कोई प्रार्थना नहीं है।

दूसरा प्रश्नः जीवन में तो कुछ मिला नहीं और अब मृत्यु द्वार पर खड़ी है। क्या मृत्यु में कुछ मिलेगा?

कृष्णमुरारी! जीवन में नहीं मिला तो मृत्यु में कैसे मिलेगा? मृत्यु
तो जीवन की ही पराकाष्ठा है। मृत्यु जीवन का अंत नहीं है। स्मरण रखना। दोहराऊं फिरः जीवन मृत्यु में समाप्त नहीं होता, पूर्ण होता है। मृत्यु जीवन का चरम उत्कर्ष है, अंतिम शिखर है। तो जो जीवन में नहीं पाया, उसे मृत्यु में पाने का कोई उपाय नहीं है। जो जीवन में पाया है, वही निखर कर, निचुड़ कर मृत्यु में पाया जाता है। मृत्यु जीवन भर का निचोड़ है। जैसे जीवन में फूल ही फूल थे, तो मृत्यु इत्र है--उन सारे फूलों का इत्र। जैसे एक बूंद में समा गई सारी सुगंध।
मृत्यु में बहुत कुछ मिलता है, लेकिन तभी जब जीवन भर फूलों की खेती की हो। जीवन भर कांटे बोए, तो यह आशा न रखना कि मृत्यु में अचानक फूल खिल जाएंगे। जीवन भर कूड़ा-कर्कट इकट्ठा किया, तो मृत्यु के पास ऐसा कोई जादू नहीं है कि उस कूड़ा-कर्कट को हीरे-जवाहरातों में बदल दे। लेकिन तुम्हारे पंडित-पुरोहित तुम्हें यह धोखा देते रहे हैं सदियों से। वे जानते हैं कि जीवन तो तुम्हारा खाली जा रहा है, तो तुम्हें आश्वासन देते रहते हैंः घबड़ाओ मत, मरते वक्त नाम ले लेना परमात्मा का, सब ठीक हो जाएगा। कि चले जाना काशी, काशी-करवट ले लेना, सब ठीक हो जाएगा। काशी जिसने करवट ली, वह स्वर्ग गया। कि मरते वक्त दूसरे तुम्हारे मुंह में गंगाजल डाल देंगे, और तुम स्वर्ग चले जाओगे। कि मरते वक्त दूसरे तुम्हारे कान में नमोकार मंत्र पढ़ देंगे, गायत्री मंत्र पढ़ देंगे, कुरान की आयतें दोहरा देंगे, और तुम स्वर्ग चले जाओगे।
ऐसी सस्ती बातों में न पड़ना। इतनी बाजारू बातों में मत पड़ना। इस तरह
के लोगों ने ही धर्म को दो कौड़ी का कर दिया; उसकी गरिमा खो गई; उसकी महत्ता खो गई; उसकी महिमा खो गई।
मैं यह नहीं कह सकता हूं कि जो तुमने जीवन में नहीं पाया है, वह तुम मृत्यु में पा सकोगे। और अभी, कृष्णमुरारी, जिंदा हो। अभी मरे तो नहीं। अभी प्रश्न पूछ सकते हो तो उत्तर भी खोज सकते हो। अभी बहुत देर नहीं हो गई है। अभी सोच सकते हो, विचार सकते हो, तो निर्विचार भी हो सकते हो। अभी चिंता में पड़ सकते हो तो निश्चिंत भी हो सकते हो। माना कि मृत्यु द्वार पर दस्तक दे रही है, लेकिन किसके द्वार पर दस्तक नहीं दे रही है? क्या तुम सोचते हो बुढ़ापे में ही मृत्यु द्वार पर दस्तक देती है? मृत्यु तो उसी दिन से दस्तक देना शुरू कर देती है जिस दिन तुम पैदा होते हो। तुम झूले में पड़े कि मृत्यु ने दस्तक देनी शुरू की। सुनो कि न सुनो, यह और बात है। लेकिन झूला इधर झूला, उधर मृत्यु ने दस्तक देनी शुरू की। जिस दिन जन्मे, उसी दिन से मरना शुरू हो गया। एक दिन जीए मतलब एक दिन मर गए; एक दिन उम्र से कम हुआ। मृत्यु तो आती ही चली जाती है। कोई ऐसा थोड़े ही है कि एक दिन अचानक सत्तर वर्ष की उम्र में द्वार पर आकर खड़ी हो जाती है। मृत्यु की यह धारणा छोड़ दो। मृत्यु कोई आकस्मिक घटना नहीं है, कोई दुर्घटना नहीं है। मृत्यु भी विकसित होती है तुम्हारे जीवन के साथ-साथ। एक पैर अगर जीवन है, तो दूसरा पैर मृत्यु है। एक पंख अगर जीवन है, तो दूसरा पंख मृत्यु है; दोनों साथ-साथ

चल रहे हैं। जैसे तुम्हारी छाया तुम्हारे साथ चल रही है, ऐसे ही मौत तुम्हारे साथ चल रही है।
लेकिन क्यों नहीं मिला जीवन में कुछ? किस कारण नहीं मिला? अभी भी सोच लो। अभी भी कुछ गया नहीं। सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए तो उसे भूला नहीं कहते हैं। चलो सांझ ही होने लगी जीवन की, सूर्यास्त होने लगा, कोई फिक्र नहीं। पक्षी लौटने लगे नीड़ों को, तुम भी लौट आओ। अभी भी देर नहीं हो गई है। लेकिन मर कर न लौट सकोगे। सूर्यास्त हो रहा है, लौट आओ। लेकिन अभी भी लगता है लौटने के इरादे नहीं हैं। अभी भी नई आशा बांधना चाहते हो। सोचते हो कि शायद मृत्यु में कुछ हो जाएगा।
अपने आप न कभी कुछ हुआ है, न हो सकता है। कुछ करोगे तो होगा। तुमने जीवन में किया क्या? जीवन को कितने लोग दोष नहीं देते! कितने लोग नहीं हैं जो कहते हैं कि जीवन व्यर्थ है! और सार्थक बनाने की चेष्टा कभी उन्होंने की नहीं। कहते हैं जीवन कोरा और लिखा कुछ कभी है नहीं। न लिखना सीखा, न पढ़ना सीखा।
मुल्ला नसरुद्दीन आंख के डाक्टर के पास गया था। डाक्टर ने जांच-पड़ताल की, चश्मे का नंबर तय किया, चश्मा बना कर तैयार किया। मुल्ला बार-बार पूछता था कि चश्मा लग जाएगा तो पढ़ने लगूंगा न? डाक्टर कहता थाः हां भाई, पढ़ने लगोगे, क्यों नहीं पढ़ने लगोगे! मगर फिर-फिर पूछे वह। डाक्टर चश्मा बिठालने में लगा है, फ्रेम चढ़ाने में लगा है, वह बार-बार पूछे कि डाक्टर साहब, एक दफा और कहें, सच कह रहे हैं आप कि चश्मा लगा लूंगा तो पढ़ने लगूंगा?
डाक्टर ने कहा कि क्या कहूं? किस तरह कहूं? लिखित दे दूं?
कहाः अगर लिखित दे दो तो गजब हो जाए। क्योंकि सच बात यह है कि पढ़ना- लिखना मैंने कभी सीखा नहीं। सो मैं बड़ा हैरान हो रहा हूं कि चश्मा लगाने से कैसे पढ़ने लगूंगा!
तब डाक्टर को राज पता चला।... चश्मा भर लगा लेने से नहीं पढ़ने लगोगे। पढ़ना कभी सीखा भी होना चाहिए। आंख कमजोर हो गई हो, इसलिए नहीं पढ़ पाते हो, तो चश्मा लगाने से पढ़ लोगे; लेकिन पढ़ना अगर कभी सीखा ही न हो तो चश्मा लगाने से भी क्या होगा!
जीवन को तुमने अर्थ देना कब चाहा? चेष्टा क्या की? साधना क्या की? अर्थ आता है साधना से। जीवन तो कोरी किताब है। परमात्मा तो कोरी किताब पकड़ा देता है प्रत्येक व्यक्ति को, फिर चाहो गालियां लिखो, चाहे गीत लिखो; चाहे कांटों की तस्वीरें बनाओ, चाहे फूलों को सजाओ। सब तुम्हारे हाथ में छोड़ देता है। जीवन की पूरी स्वतंत्रता तुम्हें देता है। तुम्हारा जीवन तुम्हें दे देता है, क्षमता दे देता है, ऊर्जा दे देता है, अवसर दे देता है, समय दे देता है। फिर कहता हैः अब तुम इस जीवन से जो भी बनाना चाहो, बना लो। यहीं कोई व्यक्ति बुद्ध हो जाता है और यहीं कोई व्यक्ति चंगीजखां हो जाता है। यहीं कोई व्यक्ति कृष्ण हो जाता है और यहीं कोई व्यक्ति अडोल्फ हिटलर हो जाता है। अवसर दोनों को बराबर थे, जरा भी भेद न था। और यहीं अधिक लोग ऐसे हैं, कुछ भी नहीं हो पाते; वे खाली किताब लिए ही घूमते रहते हैं और बार-बार किताब खोल कर देखते हैं और कहते हैं कि जीवन में कुछ भी नहीं है, निरर्थक है।
कुछ रंग भरो। कुछ जीवन में नृत्य डालो। कुछ जीवन में मधुरस घोलो। अर्थ ऐसे ही नहीं मिल जाता, अर्थ का सृजन करना होता है। मगर सदियों से हम एक भ्रांति में जी रहे हैं कि जैसे अर्थ भी हमें बना-बनाया मिलना चाहिए। तुम कब तक बच्चे रहोगे? बच्चा पैदा होता है तो मां का दूध उसे मिलता है।
दूध में सब पोषण होता है। लेकिन कब तक दूध ही पीते रहोगे? दुधमुंहे बच्चे कब तक बने रहोगे? कभी तो चबाओगे! कभी तो पचाओगे! कभी तो अपने हाथ से जीना शुरू करोगे या नहीं? लेकिन बस हम मुंह बाए बैठे हुए हैं कि कोई हमारे मुंह में चबाया हुआ डाल दे। हम से उतना भी श्रम करते नहीं होता।
संन्यास का मेरे लिए एक ही अर्थ है, कृष्णमुरारीः जीवन में अर्थ डालने की कला। गृहस्थ वह है जो जीवन में अर्थ नहीं डाल रहा है; जो कोरी किताब लिए घूम रहा है। और अगर कभी-कभी किताब का उपयोग भी करता है तो बस वह बाजार गया तो फेहरिस्त बना ली कि क्या-क्या सामान खरीद कर लाना है, कितना

पैसा कमाया उसका हिसाब-किताब रख लिया। इसी तरह की कुछ फिजूल बातें लिख लेता है अपनी किताब में। मरते दम तक लोग यही करते रहते हैं।
एक आदमी मरा। जब मर गया तो उसको अस्पताल से एंबुलेंस में घर की तरफ लाया जा रहा था। दस-बारह आदमी एंबुलेंस को धक्का दे रहे थे। कुछ लोगों ने पूछा कि भाई, जो चल बसे उनकी आखिरी इच्छा क्या थी? तो एक ने कहाः उनकी आखिरी इच्छा थी कि हर हालत में पेट्रोल बचाया जाए, सो उसी को पूरा कर रहे हैं। आखिरी इच्छा कि हर हालत में पेट्रोल बचाया जाए!
अभी कल मैंने अखबार में खबर पढ़ी कि जबलपुर, जहां मैं कोई बीस वर्ष रहा, वहां एक बड़ी झंझट खड़ी हो गई। विवाह होता है तो दूल्हा कुछ मांगता है विदाई के समय। दूल्हे ने क्या मांगा मालूम है? सौ लीटर डीजल! स्कूटर वगैरह मांगते थे पहले, अब स्कूटर नहीं मांगा। कार मांगो, रेडियो मांगते थे और इस तरह की चीजें मांगते थे--सौ लीटर डीजल मांगा उसने! और मुश्किल में डाल दिया। सौ लीटर डीजल कहां से लाओ! हाथ-पैर जोड़े। ससुर हाथ जोड़े, पास-पड़ोस के लोग हाथ जोड़ें कि भैया, तू माफ कर! इतना कठिन काम न करवा! कोई सरल सी चीज मांग ले। स्कूटर ले ले। तुझे कार लेनी हो तो कार भी ले ले। मगर यह सौ लीटर डीजल, यह कहां से लाओ! मगर वह भी अड़ गया। गजब का आदमी रहा।
इसी तरह का आदमी कोई मरा होगा, जिसने कहा कि हर हालत में पेट्रोल बचाया जाए। लोग मरते दम तक भी जिंदगी की किताब में क्या लिखते हैं? और फिर तुम कहते हो कि अर्थ नहीं है। जैसे अर्थ कोई और लिखेगा!
तुम्हारे हाथ में है बात। भरो रंग। कितना तो रंग है अस्तित्व में! कितने तो गीत फूट रहे हैं झरने-झरने में! पत्थर-पत्थर पर तो परमात्मा के आनंद की छाप है! फूल-फूल में तो उसके ओंठों की मुस्कुराहट है! मगर न देखने वाली आंखें हैं, न खोजने वाली चित्त की शांति है, न मौन है। इसलिए अड़चन है।

रेत के महल
मोम का किला
बस यही मिला।

दीवारें नमक भरी
गत्ते की छत
कौन यहां भेजेगा
प्यार भरा खत
बादल से, सूरज से
दोनों से डर
सांस नहीं ली जाती
यह कैसा घर?
अपमानों का
एक सिलसिला
बस यही मिला।

शीशे के शहरों में
पाया ठहराव
तिरने को मिली हमें
कागज की नाव
दिशाबोध देता है
बस खालीपन
तन की रखवाली है
केवल सीलन
सोने को है
बर्फ की शिला
बस यही मिला।

रेत के महल
मोम का किला

बस यही मिला।

मगर मिला वही जो तुमने बनाया। मिलता तुम्हें वही है जो तुम बनाते हो। रेत के महल बनाओगे तो मिलेगा क्या? कागज की नावें बनाओगे तो मिलेगा क्या? तुम जरा गौर से एक दफा पुनर्विचार करो अपने जीवन पर। घड़ी भर शांत, मौन
रह कर अपने जीवन पर एक दृष्टिपात करो। क्या किया तुमने जीवन का? धन के पीछे दौड़े? तो बस कागज की नावें हैं, रेत के किले। पद के पीछे दौड़े? तो बस कागज की नावें हैं, रेत के किले। प्रतिष्ठा चाही, यश चाहा, नाम चाहा--बस कागज की नावें हैं, रेत के किले। और अब कहते हो कि जीवन में कुछ मिला नहीं और अब मृत्यु द्वार पर खड़ी है, क्या मृत्यु में कुछ मिलेगा?
कृष्णमुरारी, क्षमा करो। मृत्यु में भी कुछ नहीं मिलेगा। वही जीवन में जो तुमने पाया है, या नहीं पाया है, उसको ही मृत्यु में सघन हुआ देखोगे। अगर तुम्हारा जीवन एक दुख-स्वप्न रहा है, तो मृत्यु एक महादुख-स्वप्न हो जाएगी। अगर तुम्हारे जीवन में सब व्यर्थ गया है, तो मृत्यु तुम्हें व्यर्थता के रेगिस्तान में पटक देगी, जहां दूर-दूर तक कोई हरियाली दिखाई नहीं पड़ेगी।
लेकिन अभी भी देर नहीं हो गई है। अभी तुम जिंदा हो। और कौन जाने कितनी देर जिंदा रहो! और सवाल समय का नहीं है, सवाल तीव्रता का है, त्वरा का है, समग्रता का है, समय का नहीं है। कोई आदमी चाहे तो एक क्षण में भी जीवन में क्रांति ला सकता है। और कोई चाहे तो जन्मों-जन्मों में ऐसे ही भटकता रहे-- कोल्हू का बैल बना। भटक ही रहे हो। ऐसे ही भटक रहे हो कृष्णमुरारी। यह कोई पहला जन्म थोड़े ही है तुम्हारा, पुराने अनुभवी हो। ऐसे ही और भी बहुत जन्म गंवाए हैं। गंवाने की ही आदत हो गई है। यह भी गंवा रहे हो।
फिर मुझे पक्का पता भी नहीं कि तुम्हारा क्या प्रयोजन है इस बात के कहने से कि जीवन में कुछ नहीं मिला। राष्ट्रपति होना था? प्रधानमंत्री होना था? टाटा, बिड़ला, क्या होना था? क्योंकि उनको भी मैं रोते देखता हूं। तुमसे ज्यादा बुरे हाल उनके हैं। उनको क्या मिला?
बस-स्टॉप पर एक बच्चे को रोता देख कर कंडक्टर ने बस रुकवाई और पूछाः बेटे, क्या हुआ?
मेरा रुपया, जिससे मैं टिकट खरीदता, खो गया।
चलो कोई बात नहीं, मैं तुम्हें फ्री ले चलता हूं।
बस में बैठ कर लड़का फिर रोने लगा तो कंडक्टर ने पूछाः भैया, अब क्या हुआ?
मेरे सत्तर पैसे कहां हैं जो रुपये में से बचते थे? बच्चे ने सिसकते हुए कहा।
यह दुनिया बड़ी अजीब है! यहां कुछ भी मिल जाए तो भी क्या मिला--सत्तर पैसे कहां हैं? बच्चा ठीक कह रहा है। जो राष्ट्रपति है, जो प्रधानमंत्री है, जिसके पास बहुत धन है, उससे पूछो। वह उसकी तो बात ही नहीं करेगा जो उसके पास है; वह उसकी बात करेगा जो उसके पास नहीं है।
एंड्रू कारनेगी मरा--अमरीका का अरबपति। रोता ही मरा। रोता ही जीया। रोते जीओगे तो रोते मरोगे। दस अरब नगद रुपये छोड़ कर मरा, मगर रोता मरा। उससे पूछा मरने के दो दिन पहले उसके जीवन-कथा के लेखक ने कि आप क्यों उदास हैं? आप तो सफलतम व्यक्ति हैं! इतिहास में इतनी सफलता किसको मिली? गरीब घर में पैदा हुए, भिखमंगे घर में पैदा हुए और दस अरब रुपये छोड़ कर जा रहे हैं! उसने कहाः बकवास बंद कर! मेरे इरादे सौ अरब रुपये कमाने के थे; नब्बे अरब से हारा हूं। यह हार कुछ छोटी हार नहीं है।
तुम सोचते हो इस बच्चे में, जो सत्तर पैसे के लिए रो रहा है और एंड्रू कारनेगी में, जो नब्बे अरब के लिए रो रहा है, कुछ भेद है? तर्क तो वही है। जो मिला, वह दिखाई ही नहीं पड़ता। जो नहीं मिला, वही अखरता है, वही खटकता है। एक सौंदर्य-प्रतियोगिता हो रही थी। मुल्ला नसरुद्दीन भी उसमें एक निर्णायक था। अनुभवी है, चार-चार पत्नियां हैं, स्त्रियों का ज्ञाता है। सो उसको भी चुना गया था। एक से एक सुंदर युवतियां मंच पर आईं--नाचती हुई, करीब-करीब नग्न अवस्था में, बस बिकनी पहने हुए। और मुल्ला बैठा है बीच में, सबसे बुजुर्ग निर्णायक वही है। दो निर्णायक इस तरफ बैठे, दो निर्णायक इस

तरफ बैठे। और सुंदरी आए और वह देखे और पास में ही कहेः थू! वे चारों निर्णायक बड़े हैरान, क्योंकि उनकी तो लार टपकी जाए। और यह भी गजब का वीतरागी पुरुष है कि ऐसी सुंदर स्त्री कि जिसमें कोई भूल-चूक निकालनी मुश्किल हो, कमर जितनी पतली होनी उतनी पतली, शरीर का अनुपात जैसा चाहिए वैसा, रंग जैसा चाहिए वैसा। और यह खूसट बुड्ढा! एक, दो, तीन, मगर बार-बार वही, बार-बारः आक थू! कहे ही नहीं, थूके! पांच-सात स्त्रियां जब निकल गईं तो नहीं रहा गया बाकी निर्णायकों से, उन्होंने कहा कि नसरुद्दीन, माजरा क्या है? क्या तुम्हें कोई भी स्त्री जंच नहीं रही?
अरे--उसने कहा--इन स्त्रियों की बात ही कौन कर रहा है! मैं तो अपनी स्त्रियों की सोच कर आक थू कर रहा हूं कि जिंदगी बेकार गई। कहां उलझा रहा! और चार-चार से फंसा हूं, अब तो निकलना भी बहुत मुश्किल है। और दुनिया क्या- क्या मजा लूट रही है! मैं अपनी स्त्रियों को आक थू कह रहा हूं, इनको नहीं। ये तो परिएं हैं परिएं, अप्सराएं! हूरें हैं स्वर्ग की!
जो तुम्हारे पास है वह तो दिखाई ही नहीं पड़ता। सुंदरतम स्त्री भी तुम्हारी पत्नी हो तो सुंदर नहीं रह जाती। सुंदरतम पुरुष भी तुम्हारा पति हो तो सुंदर नहीं रह जाता। जो मिल गया उसका मूल्य खो गया। मूल्य ही इसमें है, जब तक न मिले। जितनी दूरी हो, जितनी मुश्किल हो पाने में, उतना ही मूल्य है।
तो पता नहीं कृष्णमुरारी, तुम क्या चाहते हो? क्या पाना चाहते थे जीवन में? मैं तो यह मान कर चल रहा हूं कि तुम्हें आत्मा नहीं मिली, परमात्मा नहीं मिला, ध्यान नहीं मिला, समाधि नहीं मिली। यह मेरी भ्रांति भी हो सकती है। तुम्हें परमात्मा और ध्यान और समाधि से कुछ लेना-देना भी न हो, तुम किसी अप्सरा के पीछे पड़े होओ और न मिली हो। तुम किसी धन की दौड़ में रहे होओ और हार गए होओ। तुम चुनाव लड़ते रहे होओ और जीते न होओ।
मैं ऐसे लोगों को जानता हूं जो जिंदगी भर से चुनाव लड़ रहे हैं। कोई चुनाव नहीं छोड़ते। जैसे चुनाव लड़ना उनके लिए बिल्कुल स्वाभाविक है, जैसे आदमी को श्वास लेना। और हर चुनाव में हारते हैं। मगर वीतरागी पुरुष हैं। गीता से उन्होंने सीख लिया, सुख-दुख में समभाव रखते हैं; फिर चुनाव आया, फिर लड़ते हैं। अरे क्या हार, क्या जीत! सब लीला मान कर चलते हैं। पता नहीं तुम चुनाव में हार गए, कि धन की दौड़ में हार गए, कि बाजार में नहीं टिक सके। अगर तुम यही सोच रहे हो, तो मिल कर भी क्या मिल जाता? जिनको मिल गया है उनको क्या मिल गया है? तुम्हारी कब्र भी सोने की बन जाए तो क्या होगा? और तुम्हारी अरथी पर हीरे-जवाहरात भी जड़ दिए जाएं तो क्या होगा?
जीवन में तो एक ही उपलब्धि है कि हम शाश्वत को जान लें। और अगर तुमने उसे अभी तक नहीं जाना है तो मृत्यु की प्रतीक्षा मत करो। मृत्यु का क्या भरोसा, कब आए! जितनी देर बची है, उस समय का उपयोग कर लो। और अगर तुम्हारी अभीप्सा प्रगाढ़ हो तो यह थोड़ा सा समय काफी है। मृत्यु तो कुछ भी नहीं दे सकेगी, लेकिन अगर इस थोड़े से समय का तुमने सम्यक उपयोग किया, अगर इसको ध्यान पर नियोजित कर दिया, अगर इसको समर्पित कर दिया समाधि के लिए, अगर परमात्मा के चरणों में सिर झुका दिया, रख दिया सिर--तो जीवन में ही हो जाएगा। और जीवन में होगा तो ही मृत्यु में हो सकता है।

हर सुबह नहीं, हर शाम नहीं
हर रात नहीं
वरन हर पल-अनुपल
तुम मुझे तोड़ते रहते हो
जुही के डंठल की तरह नहीं
सूखी सनाठी की तरह।

हर सुबह नहीं, हर शाम नहीं
हर रात नहीं
वरन हर पल-अनुपल
मैं अपने को जोड़ता रहता हूं सीमेंट जैसे ईंटों को जोड़ता है

वैसे नहीं
कतिहारिन के टूटे धागे की तरह। हर पल-अनुपल
की यह जोड़-तोड़
हर पल-अनुपल
की यह आशा-निराशा
हर पल-अनुपल
की यह जीवन-मृत्यु
निरर्थक जिजीविषा है
या सार्थक
कौन समझाएगा
तुम्हें छोड़ कर?

परमात्मा के सिवाय कहीं और कोई शरण नहीं।
कौन समझाएगा
तुम्हें छोड़ कर?
उस परमात्मा को छोड़ कर कहीं और से समझ की किरण नहीं आएगी, कहीं और से बोध का सूरज नहीं ऊगेगा। और तुम्हें जो करना है वह थोड़ी सी बात है, छोटी सी बात हैः तुम्हें अपने को इतना खाली कर लेना है शोरगुल से, चित्त के व्यर्थ शोरगुल से, कि उसकी आवाज तुम्हें सुनाई पड़ने लगे। तुम्हें इतने मौन हो जाना है कि वह बोले तो तुम्हें बहरा न पाए। बस इतना ही।
मैं प्रार्थना का यह अर्थ नहीं करता कि तुम परमात्मा से कुछ कहो। वह
तो प्रार्थना का गलत अर्थ है। प्रार्थना का ठीक अर्थ होता हैः तुम इतने मौन हो जाओ कि परमात्मा कुछ कहे तो तुम सुन सको। और उसी क्षण से तुम्हारे जीवन में सार्थकता आ जाएगी--अपूर्व सार्थकता! क्योंकि उसी क्षण से तुम्हारे जीवन में मृत्यु तिरोहित हो जाएगी। उसी क्षण से न कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है; जीवन ही जीवन है--शाश्वत जीवन है! जिसका न कोई प्रारंभ, न कोई अंत। और आनंद के ऐसे झरने तुमसे फूट सकते हैं, ऐसे गीत तुमसे निर्मित हो सकते हैं--जैसे गीत उपनिषदों में हैं; जैसे गीत कुरान में हैं; जैसे गीत गुरुग्रंथ साहिब में हैं। वे सारे गीत ऐसे ही प्रकट हुए हैं। वे समाधि के फूल हैं।

तीसरा प्रश्नः क्या परमात्मा तक पहुंचने के लिए दर्शनशास्त्र पर्याप्त नहीं है?

अमृत प्रिया! दर्शनशास्त्र तो केवल बातचीत है, बाल की खाल निकालने की कला है। परमात्मा तक पहुंचने से दर्शनशास्त्र का कोई संबंध नहीं। दर्शनशास्त्र तो व्यर्थ की बातों का ऊहापोह है। हवाई किले बनाना है। रेत के किले भी थोड़े सच होते हैं और कागज की नावें भी थोड़ी सच होती हैं; दर्शनशास्त्र की नावें तो कागज की नावें भी नहीं हैं, सिर्फ कल्पना की नावें हैं; रेत के किले भी नहीं हैं, सिर्फ हवाई किले हैं।
दर्शनशास्त्र तो ऐसी चीजों के संबंध में विचार करता रहता है, जिनका कोई भी मूल्य नहीं है। परमात्मा ने सृष्टि क्यों बनाई--क्या करोगे जान कर? जान भी लोगे तो क्या होगा? जान भी कैसे सकोगे? जान भी लोगे तो क्या प्रमाण होगा कि जो जाना वह सच है? परमात्मा का रंग-रूप क्या है; निर्गुण है कि सगुण; उसके चार मुख हैं, हजार हाथ हैं; ऊंचाई क्या है, लंबाई क्या है, चौड़ाई क्या है--इन सब व्यर्थ की बातों का प्रयोजन क्या होगा? हजार भी हाथ हों तो क्या सार? और चार मुंह हों तो दिक्कत में पड़ेगा।
मैंने सुना है, स्वर्ग की एक सुबह की बात है, रावण टहलता हुआ एक कैफे में प्रविष्ट हुआ--कैफे दि हैवन। मीनू आया। मीनू पर उसने एक नजर डाली। सुबह-सुबह थी, सर्द सुबह थी, गरम-गरम कॉफी की इच्छा जगी। देखा कि पचास पैसे एक कॉफी के लिए। उसने कहा कि कॉफी लाओ। कॉफी आई, कॉफी पी, बड़ा प्रसन्न हुआ। बिल बुलाया, बिल आया पांच रुपये का। हैरान हुआ। वेटर से कहाः पागल तो नहीं हो? मीनू में साफ लिखा है पचास पैसे!

रावण का विकराल रूप देख कर वेटर भी घबड़ाया, उसने कहाः मैनेजर को बुलाता हूं। मैनेजर भागा आया। मैनेजर ने कहाः आप ठीक कहते हैं, लेकिन जरा गौर से पढ़िए। पचास पैसे कॉफी लिखा है मीनू में--पर हेड! और आपके दस सिर हैं, इसलिए पांच रुपये।
चार सिर होंगे परमात्मा के तो झंझट में ही पड़ेगा। क्या फायदा होगा? खुद ही तय करना मुश्किल होगा--कहां जा रहे हैं? क्यों जा रहे हैं? और चार-चार सिर सम्हालना... एक ही सिर तो मुश्किल से सम्हलता है। एक ही सिर तो कितना गर्माए रखता है! चार सिर में कभी का पागल हो चुका होगा। और हजार हाथ! दो ही हाथ में तो आदमी कितने उपद्रव कर लेता है, हजार हाथ होंगे जो कितने उपद्रव न हो जाएंगे! दो ही हाथ में तो एक हाथ से बनाता है आदमी, दूसरे से मिटा देता है। हजार होंगे तो पक्का पता ही नहीं चलेगा कि किसने बनाया, किसने मिटाया, क्या कर रहे थे, क्या नहीं कर रहे थे! अराजकता फैल जाएगी। मगर दर्शनशास्त्र इसी तरह की व्यर्थ की बातों में उलझा रहता है।
धर्म का दर्शनशास्त्र से कोई संबंध नहीं है। धर्म का संबंध है दृष्टि से, दर्शन से नहीं। आंख चाहिए--देखने वाली आंख! स्वच्छ आंख, जो देख सके! पारदर्शी आंख, जिस पर धूल न हो!
और तुम दार्शनिकों को तो देखो, इनके जीवन में तुम्हें कहीं कोई ईश्वर दिखाई पड़ता है? इनके जीवन में कहीं तुम्हें कोई ध्यान दिखाई पड़ता है? इनके जीवन में तुम्हें कहीं भी कोई शांति, कोई मौन दिखाई पड़ता है? मैं तो दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी भी था, फिर प्रोफेसर भी था, तो सब तरह से दर्शनशास्त्रियों को जानता हूं। इससे ज्यादा विक्षिप्त और कोई व्यवसाय दुनिया में नहीं है।
मेरे एक प्रोफेसर थे, मुझसे उनका काफी लगाव था। स्वाभाविक, क्योंकि
वे जितनी ऊंची हवाई बातें करें, मैं उनसे ऊंची हवाई बातें करूं। तो काफी पटती थी। वे मुझसे कहने लगेः क्या तुम हॉस्टल में पड़े हो! और मैं अकेला ही हूं।... बाल-ब्रह्मचारी थे, बूढ़े हो गए थे।... बड़ा बंगला है मेरे पास, तुम वहीं रहो आकर।
मैंने कहाः जैसी आपकी मर्जी। सुख-दुख को समान मानना चाहिए, सो जो भी होगा सुख-दुख, ठीक है।
वे कार लेकर आ गए, मेरा सामान भर कर वे अपने घर ले गए, मैं उनके घर पहुंच गया। झंझट शुरू हुई। क्योंकि बाल-ब्रह्मचारी थे, सो उन्हें गिटार बजाने का शौक था। पत्नियां वगैरह हों तो इस तरह के उपद्रव में नहीं पड़ने देतीं। इलेक्ट्रिक गिटार वे रात दो बजे तक बजाएं, सो दो बजे तक तो सोने का कोई उपाय नहीं। पूरा घर उनके इलेक्ट्रिक गिटार से गूंजता रहे। और मैं उठता था दो बजे। मैंने कहा कि कुछ न कुछ करना पड़ेगा। सो दो बजे उठ कर मैं इतने जोर से पढूं कि उनको सोने न दूं। दो दिन तो यह बात चली, तीसरे दिन उन्होंने मुझसे कहा कि भाई सुनो, कुछ अपने को समझौता करना पड़ेगा।
मैंने कहाः करना ही पड़ेगा।
उन्होंने कहा कि न मैं दो बजे रात तक गिटार बजाऊं, न तुम दो बजे रात से इतने जोर से पढ़ो। तुम क्या पहले भी जोर से पढ़ते थे?
मैंने कहा कि नहीं। मगर समझौते के लिए कुछ पहले इंतजाम कर लेना चाहिए, इसलिए मैं दो दिन से पढ़ रहा हूं इतने जोर से। गला मेरा भी लगा जा रहा है। यह इलेक्ट्रिक गिटार बंद होना चाहिए रात को, तो ही मेरा पढ़ना बंद होगा। और नहीं तो मैं आपके दरवाजे पर ही खड़े होकर दो बजे रात से जो पढ़ना शुरू करूंगा तो ठीक सात बजे सुबह रुकूंगा। न आप सो सकते, न मैं सो सकता।
वे भी महा अलाल थे और मैं तो अलाल हूं ही! और तो कोई खास काम नहीं था, मगर हमने थोड़े-थोड़े काम बांट लिए थे। तो उन्होंने कहा कि एक काम करो तुम, कोई और दूसरा काम मैं कर दूंगा, सुबह यह जो दूध लाने की बात है... । पास में ही एक दूधवाला था, ऐसे तो वह दूध ले आता था, मगर वह पानी मिला कर लाता था। तो तुम दूध लगवा कर ले आया करो।
मैंने कहाः अपन ऐसा करें, जो पहले उठे वह दूध ले आए।
यह बात बिल्कुल ठीक है।
अब दूसरे दिन हम दोनों पड़े, न वे उठें, न मैं उठूं। मैं भी आंख खोल कर देख लूं, वे भी आंख खोल कर देख लें। दस बज गए। आखिर वे घबड़ा कर एकदम उठे,

क्योंकि उनको तो ग्यारह बजे युनिवर्सिटी जाना ही पड़ेगा नौकरी पर। मैं तो विद्यार्थी था, गए न गए बराबर। एकदम उठे, कहा कि यह तो हद हो गई! अच्छा भाई, मैं जाता हूं दूध लेने।
मैंने कहाः जाइए। और कल से ख्याल रखिए कि चाहे दिन लगे, चाहे दो दिन लगें, चाहे तीन दिन लगें, मैं बिस्तर नहीं छोडूंगा, जब तक आप दूध नहीं ले आएंगे। जो पहले उठे, वह दूध लाए। और पहले मैं उठने वाला नहीं हूं।
झक्की थे। बारह महीने ही छाता लिए रहते थे। कोई कारण नहीं। और छाते को इतना नीचे लगाते थे अपने बिल्कुल कि उनकी खोपड़ी को छूता रहता था। उनको कोई देखना भी चाहे तो नहीं देख सकता था। कोई नमस्कार करना चाहे तो नहीं कर सकता था। मैंने उनसे पूछा कि छाते को इतने करीब क्यों पकड़े रखते हैं? कहाः इसका बड़ा फायदा है। अपने को जो सोचना है, सोचते रहो, किसी का ध्यान रखने की जरूरत नहीं। हंसना है, हंसते रहो। प्रसन्न होना है, प्रसन्न होते रहो। रोना है, रोते रहो। छाता छिपाए रखता है। और मन में तो तरंगें उठती रहती हैं एक से एक। और नासमझ क्या समझें, इनको दर्शनशास्त्र का क्या पता कि हम किस दार्शनिक भावावेश में बहे जा रहे हैं! आ जाएं बीच में, जयरामजी करके सब खराब कर दें!
तीन साल से उनको कोई विद्यार्थी नहीं मिला था, मैं ही उनका पहला विद्यार्थी था तीन साल में। उन्होंने मुझे देखा नीचे से ऊपर तक गौर से, उन्होंने कहा कि तुम्हें पता है कि तीन साल से मुझे कोई विद्यार्थी नहीं मिला! मेरा विषय कोई लेता नहीं।
मैंने कहाः आपको पता है कि मैं भी तीन विश्वविद्यालय से निकाला जा चुका हूं? मुझे कोई विश्वविद्यालय नहीं लेता। अपनी पटेगी।
ऐसा विवाद चलता था कि पांच-सात महीने बाद उन्होंने मुझसे कहा कि सुनो, तुम्हें परीक्षा देनी है कि नहीं?
मैंने कहाः परीक्षा वगैरह की बात परीक्षा के समय देखी जाएगी, अभी बीच में जब विवाद चल रहा हो तब इस तरह की व्यर्थ की बातें नहीं उठानी।
वे कहने लगे कि यह तो मुश्किल खड़ी कर दी है तुमने। पढ़ाना तो हो ही नहीं सकता। मैं जो भी बोलूं, तुम उसके विरोध में उठा देते हो कुछ न कुछ। और फिर तुम मुझे इतना रोष चढ़ा देते हो कि तुम कुछ बोलो तो मैं नहीं रुक सकता। मैं उसके विरोध में कुछ बोले बिना नहीं रह सकता।
खैर, मेरी तो कोई हानि नहीं है--उन्होंने कहा--कि मैं तो गुजार लूंगा साल, तुम नुकसान में पड़ जाओगे।
मैंने कहाः इसकी भी आप फिकर छोड़ दो। मुझे कोई परीक्षा पास करने की पड़ी नहीं है। मुझे जो धंधा करना है जिंदगी में, उसमें कुछ सर्टिफिकेट की जरूरत पड़ने वाली नहीं है। बदनामी होगी तो तुम्हारी होगी--कि तीन साल में एक विद्यार्थी मिला और वह भी उत्तीर्ण न हो सका। मेरी कोई बदनामी का सवाल नहीं है।
और यह बात उन्हें जंची। मुझे परीक्षा के पहले वे बुला कर बता देते थेः ये-ये प्रश्न आ रहे हैं, भैया तू तैयार कर ले! साल तो गया, मगर ये प्रश्न तू देख, कसम खाकर कहता हूं तुझे, इसमें विवाद खड़ा करने की जरूरत नहीं है। ये बिल्कुल आ रहे हैं। इनको तू तैयार कर ले।
और उनको इतना भी भरोसा नहीं था कि मैं तैयार करूंगा, तो मुझे तैयार करके भी देते थे कि ये-ये तैयार हैं, इनको तू पढ़ लेना। और सुबह कार लेकर खड़े हो जाते थे कि चलो परीक्षा में! क्योंकि उनको शक होता कि मैं जाऊं न जाऊं। दार्शनिक आदमी तो भले होते हैं, मगर झक्की होते हैं। धर्म का इनसे कोई लेना-देना नहीं। प्यारे लोग होते हैं, लेकिन जीवन-सत्य की इनकी खोज किसी साधना पर खड़ी नहीं होती। जीवन-सत्य पर इनकी जो चेष्टा है, वह सिर्फ तर्कगत है।
इसलिए अमृत प्रिया, दर्शनशास्त्र जरा भी पर्याप्त नहीं है। हां, जिज्ञासा अगर मात्र हो तब तो ठीक। मुमुक्षा हो तो दर्शनशास्त्र पर्याप्त नहीं है।
चंदूलाल आजकल अत्यंत दार्शनिक प्रवृत्ति के हो गए हैं और अक्सर हवाई समस्याओं को सुलझाने में निमग्न रहते हैं। एक दिन जब वे शाम के समय अपने आंगन में आरामकुर्सी पर लेटे हुए सामने वाले घर की दीवाल पर चिपके हुए

कंडों पर टकटकी लगाए, विचारों में खोए थे, तभी उनकी पत्नी गुलाबो आ पहुंची और खीझ भरे स्वर में बोलीः वहां क्या देख रहे हो आंखें गड़ाए? क्या उसी कलमुंही ढब्बू की पत्नी को?
चंदूलाल बोलेः नहीं-नहीं। मैं तो इस समस्या का हल खोजने में लगा हूं
कि आखिर ढब्बूजी की भैंस किस प्रकार दीवाल पर चढ़ कर गोबर करती है!
पत्नी ने आगबबूला होकर कहाः बस तो तुम इन्हीं उलटी-सीधी बेसिर-पैर की बातों में वक्त गंवाते रहते हो, घर की जरा भी फिक्र नहीं! क्या तुम्हें खबर है कि अपने छोटे मुन्ना ने एक हफ्ते से चलना शुरू कर दिया है?
चंदूलाल ने चौंक कर कहाः अरे, तो तुमने पहले क्यों नहीं बताया? अब तो न जाने वह कितनी दूर निकल चुका होगा!
एक दार्शनिक पति बहुत दिनों के बाद विश्व-यात्रा से घर वापस लौटे। स्वभावतः आते ही पति-पत्नी प्रेम-क्रीड़ा में संलग्न हो गए। इतने में ही किसी व्यक्ति ने बाहर से दरवाजा खटखटाया। पत्नी तो एकदम भय से सिहर उठी और चौंक कर लड़खड़ाते स्वर में बोलीः सुनिए-सुनिए, लगता है मेरे पतिदेव आ गए। यह सुनते ही पत्नी को एकदम छाती से दूर हटाते हुए दार्शनिक पति खिड़की
से कूद कर भाग गए, सो आज तक उनका पता नहीं चला है।
परमात्मा तक पहुंचने के लिए धर्म के अतिरिक्त न कभी कोई मार्ग था, न कभी हो सकता है।
दुनिया में तीन आयाम हैं। एक--विज्ञानः वह पदार्थ का सत्य जानने का आयाम है। दूसरा--धर्मः वह चैतन्य का सत्य जानने का आयाम है। और तीसरा-- दर्शनः वह सिर्फ विचार करने का आयाम है। पदार्थ के संबंध में भी विचार करता है, चेतना के संबंध में भी विचार करता है। लेकिन सिर्फ विचार। अब विचार से किसी का पेट भरता है? तुम लाख विचार करते रहो, भूख है सो भूख रहेगी, भोजन चाहिए। शरीर का भोजन चाहिए तो विज्ञान से पूछो और आत्मा का भोजन चाहिए तो धर्म से पूछो। दर्शन तो दोनों के मध्य में है--त्रिशंकु की भांति। न विज्ञान है दर्शन, न धर्म है दर्शन। सोचता है, बस विचार करता है। अच्छी-अच्छी बातें सोचता है। मगर सोचने में ही कोई प्रयोजन नहीं है। ईश्वर के संबंध में कितना ऊहापोह करता है दर्शनशास्त्र! लेकिन उस ऊहापोह का क्या परिणाम है?
रात अंधेरी है, कितना ही सोचो, सोचने से दीया न जलेगा। या तो विज्ञान
से पूछो, अगर बाहर का दीया जलाना हो। और या धर्म से पूछो, अगर भीतर का दीया जलाना हो। अगर दीया जलाना ही न हो, सिर्फ समय काटना हो, तो दर्शनशास्त्र उपयोगी है। बैठ कर विचार करो--कि प्रकाश क्या है? अंधकार क्या है? अंधकार है भी या नहीं? प्रकाश कैसे अंधकार को मिटाता है? मिटा सकता है या नहीं? दर्शनशास्त्र एक बहुत ऊंचे ढंग से शेखचिल्लीपन का ही दूसरा नाम है।
एक गांव में चोरी हो गई। इंस्पेक्टर आया, बहुत खोज-बीन की, पता न चले चोर का। आखिर गांव के लोगों ने कहा कि ऐसे पता नहीं चलेगा। हमारे गांव में एक शेखचिल्ली हैं; ऐसा कोई प्रश्न ही नहीं जिसका वे उत्तर न दे सकते हों। उनसे ही पूछा जाए। अभी कुछ ही दिन पहले की बात है, रात एक हाथी गांव से गुजर गया। इस गांव में से कभी हाथी नहीं निकला था। सुबह हम सब चिंता में पड़े-- इतने-इतने बड़े पैर के निशान किस जानवर के हो सकते हैं? कोई हल न हो सका। आखिर शेखचिल्ली को बुलाया, उसने मिनट में हल कर दिया। उसने कहाः कुछ मामला नहीं है। यह सरल सी बात है, इसमें इतनी क्या चिंता कर रहे हो? पैर में चक्की बांध कर हरिणा कूदा होय! उसने कहाः यह सीधी-सीधी बात है कि कोई हिरण पैर में चक्की बांध कर कूदा है।
इंस्पेक्टर को बात जंची तो नहीं कि ऐसे आदमी से पूछना चाहिए, मगर कोई
और उपाय न देख कर, कि संभावना नहीं दिखती, गया। शेखचिल्ली ने पहले तो बहुत आना-कानी की, कि भाई मैं झंझटों में नहीं पड़ना चाहता। मेरा तो ऊंची दार्शनिक बातों में रस है। ये कहां की भौतिक बातें--चोरी इत्यादि! अरे कौन चोर, किसकी चोरी! सबै भूमि गोपाल की! सब उसी का है। कौन चोर, कौन मालिक! वही एक मालिक है!
इंस्पेक्टर ने बहुत ही कहा कि देखो तुम सुनते हो कि नहीं, नहीं तो तुम्हीं को पकड़ कर ले जाएंगे। जब हालत बिगड़ने लगी तो उसने कहाः हम बताए

देते हैं, मगर एकांत में बताएंगे। दूर चलना पड़ेगा गांव के बाहर, किसी को पता न चले। हम झंझट-झगड़े में पड़ना नहीं चाहते।
तब तो जरा इंस्पेक्टर को भरोसा आया कि इसको मालूम होता है मालूम है। लगता है पता है। ले गया उसको दूर शेखचिल्ली गांव के बाहर। एकदम बिल्कुल दूर। इंस्पेक्टर ने कहाः भाई, अब तो यहां कोई पक्षी भी नहीं, कोई कुत्ता भी नहीं, अब तो तू बोल दे!
बिल्कुल कान में आकर फुसफुसाया कि अब तुम मानते नहीं हो तो बताए देता हूं। लेकिन खाओ कसम अपने बाप की कि किसी को कहना मत।
उसने कहाः भैया, बाप की कसम, मगर तू कह तो!
उसने कहा कि किसी चोर ने चोरी की है।
बस दर्शनशास्त्र इस तरह की बातों में लगा हुआ हैः किसी चोर ने चोरी की है! तुम पूछो... तुमको समझ में नहीं आती यह बात एकदम से... तुम पूछो कि सृष्टि किसने की? दर्शनशास्त्र कहता हैः किसी स्रष्टा ने सृष्टि की है। मतलब तुम समझे? वही--किसी चोर ने चोरी की है। मगर जब कहते हैं कि किसी स्रष्टा ने सृष्टि की है, तब तुम समझते हो कि बड़ी ऊंची बात हो रही है! स्रष्टा ने तो की ही होगी सृष्टि जब की है। और चोरी जब की है तो चोर ने ही की होगी। मगर उत्तर कहां है इसमें?
धर्म के अतिरिक्त परमात्मा को जानने का कोई उपाय नहीं है।
धर्म विज्ञान है अंतर-खोज का।

आखिरी सवालः मैं अपनी पत्नी का भरोसा नहीं कर पाता हूं। वह मेरी न सुनती है, न मानती है। उसके चरित्र पर भी मुझे संदेह है। इससे चित्त उद्विग्न रहता है। क्या करूं?

रामेश्वर! पत्नी कोई परमात्मा तो है नहीं जो तुम उस पर भरोसा करो। तुमसे कहा किसने कि पत्नी पर भरोसा करो? अरे आस्था करने को तुम्हें कुछ और नहीं मिलता? श्रद्धा करने को कुछ और नहीं मिलता? गरीब पत्नी मिली! कुछ श्रद्धा के लिए भी ऊंचाइयां खोजो।
लेकिन सिखाया गया हैः पत्नियां पतियों पर श्रद्धा करें। पति पत्नियों पर श्रद्धा करें, भरोसा रखें। भरोसा भी रख लोगे तो क्या होगा? और जब भी भरोसे की बात उठती है, उसका मतलब ही यह है कि संदेह भीतर खड़ा है, नहीं तो भरोसे का सवाल कहां है? अगर संदेह ही न हो तो भरोसा क्यों? क्यों समझाया जाता है कि भरोसा करो? इसीलिए कि संदेह है और संदेह को लीपना है, पोतना है, छिपाना है।
और कैसे तुम भरोसा करोगे? तुम्हें अपने पर भरोसा नहीं है, पत्नी पर कैसे भरोसा करोगे? सुंदर स्त्री देख कर तुम्हारे मन में क्या होता है? तो तुम यह कैसे मान सकते हो कि सुंदर पुरुष को देख कर तुम्हारी पत्नी के मन में कुछ भी न होता होगा? तुम यह कह कर नहीं बच सकते कि मैं मर्द बच्चा, अरे पुरुष की बात और है! गए वे दिन, लद गए वे दिन। किसी की बात और नहीं है। तुम अपने को भलीभांति जानते हो कि जब मैं डांवाडोल होता हूं तो पत्नी भी कभी न कभी डांवाडोल होती होगी। इसलिए संदेह है।
संदेह पत्नी पर कम है, संदेह अपने पर ही ज्यादा है। पत्नी पर संदेह प्रश्न के ही बाहर है। पहले तो भरोसा करने की आवश्यकता ही नहीं है। नाहक उद्विग्न हो रहे हो! नाहक परेशान हो रहे हो! मगर बस सिखाई गई हैं बातें कि पत्नी को पतिव्रता होना चाहिए। एक पति! बस उस पर ही उसको अपनी नजरें टिका कर रखना चाहिए। फिर वह टिका कर रखती है नजरें तो भी मुसीबत खड़ी होती है। क्योंकि जब वह पतिव्रता होती है तो वह तुमको भी चाहती है कि तुम भी पत्नीव्रता होओ। फिर एक-दूसरे के तुम पीछे पड़े हो, जासूसी कर रहे हो। और जिंदगी नरक हो जाती है।
सरल बनो, सहज बनो। स्वतंत्रता में जीना सीखो। पत्नी के पास अपना बोध है, तुम्हारे पास अपना बोध है। वह अपने जीवन की हकदार है, तुम अपने जीवन के हकदार हो। यह और बात कि तुम दोनों ने साथ रहना तय किया, तो ठीक है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि तुम एक-दूसरे के गुलाम हो। मगर सदियों की गलत शिक्षाओं ने बड़ी झंझट खड़ी कर दी है। एक से एक उपद्रव खड़े होते जाते हैं! और

उपद्रव खड़े हो जाते हैं, लेकिन हमें दिखाई भी नहीं पड़ते कि उपद्रव के मूल कारण कहां हैं।
अभी परसों अखबारों में खबर थी कि कुछ गुंडे बंबई में एक स्त्री को उसके पति और बच्चों से छीन कर ले गए और धमकी दे गए कि अगर पुलिस को खबर की तो पत्नी का खात्मा कर देंगे। रात भर पति परेशान रहा, सो नहीं सका। कैसे सोएगा? प्रतीक्षा करता रहा! सुबह-सुबह पत्नी आई। इसके पहले कि पति कुछ बोले, पत्नी ने कहा कि पहले मैं स्नान कर लूं, फिर पूरी कहानी बताऊं। वह बाथरूम में चली गई। वहां उसने कैरोसिन का तेल अपने ऊपर डाल कर आग लगा ली और खतम हो गई। अब सब तरफ निंदा हो रही है उन बलात्कारियों की। निंदा होनी चाहिए।
लेकिन ये लक्षण हैं। ये मूल बीमारियां नहीं हैं। बलात्कारियों की अगर तुम ठीक-ठीक खोज करोगे तो इनके पीछे महात्मागण मिलेंगे मूल कारण में। और उनकी कोई फिक्र नहीं करता। वही महात्मागण निंदा कर रहे हैं कि पतन हो गया, कलियुग आ गया, धर्म भ्रष्ट हो गया। इन्हीं नासमझों ने यह उपद्रव खड़ा करवा दिया है। जब तुम काम को इतना दमित करोगे तो बलात्कार होंगे। जितना काम दमित होगा उतने बलात्कार होंगे। अगर काम को थोड़ी सी स्वतंत्रता दो, अगर काम को तुम जीवन की एक सहज सामान्य साधारण चीज समझो, तो बलात्कार अपने आप बंद हो जाए। क्योंकि न होगा दमन, न होगा बलात्कार।
अब ऐसा समझो कि तुम्हारी पत्नी अगर किसी पुरुष के साथ ताश खेल रही हो,
तो कोई पाप तो नहीं हो गया, बलात्कार तो नहीं हो गया। तुम कोई पुलिस में तो नहीं चले जाओगे एकदम से। और तुमने देख लिया पत्नी को ताश खेलते हुए किसी के साथ, तो पत्नी कोई कैरोसिन डाल कर आग जला कर मर थोड़े ही जाएगी। ताश ही खेल रही थी, पाप क्या हो गया?
अगर हम काम-ऊर्जा को भी जीवन की सहज सामान्य चीज समझ लें... उसको इतना ऊंचा उठा कर रखा है, इतना सिर पर ढो रहे हैं, उसको इस तरह के ढोंग दे दिए हैं, पवित्रता के और धार्मिकता के ऐसे आभूषण पहना दिए हैं, कि मुश्किल खड़ी हो गई है। उसकी वजह से कुछ लोग दमित हैं।
अब ये जो गुंडे इस स्त्री को उठा ले गए, ये स्वभावतः ऐसे लोग नहीं हो सकते जिन्होंने जीवन में स्त्री का प्रेम जाना हो। ये ऐसे लोग हैं जिनको स्त्री का प्रेम नहीं मिला। और शायद इनको स्त्री का प्रेम मिलेगा भी नहीं। स्त्री का प्रेम ये जबरदस्ती छीन रहे हैं। जबरदस्ती छीनने को कोई तभी तैयार होता है जब उसे सहज न मिले। और प्रेम का तो मजा तब है जब वह सहज मिले। जबरदस्ती लिए गए प्रेम का कोई मजा ही नहीं होता, कोई अर्थ ही नहीं होता।
तो सहज तो प्रेम के लिए सुविधा नहीं जुटाने देते तुम। और अगर सहज प्रेम की सुविधा जुटाओ तो कहते हो--समाज भ्रष्ट हो रहा है। ये समाज भ्रष्ट हो रहा है चिल्लाने वाले लोग ही बलात्कारियों को पैदा करते हैं। हर बलात्कारी के पीछे तुम महात्माओं को छिपा पाओगे। तुम्हारे ऋषि-मुनियों की संतान हैं ये बलात्कारी।
और फिर दूसरी तरफ भी गौर करो। किसी ने भी इस पर गौर नहीं किया। यह स्त्री घर आई, इसने आग लगा कर अपने को मार डाला, इसकी निंदा किसी ने भी नहीं की। बलात्कारियों की निंदा की। जरूर की जानी चाहिए। लेकिन इस स्त्री की निंदा किसी ने भी नहीं की। इस स्त्री ने भी मामले को बहुत भारी समझ लिया। क्योंकि इसको भी समझाया गया है, इसका सब सतीत्व नष्ट हो गया।
क्या खाक नष्ट हो गया! सतीत्व आत्मा की बात है, शरीर की बात नहीं। क्या नष्ट हो गया? जैसे आदमी धूल से भर जाता है तो स्नान कर लेता है, तो कोई शरीर नष्ट थोड़े ही हो गया, कि शरीर गंदा थोड़े ही हो गया।
यह गलत हुआ। मैं इसके समर्थन में नहीं हूं कि ऐसा होना चाहिए। लेकिन मैं इसके भी विरोध में हूं कि किसी स्त्री को हम इस हालत में खड़ा कर दें कि उसको आग लगा कर मरना पड़े। इसके लिए हम भी जिम्मेवार हैं। बलात्कारी जिम्मेवार हैं और हम भी जिम्मेवार हैं। क्योंकि अगर यह स्त्री जिंदा रह जाती तो इसको जीवन भर लांछन सहना पड़ता। जो इसको लांछन देते, वे सब इसके पाप में भागीदार हुए। अगर यह स्त्री जिंदा रह जाती तो इसका पति भी इसको नीची नजर से देखता, इसके बच्चे भी इसको नीची नजर से देखते, इसके पड़ोसी भी कहते

कि अरे यह क्या है, दो कौड़ी की औरत! हां, अब वे सब कह रहे हैं कि सती हो गई! बड़ा गजब का काम किया! बड़ा महान कार्य किया! अब सती का चौरा बना देंगे। चलो एक और ढांढन सती हो गई! अब इनकी झांकी सजाएंगे। वही मूढ़ता।
तुम सब जिम्मेवार हो इस हत्या में। बलात्कार करवाने में जिम्मेवार हो। इस स्त्री की हत्या में जिम्मेवार हो। इस स्त्री की भी निंदा होनी चाहिए। इसमें ऐसा क्या मामला हो गया? इसका कोई कसूर न था। यह कोई स्वेच्छा से उनके साथ गई नहीं थी। इस पर जबरदस्ती की गई थी। अगर कोई जबरदस्ती तुम्हारे बाल काट ले रास्ते में, तो क्या तुम आग लगा कर अपने को मार डालोगे? कि हमारा सब भ्रष्ट हो गया! हमारा मामला ही खतम हो गया!
मगर ऐसे जमाने थे कि अगर रास्ते में कोई मिल जाता और तुम्हारी मूंछ काट लेता--मर गए! इज्जत चली गई! मूंछ कट गई, बात खत्म हो गई!
अब मूंछ ही कट गई, आजकल तुम खुद ही जाकर रोज सफा करवा रहे हो। और ऐसा नहीं कि कोई नाई की गर्दन काट दो एकदम से कि तूने मेरी मूंछ क्यों काटी! उलटे पैसा देते हो। और नाई न मिले तो खुद ही सुबह से उठ कर रेजर से सफाई करते हो। मगर यह मूंछ कभी बड़ी ऊंची चीज थी। इसकी बड़ी पूछ थी। लोग इस पर ताव दिया करते थे। और जिसकी मूंछ नीची हो गई, उसका सब गया। मूंछ पर ताव देकर लोग चलते थे। अकड़ का हिस्सा थी, अहंकार का हिस्सा थी।
यह सतीत्व की धारणा बचकानी है, थोथी है। यह जीवन की सहजता के अनुकूल नहीं है। पहले तो हमें, लोगों के काम-जीवन को जितनी मुक्ति दी जा सके, देनी चाहिए। जहां तक बन सके, काम-ऊर्जा को खेल से ज्यादा मत समझो। उसे खेल से ज्यादा गंभीर मत समझो। एक जैविक खेल, लीला; इससे ज्यादा नहीं। तो क्रांति होगी।
मगर तुम बहुत गंभीरता से ले रहे हो। तुम कह रहे होः पत्नी पर मुझे संदेह उठता है, उसके चरित्र पर संदेह उठता है।
तुम हो कौन जिसे पत्नी के चरित्र पर संदेह उठे? तुम्हें फिक्र करनी है, अपने चरित्र की करो। पत्नी के चरित्र के तुम मालिक हो? पत्नी की आत्मा के तुम मालिक हो? पत्नी ने कोई तुम्हारे हाथ अपने को बेचा है?
नहीं रामेश्वर, संदेह करने को और बड़ी चीजें हैं; अपने पर संदेह करो।
और श्रद्धा करने को भी और बड़ी चीजें हैं, उन पर श्रद्धा करो। कहां छोटी चीजों में उलझते हो! और फिर इन्हीं में दबे-दबे मर जाओगे, तो फिर एक दिन कहोगे कि जिंदगी यूं ही गुजर गई, कुछ अर्थ न पाया, कोई सार्थकता न पाई। पाओगे भी कहां से?
मनुष्य-जाति बहुत सी भ्रांतियों के नीचे दबी जा रही है, मरी जा रही है, सड़ी जा रही है। मगर वे भ्रांतियां इतनी पुरानी हैं और हम उनको इतना सम्मान देते रहे हैं, कि हमें ख्याल में भी नहीं आता कि वे भ्रांतियां हैं। सतियों की अभी भी पूजा चल रही है। गांव-गांव सतियों के चौरे हैं। क्या पागलपन है! स्त्रियों को जलाया, जलवाया, जलाने के आयोजन किए, हत्याएं कीं-- और सम्मान दे रहे हो!
और अभी भी यही सिखाया जा रहा है। कुंवारेपन की बड़ी कीमत समझी जाती है
कि किसी लड़की का कुंवारा होना एकदम अनिवार्य है विवाह के पूर्व। क्यों? बात बिल्कुल अवैज्ञानिक है। क्योंकि जिस युवती ने प्रेम का कोई अनुभव नहीं लिया, उसको तुम विवाह कर रहे हो। गैर-अनुभवी स्त्री, और अगर दुर्भाग्य से युवक भी भोंदुओं के हाथ में पला हो, तो दोनों गैर-अनुभवी। इन दोनों को बांधे दे रहे हो एक नकेल में। इनकी जिंदगी को तुमने डाल दिया गड्ढे में। थोड़े-बहुत अनुभव से गुजर जाना उचित है, उपयोगी है।
अफ्रीका में इस तरह के कबीले हैं, जो इस बात की फिक्र करते हैं कि इस लड़की का कितने लोगों से प्रेम-संबंध रहा। जितने ज्यादा लोगों से प्रेम-संबंध रहा हो, उतनी ही उसकी कीमत बढ़ जाती है। मैं मानता हूं कि वे ज्यादा मनोवैज्ञानिक हैं। आदिम, मगर ज्यादा कीमती उनका विचार है। क्योंकि जितने लोगों ने इसे प्रेम किया, इसके अर्थ दो हुए। एक कि यह स्त्री चाहने योग्य है; इतने लोगों ने चाहा तो अकारण नहीं चाहा होगा। दूसरी बातः इतने लोगों ने चाहा तो इसके जीवन में अनुभव है। उस अनुभव के आधार पर इसने कुछ परिपक्वता पाई होगी। कुंवारी लड़की को या कुंवारे लड़के को कोई अनुभव नहीं होता। दो कुंवारों को बांध देना ऐसा ही है जैसे दो सांडों को, जिन्होंने

कभी बैलगाड़ी नहीं चलाई, बांध दिया बैलगाड़ी में। तुम भी गिरोगे, सांड भी मुश्किल में पड़ेंगे और बैलगाड़ी का तो कचूमर निकल जाएगा। दुर्घटना सुनिश्चित है।

इसलिए प्रत्येक विवाह दुर्घटना हो जाती है।
अनुभव से गुजरने दो। और क्यों इतना आग्रह एकाधिपत्य का? मोनोपोली का? क्यों तुम संदेह करते हो पत्नी पर? यह एकाधिपत्य क्यों? पत्नी कोई वस्तु तो नहीं है कि तुम उसके एकमात्र मालिक हो! अगर पत्नी को रुचिकर लगता हो, किसी और से भी प्रीतिकर संबंध उसके बनते हों, तो तुम क्यों इतने परेशान हुए जा रहे हो?
नहीं, लेकिन हमारा पुरुष का दंभ बड़ा चोट खा जाता है, तिलमिला जाता है,
कि मेरे रहते और मेरी पत्नी किसी और को सुंदर समझे! और तुम कितनी स्त्रियों को सुंदर समझ रहे हो अपनी पत्नी के रहते? गीता में दबाए बैठे हो हेमामालिनी का चित्र! बातें कर रहे हो कि गीता पढ़ रहे हैं, देख रहे हो हेमामालिनी का चित्र।
खुद पर संदेह करो, रामेश्वर। पत्नी को खुद सोचने दो, अपने लिए सोचने दो। उसे अपनी जीवन-धारा स्वयं नियत करने दो। किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधा न बनो--फिर वह तुम्हारी पत्नी हो या पति हो या बेटा हो या बेटी हो। धार्मिक व्यक्ति का यह लक्षण होना चाहिए कि वह स्वयं की स्वतंत्रता की घोषणा करे और औरों की स्वतंत्रता का सम्मान करे। इस पृथ्वी पर जितनी स्वतंत्रता बढ़े, उतना शुभ है। हम परमात्मा को उतने ही निकट ला सकेंगे। परमात्मा घट सकता है स्वतंत्रता के एक वातावरण में ही। इस परतंत्रता में नहीं। इन जंजीरों में नहीं। इन कारागृहों में नहीं। मुक्त होओ और मुक्त करो।
आज इतना ही।

रहिमन धागा प्रेम का
बारहवां प्रवचन

प्रार्थना की गूंज

पहला प्रश्नः क्या लिखूं, कुछ समझ में नहीं आता। बस प्रणाम उठता है। कैसे करूं; करना भी नहीं आता। इतना संवारा आपने, आप ही आप रह गए हैं। अहंकार आपसे ही गलेगा। गलाएं और इस पीड़ा से छुड़ाएं, यही मेरी प्रार्थना है। मेरी प्रार्थना गूंजती है, आगे भी गूंजेगी--क्या ऐसी आशा रख सकता हूं?

योगानंद! हृदय जब प्रणाम से भरे तो कहना कुछ भी संभव नहीं होता। और सब बातें कही जा सकती हैं; अनुग्रह शब्दातीत है। धन्यवाद बोला नहीं जा सकता। बोला कि छोटा हो जाता है। भाव बड़ा है, शब्द बहुत छोटे हैं।
और प्रणाम की भाव-दशा में ही पहली बार यह प्रतीत होना शुरू होता है कि कुछ ऐसा भी है जो भाषा के बाहर है। है, अनुभव में आता है, फिर भी भाषा के बाहर है। भाषा की पकड़ में नहीं आता। भाषा के जाल से छूट जाता है।
इसलिए प्रणाम की अनुभूति ही परमात्मा का एकमात्र--केवल एकमात्र--सबूत है। प्रणाम की अनुभूति ही परमात्मा का एकमात्र प्रमाण है। परमात्मा को सिद्ध करने का और कोई उपाय नहीं, कोई तर्क नहीं। जिसके भीतर अनुग्रह का भाव उठ गया--किसी बहाने, किसी निमित्त... रात आकाश को तारों से भरा देख कर अगर तुम्हारे हृदय में यह भाव जग आए कि मैं धन्य हूं, क्योंकि मैंने कमाया न था कुछ, इतने तारों से भरे आकाश को पाने की मेरी कोई पात्रता नहीं है--कि तत्क्षण तुम्हें परमात्मा की मौजूदगी अनुभव होगी! कि सूर्यास्त को देख कर, या एक पक्षी के गीत को सुन कर, या गुलाब के एक खिले हुए फूल को देख कर तुम्हारे भीतर कुछ आर्द्र हो जाए, गीला हो जाए, भाव-भीना हो जाए, आंसू टपक पड़ने को हो जाएं, कुछ कहते न बने, जबान लड़खड़ा जाए--तो तुम्हें परमात्मा का पहला अनुभव होगा। ऐसे ही परमात्मा प्रवेश करता है। जब प्रणाम की अनुभूति उठती है, तो समझो परमात्मा ने द्वार पर दस्तक दी।
इसलिए तो हमारे देश में हम जब भी किसी को प्रणाम करते हैं तो परमात्मा
का नाम लेते हैं। कहते हैंः जयराम! या कोई और नाम। प्रणाम के साथ हमने परमात्मा का नाम जोड़ रखा है इस देश में। इस देश के सिवाय ऐसा कहीं और नहीं हुआ। प्रणाम तो सभी जगह किए जाते हैं, नमस्कार तो सभी जगह किए जाते हैं। लेकिन वे नमस्कार सामान्य हैं। अंग्रेजी में कहेंगेः शुभ-प्रभात। ठीक है, सुंदर है; लेकिन मानवीय है, बहुत दूरगामी नहीं। लेकिन जब तुम किसी व्यक्ति को देख कर कहते हो--हरे कृष्ण, जयराम जी, सत श्री अकाल--तो तुम मनुष्य की सीमा के आगे जा रहे हो। तुम यह कह रहे हो कि तुम्हें ही नहीं देख रहा हूं, तुम्हारे भीतर छिपे हुए उस अदृश्य को भी देख रहा हूं जो दिखाई नहीं पड़ता; तुम्हें ही नहीं झुक रहा हूं, उसको झुक रहा हूं जिसके लिए वस्तुतः झुकना चाहिए।
योगानंद, प्रश्न तुम्हारा सार्थक है, मूल्यवान है। तलाशो। जिंदगी में बहुत-बहुत जगह हैं। यूं समझो कि कण-कण उससे व्याप्त है। और इसलिए कण-कण तुम्हारे भीतर नमन का भाव उठाएगा।

फूला पीला कनेर अहाते में

भेजे दृग से निमंत्रण
कोई हलके से चुने
रचा उसने प्रणय-छंद
कोई आग्रह से सुने
पहला चुंबन लिखाए खाते में फूला पीला कनेर अहाते में

सुआ-पंखी अवगुंठन
उभारे हलदिया रंग

उठा उम्र का मधु-ज्वार
चढ़ा अंगों पर अनंग
नमस्कार करे आते जाते में फूला पीला कनेर अहाते में

अरुणोदय से भी पूर्व
करते फूल ओस-स्नान
कोई आंख भर निरखे
ताने लाज के वितान
जैसे निर्वसन रूप नहाते में
फूला पीला कनेर अहाते में

कनेर का छोटा सा फूल, वह भी पर्याप्त है अगर तुम गौर से देखो, क्योंकि उसमें भी तो उसी का रस बह रहा है, रसो वै सः! परमात्मा रस-रूप है। जहां रस है वहां परमात्मा है। फिर झरने का कलकल नाद हो, कि हवाओं की गूंज हो वृक्षों से गुजरते हुए, कि समुद्र की लहरों की टकराहट हो तट पर, कि बादलों की गड़गड़ाहट हो--जरा संवेदनशीलता चाहिए कि तुम्हें प्रमाण ही प्रमाण मिलने शुरू हो जाएंगे। और जिसके भीतर प्रणाम का भाव उठ रहा है, उसे प्रमाण मिलने सुनिश्चित हैं। फिर कहने की बहुत फिक्र मत करो, क्योंकि परमात्मा कोई भाषा तो समझता नहीं, मौन को समझता है। एक ही भाषा समझता है--निःशब्द की, मौन की।
इसलिए मौन में झुक जाओ, पहुंच जाएंगे प्रणाम उस तक। किसी दिशा में झुको--पूरब कि पश्चिम, काबा की तरफ झुको कि गिरनार की तरफ, भेद नहीं पड़ता है। क्योंकि सब दिशाओं में वही मौजूद है। झुकने का सवाल है। झुको भर! लेकिन हार्दिकता से झुको, औपचारिकता से नहीं। झुकना चाहिए, इसलिए मत झुको। झुके बिना नहीं रहा जा सकता, इसलिए झुको।
जैसे वृक्ष जब फलों से लद जाता है तो शाखाएं झुक आती हैं। झुकना चाहिए, इसलिए नहीं। झुकना ही होगा। लदी-फदी शाखाएं झुकेंगी न तो और क्या करेंगी?
जब तुम्हारे भीतर अनुग्रह के फल और फूल लगते हैं, तो तुम्हारे प्राण झुकेंगे। झुकना मौन ही हो जाएगा।
मत पूछो कि कैसे करूं, प्रणाम करना नहीं आता।
प्रणाम करना सीखना थोड़े ही होता है, प्रणाम करने की कोई पाठशालाएं थोड़े ही होती हैं। और जहां-जहां प्रणाम सिखाए जाते हैं, वहां-वहां सब प्रणाम झूठे हो जाते हैं। सिखाए हुए प्रणाम झूठे हो जाते हैं। हमने इसी तरह तो जिंदगी में सब झूठ कर दिया है। बच्चों को कहते हैंः ये तुम्हारे पिता हैं, इनके पैर छुओ। ये तुम्हारी मां हैं, इनको नमस्कार करो। यह भगवान की प्रतिमा है, साष्टांग दंडवत। सिखा रहे हैं। और बच्चे सीख भी लेंगे। कोई उपाय भी नहीं उनका बचने का। बच कर भागेंगे भी कहां? सीखना ही पड़ेगा। मजबूरी है, असहाय हैं, तुम पर निर्भर हैं। तुम्हारे बिना जी नहीं सकते। तुम्हीं उनका भोजन हो, तुम्हीं उनके वस्त्र हो, तुम्हीं उनका भविष्य हो। इसलिए तुम जो कहोगे, मानेंगे। मगर तुमने झूठ कर दिए प्रणाम उनके।
प्रणाम में "इसलिए" नहीं होता कि इसलिए झुको, कि यह मां, कि यह पिता, कि
यह परमात्मा की प्रतिमा। जहां इसलिए है, वहां बात झूठ हो गई। प्रणाम का कोई गणित थोड़े ही होता है। प्रणाम तो काव्य है, उसमें कोई इसलिए नहीं होता, उसमें कोई कारण नहीं होता। अकारण है। उमगता है। बचना भी चाहो तो बच नहीं सकते। फिर मौन काफी है।
फिर किस भाषा में कहोगे? ईसाइयों की बंधी-बंधाई प्रार्थनाएं हैं, वे दोहरा दो; नहीं पहुंचेंगी। और हिंदुओं के बंधे-बंधाए मंत्र हैं; नहीं पहुंचेंगे। और रटते रहो जपुजी, और नहीं पहुंचेगा। क्योंकि नानक से जब उठा था, तब हार्दिकता थी उसमें। और तुमसे जब उठ रहा है, तब सिर्फ एक औपचारिकता है। सिक्ख घर में पैदा हो गए हो। सिक्ख शब्द पर कभी विचार किया? सिक्ख शब्द बनता है शिष्य से। शिष्य तो कभी बने ही नहीं और सिक्ख हो गए! कभी शिष्यत्व तो अंगीकार किया नहीं और सिक्ख हो गए! तो झूठे ही सिक्ख होओगे।

बौद्ध हो गए। बुद्धत्व की किरण नहीं उतरी। भीतर का दीया नहीं जला--और बुद्ध हो गए! झूठे, शाब्दिक, परंपरागत। तो दोहराते रहो मंत्र--गायत्री पढ़ो, नमोकार पढ़ो, कुरान की आयतें दोहराओ--कितने तो लोग दोहरा रहे हैं, कहां पहुंचते हैं?
नहीं, मैं तुम्हें नहीं कहूंगा कि तुम इस तरह कहो अपना प्रणाम। मैं तो कहूंगाः उठ रहा है प्रणाम, झुक जाओ। यह भूमि उसकी है। यह आकाश उसका है। ये तारे उसके हैं। ये वृक्ष उसके हैं। जहां मौज हो वहां झुक जाओ। झुकना प्रणाम है। और झुकने का अर्थ होता हैः जहां भी तुमने अहंकार छोड़ा; जहां भी तुमने कहा कि मैं नहीं हूं; जहां भी तुम इस भाव से भरे कि मैं नहीं हूं, तू है; मैं मिटा; मैं मिटता हूं, ताकि तू पूरा हो सके; जहां भी तुम एक बूंद की तरह सागर में गिरे, वहीं प्रणाम है। फिर मौन ही काम हो जाएगा। बिना बोले जो बात हो जाए, उससे सुंदर और क्या?

मौन भी तो मधुर क्षण है।
मृदु-सुरभि सी वात पर वह फूल का नव आवरण है,
मौन भी तो मधुर क्षण है।

सांध्य बादल जब बदलता जा रहा प्रत्येक पल में,
छा रही है भ्रांति सी जब तप्त सारे गगन-तल में।
क्या न आशाप्रद गगन में तारिका का ज्योति-कण है? मौन भी तो मधुर क्षण है।

विषय झोंकों से प्रताड़ित क्षुद्र रज-कण हीन तन का, मार्गदर्शन कर सकेगा वह किसी बलहीन जन का।
यदि किसी प्रणवीर का उस पर हुआ चिह्नित चरण है।
मौन भी तो मधुर क्षण है।

जब कि जीवन में विकलता या विवशता आ गई है,
और जब प्रतिशोध की नवक्रांति उस पर छा गई है।
क्या न जीवन की अमरता में विजय का वह मरण है?
मौन भी तो मधुर क्षण है।

चुप हो जाओ। घनी चुप्पी में डूब जाओ। एक सन्नाटे में लीन हो जाओ। और झुक जाओ। नहीं कुछ बोलो, नहीं कुछ कहो। उस क्षण में न तो तुम हिंदू होओगे, न मुसलमान, न सिक्ख, न ईसाई, न जैन, न बौद्ध। उस क्षण में तुम होओगे ही नहीं, तो हिंदू कैसे होओगे? तो मुसलमान कैसे होओगे? उस क्षण में तो परमात्मा होगा। और परमात्मा हिंदू नहीं है, और परमात्मा मुसलमान नहीं है। उस क्षण में तुम काबा की तरफ झुकोगे कि काशी की तरफ? और उस क्षण में किसको होश रहेगा कि कहां काबा और कहां काशी? उस क्षण में तो जहां तुम झुके, वहीं काबा, वहीं काशी। उस मौन के क्षण में जहां तुम बैठ गए, वहीं तीर्थ बन जाते हैं; जहां तुम्हारे चरण पड़े, वहीं तीर्थ निर्मित हो गए।
धार्मिक व्यक्ति तीर्थ नहीं जाता; धार्मिक व्यक्ति के आसपास तीर्थ निर्मित होते हैं। अधार्मिक जाते हैं तीर्थ--सिर्फ अधार्मिक जाते हैं। धार्मिक व्यक्ति के पास तो परमात्मा नाचने लगता है। तुमने यह बात तो सुनी है कि कृष्ण के पास गोपियां नाचीं, गोपाल नाचे; मगर वह बात आधी है, अधूरी है। मैं तुमसे यह भी कह दूं कि अगर तुम गोपाल हो, गोपी हो, तो कृष्ण तुम्हारे पास नाचेंगे। तब बात पूरी होती है। तभी बात पूरी होती है! योगानंद, चुप्पी सीखो! उस चुप्पी को ही मैं ध्यान कह रहा हूं। उसी ध्यान में जो गंध उठती है, उसी का नाम प्रार्थना है, उसी का नाम प्रणाम है। वह जो अनुग्रह का भाव उठता है--कि मेरी कोई पात्रता नहीं, फिर भी इतना दिया! मैंने कमाया नहीं था कुछ, फिर भी इतना मुझे मिला! बस वह जो बोध है कृतज्ञता का, वही व्यक्ति के जीवन को रूपांतरित कर देता है।
तुम कहते होः "इतना संवारा आपने, आप ही आप रह गए हैं। अहंकार आपसे ही गलेगा।"

गल रहा है, योगानंद। आहिस्ता-आहिस्ता ही गलता है। जन्मों-जन्मों में जमा है, समय लेगा गलने में। जल्दी भी न करना।
कहते होः "गलाएं और इस पीड़ा से छुड़ाएं, यही मेरी प्रार्थना है।"
इसीलिए तुम्हें संन्यास दिया है। संन्यास का अर्थ ही यही है कि तुमने निर्णय किया कि अब तुम अहंकार को मिटाने को तत्पर हो। तुमने अपनी तरफ से इशारा दे दिया कि मैं राजी हूं, आप मिटाएं, तोड़ें! संन्यास का कोई और अर्थ नहीं होता। संन्यास का इतना ही अर्थ होता है कि आप तोड़ेंगे मुझे, तो मैं इनकार न करूंगा; आप मिटाएंगे मुझे, तो मैं भागूंगा नहीं; आप तलवार भी उठा कर मेरी गर्दन काट देंगे, तो मेरी गर्दन झुकी ही रहेगी; मृत्यु देंगे, तो उसे मैं महाजीवन की तरह स्वीकार करूंगा। यह संन्यास का अर्थ है।
इसलिए संन्यास केवल उनके लिए है जो कायर नहीं हैं। कायरों के लिए नहीं है। कायर तो बचाता फिरता है अपने को, सब तरकीबों से बचाता है। न मालूम कितने बहाने और तर्क खोज लेता है अपने को बचाने के। कहता है कल, कहता है परसों। न कभी कल आता, न कभी परसों आता। फिर कहता हैः संन्यास लेने से क्या होगा? जो करना है, बिना संन्यास लिए ही कर लूंगा। कहता हैः संन्यास तो बाहर की बात है।
प्यास लगती है तो बाहर का पानी पीता है; तब यह नहीं कहता कि पानी तो बाहर की बात है, प्यास तो भीतर की बात है। क्या पानी पीना! जब भूख लगती है तो बाहर का भोजन कर लेता है और ठंड लगती है तो बाहर का कंबल ओढ़ लेता है। तब यह नहीं कहता कि बाहर का कंबल क्या ओढ़ना! अरे ठंड तो भीतर लग रही है। और जब बीमारी आती है तो बाहर की दवा ले लेता है, बाहर के चिकित्सक के पास चला जाता है। लेकिन जब संन्यास की बात उठती है तो सोचता हैः बाहर का संन्यास क्या लेना!
मेरे पास कितने लोग लिखते हैं कि हम तो भीतर से संन्यासी ही हैं।
जब भीतर से ही हो तो बाहर से क्या अड़चन हो रही है? भीतर से कुछ भी नहीं है। लेकिन बाहर से बचने के लिए उन्होंने अपने को समझा लिया है कि भीतर से हम संन्यासी ही हैं। बचाव के लिए आदमी हजार-हजार तर्क खोज लेता है।
तुमने तर्क नहीं खोजे, योगानंद। तुम आए। तुम सहज भाव से डूबे। तुममें गलतियां थीं, जैसी प्रत्येक व्यक्ति में गलतियां हैं। तुममें भूलें थीं, चूकें थीं। तुम डरे भी थे कि मैं तुम्हें संन्यास भी दूंगा या नहीं दूंगा। मेरे लिए तो सिर्फ एक ही भूल है जो रोक सकती है, वह कायरता है; वह तुममें नहीं थी। और सब भूलों का कोई मूल्य नहीं है। किसी ने मुझे कहा भी कि आप योगानंद को संन्यास दे रहे हैं? इसको नशे की आदत है!
मैंने कहाः हम इसे और बड़ा नशा पिलाएंगे! देखते हैं कौन सा नशा जीतता है?
और जीतने लगा नया नशा। पहले योगानंद कभी-कभी आते थे। अब तो टिक ही गए।
अब जाते ही नहीं। अब आश्रम के अंग होना चाहते हैं, आश्रम के काम में लीन होना चाहते हैं।
छोटी-मोटी, टुच्ची बातों में मैं पड़ता नहीं। किसी ने कहा कि ये तो धूम्रपान करते हैं।
तो करने दो! धूम्रपान से क्या बनता-बिगड़ता है? साल दो साल पहले जल्दी परमात्मा के प्यारे हो जाएंगे, और क्या होगा? सो प्रभु-मिलन जरा जल्दी होगा। उसकी कोई चिंता नहीं है। मगर एक बात कीमत की है कि हिम्मतवर हैं। और मैंने अक्सर यह देखा कि जो लोग जिंदगी में भूल-चूक से भरे होते हैं, उनमें थोड़ी हिम्मत होती है। हिम्मत होती है, इसीलिए भूल-चूक भी कर लेते हैं। भूल-चूक के लिए भी तो हिम्मत चाहिए! जो भूल-चूक नहीं करते, करीब-करीब गोबर-गणेश होते हैं। भूल-चूक करने की हिम्मत भी नहीं जुटा पाते--कोई देख न ले, किसी को पता न चल जाए; पिताजी क्या कहेंगे, माताजी क्या कहेंगी, पत्नी क्या कहेगी, पास-पड़ोस के लोग क्या कहेंगे! डर के मारे भले बने रहते हैं। मगर डर से कहीं भलापन पैदा हुआ है? भय से कहीं भलापन पैदा हुआ है? भयभीत आदमी कितना ही भला दिखाई पड़े, बस दिखाई पड़ता है; उसके भीतर हजार तरह की सड़ांध होती है।
मेरा अपना अनुभव यही है कि जिनको तुम बुरे लोग कहते हो, उनको बदलना जितना आसान है, उतना बदलना उन लोगों को नहीं है आसान, जिनको तुम भले कहते

हो। जो व्रत करते, उपवास करते, मंदिर जाते, पूजा करते, पाठ करते--इनको बदलना बहुत मुश्किल है; क्योंकि इनकी व्रत, पूजा, उपवास के पीछे इनका बल नहीं होता, निर्बलता होती है। ये डरपोक हैं। ये सिर्फ इसीलिए पूजा कर रहे हैं, इन्हें भगवान का भय है।
योगानंद मेरे पास आए थे, न भगवान को मानते, मंदिर तो शायद ही कभी गए हों। यहां भी कैसे भूले-भटके आ गए... अक्सर मेरे पास आ जाते हैं। मैं उन लोगों के लिए ही हूं, जिनके लिए कोई मंदिर नहीं है, जो किसी मंदिर में कदम न रखेंगे, जो किसी मस्जिद में न जाएंगे, जो किसी गिरजे-गुरुद्वारे में पैर न रखेंगे, जिनको वह बात जंचेगी ही नहीं, जिनमें थोड़ी जिंदगी है, जिनमें थोड़ी जान है, जिनमें थोड़ा प्राण है।
योगानंद तो नास्तिक थे। कहां का ईश्वर! हर बलशाली आदमी वस्तुतः नास्तिक होता है। आस्तिकता आती है अनुभव से, मान लेने से नहीं। जो मान लेता है, वह तो सिर्फ कमजोर होता है, नपुंसक होता है।
तुम जांच कर लेना अपने भीतर, तुम्हारी आस्तिकता कहीं सिर्फ मान्यता
तो नहीं है? क्योंकि और लोग मानते हैं, इसलिए तुमने भी मान लिया। अगर ऐसी ही आस्तिकता है, तो दो कौड़ी की है। यह नाव तुम्हें उस पार न ले जा सकेगी। आस्तिकता आनी चाहिए अनुभव से। और अनुभव तो वही करेगा जो खोजेगा। और खोजेगा कौन? जो पहले से ही मान कर बैठ गया, वह खोजेगा कैसे?
जब योगानंद को मैंने पहली दफा देखा तो मुझे लगा कि ठीक है, यह आदमी अपने काम का है। नास्तिक है, हजार तरह की भूल-चूकें करता है, किसी की चिंता- फिक्र भी नहीं है। हिम्मत का आदमी है। थोड़ी निजता है। बगावती है। और सिर्फ विद्रोही--सिर्फ विद्रोही-- वस्तुतः धार्मिक हो सकते हैं! और इसलिए तुम्हारे भीतर क्रांति की शुरुआत हो गई, चिनगारियां पड़ने लगीं। अब तो आग धधकने लगी है। जल्दी ही लपटें हो जाएंगी। तुम खो जाओगे इन लपटों में। फिर जो शेष रह जाएगा, वही परमात्मा है।
भय न करो, चिंता न करो। आश्वस्त रहो।
तुम पूछते होः "मेरी प्रार्थना गूंजती है, आगे भी गूंजेगी, क्या ऐसी आशा रख सकता हूं?"
निश्चित रख सकते हो, क्योंकि यह प्रार्थना किसी कमजोर की प्रार्थना नहीं है, किसी दीन-हीन की प्रार्थना नहीं है। यह प्रार्थना वास्तविक है।
मैं दोनों तरह के लोगों को जानता हूं।
मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं कि आत्म-साक्षात्कार करवा दें। मैं उनसे कहता हूंः कब तक रुकेंगे? वे कहते हैं कि कल सुबह ही जाना है। मैं जब सफर करता था, मैं ट्रेन पकड़ने चला जा रहा हूं, प्लेटफार्म पर कोई हाथ पकड़ लेगा कि एक मिनट, जस्ट, बस एक मिनट, ईश्वर है? मैं उनसे कहता कि तुम क्या कर रहे हो, तुम्हें कुछ ख्याल है? मुझे ट्रेन पकड़नी है, तुम्हें ट्रेन पकड़नी है। एक मिनट! वे कहतेः हां या न में जवाब दे दें! लेकिन हां या न में जवाब देने से जवाब मिल जाएगा? चलो कह दिया हां, क्या होगा? या कह दूं न, क्या होगा?
इनको कुछ खोजना नहीं है। इनको कुछ दांव पर नहीं लगाना है। इनको ऐसे ही रास्ते चलते हुए अगर मुफ्त में परमात्मा मिल जाए, रत्ती भर न गंवाना पड़े, क्षण भर खड़ा भी न होना पड़े, तो शायद ये विचार करें कि लेना कि नहीं लेना। परमात्मा इनके द्वार पर ही खड़ा हो जाए और कहे कि लेना है कि नहीं? तो भी ये कहेंगे कि जरा पत्नी से पूछ लूं। हे मुन्नू की अम्मा, परमात्मा जी आए हुए हैं, ले लें कि नहीं?
मैंने सुना है, एक सम्राट ने... दरबार में बात चलती थी, गपशप चलते-चलते बात यूं पहुंच गई कि एक दरबारी ने कह दिया कि आपके दरबारी बातें तो बड़ी ऊंची करते हैं, मगर जहां तक मैं जानता हूं, सब जोरू के गुलाम हैं। सम्राट को धक्का लग गया। उसके दरबारी और जोरू के गुलाम! उसने कहाः सिद्ध करना होगा। उस व्यक्ति ने कहाः अभी सिद्ध कर देता हूं। वह खड़ा हो गया और उसने कहा कि जो-जो जोरू के गुलाम हैं, वे एक लाइन में खड़े हो जाएं। और अगर किसी ने झूठ बोला, क्योंकि तुम्हारी जोरुओं से पूछा जाएगा, उनको दरबार में बुलाया जाएगा; जो झूठ बोलेगा, उसकी फांसी सजा है। और जो जोरू के गुलाम नहीं हैं, वे इस तरफ लाइन लगा कर खड़े हो जाएं।

जोरुओं के गुलामों की लाइन तो इतनी बड़ी लगी कि दरबार छोटा पड़ने लगा। सम्राट भी थोड़ा हिचकिचाया। सिर्फ एक आदमी खड़ा हुआ उस लाइन में, जो जोरुओं के गुलामों की नहीं थी। सिर्फ एक आदमी, जिसकी कि सम्राट कभी कल्पना ही नहीं कर सकता था। बिल्कुल मरा-खुचा, वही आदमी सबसे गया-बीता था उस दरबार में! सम्राट ने कहा कि चलो कोई बात नहीं, कम से कम एक तो है मर्द बच्चा!
उस आदमी ने कहाः ठहरिए, आप गलत मत समझ लेना। मैं जब घर से चलने लगा तो मुन्नू की मां बोली कि देखो, भीड़-भाड़ में खड़े मत होना! इसलिए मैं यहां खड़ा हूं। और कोई कारण नहीं है मेरे खड़े होने का। वहां भीड़-भाड़ बहुत ज्यादा है। तब तो सम्राट ने कहा कि कुछ खोज-बीन करनी पड़ेगी। क्या राज्य इतना दयनीय है हमारा, कि जब दरबारियों की यह हालत है, तो राज्य की क्या होगी! उसने उसी आदमी को जिसने यह सवाल उठाया था और सिद्ध भी कर दिया था, कहा कि तू, ये मेरे पास दो सुंदर घोड़े हैं--एक सफेद और एक काला--ये दोनों घोड़े लेकर जा और साथ में बहुत सी मुर्गियां भी ले जा। और हर घर के सामने राजधानी में जाना और हर घर के मर्द से पूछना कि तू जोरू का गुलाम तो नहीं है? और बता देना कि अगर झूठ बोला, तो यह जिंदगी और मौत का सवाल है। सम्राट जांच-पड़ताल कर रहा है। सच ही बोलना, नहीं तो झंझट हो जाएगी। और जो कहे कि हां, जोरू का गुलाम हूं, उसको एक मुर्गी पकड़ा देना ईनाम में। और अगर कहीं कोई आदमी मिल जाए जो जोरू का गुलाम न हो, तो इन दो शानदार घोड़ों में, इतने कीमती घोड़े जमीन पर नहीं हैं, उससे कह देना कि तू चुन ले जो तुझे चाहिए--काला या सफेद, तेरा है वह घोड़ा।
वह आदमी गया। स्वभावतः बांटता गया मुर्गियां, बांटता गया मुर्गियां। मुर्गियों पर मुर्गियां सम्राट को भेजनी पड़ीं। जितनी मुर्गियां मिल सकती थीं बाजार में, खरीदवानी पड़ीं, क्योंकि राजधानी और हर एक को मुर्गी देनी पड़ रही है। सम्राट भी घबड़ाने लगा, यह खजाना लुट जाएगा मुर्गियों में। सोचता था कि जल्दी कोई मिल जाएगा जो घोड़ा ले लेगा, बात खतम हो जाएगी। मगर जब तक घोड़ा न लेने वाला मिले, तब तक मुर्गियां बांटनी पड़ेंगी।
आखिर एक घर के सामने उस दरबारी को भी लगा कि अब आ गया वह आदमी जिसको घोड़ा देना पड़ेगा। ऐसा आदमी उसने देखा ही नहीं था। क्या तो उसके अंग थे! क्या उसकी देह थी, लोह जैसी! ऐसा बलिष्ठ आदमी कि घूंसा मार दे दीवाल को तो दीवाल गिर जाए, कि सींकचों को हाथ से दबा दे तो टूट जाएं। उसकी मसल देखने लायक थी। सर्दी के दिन थे, सुबह ही सुबह धूप ले रहा था वह और मालिश कर रहा था अपने शरीर की। उसकी मसलों का उतार-चढ़ाव! वह आदमी थोड़ी देर खड़ा देखता रहा--दरबारी, और उसने कहा कि भाई, मैं यह पूछने आया हूं, सम्राट पता लगवा रहे हैं कि तुम जोरू के गुलाम तो नहीं हो?
उसने कहाः मैं और जोरू का गुलाम! उसने अपना हाथ उसके पास ले जाकर अपनी मसल दिखाईं और कहाः ये मसलें देखी हैं! जरा यह पंजा अपने हाथ में ले। दरबारी का पंजा अपने हाथ में लेकर जो उसने दबाया तो दरबारी की चीख-पुकार निकल गई।
दरबारी ने कहाः मारा, मर गया! बचाओ! छोड़ो, यह क्या करते हो? जान लोगे क्या मेरी? मैं तो सिर्फ पूछने आया हूं, मुझे कोई प्रमाण नहीं चाहिए। उसने कहाः मैं और जोरू का गुलाम! शब्द वापस लो, नहीं तो जिंदा नहीं लौटोगे। ऐसी की तैसी घोड़ों की और ऐसी की तैसी तुम्हारी! ये तुमने शब्द बोले कैसे?
उसने कहाः भाई, मैं माफी मांगता हूं, पैर छूता हूं। मुझे तो जाने दो। मेरा कोई कसूर नहीं है। सम्राट का मामला है, उसने भेजा है। मुझे आना पड़ा। तुम चुन लो, जो घोड़ा तुम्हें चाहिए।
और उसने कहा कि मुन्नू की मां, सफेद घा.ेडा लें कि काला?
और एक दुबली-पतली मरियल सी स्त्री बाहर निकली और उसने कहाः काला लेना!
और दरबारी ने कहाः यह ले मुर्गी।
परमात्मा भी दरवाजे पर खड़ा हो तो मुन्नू की मां को पूछना ही पड़ेगा!
यह तुम्हारी जिंदगी जो है, भयाक्रांत है, भय पर खड़ी है। यहां सब तरफ से डराने वाले लोग हैं। पहले बाप डराते हैं, मां डराती है; फिर पत्नी डराती है; फिर हालत यहीं नहीं समाप्त होती, बच्चे डराते हैं, बच्चे भयभीत करवाते हैं। दफ्तर जाओ तो आफिसर डरवाता है। कहीं नौकरी करो तो मालिक डरवाता है।

जहां निकलो वहीं डरवाने वाले लोग। सब तरफ से तुम डरे हुए हो। मंदिर भी तुम जाते हो--डर के कारण। प्रार्थना भी तुम करते हो--डर के कारण।
योगानंद को मैंने देखा कि आदमी डरने वाला नहीं है। मुन्नू-वुन्नू की मां ही नहीं है। अकेले ही थे। फिर संन्यासी होने के बाद शादी की उन्होंने, फिर मुन्नू की मां से बनी नहीं--बन सकती नहीं थी। सो उन्होंने कहाः मुन्नू को भी सम्हाल और रास्ते पर लग! सो मुन्नू और मुन्नू की मां, दोनों को विदा कर दिया है।
मैंने कहा, यह आदमी काम का है! अगर मेरे पास सफेद और काले घोड़े होते तो दोनों ही इसको दे देता।
योगानंद, घबड़ाओ मत। तुम्हारी प्रार्थना सफल होने वाली है, पूर्ण होने वाली है।

दूसरा प्रश्नः तुसी सानूं परमात्मा दे दरसन करा देओ। तुहाडी बड़ी मेहरबानी होएगी!

संत महाराज! तुम्हें भी पहरे पर बैठे-बैठे न मालूम क्या-क्या सूझता है! वहां दरवाजे पर पहरा देते-देते एक से एक ऊंचे ख्याल तुम्हें उठते हैं। पहले भैया, परमात्मा को भी तो पूछने दो कि उसे तुम्हारे दर्शन करने हैं कि नहीं! आपने चाहा, सो बड़ी कृपा! मगर यह मामला दो-तरफा है। कोई तुम्हीं थोड़े ही उसके दर्शन करोगे, उसको भी तो तुम्हारे दर्शन करने पड़ेंगे। तो पहले मुझे उससे पूछने दो कि संत महाराज के दर्शन करने हैं? जहां तक मैं समझता हूं, अभी वह राजी नहीं है। तो तुम थोड़ा ठहरो।
ऐसे खाली बैठे-बैठे ऊंचे ख्याल उठते हैं।
ट्रेन लेट थी और हर घंटे के बाद लेट होने की अवधि बढ़ती ही जा रही थी।
एक घंटा, दो घंटे से बढ़ते-बढ़ते ट्रेन पूरे छह घंटे बाद भी नदारद। आखिर मुल्ला नसरुद्दीन झुंझला उठा और स्टेशन मास्टर के पास जा पहुंचा और उससे बोलाः सुनिए भाई साहब, यहां आस-पास कोई कब्रिस्तान है या नहीं?
स्टेशन मास्टर ने जवाब दियाः नहीं तो, क्यों क्या बात है?
मुल्ला बोलाः अजी जनाब, मैं यह सोच रहा था कि ट्रेन का इंतजार करते- करते जो लोग मर जाते होंगे, उन्हें कहां दफनाया जाता होगा?
अब तुम भी बैठे... दरवाजे पर बैठे, सो ऊंचे-ऊंचे ख्याल आते हैं कि तुसी सानूं परमात्मा दे दरसन करा देओ! परमात्मा ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा भैया? तुम अपने घर चंगे, वह अपने घर चंगा--और कठौती में गंगा! न वह तुम्हारे पीछे पड़ा, न तुम उसके पीछे पड़ो। उसको खुद ही झंझट लेनी होगी तो वह खुद ही तुम्हारे पीछे पड़ेगा। तुम तो शांति से बैठे रहो। ऐसी दार्शनिक बातों में न पड़ा करो। पंजाबी होकर ये बातें शोभा देतीं भी नहीं।
शुरू-शुरू संत महाराज जब आए थे, जब वे ध्यान करते थे, तो उनका ध्यान देखने लायक था। जहां वे ध्यान करते थे, वहां जगह खाली करवा देनी पड़ती थी। क्योंकि वे ध्यान में एकदम क्या-क्या बकते, क्या-क्या वजनी गालियां देते! घूंसे तानते, कुश्तमकुश्ती करते। किससे करते, वह कुछ पता नहीं चलता। किसी अदृश्य शक्ति से बिल्कुल जूझते। जैसे भूत-प्रेतों से लड़ रहे हों। मुझसे आकर लोग पूछते कि संत क्या करते हैं? मैं कहताः कुछ नहीं, पंजाबी हैं। ऐसे धीरे-धीरे पंजाबीपन निकल जाएगा। निकल गया। अब शांत हो गए हैं। जब से शांत हो गए हैं, मैं उनसे संत महाराज कहने लगा हूं। संत भी उनको नाम इसीलिए दिया था कि भैया! किसी भी तरह शांत हो जाओ! शांति धारण करो!
हो जाती है ऐसी झंझट। मैं नवसारी में एक शिविर ले रहा था। कोई तीन सौ मित्र शिविर में ध्यान कर रहे थे। एक सरदार जी आ गए। अच्छी बात कि सरदार जी आए! मगर उन्होंने ध्यान क्या किया... सक्रिय ध्यान में उन्होंने मार-पीट शुरू कर दी! संत तो हवाई मार-पीट करते थे, उन्होंने बिल्कुल मार-पीट शुरू कर दी। आस-पास के दो-चार-दस आदमियों की पिटाई कर दी। जो पास आ जाए उसको ही लगा दें। और इस तरह बिफराए कि बिल्कुल जेहाद छेड़ दिया--धर्मयुद्ध! बामुश्किल उनको रोका जा सका। उनको जब रोका गया तो वे चिल्लाएं कि मुझे ये ध्यान नहीं करने दे रहे हैं!

ये ध्यान करने भी तुम्हें कैसे दें! तुम किसी का सिर खोल दोगे, किसी का हाथ-पैर तोड़ दोगे। वे कह रहे हैंः अभी तो मेरा ध्यान जोश में आ रहा है। और आपने ही तो कहा कि हो जाने दो जो होना है, निकाल दो सब चीजें! सो जो-जो भरा है... ।
वे कुछ बुरे आदमी नहीं थे। बाद में सबसे माफी मांगी उन्होंने कि भाई क्षमा करना, कोई से दुश्मनी नहीं है, किसी का कुछ मैं बिगाड़ना नहीं चाहता। मगर मन बड़ा मेरा हलका भी हो गया है। कई दिनों से यह बात चढ़ी थी। वह तो यही कहो कि कृपाण वगैरह साथ नहीं लाए थे।
संत अब शांत हो गए हैं। और उनको काम मैंने दिया है द्वार पर पहरे का, क्योंकि उससे ज्यादा और ध्यानपूर्ण कोई काम नहीं है; वहां कुछ करना नहीं है, सिर्फ बैठे रहना है। दरवाजे से लोगों का आना-जाना है, वह देखते रहना है।
यही तो ध्यान की प्रक्रिया है। ध्यान में भी ऐसे ही पहरेदार बन कर बैठ जाना पड़ता है भीतर और मन के दरवाजे से जो विचारों का आना-जाना होता है उसको देखते रहना पड़ता है। संत दरवाजे पर बैठे-बैठे ही समाधि को उपलब्ध हो जाएंगे।
तुम चिंता न करो संत! तुम्हारी चिंता मैं कर रहा हूं। तुम बेफिक्र रहो। परमात्मा का भी दर्शन होगा। परमात्मा कहीं छिपा थोड़े ही है; मौजूद ही है, सिर्फ हमारी आंखों पर थोड़ी सी धूल जमी है--विचारों की धूल, वह धूल झड़ जाएगी कि तुम्हें परमात्मा दिखाई पड़ने लगेगा। जो भी आएगा दरवाजे के भीतर और जो भी जाएगा, उसमें ही परमात्मा दिखाई पड़ेगा।
और द्वार पर बैठना तुम्हारे लिए इसलिए रखा है। और तुम उसका ठीक उपयोग
कर रहे हो। क्योंकि वही ध्यान की प्रक्रिया है--साक्षी। मन है क्या? सतत विचारों का आवागमन। राह चलती ही रहती है, चलती ही रहती है--विचार, वासनाएं, इच्छाएं, आकांक्षाएं, भाग-दौड़ मची हुई है, बाजार भरा हुआ है। तुम बैठे हो किनारे और देख रहे हो। तुम्हें कुछ करना नहीं है, सिर्फ देखना है--कौन गया, कौन आया; नजर रखनी है। कोई निर्णय भी नहीं लेना--कौन अच्छा, कौन बुरा। ऐसे बैठे-बैठे यह छोटा सा पहरेदारी का काम तुम्हें भीतर की पहरेदारी सिखा देगा।
यहां मैंने जो भी काम किसी को दिया है, उसके पीछे प्रयोजन है, ख्याल रखना। तुम्हें शायद एक दफा समझ में आए या न आए, शायद तुम्हें बहुत बाद में समझ में आए कि क्या प्रयोजन था। जब प्रयोजन पूरा हो जाए तभी शायद समझ में आए। लेकिन यहां जिसे भी मैंने जो काम दिया है, उसका प्रयोजन है। यहां कोई भी काम ऐसा नहीं है जो साधना से जुड़ा न हो। जिसके लिए जो जरूरी है, वह उसी के लिए वैसी ही साधना में संयुक्त करा दिया है।
और जब नया कम्यून बनेगा, विराट कम्यून बनेगा--जहां कि बहुत कामों की सुविधा हो जाएगी, क्योंकि यहां बहुत से काम नहीं संभव हो सकते हैं अभी। इसलिए बहुत से लोग, जिनके लिए और भी ज्यादा उचित साधन मिल सकता है काम का, जिससे वे ध्यान की तरफ शीघ्रता से गति कर जाएं, वह नहीं मिल पा रहा है। लेकिन वह भी जल्दी हो जाएगा। लेकिन जो भी सुविधा यहां जिनके लिए मिली है, वे ख्याल रखेंः प्रत्येक कृत्य ध्यान है। और काम से भागना मत, क्योंकि काम से भागना ध्यान से भागना होगा। और तुम्हें प्रत्येक काम को ऐसे करना है जैसे प्रार्थना कर रहे हो, साधना कर रहे हो।
संत, परमात्मा भी मिलेगा। परमात्मा चारों तरफ मौजूद है। उसके ऊपर थोड़े ही कोई पर्दा है। परमात्मा कोई मुसलमान औरत थोड़े ही है कि बुर्का ओढ़े बैठे हैं। अभी तुमने पाकिस्तान की खबरें पढ़ीं? मूढ़ता की भी हदें होती हैं! अब वहां स्त्रियों को मनाही कर दी गई है कि वे किसी भी खेल में पैंट-कमीज नहीं पहन सकती हैं। क्योंकि पैंट-कमीज पहनें तो उनकी नंगी टांगें लोगों को दिखाई पड़ जाएं! इतना ही नहीं, अब स्त्रियों के किसी खेल में पुरुष दर्शक नहीं हो सकते। स्त्रियां खेलें फुटबाल और खेलें टेनिस, मगर पुरुष दर्शक नहीं हो सकते, सिर्फ स्त्रियां ही दर्शक हो सकती हैं। वह तो बड़ी कृपा की कि उन्होंने... जरा एक कदम और आगे बढ़ते कि स्त्रियां खेलें हॉकी और बुर्का पहनें। तब आता पूरा मजा। तब होती धार्मिकता पूरी।

मूढ़ताओं की हद है! ये सब बातें किस बात का सबूत देती हैं? आदमी की पाशविकता का, आदमी की हैवानियत का। क्या ओछी बात! और स्त्रियां चुप हैं, कोई विरोध नहीं है। पहले तुम उन्हें मस्जिदों में नहीं जाने देते थे, चलो वह भी ठीक; अब तुम उन्हें खेल में भी मत जाने देना। और आज नहीं कल इसका आखिरी तार्किक परिणाम वही होने वाला है कि बुर्का ओढ़ो और हॉकी खेलो। परमात्मा कोई मुसलमान स्त्री नहीं है कि बुर्का ओढ़े बैठे हुए हैं। परमात्मा तो प्रकट है--हर फूल में, हर पत्ते में, हर चांद, हर तारे में।
सिर्फ हम अंधे हैं, या हमारी आंखें बंद हैं, या हमारी आंखों पर पर्दा पड़ा हुआ है। उसी पर्दे को हटाने का उपाय चल रहा है यहां।
संत, पर्दा हट रहा है। और जैसे-जैसे पर्दा हटेगा, वैसे-वैसे तुम्हारी आकांक्षा प्रगाढ़ होगी, वैसे-वैसे परमात्मा को पाने की प्यास गहन होगी। पीड़ा बढ़ेगी, विरह जगेगा। अब पा लूं, अब पा लूं--ऐसी त्वरा पैदा होगी। ये सब अच्छे लक्षण हैं। ये शुभ लक्षण हैं। ये, वसंत करीब आ रहा है, इसकी सूचनाएं हैं।

तीसरा प्रश्नः मेरे पतिदेव ऐसे तो बस देवता ही हैं, बस एक ही खराब लत
है कि शराब पीते हैं। उनसे शराब कैसे छुड़वाऊं?

रमा देवी! धार्मिक व्यक्ति की मेरी परिभाषा समझोः धार्मिक व्यक्ति अपने में परिवर्तन करने की समग्र चेष्टा करता है, लेकिन किसी दूसरे में परिवर्तन करने की आकांक्षा नहीं करता। दूसरे को परिवर्तित करने की आकांक्षा में राजनीति है। दूसरे को मैं बदल डालूं, इसमें एक मजा है। क्या मजा है? अहंकार! मैं श्रेष्ठ और दूसरा निकृष्ट, तो मुझे हक है बदलने का। और स्त्रियों ने तो जैसे ठेका ही ले रखा है पतियों को बदलने का! पीछे
ही पड़ी हैं उनके--ऐसा करो, वैसा करो; यह मत खाओ, वह मत पीओ। उनका जीना हराम कर दिया है। और अक्सर इसी कारण वे शराब पीने लगते हैं। उनका जीना ही हराम कर दो--आखिर उन्हें भी जीने का हक है--तो तुम्हें भुलाने के लिए और कोई उपाय ही नहीं बचता उनके पास, सिवाय इसके कि वे शराब पीएं।
अब रमा देवी, तुम कहती होः "ऐसे तो मेरे पति बस देवता ही हैं।"
होंगे ही। अरे तुम्हारे पति हैं। तुम ठहरीं रमा देवी, तो वे देवता तो होंगे ही!
"बस एक लत है... "
मगर लत कुछ ऐसी बुरी तो नहीं, क्योंकि वे जो देवता हैं स्वर्ग में, वे
भी डट कर पीते हैं। यह तो देवताओं की पुरानी आदत है। मुसलमानों के बहिश्त में तो शराब के चश्मे बह रहे हैं, दिल खोल कर पीओ! कोई पाबंदी, कोई प्रॉहिबिशन, कोई नशाबंदी है वहां? और ऐसा भी क्या कि कुल्हड़-कुल्हड़ में पीओ, अरे जी भर कर पीओ! गागरें भर कर घर ले आओ! डुबकियां लगाओ, नहाओ-धोओ उसी में! खुद भी पीओ, औरों को भी पिलाओ! कोई अड़चन है?
उमर खय्याम ने इसीलिए कहा है कि थोड़ा-थोड़ा यहां अभ्यास करने दो, नहीं
तो वहां जाकर एकदम से पीएंगे तो बीमार ही पड़ जाएंगे। बात जंचती है, थोड़ा- थोड़ा अभ्यास तो जारी रखना ही चाहिए। तो तुम्हारे पति देवता हैं अगर, सो पक्का ही है कि वे स्वर्ग जाएंगे। और आजकल हिंदू-मुसलमानों के नरक इतने अलग थोड़े ही रहे, गांधी बाबा कह गए हैं न--अल्ला ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान! अब तो सब गड्डमगड्ड हो गया है। हिंदू-स्वर्ग मुसलमान-स्वर्ग में घुस गया है। मुसलमान-स्वर्ग हिंदू-स्वर्ग में घुस गया है। तुम्हारे पति देवता थोड़ा अभ्यास कर रहे हैं देवलोक का। तुम क्यों इतनी परेशान हो उनसे? और अगर सब भांति देवता हैं, एक ही कसूर है, तो एकाध कसूर तो होना ही चाहिए आदमी में, नहीं तो दुनिया में रह ही नहीं सकता। दुनिया में तो अपूर्ण होना जरूरी है पैदा होने के लिए। इसीलिए तो कहते हैं कि बुद्धपुरुष फिर दुबारा पैदा नहीं होते।
तुम्हारे क्या विचार हैं? पतिदेव एकदम समाप्त हो जाएं? यह एक ही कसूर बचा है, जिसकी वजह से वे अटके हैं। तुम आखिरी धागा भी काट देने की तैयारी कर रही हो! फिर उनकी पतंग कट गई समझो। फिर लौट कर आना नहीं है।

और बाकी चीजों में भी जो वे देवता मालूम पड़ रहे हैं, पक्का है तुम्हें
कि वे शराब पीने के कारण ही तो देवता नहीं मालूम पड़ते बाकी चीजों में? कि पीकर आ गए हैं, तुम जो भी बको, शांति से सुनते हैं और मुस्कुराते हैं। तुम बर्तन तोड़ो, चीजें फोड़ो, बच्चों को पीटो--और वे समभाव रखते हैं। रखेंगे ही, क्योंकि उनको कुछ पता ही नहीं चल रहा है कि क्या हो रहा है, या उनको कुछ का कुछ दिखाई पड़ रहा है।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बड़ी चीख-पुकार मचा रही थी। बोलीः क्यों जी, जब भी तुम अंग्रेजी शराब पीकर आते हो तो मुझे परी कह कर पुकारते हो और जब देशी शराब पीकर आते हो तो मुझे रानी कह कर पुकारते हो, आज कौन सी शराब पीकर आए हो कि मुझे चुड़ैल कह रहे हो?
नसरुद्दीन बोलाः यह तेरी ही शिक्षाओं का फल है। तू ही तो मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ी है कि शराब न पीओ, शराब न पीओ। आज बिना पीए ही आया हूं।
अब वे जो देवता जैसा व्यवहार कर रहे हैं, क्या पता वे नशे के कारण ही
कर रहे हों। मत छुड़वाओ। सब ठीक-ठाक चल रहा है, क्यों झंझट खड़ी करनी?
और अक्सर मेरा अनुभव है कि जब तक कोई पीछे पड़ा रहे कि छोड़ो, तब तक छोड़ना मुश्किल होता है, क्योंकि अपमानजनक लगता है। तुम फिक्र छोड़ो। अगर पति को पीना है तो पीने दो; कोई नुकसान तो कर नहीं रहे हैं; कोई झगड़ा-फसाद खड़ा करते नहीं हैं; कोई मार-पीट करते नहीं हैं; चुपचाप पीकर सो जाते हैं घर में। तो किसका क्या हर्जा हो रहा है? किसका क्या बिगाड़ रहे हैं?
यह हमारे देश में एक बड़ी अजीब विक्षिप्तता है। सारी दुनिया में शराब
पी जाती है, कहीं कोई अड़चन नहीं है। अड़चन यहीं है सिर्फ! क्योंकि सारी दुनिया में लोग शराब पीने का सलीका समझ गए हैं। शराब पीने का एक ढंग होता है, एक सलीका होता है। तुम यहां पीने नहीं देते तो लोग गैर-सलीके से पीते हैं, ज्यादा पी जाते हैं। ऐसा ही समझो न कि तुम्हें कोई खाना न खाने दे दिन भर, फिर एकदम से मौका मिल जाए, तो ज्यादा खा जाओगे। दो-तीन दिन उपवास करवा दे कोई जबरदस्ती और फिर खाने का मौका मिल जाए, तो बीमार पड़ोगे। जो भी खाओगे, कै-दस्त हो जाएगा।
सारी दुनिया में लोग शराब पीते हैं, सिर्फ कोई भारत में ही नहीं। भारत में क्या कोई शराब पीता है! लेकिन सारी दुनिया में यूं पीते हैं जैसे पानी पीते हैं। लेकिन कोई झगड़ा-फसाद नहीं, कोई दंगा खड़ा नहीं होता, कोई मार-पीट नहीं होती, कोई नालियों में पड़ा हुआ गालियां नहीं बकता। ये सब खूबियां भारतीय चरित्र में ही प्रकट होती हैं। यह थोड़ा सोचने जैसा है। इसके दो मतलब हैं। एक मतलब तो यह कि भारतीय चरित्र दमित चरित्र है। इसमें गालियां तो भरी हैं भीतर लबालब, निकलने का मौका नहीं मिलता। शराब पी ली, निकल पड़ती हैं। शराब नहीं पीते, सम्हली रहती हैं।
दुनिया का चरित्र इतना दमित नहीं है। लोग ज्यादा प्रामाणिक हैं। लोगों ने नाहक अपने को सता-सता कर, अपने को परेशान कर-कर के, ठूंस-ठूंस कर भीतर चीजों को नहीं भर रखा है। इसलिए निकलने को कुछ है नहीं। शराब पीकर आराम से सो जाते हैं। शराब पीना साधारण पेय है, जैसे कोकाकोला, फैंटा, इस तरह की चीजों में गिनती है। कौन फिक्र करता है शराब की! छोटे-छोटे बच्चों को घर में मां-बाप पिलाना सिखाते हैं, सलीका सिखाते हैं। और शराब अगर मात्रा में पी जाए तो स्वास्थ्यपूर्ण है, कोई नुकसान पहुंचाती नहीं। गैर-मात्रा में तो कोई भी चीज नुकसान पहुंचाएगी; पानी ही पी जाओ गैर-मात्रा में... । तो इसका मतलब क्या है कि पानी पर प्रॉहिबिशन करना पड़ेगा? पी जाओ दस-पांच बाल्टी पानी, पड़े हैं चारों खाने चित्त फिर। फिर अल्ल-बल्ल बकोगे-- पानी ही पीकर बकोगे, शराब वगैरह पीने की जरूरत नहीं है। कुछ का कुछ दिखाई पड़ेगा, वश खो जाएगा। कोई भी चीज मात्रा में... ।
छोटे-छोटे बच्चों को भी पश्चिम में शराब पिलाना सिखाते हैं, घर में मां-बाप सिखाते हैं। तो उससे सलीका बनता है, एक संस्कार बनता है। वे सीख लेते हैं कि कैसे शराब पीना, कब पीना, किस समय पीना, कितनी पीना, पीकर कैसे सो जाना। तो शराब स्वास्थ्यवर्धक हो जाती है। सभी शराबें हानिकर नहीं हैं। और जब कोई सिखाने वाला न हो, कोई बताने वाला न हो, तो तुम न मालूम क्या पी लोगे! अब यहां तो क्या-क्या पी लेते हैं! प्रॉहिबिशन हो जाता है, बंदी हो जाती है शराब पर, तो कोई स्प्रिट पी लेता है, कोई पेट्रोल पी लेता है,

कोई कुछ पी लेता है, कोई तारपीन का तेल पी लेता है। और फिर मरते हैं। ऐसा दुनिया में कहीं नहीं होता। यह सिर्फ ऋषि-मुनियों के इस देश में ही होता है। कौन पागल है इतना कि स्प्रिट पीए! कि पेट्रोल पीए! और यहां देशी शराब के नाम से जो चलता है, उसका कोई भरोसा है कि उसमें क्या हो? कोई भरोसा नहीं है। न बनाने वालों को पता है, न पीने वालों को पता है।
मैं शराब-विरोधी नहीं हूं। शराब का पक्षपाती भी नहीं हूं। मैं यह नहीं कहता कि जो नहीं पीते, उनको पीना चाहिए। मैं यह भी नहीं कहता कि जो पीते हैं, उनको पीना बंद करना चाहिए। मैं कहता हूंः जो पीते हैं, उनको पीने का सलीका सीखना चाहिए। और जो नहीं पीते हैं, उन्हें इतना शिष्टाचार सीखना चाहिए कि जो पीते हों उनके जीवन में दखलंदाजी न करें।
तेरे पति होंगे देवता, मगर तू देवी नहीं मालूम होती। वे भी किसी दिन बिना पीए आएंगे तो चुड़ैल ही समझेंगे। पड़ी है पीछे उनके! हाथ धोकर लोग एक-दूसरे के पीछे पड़े हैं! जिंदगी कलह हो जाती है छोटी-छोटी बातों में। चंदूलाल और उनकी पत्नी में झगड़ा हो गया। वही झगड़ा--यह न पीओ, वह न पीओ;
यह न खाओ, वह न खाओ। चंदूलाल की पत्नी चीख कर बोलीः तुमने क्या मुझे कुतिया समझ रखा है, जो इस तरह बोल रहे हो?
चंदूलाल ने कहाः बिल्कुल नहीं! पर भगवान के लिए अब भौंकना बंद करो!
नहीं, मैं सलाह नहीं दूंगा कि तुम अपने पतिदेव का इतना पीछा करो। संसार में वैसे ही कष्ट बहुत हैं, क्यों और कष्ट देना? उनके जीवन को थोड़ा हलका बनाओ, आरामदायक बनाओ, तो शायद शराब छूट भी जाए। वे शराब पीते क्यों हैं, यह पूछो। चिंताएं उनके ऊपर होंगी; उनमें तुम कोई कमी नहीं करोगी। नया हार बाजार में आएगा तो लाना चाहिए। अब नया हार लाएंगे, तो शराब न पीएंगे तो क्या करेंगे! गंगाजल पीएं? सिर पर कर्ज बढ़ा जा रहा है, दुकान का दिवाला निकला जा रहा है--और तुम्हें नया हार चाहिए! पड़ोसियों ने नई कार खरीद ली है, तुम्हें भी नई कार चाहिए। पति ये सब कहां से लाए? सिर पर बोझ बढ़ता जा रहा है। इस बोझ को उतारने के लिए शराब पी लेता है, तो थोड़ी देर को भूल जाता है, संसार के बाहर हो जाता है, थोड़ी देर कल्पनाओं के जाल में अपने को डुबा लेता है। तुम यह भी मौका उसको नहीं देना चाहतीं! तुम्हारा दिल है कि यह बोझढोकर और बैठ कर हनुमानजी की मढ़िया में पूजा करे? एक तो वैसे ही छाती पर पत्थर रखा है और हनुमानजी को और बिठाल दो! वैसे ही मरे जा रहे हैं, और अब घंटी बजाओ! वैसे ही प्राण निकले जा रहे हैं, और तुम चाहती हो कि बैठ कर माला जपो!
पति के जीवन को थोड़ा हलका करो। पति के जीवन से थोड़ी कठिनाइयां कम करो। मैं मुल्ला नसरुद्दीन की गाड़ी में बैठ कर उसके घर गया। गरमी के दिन। पसीना-पसीना हम दोनों हुए जा रहे। मैंने नसरुद्दीन से कई बार कहा कि खिड़की क्यों नहीं खोलते जी?
उसने कहा कि आप खिड़की की तो बात ही मत करना।
उसने कुछ इस तरह से बात कही कि मैंने सोचा कि यह खिड़की की बात करने से इसकी कोई जैसे छुपी रग छू जाती है या क्या मामला है, चुप ही रहना ठीक है। जैसे ही घर पहुंचे, दरवाजा खोल कर वह उतरा ही था कि गिर पड़ा, बेहोश हो गया। पंखा पत्नी लाई, हवा की। और बस वह जैसे ही होश में आया कि उसने उपद्रव शुरू कर दिया, कि तुम फिर पीकर आ गए!
मैंने कहा कि नहीं भाई, यह पीकर नहीं आया है। यह तो इतनी गरमी और कार
के दरवाजे बंद किए हुए है, खिड़कियां बंद किए हुए है, हवा भीतर आने नहीं देता, यह तो गरमी के कारण मूर्च्छा आ गई है। और मैं इससे कई दफे कहा कि खिड़की खोल ले। क्या तुझे मरना है? और तुझे मरना हो तो मर, मुझे क्यों मार रहा है? तो मैं जैसे ही खिड़की की बात कहूं कि यह एकदम भन्ना जाए। तो मैंने कहा कि ठीक है, गुजार लो। एक दो-चार मिनट की बात है।
तो उसने अपनी पत्नी की तरफ कहा कि अब इसी से पूछो कि क्यों खिड़की नहीं खोलता। यह खोलने नहीं देती। यह कहती हैः खिड़की खोल कर क्या बदनामी करवानी है? मोहल्ले के लोग समझते हैं कि तुम्हारी कार एयरकंडीशंड नहीं है। या तो एयरकंडीशंड कार लाओ और या खिड़की बंद रखो। अब दोनों तरफ, इधर गिरो तो कुआं, उधर गिरो तो खाई। एयरकंडीशंड कार कहां से लाऊं? मुल्ला ने कहा। मेरा दिवाला निकला जा रहा है। इस साल दीवाली नहीं होनी, दिवाला होना है।

एयरकंडीशंड कार कहां से लाऊं? सो उससे बेहतर है खिड़कियां बंद ही करके बैठा हूं कि हो सकता है कि उसके पहले मैं ही मर जाऊं, झंझट मिटे।
अब ऐसे आदमी अगर न पीने लगें शराब तो और क्या करें? मैं देखता हूं कि पति मरा जा रहा है और स्त्रियों की साड़ियों के ढेर लगे जा रहे हैं। मैं लोगों के घरों में मेहमान होता था तो तीन-तीन सौ साड़ियां... । मैं चकित भी होऊं कि तीन सौ साड़ियां पहनोगे कैसे! एक ही साड़ी पहन सकती है स्त्री एक बार में। बहुत कोशिश करे, दो पहन ले, और क्या करेगी? तीन पहन ले। मगर तीन सौ? और इसीलिए तो स्त्रियों को इतनी देर लगती है। तुम्हें कल की ट्रेन पकड़नी हो तो आज से ही तैयारी शुरू करो, क्योंकि पहले तो स्त्री को तैयार होने में ही इतना वक्त लग जाएगा। वह तैयारी में इतना वक्त इसीलिए लगता है-- कौन सी साड़ी पहननी! यह पहनूं कि वह पहनूं--यही उसकी सबसे बड़ी दार्शनिक समस्या है।
और पति पर क्या गुजर रही है? तुम्हें पति की चिंताओं का कुछ ख्याल है? उसकी परेशानियों का कुछ ख्याल है? उसकी परेशानियों में तुम भागीदार हो? उसकी परेशानियों को कम करने में तुमने कुछ उपाय किया है? अगर नहीं, तो क्यों उसके पीछे पड़ना? पी लेने दो! कोई गुनाह नहीं कर रहा है, कोई बहुत बड़ा पाप नहीं हुआ जा रहा है। थोड़ी देर पीकर सो जाता है, ठीक है, राहत मिल जाती है; कल फिर काम के योग्य हो जाता है; फिर साड़ी खरीद कर लाएगा, फिर जेवर बनवाएगा, फिर दौड़-धूप में लग जाएगा।
चंदूलाल की पत्नी डाक्टर के पास गई और बोलीः मेरे पति श्री चंदूलालजी
को बहुत कम दिखाई देने लगा है।
यह तुम्हें कैसे पता चला? आंखों के डाक्टर ने पूछा।
सुनिए, पूरी कथा इस प्रकार है, श्रीमती चंदूलाल बोलीं। कल शाम को सात बजे मेरे पति दफ्तर से लौट रहे थे और मैं अपनी पड़ोसिन, मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी गुलजान के घर जा रही थी। गुलजान के घर के सामने थोड़ा अंधेरा है। वहां वे मुझे मिले। मुझे देखते ही वे मेरे गले से लिपट गए और मेरे गालों पर उन्होंने चुंबनों की बौछार शुरू कर दी। चंदूलाल को इतने रोमांटिक क्षणों में मैंने पहले कभी नहीं देखा था। उन्होंने उस दिन मुझसे कहाः डार्लिंग, तुम्हारा चेहरा चांद से भी प्यारा है! तुम्हारी आंखें हिरणी सी और ओंठ गुलाब की नाजुक पंखुड़ी से हैं! तुम्हारे जिस्म की खुशबू संसार के सभी फूलों को मात करती है! मैं तुम्हारी मोहब्बत पाकर धन्य हो गया हूं! तुमने मेरे लिए क्या-क्या नहीं किया, प्रिये, मगर मैं तुम्हारे लिए कुछ भी न कर सका, मुझे माफ कर देना। तुम तो मेरे हृदय की देवी हो। सदा-सदा के लिए मैं तुम्हारा हो गया हूं। हे प्राण-प्रिये, तुम्हारा स्पर्श मात्र मुझमें जीवन का संचार कर देता है। मेरी जान, कल फिर तुम मुझे फोन करके बुला लेना, जैसे ही वह गीदड़ का बच्चा नसरुद्दीन आफिस के लिए निकले।
डाक्टर यह सब शांति से सुनता रहा और बोलाः बाई, यह तुम्हारे पिछले जन्मों के पुण्यों का फल है कि उन्हें भरी जवानी में इतना कम दिखाई देने लगा है। इलाज वगैरह की झंझट में न पड़ो, परमात्मा को धन्यवाद दो और उन्हें ऐसा ही रहने दो।
तुम मुझसे पूछ रही हो कि इनकी शराब कैसे छुड़वानी!
छुड़वा कर फिर क्या होगा? फिर मुझे दोष मत देना। इनका बाकी जो देवत्व है, वह हो सकता है शराब के कारण ही हो। शराब छोड़ कर ये अगर तुम्हारी पिटाई करें, तो फिर मेरा जिम्मा नहीं। शराब छोड़ कर अगर ये घर में उपद्रव मचाएं, तो फिर मेरा जिम्मा नहीं। शराब छोड़ कर अगर इनका काम-धंधा चौपट हो जाए, तो मेरा जिम्मा नहीं। अगर इस सबकी तुम्हारी तैयारी हो बरबादी की, तो ले आना अपने पति देवता को, मैं भी कोशिश करूंगा।
और मेरी कोशिश अक्सर काम आ जाती है, इसका ख्याल रखना। क्योंकि मेरे कोशिश करने के अपने ढंग हैं। मैं उनको यही समझाऊंगा कि तुम्हारे ये सब देवत्व वगैरह से छुट्टी हो जाएगी, छोड़ो भी यह झंझट। एक दफा असलियत प्रकट हो ही जाने दो।
फिर मुझसे मत कहना कि अब इनको समझा दो कि भैया तुम पीओ, फिर पीओ। फिर बहुत मुश्किल हो जाएगा। सुधारना आसान है, बिगाड़ना बहुत मुश्किल है।

लेकिन यह दृष्टि ही गलत है। क्यों तुम किसी के पीछे पड़ी हो? तुम्हें अपनी जिंदगी में कुछ बदलने को नहीं दिखता? तुम शांत होओ, तुम ध्यान करो, तुम प्रार्थना में डूबो। और तुम्हारे पति को कोई अड़चन होगी तो वे खुद ही पूछेंगे। तुम्हें क्यों पूछना?
यह जान कर मैं अक्सर हैरान होता हूं कि लोग अपने संबंध में कम, औरों के संबंध में ज्यादा पूछते हैं। कोई बाप आ जाता है, वह पूछता है कि मेरे बेटे में ये खराबियां हैं, इनको कैसे ठीक करना? जैसे बाप में तो कोई खराबियां हैं ही नहीं! तो बेटे में कहां से आ गईं? आप ही की संतान हैं। आप ही जन्मदाता हो। आप ही हो स्रोत उपद्रव के। कहीं न कहीं आप में ही होंगे गुण। मेरे पास बाप आ जाते हैं, वे कहते हैं कि यह लड़का कैसा बुद्धू है, बिल्कुल बुद्धू! और उनको भी मैं जानता हूं कि वे महाबुद्धू हैं। मगर अब उनसे क्या कहो! वे सोचते हैं कि वे तो बड़े महापुरुष हैं, बड़े बुद्धिमान, बड़े प्रतिभाशाली! वह तो यह समझो कि नोबल प्राइज उनको नहीं मिली, क्योंकि नोबल प्राइज देने वाले सब पक्षपाती हैं। और उनका बेटा--यह बुद्धू! इसमें बुद्धि कैसे आए, इसकी चिंता में लगे हैं वे।
अब इसमें बुद्धि तो तब आएगी, जब यह दुबारा दूसरे मां-बाप चुने। अब यह
इस जीवन में जरा मुश्किल है। और यहीं मामला नहीं बनता। वे इस बेटे की भी शादी करने के पीछे लग जाते हैं। यह भैया और भी पहुंचे हुए पुरुष छोड़ जाएगा।
पत्नियों को फिक्र पड़ी है--पतियों को कैसे सुधारें। पतियों को फिक्र पड़ी है--पत्नियों को कैसे सुधारें। सब एक-दूसरे के सुधार में लगे हुए हैं। किसी को जैसे चिंता नहीं है इस बात की कि अपनी जिंदगी में भी कुछ बदलाहट करनी है या नहीं! जिंदगी चार दिन की है, कब गुजर जाएगी, पता नहीं। कुछ कर लें। कुछ अपने को सम्हाल लें। कुछ अपने जीवन को मंदिर की सीढ़ियों पर चढ़ा लें। कुछ परमात्मा के निकट पहुंच जाएं। यह जीवन यूं ही न बीत जाए, अकारथ न बीत जाए। कुछ जान लें, कुछ जी लें। कुछ आनंद का, कुछ चैतन्य का अनुभव कर लें। नहीं, इसकी कोई फिक्र नहीं है। पति की शराब कैसे छूटे!
छूट ही गई तो फिर क्या होगा? तुम्हें कोई समाधि मिल जाएगी? कोई बुद्धत्व मिल जाएगा? इतने तो पति शराब नहीं पी रहे, उनकी पत्नियों को कौन सा बुद्धत्व मिल गया है? रमा देवी, जरा आस-पास तो देखो! कई के पति शराब नहीं पी रहे। उनको क्या मिल गया है।
मगर आदमी की यह अजीब हालत है। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि कैसे ध्यान करें, घर में बच्चे ही बच्चे, बच्चे ही बच्चे! दस-बारह बच्चों में कैसे ध्यान हो सकता है? उपद्रव ही मचा रहता है घर में। और कौन ने ये बच्चे पैदा कर दिए? क्या तुम अभी भी यह सोचते हो कि जब भगवान देता है तो छप्पर फाड़ कर देता है? खुद ही बच्चे पैदा कर रहे हो, खुद ही फिर रो रहे हो, फिर चिल्ला रहे हो, चीख रहे हो, पुकार मचा रहे हो, हाय-तोबा कर रहे हो।
और मेरे पास लोग आ जाते हैं जिनको बच्चे नहीं हैं। वे कहते हैंः जब तक बच्चा न हो, तब तक ध्यान में चित्त नहीं लगेगा। एक भी बच्चा नहीं है। आगे सम्हालेगा कौन? जैसे इन्हीं से दुनिया चल रही है! अगर ये न छोड़ गए औलाद तो दुनिया डूबी! वह कछुआ वगैरह जो सम्हाले था पृथ्वी को, नहीं सम्हाले हुए है; वह ये जो बच्चा पैदा करेंगे, वह सम्हालेगा पृथ्वी को! इनको चैन नहीं है, क्योंकि बच्चा चाहिए। किसी को चैन नहीं है, क्योंकि बच्चे ही बच्चे हैं। सच बात यह है कि दूसरों के कारण कोई अड़चन नहीं है--न तो बच्चों के होने
से कोई अड़चन है, न न होने से कोई अड़चन है। मगर तुम बहाने खोजते रहते हो। रमा देवी, अपनी चिंता लो। ये जो शराब पी रहे हैं सज्जन, इनको पीने दो।
जो भी पाप-पुण्य ये कर रहे हैं, ये जानें। तुम इनके साथ समय खराब मत करो। तुम कुछ और कर लो, तुम कुछ और पी लो! और यह भी हो सकता है कि तुम अगर ध्यान में मस्त रहने लगो तो शायद ये भी सोचें कि मैं जो मस्ती खरीद कर लाता हूं, महंगी है; एक और भी मस्ती है, जो मिटाती नहीं, बनाती ही है; जिसमें जीवन नष्ट नहीं होता, जिसमें जीवन का सृजन होता है। मैं जो शराब पीता हूं, वह तो बिगाड़ेगी ही, विकृत करेगी। और मेरी पत्नी एक रस में लग गई है। शायद तुम्हारे पति भी तुम्हारे रस में बंधे मेरे पास चले आएं।

मेरे पास ऐसे मत लाना जैसे तुम और महात्माओं के पास ले गई हो, ख्याल रखना। अक्सर यह भूल कुछ महिलाएं कर लेती हैं, फिर बहुत पछताती हैं। क्योंकि आमतौर से तुम अगर किसी महात्मा के पास अपने पति को ले जाओगी तो तुम्हारे पति को महात्मा अच्छी डांट पिलाएंगे। महात्माओं का काम ही यह है। एक शड्यंत्र चलता है। स्त्रियां महात्माओं की सेवा करती हैं, महात्मा स्त्रियों की सेवा करते हैं। स्त्रियां महात्माओं के पैर दबाती हैं; महात्मा, स्त्रियां जो भी कहती हैं, उनकी मान कर उनके पतियों को डांट पिलाते हैं। एक साठ-गांठ है स्त्रियों और महात्माओं के बीच में। और पति इन दोनों के बीच पिसते हैं। और जब महात्मा भी कह रहे हों तो फिर अब बेचारे क्या कर सकते हैं, फिर सिर झुकाए नीचे बैठे रहते हैं।
ऐसा अक्सर मुझे हो जाता था, जब मैं यात्राएं करता था, घरों में ठहरता
था किन्हीं के, बस पत्नियां ले आएंगी, या मां-बाप अपने बच्चों को ले आएंगे, कि आप इनको कुछ सिखाइए। जैसे वे औरों के पास ले गए थे। और जिसके भी पास ले गए थे, उसने ही सिखाया था। मैं जरा उलटे ढंग का आदमी हूं। अगर तुम मेरे पास अपने पति को ले आईं, तो मैं कहूंगा कि तुम डट कर पीओ, इसकी सुनना ही मत। कुछ पीने में पाप नहीं है। छोड़ना उस दिन जिस दिन तुम्हें लगे कि गलत है। तुम्हारी पत्नी को गलत लगता है तो वह न पीए। पति-पत्नी में यह कोई ठेका थोड़े ही है कि वह जो पीए, वही तुम पीओ। यह न पीए, ठीक; इसकी अपनी आत्मा की यात्रा है, यह अपने ढंग से करे, तुम अपने ढंग से करो। और यह कौन है तुम्हें बदलने वाली? अगर इसको पीना हो तो यह भी पीने लगे।
अक्सर तो मुझे ऐसा लगता है कि पीने के इरादे रमा देवी के मन में भी उठते होंगे। मगर कैसे करें? भारतीय स्त्री, लोक-लाज, लज्जा, मान-मर्यादा, सती-सावित्रियों का देश! यहां कैसे पीए? वह तो कोका-कोला इत्यादि पी लेती हैं, यही बहुत बड़ा काम कर रही हैं। क्योंकि सती-सावित्री तो कोका-कोला भी नहीं पीती थीं। था ही नहीं कोका-कोला, बेचारी पीतीं भी तो क्या पीतीं! इनके दिल में भी शायद होता होगा कि पी लें। मगर वह तो कह नहीं सकतीं। तो उसका बदला तो ले ही सकती हैं, सता तो सकती ही हैं पति को। वह प्रतिशोध है। वह बदला है।
मेरे पास बच्चों को मां-बाप ले आते हैं कि ये मानते नहीं हमारी।
मैं उनसे कहता हूं कि मानना चाहिए ही नहीं तुम्हारी। तुम मनाना चाहते हो, यही गलत है। क्यों मानें? इन्हें अपना जीवन जीना है। तुमने अपना जीवन जीया, तुमने अपने बाप की मानी?
वे थोड़ा मुश्किल में पड़ते हैं। पीछे मुझसे कहते हैं कि आप कैसी बातें करते हैं हमारे बच्चों के सामने? अगर वे इस तरह की बातें सुनेंगे तो और बिगड़ जाएंगे।
मैंने कहाः तुमने जब अपने बाप की नहीं मानी तो ये क्यों मानेंगे? तुम अपने अनुभव से सीखे, ये अपने अनुभव से सीखेंगे। तुम सिगरेट पीते हो, तुम पान खाते हो, वह ठीक। और ये सिगरेट पीएं तो गलत। यह बच्चे कैसे मानें? तुम किस मुंह से इनसे कहते हो? क्या तुम्हारे आधार हैं कहने के? तुम झूठ बोलते हो निरंतर और अपने बच्चों को कहते हो झूठ मत बोलना। और बच्चे रोज देखते हैं कि तुम झूठ बोल रहे हो, सरासर झूठ बोल रहे हो। और सुनते हैं कि झूठ मत बोलना। इनकी समझ के बाहर हो जाता है कि मामला कैसे पाखंड का है! तुम कहते कुछ हो, करते कुछ हो। यही तुम्हारे बच्चे भी सीख रहे हैं। यही कला वे तुम्हारे साथ अभ्यास करते हैं। फिर तुम कहते होः ये बच्चे हमें धोखा दे रहे हैं।
मैंने कहाः ये अभ्यास और करेंगे कहां? शुरू में घर में ही करेंगे। फिर धीरे-धीरे बाहर करेंगे। तुम ही कारण हो।
मेरे पास भूल कर मत ले आना अपने पति को। हां, तुम ध्यान में डूबो। तुम यहां आ गईं, यही बहुत है। तुम, जो रस यहां बह रहा है, इसे पीओ। यहां भी तो हम एक शराब पी रहे हैं। इसे पीओ! तो शायद एक दिन तुम्हारे पति भी तुम्हारे पीछे खिंचे चले आएं। हां, अपने से आएं तो फिर कुछ बात बन सकती है।
मैं छुड़ाता नहीं। छोड़ने में मेरा भरोसा नहीं है। मैं कहता हूंः मिट्टी मत छोड़ो। मैं कहता हूंः सोना पा लो, मिट्टी तो छूट जाएगी। मैं नहीं कहता संसार छोड़ो। मैं तो कहता हूंः आत्मा का अनुभव करो। आत्मा का अनुभव

हुआ कि संसार छूट जाएगा। मैं नहीं कहता कि त्याग करो। मैं तो कहता हूंः परमात्मा का भोग करो। परमात्मा का भोग आया, स्वाद आया, तो संसार बिल्कुल ही तिक्त हो जाता है, कड़वा हो जाता है, चखने योग्य नहीं रह जाता। मुंह में भी आ गया हो तो तुम थूक दोगे।
मेरा जीवन को देखने का ढंग और है। मैं त्यागवादी नहीं हूं। मैं परम भोगवादी हूं। अध्यात्म को मैं आत्यंतिक भोग कहता हूं। यह परमात्मा को पीना है। इससे बड़ी और कोई मधुशाला नहीं होती। और इससे बड़े कोई पियक्कड़ नहीं होते। जिन्होंने उसे पीया है, उनके सब नशे छूट जाते हैं। क्योंकि उस बड़े नशे के सामने कहां छोटे नशों की बिसात! जिसको सागर मिल गया, वह कोई छोटे-मोटे डबरों में अपनी डोंगियां खेता फिरेगा? वह सागर के तूफानों में जूझेगा। वह चुनौतियां लेगा बड़ी।
आने दो तुम्हारे पति को अपने आप। तुम भर मत लाना, नहीं तो खतरा हो सकता है।

आखिरी सवालः आपने मा शीला को अपनी बार-टेंडर, मधुबाला कहा है। इसका क्या अर्थ है?

सिद्धार्थ! अर्थ तो साफ है कि यह मधुशाला है। यहां तो पियक्कड़ों की जमात है। और यहां कोई शीला अकेली ही थोड़े मधुबाला है। यहां तो बहुत मधुबालाएं हैं। यहां तो जाम पर जाम भरे जा रहे हैं और पीए जा रहे हैं। और यह शराब कुछ ऐसी नहीं है जो चुक जाए, अजस्र इसका स्रोत है।

मधुवर्षिणि,
मधु बरसाती चल,
बरसाती चल,
बरसाती चल।
झंकृत हों मेरे कानों में,
चंचल, तेरे कर के कंकण,
कटि की किंकिणि,
पग के पायल--
कंचन पायल,
"छन-छन" पायल।
मधुवर्षिणि,
मधु बरसाती चल,
बरसाती चल,
बरसाती चल।

मधुबाला का अर्थ होता हैः जो तुम्हारा जाम भर दे। यहां मेरे सारे संन्यासी इसी काम में लगे हुए हैं कि जो तुम्हारी प्यालियों को भर दें। उन्होंने चखा है, वे तुम्हें भी चखने का आमंत्रण दे रहे हैं।
उनके निमंत्रण को स्वीकार करो। पीओ! पिलाओ! जीओ और इस मुरदा हो गए देश
को जिलाओ! यह कोई मंदिर नहीं है। यह कोई मस्जिद नहीं है। यह तो मयकदा है। यहां धर्म कोई पूजा-पाठ नहीं है। यहां धर्म तो जीवन है, नृत्य है, संगीत है, आनंद है। यहां उदास और उदासीन लोगों का काम नहीं है। यहां तो नर्तकों को आमंत्रण है। यहां तो प्रेमियों को बुलावा है। यह तो रास है। यहां तो केवल उनकी जगह है, जो हंस सकते हों, मुस्कुरा सकते हों--सिर्फ ओंठों से नहीं, प्राणों से भी।
यह बिल्कुल उलटी जगह है। यह कोई ऋषिकेश नहीं, कोई हरिद्वार नहीं, कोई तीर्थराज प्रयाग नहीं। यह कोई काबा नहीं, कोई अमृतसर नहीं, कोई गिरनार नहीं। यह तो वैसी जगह है, जो कभी-कभी पृथ्वी पर प्रकट होती है। हां, जब बुद्ध जिंदा थे, तब उनके पास इसी तरह की मधुशाला थी। और जब नानक जिंदा थे, तो उनके पास भी यही संगीत था, यही स्वर थे। और जब मोहम्मद जिंदा थे, तो उनके पास भी यही गीत थे, यही गूंज थी। और जब जीसस थे, तो ऐसे ही उनके पास भी जाम

भरे जा रहे थे। सदगुरु जब जीवित होता है, तभी इस तरह की अपूर्व घटना घटती है।
विष्णु चैतन्य ने भी पूछा है कि कई वर्षों से देख रहा हूं कि जो माला
मा शीला अपने गले में लटकाए है, उसके लाकेट में आप उलटे हैं। समझ में नहीं आता कि शीला उलटी है या उसने आपको उलटा कर रखा है। इस उलटे-सीधे को जरा स्पष्ट करें! क्योंकि आपके चारों ओर जो चल रहा है, उसमें क्या सीधा है, क्या उलटा, जब तक आप ही स्पष्ट न करें, समझना जरा कठिन है।
मेरे समझाने पर भी समझना कठिन है। मेरे स्पष्ट करने पर भी स्पष्ट नहीं होगा। स्पष्ट करने की फिक्र ही छोड़ो। पीओ। स्पष्ट क्या करना है! स्वाद लो। समझना क्या है, जीओ! अनुभव करो!
यह तो उलटी जगह है ही, सो शीला ने ठीक ही किया है कि उलटा लटकाए हुए है लाकेट। उसका मतलब यह है कि विष्णु चैतन्य, अगर मुझको समझना हो तो शीला के सामने शीर्षासन करके खड़े हो जाना, तब मैं तुम्हें सीधा दिखाई पडूंगा। यह शीर्षासन का संदेश है।
आज इतना ही।